पंचास्तिकायसंग्रह प्रकाश

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के सन् १९६४ के प्रवचन भाग ३

धर्मास्तिकाय

अधर्मास्तिकाय

पुद्गलास्तिकाय

आकाशास्तिकाय

जीवास्तिकाय

काल

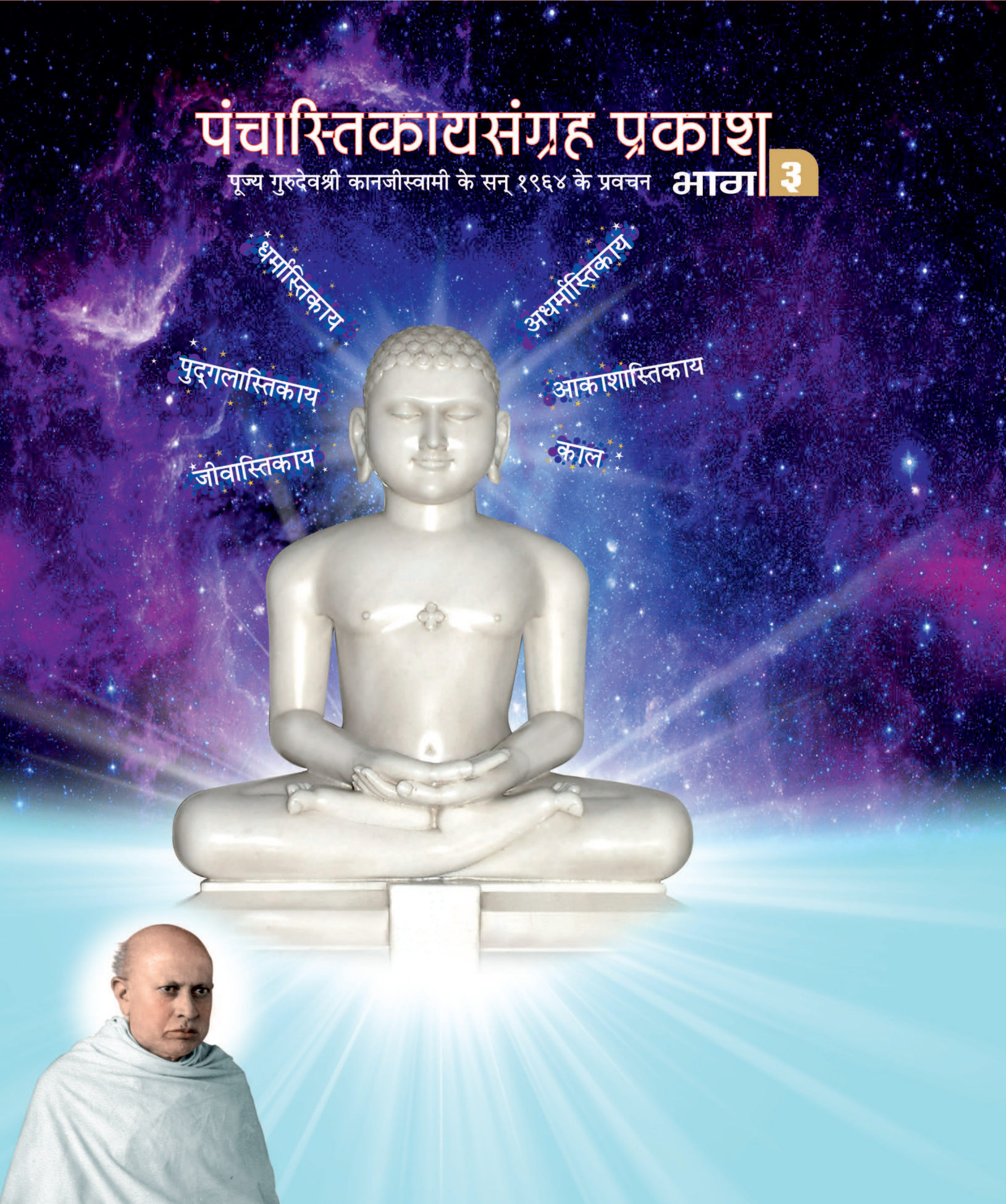

ॐ

नमः सिद्धेभ्यः

पंचास्तिकायसंग्रह प्रकाश

(भाग - 3)

(**श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव** प्रणीत **श्री पंचास्तिकायसंग्रह** परमागम पर **अध्यात्मयुगप्रवर्तक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी** के ई.स. 1964 में हुए प्रवचन)

: हिन्दी अनुवाद :

पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन

बिजौलियाँ, जिला-भीलवाड़ा (राज.)

: प्रकाशक :

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250

फोन : 02846-244334

: सह-प्रकाशक :

श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट

302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.

वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट), मुम्बई-400 056

फोन : (022) 26130820

विक्रम संवत	वीर संवत	ई. सन
2078	2548	2022

—: प्रकाशन :—

ज्ञानपर्व श्रुतपंचमी

(ज्येष्ठ शुक्ल 5, दिनांक 04 जून 2022)

के अवसर पर

—: प्राप्ति स्थान :—

1. श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250 फोन : 02846-244334

2. श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट

302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.

वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ला (वेस्ट), मुम्बई-400 056

फोन : (022) 26130820, 26104912, 62369046

www.vitragvani.com, email - info@vitragvani.com

टाईप सेटिंग :

विवेक कम्प्यूटर

अलीगढ़।

प्रकाशकीय निवेदन

मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमो गणी,
मंगलं कुंदकुंदार्यो, जैन धर्मोस्तु मंगलं।

महावीर भगवान, गौतम गणधर तत्पश्चात् जिनके नाम का उल्लेख किया जाता है ऐसे भरत के समर्थ आचार्य, साक्षात् सदेह विदेह में जाकर सीमन्धर भगवान की दिव्यध्वनि का प्रत्यक्ष रसपान करके भरत में पधारे श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव महान योगीश्वर हैं, यह जगतविदित है। अनेक महान आचार्य उनके द्वारा रचित शास्त्रों का आधार देते हैं। इससे ऐसा प्रसिद्ध होता है कि अन्य आचार्य भी उनके वचनों को आधारभूत मानते हैं।

निर्मल पवित्र परिणति के धारक तो थे ही परन्तु पुण्य में भी समर्थ थे कि जिससे सीमन्धर भगवान का साक्षात् योग हुआ। महाविदेह से वापस आने के बाद पोन्नूर तीर्थधाम में साधना करते-करते उन्होंने अनेक शास्त्रों की रचना की। जिसमें श्री समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, अष्टपाहुड़ आदि पाँच परमागम तो प्रसिद्ध है ही परन्तु इसके अतिरिक्त भी अनेक शास्त्रों की रचना उन्होंने की है।

श्री समयसार इस भरतक्षेत्र का सर्वोत्कृष्ट परमागम है। उसमें नव तत्त्व का शुद्धनय की दृष्टि से निरूपण करके जीव का शुद्ध स्वरूप प्रकाशित किया है। श्री प्रवचनसार में नाम अनुसार जिनप्रवचन का सार संग्रहित है और उसे ज्ञानतत्त्व, ज्ञेयतत्त्व और चरणानुयोगसूचक चूलिका नामक तीन अधिकारों में विभाजित किया है। श्री नियमसार में मोक्षमार्ग का सत्यार्थ निरूपण है। श्री पंचास्तिकायसंग्रह में कालसहित पाँच अस्तिकायों का (अर्थात् छह द्रव्यों का) और नौ पदार्थपूर्वक मोक्षमार्ग का निरूपण है तथा श्री अष्टपाहुड़ एक दार्शनिक ग्रन्थ है, जिसमें सम्यक् रत्नत्रय एक ही मोक्षमार्ग है, उसकी दृढ़तापूर्वक स्थापना की गयी है।

पंचास्तिकायसंग्रह पर पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा ई.स. 1963-64 में हुए उपलब्ध प्रवचनों को एकत्रित कर शब्दशः ग्रन्थ लिपिबद्ध किया गया है। पंचास्तिकायसंग्रह शास्त्र के प्रारम्भ में ही आचार्यदेव कहते हैं कि यह शास्त्र सर्वज्ञ महामुनि के मुख से कहे गये पदार्थों का प्रतिपादक,

चतुर्गतिनाशक और निर्वाण का कारण है। इस प्रकार चार अनुयोग में कोई भी अनुयोग हो परन्तु चारों ही अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है, ऐसा अन्त में १७२ गाथा में कहकर समस्त अनुयोगों का सार कहा है। निश्चय-व्यवहाररूप मोक्षमार्ग की सन्धि करके अति स्पष्ट विवेचन किया गया है।

वर्तमान श्री सीमन्धर भगवान की दिव्यध्वनि में जो कहा जा रहा है, उसे प्रत्यक्ष झेलनेवाले भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव और उनके अनन्य भक्त, कि जिनकी विद्यमानता श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव के विदेहगमन के समय साक्षात् थी, ऐसे प्रियवर पूज्य कहान गुरुदेवश्री के अध्यात्मरस भरपूर प्रवचनों का क्या कहना! जो विषय वचनगोचर नहीं, विकल्पगोचर नहीं, उसे कथंचित् वक्तव्य करना यह कहान गुरुदेवश्री की समर्थ प्रचण्ड शक्ति के दर्शन कराता है और भविष्य में ॐकार ध्वनि खिरनेवाली है, इसका सूचक है।

पूज्य गुरुदेवश्री की दिव्यदेशना को ओडियो टेप में उतारने का महान कार्य शुरु करनेवाले श्री नवनीतभाई झवेरी का इस प्रसंग पर आभार व्यक्त करते हैं तथा श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट सोनगढ़ ने इस महान कार्य को अविरत धारा से चालू रखा और सम्हालकर रखा, तदर्थ उसके प्रति भी आभार व्यक्त करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री की दिव्यदेशना की सुरक्षा सी.डी., डी.वी.डी. तथा वेबसाईट (www.vitragvani.com) जैसे साधनों द्वारा श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, विलेपार्ला, मुम्बई द्वारा की गयी है। इस कार्य के पीछे ट्रस्ट की यह भावना है कि वर्तमान के आधुनिक साधनों द्वारा पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा समझाया गया तत्त्वज्ञान का भरपूर लाभ सामान्य जन प्राप्त करे कि जिससे यह वाणी शाश्वत् बनी रहे। पूज्य गुरुदेवश्री के प्रत्येक प्रवचन अक्षरशः ग्रन्थारूढ़ हो, ऐसी भावना के फलस्वरूप पंचास्तिकायसंग्रह ग्रन्थ पर ई.स. १९६४ में हुए उपलब्ध प्रवचन यहाँ प्रकाशित किये जा रहे हैं। पंचास्तिकायसंग्रह ग्रन्थ के संकलित प्रवचन भी पूर्व में सद्गुरु प्रवचनप्रसाद (दैनिक पत्रिका) के रूप में श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा प्रकाशित हुए हैं। प्रस्तुत २७ प्रवचन बाद में प्राप्त हुए प्रवचन हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी तथा तद्भक्त प्रशममूर्ति भगवती माता पूज्य बहेनश्री चम्पाबहिन के करकमल में सादर समर्पित करते हैं।

इन प्रवचनों को सुनकर गुजराती में ग्रन्थारूढ़ करने का कार्य स्व० श्री चेतनभाई मेहता, राजकोट द्वारा किया गया है। हिन्दी रूपान्तरण एवं सी.डी. से मिलान करने का कार्य पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियां (राजस्थान) द्वारा किया गया है। टाईपसेटिंग का कार्य श्री विवेककुमार पाल, विवेक कम्प्यूटर्स, अलीगढ़ द्वारा किया गया है। ट्रस्ट सभी के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करता है।

जिनवाणी प्रकाशन का कार्य गम्भीर तथा जवाबदारीपूर्ण होने से अत्यन्त जागृतिपूर्वक तथा उपयोगपूर्वक किया गया है। तथापि प्रकाशनकार्य में प्रमादवश या अजागृतिवश कोई भूल रह गयी हो तो त्रिकालवर्ती वीतरागी देव-गुरु-शास्त्र के प्रति क्षमायाचना करते हैं। ट्रस्ट मुमुक्षुजनों से निवेदन करता है कि यदि कोई अशुद्धि दृष्टिगोचर हो तो हमारा ध्यान आकृष्ट करें, जिससे आगामी आवृत्ति में यथोचित सुधार किया जा सके।

पाठकवर्ग इन प्रवचनों का अवश्य लाभ लेकर आत्मकल्याण करे - ऐसी भावना के साथ विराम लेते हैं।

यह प्रवचन www.vitragvani.com पर उपलब्ध हैं।

ट्रस्टीगण,

श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट,

विलेपार्ला, मुम्बई

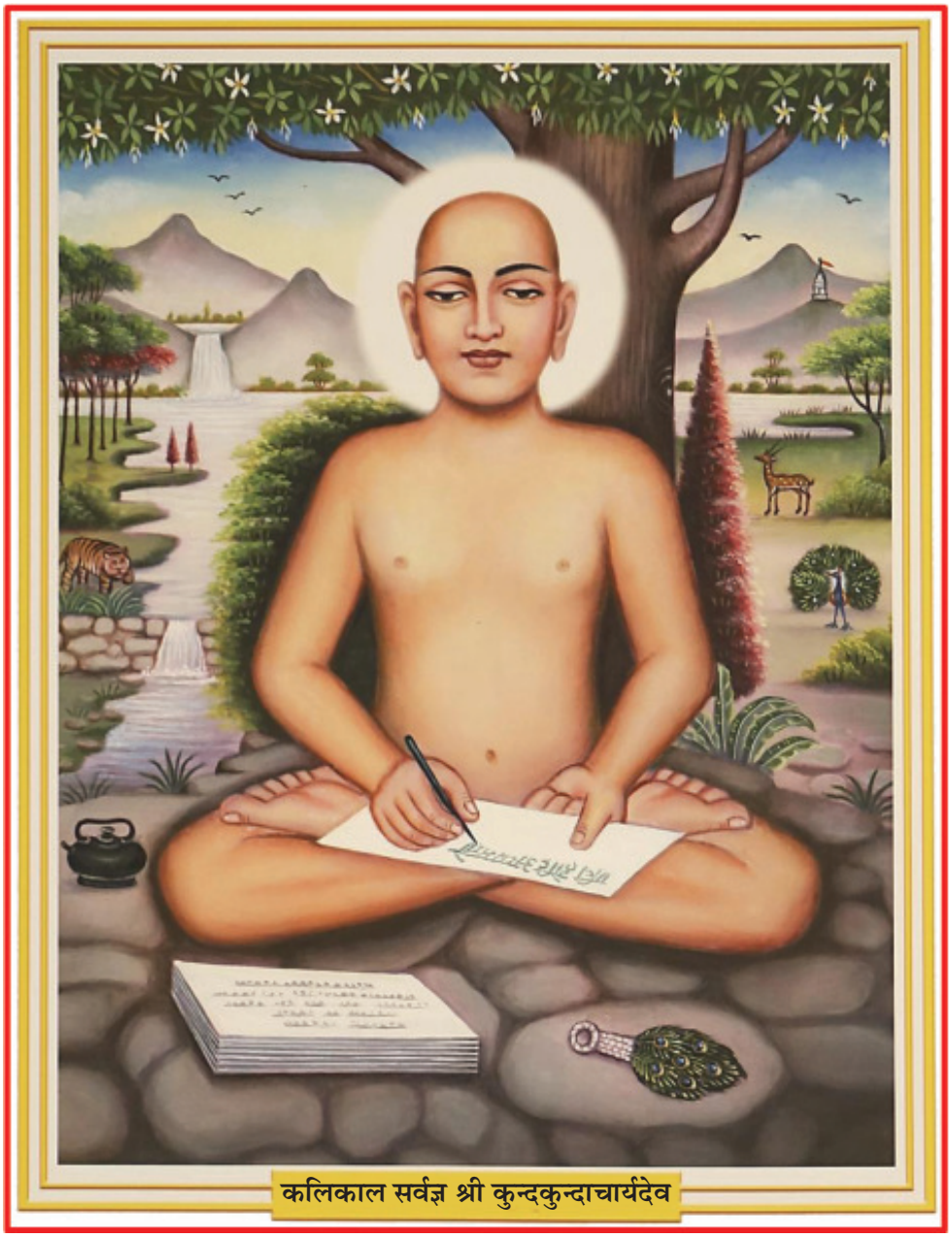

कलिकाल सर्वज्ञ श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव

अध्यात्मयुगसर्जक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

(संक्षिप्त जीवनवृत्त)

भारतदेश के सौराष्ट्र प्रान्त में, बलभीपुर के समीप समागत 'उमराला' गाँव में स्थानकवासी सम्प्रदाय के दशाश्रीमाली वणिक परिवार के श्रेष्ठीवर्य श्री मोतीचन्दभाई के घर, माता उजमबा की कूख से विक्रम संवत् 1946 के वैशाख शुक्ल दूज, रविवार (दिनाङ्क 21 अप्रैल 1890 – ईस्वी) प्रात:काल इन बाल महात्मा का जन्म हुआ।

जिस समय यह बाल महात्मा इस वसुधा पर पधारे, उस समय जैन समाज का जीवन अन्ध-विश्वास, रूढ़ि, अन्धश्रद्धा, पाखण्ड, और शुष्क क्रियाकाण्ड में फँस रहा था। जहाँ कहीं भी आध्यात्मिक चिन्तन चलता था, उस चिन्तन में अध्यात्म होता ही नहीं था। ऐसे इस अन्धकारमय कलिकाल में तेजस्वी कहानसूर्य का उदय हुआ।

पिताश्री ने सात वर्ष की लघुवय में लौकिक शिक्षा हेतु विद्यालय में प्रवेश दिलाया। प्रत्येक वस्तु के ह्रार्द तक पहुँचने की तेजस्वी बुद्धि, प्रतिभा, मधुरभाषी, शान्तस्वभावी, सौम्य गम्भीर मुखमुद्रा, तथा स्वयं कुछ करने के स्वभाववाले होने से बाल 'कानजी' शिक्षकों तथा विद्यार्थियों में लोकप्रिय हो गये। विद्यालय और जैन पाठशाला के अभ्यास में प्राय: प्रथम नम्बर आता था, किन्तु विद्यालय की लौकिक शिक्षा से उन्हें सन्तोष नहीं होता था। अन्दर ही अन्दर ऐसा लगता था कि मैं जिसकी खोज में हूँ, वह यह नहीं है।

तेरह वर्ष की उम्र में छह कक्षा उत्तीर्ण होने के पश्चात्, पिताजी के साथ उनके व्यवसाय के कारण पालेज जाना हुआ, और चार वर्ष बाद पिताजी के स्वर्गवास के कारण, सत्रह वर्ष की उम्र में भागीदार के साथ व्यवसायिक प्रवृत्ति में जुड़ना हुआ।

व्यवसाय की प्रवृत्ति के समय भी आप अप्रमाणिकता से अत्यन्त दूर थे, सत्यनिष्ठा, नैतिज्ञता, निखालिसता और निर्दोषता से सुगन्धित आपका व्यावहारिक जीवन था। साथ ही आन्तरिक व्यापार और झुकाव तो सतत् सत्य की शोध में ही संलग्न था। दुकान पर भी धार्मिक पुस्तकें पढ़ते थे। वैरागी चित्तवाले कहानकुँवर कभी रात्रि को रामलीला या नाटक देखने जाते तो उसमें से वैराग्यरस का घोलन करते थे। जिसके फलस्वरूप पहली बार सत्रह वर्ष की उम्र में पूर्व की आराधना के संस्कार और मङ्गलमय उज्ज्वल भविष्य की अभिव्यक्ति करता हुआ, बारह लाईन का काव्य इस प्रकार रच जाता है—

शिवरमणी रमनार तूं, तूं ही देवनो देव।

उन्नीस वर्ष की उम्र से तो रात्रि का आहार, जल, तथा अचार का त्याग कर दिया था।

सत्य की शोध के लिए दीक्षा लेने के भाव से 22 वर्ष की युवा अवस्था में दुकान का परित्याग करके, गुरु के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर लिया और 24 वर्ष की उम्र में (अगहन शुक्ल 9, संवत् 1970) के दिन छोटे से उमराला गाँव में 2000 साधर्मियों के विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में स्थानकवासी सम्प्रदाय की दीक्षा अंगीकार कर ली। दीक्षा के समय हाथी पर चढ़ते हुए धोती फट जाने से तीक्ष्ण बुद्धि के धारक - इन महापुरुष को शंका हो गयी कि कुछ गलत हो रहा है परन्तु सत्य क्या है ? यह तो मुझे ही शोधना पड़ेगा।

दीक्षा के बाद सत्य के शोधक इन महात्मा ने स्थानकवासी और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के समस्त आगमों का गहन अभ्यास मात्र चार वर्ष में पूर्ण कर लिया। सम्प्रदाय में बड़ी चर्चा चलती थी, कि कर्म है तो विकार होता है न ? यद्यपि गुरुदेवश्री को अभी दिगम्बर शास्त्र प्राप्त नहीं हुए थे, तथापि पूर्व संस्कार के बल से वे दृढ़तापूर्वक सिंह गर्जना करते हैं — **जीव स्वयं से स्वतन्त्ररूप से विकार करता है; कर्म से नहीं अथवा पर से नहीं। जीव अपने उल्टे पुरुषार्थ से विकार करता है और सुल्टे पुरुषार्थ से उसका नाश करता है।**

विक्रम संवत् 1978 में महावीर प्रभु के शासन-उद्धार का और हजारों मुमुक्षुओं के महान पुण्योदय का सूचक एक मङ्गलकारी पवित्र प्रसंग बना —

32 वर्ष की उम्र में, विधि के किसी धन्य पल में श्रीमद्भगवत् कुन्दकन्दाचार्यदेव रचित 'समयसार' नामक महान परमागम, एक सेठ द्वारा महाराजश्री के हस्तकमल में आया, इन पवित्र पुरुष के अन्तर में से सहज ही उद्गार निकले — **'सेठ! यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है।'** इसका अध्ययन और चिन्तवन करने से अन्तर में आनन्द और उल्लास प्रगट होता है। इन महापुरुष के अन्तरंग जीवन में भी परम पवित्र परिवर्तन हुआ। भूली पड़ी परिणति ने निज घर देखा। तत्पश्चात् श्री प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, मोक्षमार्गप्रकाशक, द्रव्यसंग्रह, सम्यग्ज्ञानदीपिका इत्यादि दिगम्बर शास्त्रों के अभ्यास से आपको नि:शंक निर्णय हो गया कि दिगम्बर जैनधर्म ही मूलमार्ग है और वही सच्चा धर्म है। इस कारण आपकी अन्तरंग श्रद्धा कुछ और बाहर में वेष कुछ — यह स्थिति आपको असह्य हो गयी। अत: अन्तरंग में अत्यन्त मनोमन्थन के पश्चात् सम्प्रदाय के परित्याग का निर्णय लिया।

परिवर्तन के लिये योग्य स्थान की खोज करते-करते सोनगढ़ आकर वहाँ 'स्टार ऑफ इण्डिया' नामक एकान्त मकान में महावीर प्रभु के जन्मदिवस, चैत्र शुक्ल 13, संवत् 1991 (दिनांक 16 अप्रैल 1935) के दिन दोपहर सवा बजे सम्प्रदाय का चिह्न मुँह पट्टी का त्याग कर दिया और स्वयं घोषित किया कि **अब मैं स्थानकवासी साधु नहीं; मैं सनातन दिगम्बर जैनधर्म का श्रावक हूँ।** सिंह-समान वृत्ति के धारक इन महापुरुष ने 45 वर्ष की उम्र में महावीर्य उछाल कर यह अद्भुत पराक्रमी कार्य किया।

स्टार ऑफ इण्डिया में निवास करते हुए मात्र तीन वर्ष के दौरान ही जिज्ञासु भक्तजनों का प्रवाह दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया, जिसके कारण यह मकान एकदम छोटा पड़ने लगा; अत: भक्तों ने इन परम प्रतापी सत् पुरुष के निवास और प्रवचन का स्थल '**श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर**' का निर्माण कराया। गुरुदेवश्री ने वैशाख कृष्ण 8, संवत् 1994 (दिनांक 22 मई 1938) के दिन इस निवासस्थान में मंगल पदार्पण किया। यह स्वाध्याय मन्दिर, जीवनपर्यन्त इन महापुरुष की आत्मसाधना और वीरशासन की प्रभावना का केन्द्र बन गया।

दिगम्बर धर्म के चारों अनुयोगों के छोटे बड़े 183 ग्रन्थों का गहनता से अध्ययन किया, उनमें से मुख्य 38 ग्रन्थों पर सभा में प्रवचन किये। जिनमें श्री समयसार ग्रन्थ पर 19 बार की गयी अध्यात्म वर्षा विशेष उल्लेखनीय है। प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, परमात्मप्रकाश, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, समयसार कलश-टीका इत्यादि ग्रन्थों पर भी बहुत बार प्रवचन किये हैं।

दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले और कुन्दकुन्दादि आचार्यों के गहन शास्त्रों के रहस्योद्घाटक इन महापुरुष की भवताप विनाशक अमृतवाणी को ईस्वी सन् 1960 से नियमितरूप से टेप में उत्कीर्ण कर लिया गया, जिसके प्रताप से आज अपने पास नौ हजार से अधिक प्रवचन सुरक्षित उपलब्ध हैं। यह मङ्गल गुरुवाणी, देश-विदेश के समस्त मुमुक्षु मण्डलों में तथा लाखों जिज्ञासु मुमुक्षुओं के घर-घर में गुंजायमान हो रही है। इससे इतना तो निश्चित है कि भरतक्षेत्र के भव्यजीवों को पञ्चम काल के अन्त तक यह दिव्यवाणी ही भव के अभाव में प्रबल निमित्त होगी।

इन महापुरुष का धर्म सन्देश, समग्र भारतवर्ष के मुमुक्षुओं को नियमित उपलब्ध होता रहे, तदर्थ सर्व प्रथम विक्रम संवत् 2000 के माघ माह से (दिसम्बर 1943 से) **आत्मधर्म** नामक मासिक आध्यात्मिक पत्रिका का प्रकाशन सोनगढ़ से मुरब्बी श्री रामजीभाई माणिकचन्द दोशी के सम्पादकत्व में प्रारम्भ हुआ, जो वर्तमान में भी गुजराती एवं हिन्दी भाषा में नियमित प्रकाशित हो रहा है। पूज्य गुरुदेवश्री के दैनिक प्रवचनों को प्रसिद्धि करता दैनिक पत्र **श्री सद्गुरु प्रवचनप्रसाद** ईस्वी सन् 1950 सितम्बर माह से नवम्बर 1956 तक प्रकाशित हुआ। स्वानुभवविभूषित चैतन्यविहारी इन महापुरुष की मङ्गल-वाणी को पढ़कर और सुनकर हजारों स्थानकवासी श्वेताम्बर तथा अन्य कौम के भव्य जीव भी तत्त्व की समझपूर्वक सच्चे दिगम्बर जैनधर्म के अनुयायी हुए। अरे! मूल दिगम्बर जैन भी सच्चे अर्थ में दिगम्बर जैन बने।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा दिगम्बर आचार्यों और मान्यवर, पण्डितवर्यों के ग्रन्थों तथा पूज्य गुरुदेवश्री के उन ग्रन्थों पर हुए प्रवचन-ग्रन्थों का प्रकाशन कार्य विक्रम संवत् 1999 (ईस्वी सन् 1943 से) शुरु हुआ। इस सत्साहित्य द्वारा वीतरागी तत्त्वज्ञान की देश-विदेश में अपूर्व प्रभावना हुई, जो आज भी अविरलरूप से चल रही है। परमागमों का गहन

रहस्य समझाकर कृपालु कहान गुरुदेव ने अपने पर करुणा बरसायी है। तत्त्वजिज्ञासु जीवों के लिये यह एक महान आधार है और दिगम्बर जैन साहित्य की यह एक अमूल्य सम्पत्ति है।

ईस्वीं सन् 1962 के दशलक्षण पर्व से भारत भर में अनेक स्थानों पर पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा प्रवाहित तत्त्वज्ञान के प्रचार के लिए प्रवचनकार भेजना प्रारम्भ हुआ। इस प्रवृत्ति से भारत भर के समस्त दिगम्बर जैन समाज में अभूतपूर्व आध्यात्मिक जागृति उत्पन्न हुई। आज भी देश-विदेश में दशलक्षण पर्व में सैकड़ों प्रवचनकार विद्वान इस वीतरागी तत्त्वज्ञान का डंका बजा रहे हैं।

बालकों में तत्त्वज्ञान के संस्कारों का अभिसिंचन हो, तदर्थ सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 (ईस्वीं सन् 1941) के मई महीने के ग्रीष्मकालीन अवकाश में बीस दिवसीय धार्मिक शिक्षण वर्ग प्रारम्भ हुआ, बड़े लोगों के लिये प्रौढ़ शिक्षण वर्ग विक्रम संवत् 2003 के श्रावण महीने से शुरु किया गया।

सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 - फाल्गुन शुक्ल दूज के दिन नूतन दिगम्बर जिनमन्दिर में कहानगुरु के मङ्गल हस्त से श्री सीमन्धर आदि भगवन्तों की पंच कल्याणक विधिपूर्वक प्रतिष्ठा हुई। उस समय सौराष्ट्र में मुश्किल से चार-पाँच दिगम्बर मन्दिर थे और दिगम्बर जैन तो भाग्य से ही दृष्टिगोचर होते थे। जिनमन्दिर निर्माण के बाद दोपहरकालीन प्रवचन के पश्चात् जिनमन्दिर में नित्यप्रति भक्ति का क्रम प्रारम्भ हुआ, जिसमें जिनवर भक्त गुरुराज हमेशा उपस्थित रहते थे, और कभी-कभी अतिभाववाही भक्ति भी कराते थे। इस प्रकार गुरुदेवश्री का जीवन निश्चय-व्यवहार की अपूर्व सन्धियुक्त था।

ईस्वी सन् 1941 से ईस्वीं सन् 1980 तक सौराष्ट्र-गुजरात के उपरान्त समग्र भारतदेश के अनेक शहरों में तथा नैरोबी में कुल 66 दिगम्बर जिनमन्दिरों की मङ्गल प्रतिष्ठा इन वीतराग-मार्ग प्रभावक सत्पुरुष के पावन कर-कमलों से हुई।

जन्म-मरण से रहित होने का सन्देश निरन्तर सुनानेवाले इन चैतन्यविहारी पुरुष की मङ्गलकारी जन्म-जयन्ती 59 वें वर्ष से सोनगढ़ में मनाना शुरु हुआ। तत्पश्चात् अनेकों मुमुक्षु मण्डलों द्वारा और अन्तिम 91 वें जन्मोत्सव तक भव्य रीति से मनाये गये। 75 वीं हीरक जयन्ती के अवसर पर समग्र भारत की जैन समाज द्वारा चाँदी जड़ित एक आठ सौ पृष्ठीय अभिनन्दन ग्रन्थ, भारत सरकार के तत्कालीन गृहमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा मुम्बई में देशभर के हजारों भक्तों की उपस्थिति में पूज्यश्री को अर्पित किया गया।

श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा के निमित्त समग्र उत्तर और पूर्व भारत में मङ्गल विहार ईस्वी सन् 1957 और ईस्वी सन् 1967 में ऐसे दो बार हुआ। इसी प्रकार समग्र दक्षिण और मध्यभारत में ईस्वी सन् 1959 और ईस्वी सन् 1964 में ऐसे दो बार विहार हुआ। इस मङ्गल

तीर्थयात्रा के विहार दौरान लाखों जिज्ञासुओं ने इन सिद्धपद के साधक सन्त के दर्शन किये, तथा भवान्तकारी अमृतमय वाणी सुनकर अनेक भव्य जीवों के जीवन की दिशा आत्मसन्मुख हो गयी। इन सन्त पुरुष को अनेक स्थानों से अस्सी से अधिक अभिनन्दन पत्र अर्पण किये गये हैं।

श्री महावीर प्रभु के निर्वाण के पश्चात् यह अविच्छिन्न पैंतालीस वर्ष का समय (वीर संवत् 2461 से 2507 अर्थात् ईस्वी सन् 1935 से 1980) वीतरागमार्ग की प्रभावना का स्वर्णकाल था। जो कोई मुमुक्षु, अध्यात्म तीर्थधाम स्वर्णपुरी / सोनगढ़ जाते, उन्हें वहाँ तो चतुर्थ काल का ही अनुभव होता था।

विक्रम संवत् 2037, कार्तिक कृष्ण 7, दिनांक 28 नवम्बर 1980 शुक्रवार के दिन ये प्रबल पुरुषार्थी आत्मज्ञ सन्त पुरुष — देह का, बीमारी का और मुमुक्षु समाज का भी लक्ष्य छोड़कर अपने ज्ञायक भगवान के अन्तरध्यान में एकाग्र हुए, अतीन्द्रिय आनन्दकन्द निज परमात्मतत्त्व में लीन हुए। सायंकाल आकाश का सूर्य अस्त हुआ, तब सर्वज्ञपद के साधक सन्त ने मुक्तिपुरी के पन्थ में यहाँ भरतक्षेत्र से स्वर्गपुरी में प्रयाण किया। वीरशासन को प्राणवन्त करके अध्यात्म युग सृजक बनकर प्रस्थान किया।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी इस युग का एक महान और असाधारण व्यक्तित्व थे, उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने सत्य से अत्यन्त दूर जन्म लेकर स्वयंबुद्ध की तरह स्वयं सत्य का अनुसन्धान किया और अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ से जीवन में उसे आत्मसात किया।

इन विदेही दशावन्त महापुरुष का अन्तर जितना उज्ज्वल है, उतना ही बाह्य भी पवित्र है; ऐसा पवित्रता और पुण्य का संयोग इस कलिकाल में भाग्य से ही दृष्टिगोचर होता है। आपश्री की अत्यन्त नियमित दिनचर्या, सात्विक और परिमित आहार, आगम सम्मत्त संभाषण, करुण और सुकोमल हृदय, आपके विरल व्यक्तित्व के अभिन्न अवयव हैं। शुद्धात्मतत्त्व का निरन्तर चिन्तवन और स्वाध्याय ही आपका जीवन था। जैन श्रावक के पवित्र आचार के प्रति आप सदैव सतर्क और सावधान थे। जगत् की प्रशंसा और निन्दा से अप्रभावित रहकर, मात्र अपनी साधना में ही तत्पर रहे। आप भावलिंगी मुनियों के परम उपासक थे।

आचार्य भगवन्तों ने जो मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है, उसे इन रत्नत्रय विभूषित सन्त पुरुष ने अपने शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति के आधार से सातिशय ज्ञान और वाणी द्वारा युक्ति और न्याय से सर्व प्रकार से स्पष्ट समझाया है। द्रव्य की स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, क्रमबद्धपर्याय, कारणशुद्धपर्याय, आत्मा का शुद्धस्वरूप, सम्यग्दर्शन, और उसका विषय, सम्यग्ज्ञान और ज्ञान की स्व-पर प्रकाशकता, तथा सम्यक्चारित्र का स्वरूप इत्यादि समस्त

ही आपश्री के परम प्रताप से इस काल में सत्यरूप से प्रसिद्धि में आये हैं। आज देश-विदेश में लाखों जीव, मोक्षमार्ग को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं - यह आपश्री का ही प्रभाव है।

समग्र जीवन के दौरान इन गुणवन्ता ज्ञानी पुरुष ने बहुत ही अल्प लिखा है क्योंकि आपको तो तीर्थङ्कर की वाणी जैसा योग था, आपकी अमृतमय मङ्गलवाणी का प्रभाव ही ऐसा था कि सुननेवाला उसका रसपान करते हुए थकता ही नहीं। दिव्य भावश्रुतज्ञानधारी इस पुराण पुरुष ने स्वयं ही परमागम के यह सारभूत सिद्धान्त लिखाये हैं :—

1. एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का स्पर्श नहीं करता।
2. प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय क्रमबद्ध ही होती है।
3. उत्पाद, उत्पाद से है; व्यय या ध्रुव से नहीं।
4. उत्पाद, अपने षट्कारक के परिणमन से होता है।
5. पर्याय के और ध्रुव के प्रदेश भिन्न हैं।
6. भावशक्ति के कारण पर्याय होती ही है, करनी नहीं पड़ती।
7. भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है।
8. चारों अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है।
9. स्वद्रव्य में भी द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद करना, वह अन्यवशपना है।
10. ध्रुव का अवलम्बन है परन्तु वेदन नहीं; और पर्याय का वेदन है, अवलम्बन नहीं।

इन अध्यात्मयुगसृष्टा महापुरुष द्वारा प्रकाशित स्वानुभूति का पावन पथ जगत में सदा जयवन्त वर्तो!

तीर्थङ्कर श्री महावीर भगवान की दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले शासन स्तम्भ श्री कहानगुरुदेव त्रिकाल जयवन्त वर्तो!!

सत्पुरुषों का प्रभावना उदय जयवन्त वर्तो!!!

❖ ❖ ❖

अनुक्रमणिका

प्रवचन	दिनांक	गाथा	पृष्ठ क्र.
२८	२३.०९.१९६४	१२६-१२७	००१
२९	२४.०९.१९६४	१२६ से १३०	०२७
३०	२५.०९.१९६४	१२८ से १३०	०५१
३१	२६.०९.१९६४	१२८ से १३१	०७०
३२	२७.०९.१९६४	१३२	०८९
३३	२९.०९.१९६४	१३३ - १३४	१०९
३४	३०.०९.१९६४	१३५ - १३६	१३१
३५	०१.१०.१९६४	१३७ से १३९	१५४
३६	०२.१०.१९६४	१४०	१७८
३७	०३.१०.१९६४	१४० से १४२	१९१
३८	०४.१०.१९६४	१४२	२१५
३९	०५.१०.१९६४	१४३ - १४४	२३६
४०	०६.१०.१९६४	१४४	२५८
४१	०७.१०.१९६४	१४५	२७६
४२	०८.१०.१९६४	१४५ - १४६	२९६
४३	०९.१०.१९६४	१४६	३१९
४४	१०.१०.१९६४	१४६	३३९
४५	११.१०.१९६४	१४६	३५८
४६	२१.१०.१९६४	१४७ - १४८	३७६
४७	२३.१०.१९६४	१४८ - १४९	३९६
४८	२४.१०.१९६४	१४९ - १५०	४१५
४९	२५.१०.१९६४	१५० - १५१	४३८
५०	२६.१०.१९६४	१५० - १५१	४५६
५१	२७.१०.१९६४	१५२ - १५३	४७३

ॐ

परमात्मने नमः

पंचास्तिकायसंग्रह प्रकाश

(भाग-३)

(श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत श्री पंचास्तिकायसंग्रह परमागम पर
अध्यात्मयुगप्रवर्तक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
ईस्वी सन् १९६४ में हुए शब्दशः प्रवचन)

गाथा - १२६-१२७

संठाणा संघादा वण्णरसप्फासगंधसद्दा य ।
पोग्गलदव्वप्पभवा होंति गुणा पज्जया य बहू ।। १२६ ।।
अरसमरूवमगंधं अव्वत्तं चेदणागुणमसद्दं ।
जाण अलिंगग्गहणं जीवमणिद्दिट्ठसंठाणं ।। १२७ ।।

संस्थानानि संघाताः वर्णरसस्पर्शगन्धशब्दाश्च ।
पुद्गलद्रव्यप्रभवा भवन्ति गुणां पर्यायाश्च बहवः ।। १२६ ।।
अरसमरूपमगन्धमव्यक्तं चेतनागुणमशब्दम् ।
जानीह्यलिङ्गग्रहणं जीवमनिर्दिष्टसंस्थानम् ।। १२७ ।।

जीवपुद्गलयोः संयोगेऽपि भेदनिबन्धनस्वरूपाख्यानमेतत् ।

यत्खलु शरीरशरीरिसंयोगे स्पर्शरसगन्धवर्णगुणत्वात्सशब्दत्वात्संस्थानसङ्ग ः । तादिपर्याय-परिणतत्वाच्च इन्द्रियग्रहणयोग्यं, तत्पुद्गलद्रव्यम् । यत्पुनरस्पर्शरसगन्धवर्णगुणत्वादशब्दत्वाद-निर्दिष्टसंस्थानत्वादव्यक्तत्वादिपर्यायैः परिणतत्वाच्च नेन्द्रियग्रहणयोग्यं, तच्चेतनागुणत्वात् रूपिभ्योऽरूपिभ्यश्चाजीवेभ्यो विशिष्टं जीवद्रव्यम् । एवमिह जीवाजीवयोर्वास्तवो भेदः सम्यग्ज्ञानिनां मार्गप्रसिद्ध्यर्थं प्रतिपादित इति ।। १२-१२७)

इति अजीवपदार्थव्याख्यानं समाप्तम् ।

संस्थान अर संघात रस-गँध-वरण शब्द स्पर्श जो।
वे सभी पुद्गल दशा में पुद्गल दरव निष्पन्न हैं।।१२६।।

चेतना गुण युक्त आतम अशब्द अरस अगंध है।
है अनिर्दिष्ट अव्यक्त वह, जानो अलिंगग्रहण उसे।।१२७।।

अन्वयार्थ :— [संस्थानानि] (समचतुरस्त्रादि) संस्थान, [संघाताः] (औदारिकशरीर सम्बन्धी) संघात, [वर्णरसस्पर्शगंधशब्दाः च] वर्ण, रस, स्पर्श, गन्ध और शब्द—[बहवः गुणाः पर्यायाः च] ऐसे जो बहु गुण और पर्यायें हैं, [पुद्गलद्रव्यप्रभवाः भवन्ति] वे पुद्गलद्रव्यनिष्पन्न हैं।

[अरसम् अरूपम् अगंधम्] जो अरस, अरूप तथा अगन्ध है, [अव्यक्तम्] अव्यक्त है, [अशब्दम्] अशब्द है, [अनिर्दिष्टसंस्थानम्] अनिर्दिष्ट संस्थान है।(अर्थात् जिसका कोई संस्थान नहीं कहा ऐसा है), [चेतनागुणम्] चेतनागुणवाला है और [अलिंगग्रहणम्] इन्द्रियों द्वारा अग्राह्य है, [जीवं जानीहि] उसे जीव जानो।

टीका :— जीव-पुद्गल के संयोग में भी, उनके भेद के कारणभूत स्वरूप का यह कथन है (अर्थात् जीव और पुद्गल के संयोग में भी जिसके द्वारा उनका भेद जाना जा सकता है, ऐसे उनके भिन्न-भिन्न स्वरूप का यह कथन है)।

शरीर और [१]शरीरी के संयोग में, (१) जो वास्तव में स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण-गुणवाला होने के कारण, सशब्द होने के कारण तथा संस्थान-संघातादि पर्यायोंरूप से परिणत होने के कारण इन्द्रियग्रहणयोग्य है, वह पुद्गलद्रव्य है; और (२) जो स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण-गुणरहित होने के कारण, अशब्द होने के कारण, अनिर्दिष्टसंस्थान होने के कारण तथा [२]अव्यक्तत्वादि पर्यायोंरूप से परिणत होने के कारण इन्द्रियग्रहणयोग्य नहीं है, वह चेतनागुणमयपने के कारण रूपी तथा अरूपी अजीवों से [३]विशिष्ट (भिन्न) ऐसा जीवद्रव्य है।

---

१. शरीरी = देही; शरीरवाला (अर्थात् आत्मा)।
२. अव्यक्तत्वादि = अव्यक्तत्व आदि; अप्रगटत्व आदि।
३. विशिष्ट = भिन्न; विलक्षण; खास प्रकार का।

इस प्रकार यहाँ जीव और अजीव का वास्तविक भेद सम्यग्ज्ञानियों के मार्ग की प्रसिद्धि के हेतु प्रतिपादित किया गया।

[भावार्थ :— अनादि मिथ्यावासना के कारण जीवों को स्वयं कौन है, उसका वास्तविक ज्ञान नहीं है और अपने को शरीरादिरूप मानते हैं। उन्हें जीवद्रव्य तथा अजीवद्रव्य का यथार्थ भेद दर्शाकर मुक्ति का मार्ग प्राप्त कराने के हेतु यहाँ जड़-पुद्गलद्रव्य के और चेतन जीवद्रव्य के वीतरागसर्वज्ञकथित लक्षण कहे गए। जो जीव उन लक्षणों को जानकर, अपने को स्वतःसिद्ध स्वतन्त्र द्रव्यरूप से पहिचानकर, भेदविज्ञानी अनुभवी होता है, वह निजात्मद्रव्य में लीन होकर, मोक्षमार्ग को साधकर शाश्वत निराकुल सुख का भोक्ता होता है]॥ १२६-१२७॥

इस प्रकार अजीव पदार्थ का व्याख्यान समाप्त हुआ।

दो मूलपदार्थ कहे गये। अब (उनके) संयोगपरिणाम से निष्पन्न होनेवाले अन्य सात पदार्थों के उपोद्घात के हेतु जीवकर्म और पुद्गलकर्म के चक्र का वर्णन किया जाता है।

प्रवचन नं. २८, गाथा-१२६-१२७

दिनांक - २३-०९-१९६४, भाद्र कृष्ण २, बुधवार

वर्णन चलता है। उसमें पहले नौ तत्त्व का वर्णन चलता है। नौ पदार्थ भिन्न-भिन्न कहते हैं, ऐसे सम्यग्ज्ञानियों के मार्ग की प्रसिद्धि हेतु। सम्यग्ज्ञानियों के मार्ग की प्रसिद्धि हेतु प्रतिपादन किया जाता है। किया गया है, ऐसा आगे आयेगा, अन्तिम गाथा में।

गाथा १२६-१२७। मोक्षमार्गप्रकाशक में जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध, मोक्ष लिये हैं, यह इसमें से लिये हैं। फिर मोक्ष का अधिकार, मोक्षमार्ग का अधिकार भी उसमें से लिया है। उसका घर का कुछ नहीं। उसका स्पष्टीकरण यहाँ (किया है) कितनी ही जगह सामान्य हो, वहाँ विशेष स्पष्टीकरण किया है। जीव-अजीव का अन्तिम सम्बन्ध बतलाने के लिये।

संठाणा संघादा वण्णरसप्फासगंधसद्दा य।
पोग्गलदव्वप्पभवा होंति गुणा पज्जया य बहू।।१२६।।

अरसमरूवमगंधं अव्वत्तं चेदणागुणमसद्दं।
जाण अलिंगग्गहणं जीवमणिद्दिट्ठसंठाणं।।१२७।।

टीका :— जीव-पुद्गल के संयोग में भी,... क्या कहते हैं, देखो! यह आत्मा और यह पुद्गल एक जगह साथ में रहे होने पर भी दोनों का भिन्न-भिन्न लक्षण और भिन्न-भिन्न कार्य है। दोनों का एक कार्य नहीं है। सुनाई देता है? नहीं तो यहाँ नजदीक आओ। समझ में आया? जीव-पुद्गल के संयोग में भी। यह साथ में रहने पर भी। जीव और यह पुद्गल एक साथ संयोगरूप से, निमित्त-निमित्त सम्बन्धरूप से रहने पर भी, **उनके भेद के कारणभूत...** उनकी भिन्नता के कारणभूत स्वरूप का यह कथन है। देखो! उसमें से लिया है यहाँ से।

जीव और पुद्गल के संयोग में भी जिसके द्वारा उनका भेद जाना जा सकता है... शरीर और आत्मा नजदीक एक जगह होने पर भी शरीर की पर्याय पुद्गल की स्वतन्त्र होती है। आत्मा की पर्याय आत्मा से स्वतन्त्र होती है। मात्र वह शरीरादि पर्याय होती है, तब जीव के राग, ज्ञान आदि को निमित्त कहा जाता है। वह तो निमित्त परन्तु निमित्त का अर्थ यह नहीं कि उससे वह पर्याय होती है। और अपनी जीव की पर्याय में ज्ञान-दर्शन आदि की पर्याय में जड़ और मन का निमित्त है परन्तु उससे वह होती है, ऐसा नहीं है।

पुद्गल के संयोग में भी जिसके द्वारा जिसका भेद जाना जा सकता है, ऐसे उनके भिन्न-भिन्न स्वरूप का यह कथन है। शरीर और शरीरी के संयोग में.... शरीरी अर्थात् जीव। यह शरीर और शरीर के संयोग में, देखो! यह वास्तविक अज्ञानी की भूल कहाँ होती है और सम्यग्ज्ञानियों की कहाँ भूल नहीं थी, उसकी प्रसिद्धि के लिये बात करते हैं। समझ में आया?

शरीर और शरीरी के संयोग में, (१) जो वास्तव में स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण-गुणवाला होने के कारण,.... यह शब्द-रूप-रस-गन्ध-स्पर्श वर्णवाले जड़ के गुण हैं। उसकी पर्याय भी उससे होती है। आत्मा से नहीं। इस शरीर की अवस्था होती है, वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श की रूपान्तर पर्याय अथवा क्षेत्रान्तर पर्याय, वह सब पर्याय अजीव की अजीव से अजीव में होती है; आत्मा से नहीं। समझ में आया?

यह पर्याय भी उससे होती है तो बाहर की तो बात क्या करना? यह बताते हैं। व्यापार-धन्धा... सेठ! वह तो सब जड़ की-पर की पर्याय पर से होती है, आत्मा से कोई एक फुदड़ी-एक परमाणु का पर में फेरफार कर सके, ऐसा है ही नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल करे! अज्ञानी ऐसा मानता है। अपने अतिरिक्त एक परमाणु से अनन्त परमाणु अपनी वर्तमान पर्याय से स्वतन्त्र स्वयं परिणम रहे हैं। उसमें आत्मा का बिल्कुल अधिकार नहीं। कहो, समझ में आया? निमित्त कहने में आता है, उसका अर्थ यह कि पृथक्ता बतलाते हैं। वह पृथक् चीज़ है। शरीरादि की ऐसी अवस्था, वाणी निकलती है, वह सब जड़ की पर्याय जड़ से होती है, आत्मा से नहीं। समझ में आया? देखो! इसमें से मोक्षमार्गप्रकाशक में लिया है।

जीव-अजीव का अध्यात्म में जिससे भेदज्ञान हो, ऐसा अभ्यास करते नहीं। और कदाचित् अभ्यास करते हैं तो एक-दूसरे का अंश एक-दूसरे में मिला देते हैं। है न? अमरचन्दभाई! आहाहा! परन्तु अजीव की पर्याय होती है, उसमें जीव तो निमित्तमात्र है। जीव के अनन्त गुण की पर्याय होती है, उसमें अजीव निमित्तमात्र है। ऐसा भेदज्ञान नहीं करते और एक-दूसरे का अंश एक-दूसरे में मिलाकर मानते हैं, इसलिए उसमें उसकी जीव-अजीव की अनादि की भूल है। जीव-अजीव की भूल है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें यह कहाँ आया? उससे-जड़ से होती है। आत्मा तो मात्र है, इतना ही। वह तो बतलाना है। आत्मा है तो होता है, ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : आत्मा न हो तो क्यों नहीं बनती?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं बनती। दूसरी बनती है। उसमें क्या? आत्मा की अस्ति है और बनती है। वह तो यहाँ बतलाना है। संयोग में रहने पर भी, एक साथ रहने पर भी शरीर की अवस्था शरीर से है, आत्मा से नहीं। और आत्मा के अनन्त गुण की एक समय की पर्याय आत्मा से होती है। शरीर, इन्द्रिय, मन से नहीं। वह तो अभी जीव-अजीव का भेद कराते हैं। समझ में आया? ओहोहो! क्या कहते हैं? देखो!

जो वास्तव में स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण-गुणवाला होने के कारण,... कौन? शरीर। उसकी पर्याय वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श की होती है, वह शरीर की शरीर के कारण से होती है। **सशब्द होने के कारण...** और शब्द परमाणु हैं न, परमाणु। **सशब्द होने के कारण तथा संस्थान-संघातादि पर्यायोंरूप से परिणत होने के कारण...** पहले गुण लिये। परमाणु शरीर वास्तव में स्पर्श, रस गुणवाले होने के कारण। अब पर्याय लेते हैं। यह शरीर, यह वाणी, यह सब कर्म आदि जो सब वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्शवाले पदार्थ हैं। गुण-गुण। और उसकी पर्याय सशब्द-यह आवाज / शब्द उठते हैं, वह पर्याय है। द्रव्य की-जड़ की पर्याय है। पुद्गल की पर्याय है। आत्मा से नहीं उठती, आत्मा नहीं बोलता। आत्मा के कारण शब्द की पर्याय नहीं होती।

मुमुक्षु : भाव तो आते हैं न?

पूज्य गुरुदेवश्री : भाव आते हैं, वह दूसरी बात है।

मुमुक्षु : भाव से ही वाणी होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल नहीं। यहाँ यह बात कहते हैं। झरियाजी! भाव भाव के पास रहे। उसकी पर्याय में रहे और शब्द की पर्याय जड़ में उठती है। भाव से शब्द की पर्याय उठती है? यह तो बताना है। समझ में आया? यह पहले बतलाना है। जीव-अजीव दोनों की भिन्नता में भूल कहाँ? यह हमारा भाव है तो वाणी में पर्याय होती है, (ऐसा माने वह) मिथ्यादृष्टि है। अजीव की पर्याय अजीव से होती है, उसमें जीव मात्र निमित्त है। निमित्त का अर्थ—वह होनेवाली तो उससे होती है। यह है तो होती है, (माने) तो निमित्त नहीं रहा। अत: आत्मा से हुई है तो निमित्त नहीं रहा, उपादान हो गया। समझ में आया?

शरीर और शरीरी के संयोग में,... शरीरी अर्थात् जीव। **जो वास्तव में स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण...** जड़ के हैं और यह भाषा की पर्याय जड़ की है। और **संस्थान...** देखो! यह आकार हुआ न? सबका आकार ऐसा... ऐसा... ऐसा... ऐसा...। वह सब जड़ की पर्याय में जड़ की पर्याय से आकार हुए हैं, आत्मा से नहीं। यह क्या है? 'संस्थान' आया वह क्या है?

मुमुक्षु : आत्मा चला जाता है तो शरीर की पर्याय?

पूज्य गुरुदेवश्री : शरीर की पर्याय दूसरी होती है। वह दूसरी पर्याय एकरूप रहती है। पर्याय भिन्न-भिन्न होती है। नहीं, आत्मा से वह पर्याय हुई ही नहीं, वह तो यहाँ बतलाना है। इसलिए तो यहाँ से लिया है। जीव-अजीव से नवतत्त्व लेंगे। जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष। पहले अपने १५४ से मोक्षमार्ग का अधिकार चला। आया था। तुम आये, तब मार्ग चला था। पहले से। और कक्षा चली तो १५४ से चला।

यह संस्थान। देखो! इस संस्थान की पर्यायरूप परिणत होने के कारण, यह जड़ पर्यायोंरूप परिणत होता है। आत्मा की पर्याय भी नहीं और आत्मा की पर्याय से वह होती भी नहीं। आहाहा! यह अनादि का बड़ा भ्रम है न? यह तो बताते हैं। अनादि अज्ञानी—अजीव और जीव एक साथ रहते हैं, संयोग में। (ऐसा मानता है कि) मैं हूँ तो यह पर्याय हुई, देखो! ऐसा हुआ... ऐसा हुआ... ऐसा हुआ... तो सब संस्थान वह पर्याय है। संस्थान—वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, ये गुण हैं और संस्थान, शब्द वह परमाणुओं की पर्याय है—पुद्गल की पर्याय है, वह पर्याय पुद्गल से हुई है, आत्मा से नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : किसके चमत्कार की? किसकी?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ फटा नहीं, उसकी पर्याय होनेवाली थी। यह तो निमित्त की बात है। फटा-फटा! किसी से शिवलिंग फटता होगा? बहुत बड़ी गहरी बात है। किसी के परमाणु की पर्याय का उत्पाद उसमें होता है? दूसरा उत्पाद करा दे तो उसने क्या किया?

मुमुक्षु : फिर उसने मदद की।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, फिर मदद क्या की? जिसमें उत्पाद की शक्ति न हो तो दूसरा उत्पाद करा नहीं सकता और स्वयं से उत्पाद हो तो पर की अपेक्षा की क्या आवश्यकता है?

मुमुक्षु : यह तो कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो आ गया। पंचाध्यायी में भी ऐसा कहते हैं कि तुझे निमित्त का क्या काम है? उसके कारण वह पर्याय उत्पन्न होती है, उसमें निमित्त... निमित्त करे क्या? क्या काम है तुझे?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : रखी थी क्या? पुद्गल की पर्याय होनेवाली थी। रखे क्या? समन्तभद्राचार्य के मन्त्र से हुई है? घटना सच्ची हो सकती है। घटना बराबर है परन्तु उससे हुई है, ऐसा नहीं है। घटना तो ऐसी हो सकती है। देव में भी शक्ति है कि मनुष्य को रोगादि कर दे, परन्तु उसका पाप का उदय हो तो। इस कारण से होता है, परन्तु शब्द ऐसा देते हैं कि देव में ऐसी शक्ति है। परन्तु वह तो निमित्तपने का अर्थ ही यह है कि वहाँ होनेवाली थी, तब निमित्त कौन था, उसका ज्ञान कराते हैं। समझे? शरीर में रोग, निरोग, आड़ा शरीर कर दे, टेढ़ा कर दे, दाँत ऐसे (विचित्र) कर दे परन्तु उसमें उसका पाप का उदय परमाणु की पर्याय से होनेवाला हो, तब देव को निमित्त कहा जाता है। ऐसी बात है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं कर सकता। अपना कर सकता है। पर का क्या कर सके? भगवान त्रिलोकनाथ जिनेन्द्र वीतराग अनन्त वीर्यवाले दूसरे की पर्याय को क्या कर सकते हैं? अज्ञानी ने अपना शल्य माना है कि मुझसे उसमें हुआ है। अनेकान्त हुआ। उससे होता है, मुझसे नहीं, इसका नाम अनेकान्त। उससे भी होता है और मुझसे भी होता है, (इसे) फुदड़ीवाद (कहते हैं)।

मुमुक्षु : देखने में आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या देखने में आता है? ऐसा कि देखने में तो ऐसा आता है कि बन्दूक गयी बन्दूक। समझे? बन्दूक को? गोली अन्दर गयी तो छिद्र पड़ते हैं। देखने में तो ऐसा आता है। यह भ्रम है। वह परमाणु की पर्याय ऐसी उत्पन्न होने के कारण से उत्पन्न हुई है। गोली से नहीं। सेठ ने प्रश्न किया था, उसका प्रत्यक्ष दृष्टान्त दिया। समझ में आया?

मुमुक्षु : ऐसा मानने के लिये हुकम है या....

पूज्य गुरुदेवश्री : हुकम नहीं। वस्तु ऐसी है। वस्तु ऐसी है। तर्क-फर्क नहीं। वस्तु ऐसी है। ऐसा जाने नहीं तो मिथ्याज्ञान होगा। दुःखदायक दृष्टि होगी।

मुमुक्षु : यह तो हुकम हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : हुकम नहीं। वस्तुस्वरूप है। ठीक कहते हैं। अंग्रेजी आती नहीं और ऐसा करते हैं। क्या दवाब से हुकम है? शोभालालभाई! भाई ठीक कहते हैं। धीरे से। कि ऐसा हुकम है न? दवाब से हुकम है।

मुमुक्षु : ऐसा कहा थोड़े ही जाता है? वीतराग की आज्ञा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उस आज्ञा का अर्थ (यह कि) वस्तु ऐसी है। ऐसी हमने जानी है, ऐसा तुम जानो तो सम्यक् होगा, नहीं तो मिथ्या होगा।

मुमुक्षु : आज्ञा हो गयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : आज्ञा का अर्थ क्या? वह है, ऐसा जानो। यह आज्ञा। आज्ञा दूसरी क्या होगी?

मुमुक्षु : हुकम कहो या आज्ञा कहो।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु है, ऐसा हम कहते हैं। हम कहते हैं; इसलिए मानो इसमें ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : न माने तो सजा तो होगी न?

पूज्य गुरुदेवश्री : सजा भी कही, वह तो पदार्थ में ऐसी अवस्था है। तो मानते हैं या मुझसे हुई तो उसकी दृष्टि में असत्य आया। यह असत्य की सजा उसे हुई। समझ में आया? क्या कहा? कहो! पहला शब्द। **सशब्द होने के कारण...** शब्द पड़ा है न? आचार्य महाराज कहते हैं, भगवान कुन्दकुन्दाचार्य और अमृतचन्द्राचार्य टीका करते हैं। कि यह शरीर, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श यह परमाणु परमाणु का गुण है। कायम रहनेवाली शक्ति। और शब्द है, वह उसकी पर्याय है। किसकी? इस पुद्गल की। वह पुद्गल की पर्याय शब्द की है। परन्तु आत्मा से-मुझसे हुई है, ऐसा माने तो मिथ्याज्ञान असत् दृष्टि

हुई। तो उसे पापदृष्टि होने से दु:खरूप दृष्टि आयी। वस्तु का स्वरूप ऐसा है, ऐसा न माने और विपरीत माने, विपरीत मान्यता का उसे दण्ड है। कोई भगवान का दण्ड-बण्ड है नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : आचार्य को....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न? कल इसकी बहुत ही बात आ गयी। पुद्गल की शक्ति से होता है। हमारे से तो कुछ नहीं हुआ।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कोई बोलता नहीं। परमाणु की पर्याय होती है। क्या आत्मा बोल सकता है? १७३ में आया न? परसों दिन में दोपहर में बताया न? पूनम, पूनम। वाणी स्वशक्ति से बनी है। हमारे से नहीं। हमने शास्त्र बनाये ही नहीं। हम कौन? हम तो अरूपी आत्मा हैं। रूपी में घुस जाये कि रूपी को बना दे।

मुमुक्षु : महाराज! समझ में नहीं आता। जड़ चेतन को जगाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं; जगाता नहीं। यह जागता है, तब उसे निमित्त कहा जाता है। ऐसा है। जगाता नहीं।

मुमुक्षु : आपका उपदेश जगाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, नहीं। इस बात में कुछ माल नहीं है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, ऐसा नहीं। ... क्या देखा है? उसकी ज्ञान की उत्पादरूप पर्याय उसमें होती है, तो वाणी को निमित्त कहा जाता है। निमित्त का अर्थ—वाणी वहाँ है तो होता है, ऐसा नहीं। उसके पास ज्ञानगुण है। यह वर्ण गुण है। वर्ण, गन्ध, रस। तो उसकी सशब्दपर्याय, संस्थानपर्याय। देखो! यह आकार है न आकार! सब आकार ऐसे-ऐसे। वह सब आकृति पुद्गल परमाणु की पर्याय है। अपने से हुई नहीं। आत्मा कर्ता और वह कार्य है ही नहीं। समझ में आया? इसी प्रकार शब्द में। यह संस्थान में आया। शब्द में। अपने से होती नहीं। उसमें परमाणु में उस समय में वैसी पर्याय-उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत्। एक समय में भगवान ने पदार्थ के तीन अंश देखे हैं। है, ऐसे

देखे हैं। किया-बिया कुछ नहीं। तो पुद्गल में वह पर्याय उसके कारण से उत्पन्न होती है तो उसका उपादान तो वही है। आत्मा उसका उपादान नहीं। समझ में आया? यह बात तो यहाँ कहते हैं। शरीर में वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श यह परमाणु है, वह उसकी कायम की चीज़ है। और शब्द है, वह उसकी वर्तमान पर्याय है तो वह पर्याय पुद्गल से होती है; आत्मा से नहीं। आत्मा से होती है, ऐसा माननेवाले अजीव को जीव मानते हैं। अजीव की पर्याय मुझसे होती है, ऐसा माननेवाले अजीव को जीव मानते हैं। छहढाला में आता है न? सात तत्त्व की भूल। सात तत्त्व की भूल छहढाला में आती है। छहढाला है न, उसमें भूल आती है और यह मोक्षमार्गप्रकाशक में भी लिया है।

पुद्गल और जीव दोनों की पर्याय एक समय में स्वतन्त्र होती है तो उसमें यह उपादान उसका, वह तो निमित्त है। निमित्त का अर्थ—है तो यहाँ होता है, ऐसा नहीं। होवे तो उसके कारण से, परन्तु उसके कारण यहाँ हुआ है—ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल नहीं। यह निमित्त का अर्थ क्या करते हैं कि मुझसे हुआ ही नहीं। यह निमित्त का अर्थ।

मुमुक्षु : विकल्प आता है....

पूज्य गुरुदेवश्री : विकल्प तो आता है। उसमें क्या कहा? उसमें क्या आया? विकल्प आया तो आया। वाणी तो वाणी से हो गयी।

मुमुक्षु : ज्ञान में तो आया न?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या ज्ञान में आया? ज्ञान तो उसके पास रहा। वाणी में क्या ज्ञान आया? उसके पास ज्ञान रहा। उसके पास रहा। उसरूप परिणमने की योग्यता से परिणम रहा है। ज्ञान से परिणम रहा है? जड़ में ऐसा ही परिणमन होने की पर्याय है। ज्ञान से, नहीं। यह भी नहीं। ऐसा भी नहीं। वह परमाणु शास्त्र होने की (योग्यता) थी, तब विकल्प आया, ऐसा भी नहीं है। तो वह कर्ता और विकल्प कर्म हो जाये, ऐसा भी नहीं है। और ज्ञान में ख्याल आया कि ऐसा कहूँ, तो ज्ञान का ख्याल है तो वहाँ शब्दरूप परिणमता है, ऐसा भी नहीं। बिल्कुल नहीं। समझे? सेठ! यह तम्बाकू में गप्प मारा, ऐसा यहाँ नहीं चलता।

मुमुक्षु : ऐसा नहीं चलता?

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ नहीं चलता। शोभालालभाई! ऐसी बात है।

मुमुक्षु : पिता ने पुत्र को चलाया।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहीं (चलता नहीं), माना है, चलावे कौन? पैसा होवे न तो ऐसा-ऐसा लगे। आहाहा! ऐई! भगवानदास सेठ आये, भगवानदास सेठ! ऐसा देखकर मुँह फटे! एक तो बड़ी मूँछें! गूँज पड़े उसके घर की। इतनी आमदनी! और बुन्देलखण्ड के बड़े राजा।

मुमुक्षु : सम्मेदशिखर की यात्रा का भाव आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु कौन कर सके पर का...

मुमुक्षु : किसी का एहसान मानना, किसी का उपकार मानना।

पूज्य गुरुदेवश्री : उपकार-बुपकार सब व्यवहार से मानने का है। किसी का उपकार है नहीं और अपकार किसी का है नहीं।

मुमुक्षु : हम आपका उपकार मानते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बोलने का है, ऐसा विकल्प आता है। उसे समझ में स्वयं से ही आया तो निमित्त है, ऐसा विकल्प आता है। परन्तु उससे उसमें कुछ हुआ है, इस बात में किंचित् भी सत्य नहीं है।

मुमुक्षु : ऐसा माने तो उसने उपकार माना, ऐसा कहा जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसने उपकार ही माना नहीं। पर से मुझमें हुआ है, ऐसा माननेवाला पर का उपकार ही नहीं समझा। क्योंकि पर ऐसा कहता है कि मुझसे तुझमें कुछ हुआ ही नहीं। गजब बात, भाई! यह विनय की भाषा है। विकल्प ऐसा आता है, वह विनय की भाषा है। भाषा तो भाषा के कारण से निकलती है, और भाषा हुई तो यहाँ ज्ञान की पर्याय... आत्मा है ज्ञानगुण कायम है। ज्ञान की पर्याय होती है तो, उसकी गुण की पर्याय विशेष। सामान्य का विशेष उसमें हुआ। वाणी का विशेष क्या आया? पुद्गल के गुण, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, यह सामान्य। यह भाषा की पर्याय हुई, वह उसका

विशेष। तो उसके विशेष से यहाँ विशेष हुआ, ऐसा नहीं है। ऐसा है, भाई! भाईसाहब! यह ऐसा सत्य का मार्ग है। हुकम या बलजोरी से नहीं।

मुमुक्षु : पर के लक्ष्य का कर्ता नहीं, यह दिमाग में आ जाये तो (बेड़ा पार हो जाये)।

पूज्य गुरुदेवश्री : समाप्त! जो परिणमता है, वह कर्ता। उसमें आया न? एक परिणाम उसके दो द्रव्य कर्ता (नहीं होते) देखो! ऊपर द्रव्यदृष्टि है चोका (पाटिया) द्रव्यदृष्टि के ऊपर चौका है। आड़ा-आड़ा। एक परिणाम के कर्ता दो द्रव्य नहीं। एक परिणाम के दो द्रव्य कर्ता नहीं। जड़ की पर्याय का कर्ता जड़ है। आत्मा की पर्याय का कर्ता आत्मा है। जड़ की पर्याय के दो कर्ता नहीं हैं। जड़ भी कर्ता और आत्मा भी कर्ता, (ऐसा) तीन काल में नहीं है।

मुमुक्षु : ऐसा ही मान रहे हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, मान रहे हैं, यही भ्रम निकालने के लिये कहते हैं न, देखो! अन्तिम गाथा में देखो। **इस प्रकार यहाँ जीव और अजीव का वास्तविक भेद सम्यग्ज्ञानियों के मार्ग की प्रसिद्धि के हेतु प्रतिपादित किया गया।**

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु उसकी योग्यता है तो आता है। इस कारण से वहाँ आता है, ऐसा भी नहीं है। यह तो अजब लीला है। समझ में आया?

मुमुक्षु : नट-नागर की बाजी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : 'नट-नागर की बाजी, क्या समझे ब्राह्मण काजी', यह आनन्दघनजी में आता है। समझ में आया?

'किस्सा एक समय में ठाणे, उपजे विनसै तब ही,
उलट-पुलट ध्रुव सत्ता राखे या हम सुनी न कबही।'
अब धु नट नागर की बाजी, क्या समझे ब्राह्मण काजी।

ब्राह्मण वेद कौन जाने और काजी कुरान कौन जाने इस बात को? यह तो सर्वज्ञ भगवान त्रिलोकनाथ परमेश्वर ने वीतरागदेव ने कहा, उसमें जानने में आता है। दूसरे में यह बात नहीं है। क्या जाने ब्राह्मण, काजी।

एक समय में सभी पदार्थ बदलते हैं। एक समय में ध्रुव रहते हैं - स्थिरता। और उपजे-विनशे तब ही। नयी पर्याय से उपजते हैं और पुरानी पर्याय का व्यय होता है। उलट-पुलट ध्रुवसत्ता राखे। उपजे-विनशे, उलट-पुलट ध्रुवसत्ता राखे, या हम सुनी न कबही। ऐसी बात हमें वीतराग सर्वज्ञ के अतिरिक्त कहीं सुनने में आयी नहीं। क्या जाने ब्राह्मण काजी। यह वेदान्त और कुरान को क्या खबर है कि एक-एक द्रव्य में एक समय में उत्पाद-व्यय-ध्रुव तीनों अंश हैं। कौन जाने? समझ में आया? आहाहा!

कहा, यहाँ से लो भाई! जीव-अजीव का इकट्ठा होता है और फिर पुण्य-पाप का लेना है। सेठी!

मुमुक्षु : यह घोंटने जैसा है। ...आपके द्वारा प्रवचन हो रहे हैं....

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल भाव उसे स्पर्शते नहीं। वाणी को आत्मा के भाव स्पर्शते नहीं, छूते नहीं, अड़ते नहीं। वाणी आत्मा के भाव को स्पर्शती नहीं, छूती नहीं। निर्णय कर लो! समझ में आया?

प्रत्येक पुद्गल आदि का कार्य उत्पाद है। उत्पाद कहो या कार्य कहो। अपनी पर्याय से कार्य करता है। दूसरा पदार्थ क्या करे? एक परमाणु में, यह होंठ है न होंठ। होंठ कहते हैं न? उससे भी भाषा नहीं बोली जाती। आत्मा से तो नहीं परन्तु होंठ से भी नहीं। यह होंठ भिन्न है और भाषा भिन्न है। भाषा सूक्ष्म है। यह (होंठ) स्थूल है। यह (होंठ) हिलते हैं तो भाषा की पर्याय होती है (यह बात) बिल्कुल झूठ है।

मुमुक्षु : जीभ से तो (भाषा) होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : जीभ से (भाषा) हो, यह भी झूठ है।

मुमुक्षु : ...चक्कर में पड़ जाते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : चक्कर में पड़ जाते हैं। खबर नहीं न, परन्तु अनन्त पुद्गल है या नहीं? या एक-दो-तीन और असंख्य है? अनन्त है। तो अनन्त-अनन्त पुद्गल अनन्तरूप रहकर अपना उत्पाद का कार्य करते हैं या दो इकट्ठे होकर करते हैं? वह पदार्थ भिन्न है, शब्द की पर्याय भिन्न है, जीभ के परमाणु भिन्न हैं। सब अपनी-अपनी

पर्याय को करते हैं। कोई किसी की पर्याय को करे... भाषा की पर्याय को (अन्य) जड़ नहीं कर सकता या आत्मा नहीं कर सकता।

मुमुक्षु : सब इकट्ठी होकर तो होती है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : लो, काम करो भाई! भगवानलाल शोभालाल की कम्पनी।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : बुद्धि... बुद्धि आत्मा में है, पर्याय पर्याय पर्याय में है। ऐसा कहते हैं। ऐसी वस्तुस्थिति है। भगवान का हुकम नहीं। जोर नहीं। हम कहते हैं, ऐसा मानो नहीं तो... नहीं तो जेल में, ऐसा नहीं। भगवान! तुम आत्मा हो न! तो तेरी समाप्ति तेरी पर्याय में है। समझ में आया? तेरी समाप्ति तेरे सत् के अंश में समाप्तपने की सीमा, तेरी पर्याय में तेरी सीमा है। परमाणु की द्रव्य-गुण की सीमा उसकी पर्याय में सीमा है। अपनी पर्याय की सीमा उल्लंघकर किसी की पर्याय करने जाये और किसी की पर्याय अपने में से हो, (ऐसा) तीन काल-तीन लोक में नहीं होता।

मुमुक्षु : कोई बन्धन में पड़े हैं, वे तो रुष्ट हो जाते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु वे रुष्ट हो जाते हैं। उनके कारण से। उसमें अपने को क्या है?

मुमुक्षु : उसका धर्म है, उसे वन्दन करने का।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु वह धर्मी हो तो न? धर्म हो तो उसे वन्दन करने का भाव आये बिना रहता ही नहीं। वह तो विकल्प आता ही है। उसमें क्या? सम्यग्दृष्टिसहित धर्मी और मुनि हो.... यह (अज्ञानी) तो कर्ता मानते हैं कि हम भाषा के कर्ता हैं। हम किसी का करते हैं। हम मन्दिर बनाते हैं, हमने ऐसा किया, हमने शिष्य बनाये। कौन बनावे? किसी की पर्याय कोई बनाता नहीं। ...मिथ्यादृष्टि। ईश्वर को जगत का कर्ता माने और जैन साधु ऐसा माने कि मैं छह काय की दया पाल सकता हूँ, शरीर की रक्षा कर सकता हूँ, दोनों एक वर्ग के मिथ्यादृष्टि हैं। एक वर्ग के मिथ्यादृष्टि हैं।

यह तो अपने आ गया है। कर्तापने, सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार में आ गया है। आहाहा! समझ में आया? जैन में जन्में परन्तु जैन क्या कहते हैं अथवा वस्तु क्या है,

(इसकी) खबर नहीं तो धर्म कहाँ से होगा? समझे? बाहर से मूंड मुंडाकर बैठे परन्तु.... यह तो केशलोंच मैंने किया। परमाणु की पर्याय होती है, उसमें तूने क्या किया? समझ में आया?

कौन करे? अँगुली बाल को स्पर्श भी नहीं करती। तीन काल में अँगुली बाल को स्पर्श भी नहीं करती और बाल निकलते हैं, वे उनकी पर्याय के कारण से निकलते हैं। आत्मा माने कि मैंने किया। लोग कहे, आहाहा! क्या है परन्तु? वह तो अज्ञान हुआ। पर का कार्य मैंने किया, वह तो मिथ्यादृष्टि अजीव की पर्याय को अपनी मानी, वह तो मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? भाई! यह सूक्ष्म बात है।

मुमुक्षु : गहरी बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : गहरी ऐसी। ऐसी बात है। जैसी है, वैसी यह है। दूसरी है नहीं। लोगों को, समाज को यह बात मिली नहीं और ऐसी बात, क्रियाकाण्ड करना, ऐसा करना घुस गया।

मुमुक्षु : सुनने में क्यों नहीं आयी?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, परन्तु समाज की योग्यता नहीं थी तो सुनने में नहीं आयी। क्या कहते हैं? देखो! उपादान क्या कहते हैं उपादान? शब्द तो उससे हुए हैं। पुद्गल में शब्द हुए और संस्थान-संघात मिल गये। एकता हुई। **पर्यायोंरूप से परिणत होने के कारण...** कौन? पुद्गल। वह पुद्गल अपनी पर्यायोंरूप परिणति होने के कारण, देखो! भाषा कितनी स्पष्ट है! शरीर, यह वाणी (उसका) ऐसा... ऐसा... ऐसा... सब आकार हुए हैं। (वे) सब आकार पुद्गल की पर्याय की परिणति होने से हुए हैं। आत्मा के कर्म से नहीं। और आत्मा ने भाव किये थे तो कर्म बँधे थे, ऐसा भी नहीं है। और कर्म है तो ऐसी पर्याय हुई, ऐसा भी नहीं है।

मुमुक्षु : यही दलील गले नहीं उतरती।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो दो और दो = चार है। तो दलील क्यों नहीं उतरती? पुद्गल अनन्त है या नहीं? या एक है? अनन्त है तो अनन्त रहकर उत्पाद होता है या मिलकर उत्पाद होता है। मिलकर होता है तो अनन्त रहे नहीं। और अनन्त रहकर उत्पाद होता है तो दूसरे से होता नहीं।

मुमुक्षु : मिलकर एक हुए तो अनन्तपना किसलिए चला गया?

पूज्य गुरुदेवश्री : चला गया। सब मिलकर एक पर्याय हुई तो उस पर्याय में, अनन्त की अनन्त होना चाहिए, और एक पर्याय को अनन्त द्रव्यों ने की तो द्रव्य एक हो गये। द्रव्य पृथक् रहा नहीं। समझ में आया?

अनन्त द्रव्य की अनन्त पर्याय भिन्न होना चाहिए। उसकी जगह अनन्त की असंख्य पर्याय मिलकर होवे तो अनन्त द्रव्य का तो नाश हो गया। स्वतन्त्र अनन्त है, भिन्न-भिन्न, उनका अस्तित्व तो रहा ही नहीं। समझ में आया? अरे! यह कैसा धर्म! भाई कहे।

मुमुक्षु : उल्टे प्रकार का भुक्का उड़ा दिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : अलग प्रकार का है। ऐई!

मुमुक्षु : यह चतुर होने की कॉलेज है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह मूर्खाई निकालने के लिये कॉलेज है। मूर्खता भरी हुई है न, मूर्खता! साधु नाम धराकर भी मूर्ख बुद्धि रखता है कि हम भाषा बोलते हैं तो बोली जाती है। शरीर ऐसा चलाते हैं। शरीर की पर्याय तो कहते हैं कि पर्यायरूप से परिणत तो पुद्गल हुआ है। तुझसे हुआ है? तू कौन? तेरा तेरे अस्तित्व में है, उसके अस्तित्व में तेरा घुस गया है? या उसके अस्तित्व में तुझसे पर्याय हो? वीतरागस्वरूपी भाव। समझ में आया?

यह और वीतराग की वाणी कहता था न इसलिए। वाणी ही वीतराग की नहीं। वह सब समझाने की बात है। इसीलिए लोग गड़बड़ करते हैं न? यह भगवान की वाणी नहीं। अब सुन तो सही! यह तो निमित्त से कथन है। भगवान जड़ के हैं? वाणी तो जड़ है। भगवान क्या जड़ हैं? सोनगढ़ के नाम से लोग अभी बहुत ही बड़ी गड़बड़ करते हैं। परन्तु यह कौन कहते हैं? यह कुन्दकुन्दाचार्य भगवान ने दो हजार वर्ष पहले कहा है और अनादि से यही बात चली आती है। बात त्रिकाल एकरूप है। दूसरी बात तीन काल में होती ही नहीं। ओहोहो! समझ में आया? लो! अभी तो यहाँ अटका! शरीर और शरीरी दोनों भिन्न चीज है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : जीव तो शरीर नहीं और इसमें शरीरी कहाँ से आया? शरीर में भी शरीरी जीव को शरीरवाला, ऐसा कहा गया है। संक्षिप्त भाषा करने के लिये निमित्त से कथन किया गया है। समझ में आया? यह वास्तव में यह शरीर स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण, वे उसके गुण हैं। शब्द उसकी पर्याय है और संस्थान उसकी पर्याय है। संस्थान। यह देखो! ऐसे-ऐसे होता है।

मुमुक्षु : संस्थान अर्थात् हालत।

पूज्य गुरुदेवश्री : आकार। संस्थान अर्थात् आकार। यह आकार। यह आकार है न, देखो न! भिन्न-भिन्न आकार हुए न? एक-एक रग में कितने आकार हैं। देखो! यहाँ... यहाँ... यहाँ... किसी को कुछ, किसी को कुछ। सब परमाणु स्कन्ध के आकार होते हैं, वह पुद्गल का परिणमन है। आत्मा ने बिल्कुल किया नहीं। तब कोई कहे कि पूर्व के कर्म हैं या नहीं? परन्तु कर्म भिन्न चीज़ है। कर्म के रजकण भिन्न हैं, यह रजकण भिन्न हैं। कर्म से यह हुआ है, ऐसा भी नहीं। वह तो निमित्त का ज्ञान कराने के लिये कहा था। आहाहा! समझ में आया?

संस्थान-संघातादि.... आदि अर्थात् कुछ भी आकृति हो, ऐसे विस्तार आदि सब **पर्यायोंरूप से परिणत होने के कारण...** छोटे-बड़े आकार होते हैं न? शरीर के टुकड़े हो जायें, वापस इकट्ठे हो जायें, पतला हो जाये। शरीर में ऐसे बल पड़े, शरीर है न तो बल पड़ते हैं न? इन सबकी आकृतिरूप परिणमन, वह पुद्गल की पर्याय है। समझ में आया? यह जीभ भी (मुँह के) अन्दर ऐसे-ऐसे घूमती है, आकार। जीभ का आकार घूमता है न? खाते समय ऐसे सीधी नहीं रहती। यह आकृति पुद्गल की पर्याय से होती है। आत्मा की इच्छा से ऐसी होती ही नहीं।

मुमुक्षु : ....का भाव है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भाव आत्मा के पास रहे। उसमें क्या? उसे स्पर्श किया है? जीभ के अनन्त परमाणु के स्कन्ध हैं। यह कहते हैं कि स्कन्ध के संस्थान-संघात इकट्ठे हुए, उत्पाद-नाश हुआ, वह सब जड़ की पर्याय है। आत्मा से नहीं। ओहोहो! अभी तो

जीव-अजीव की भिन्नता का भान नहीं। उसे पुण्य से आत्मा भिन्न बतलाना, वह तो दूसरी चीज़ रह गयी। यह आगे कहेंगे।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, बाहर से नहीं। अपने से पर्याय होती है। इतनी बात है। यह अनन्त गुण की विशेषरूप पर्याय अपने से होती है। मन से नहीं, वाणी से नहीं, शरीर से नहीं, कर्म से नहीं, देव-गुरु-शास्त्र से भी नहीं। जिसके पास जो सामान/ पूँजी है, उसका विशेष होता है। यह पहले पूर्व में आ गया है न, १२५ (गाथा) में आ गया। ऐसा कि उसमें हित-अहित आदि की विशेष पर्याय नहीं दिखती तो सामान्य ज्ञान उसमें नहीं है। जिसमें विशेष दिखता हो, उस विशेष का सामान्य होता है। जड़ में ज्ञान की पर्याय का विशेष नहीं है तो सामान्य ज्ञान भी नहीं। समझ में आया? यह पहले आ गया। यह तो वहाँ से मैंने संक्षिप्त करके लिया है। आता है न! यह तो ऊपर से कह गये न! वह तो यहाँ १२६-१२७ में बात लेनी है। समझ में आया?

वह तो जड़ में, किसी जड़ की पर्याय में ज्ञान का विशेषपना नहीं दिखता, तो ज्ञानगुण का सामान्यपना भी उसमें नहीं है। जड़ में पर्याय शब्द की संस्थान-आकृति दिखती है तो उसमें सामान्य वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श दिखता है। जिसका विशेष हो, उस प्रकार का सामान्य होता है। जड़ में ज्ञान की पर्याय का विशेष नहीं तो ज्ञान का सामान्यगुण भी नहीं है। इसी प्रकार जड़ में जो शब्द आदि की जो पर्याय होती है, वह विशेष है। तो विशेष जड़ है तो उसके गुण वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श भी जड़ है।

आत्मा में जो ज्ञानादि की विशेष पर्याय होती है, तो सामान्य भी ज्ञानगुण है। सामान्य गुण है, उसकी विशेष पर्याय है। विशेष जाति हो, उस जाति का सामान्य होता है। समझ में आया? कहो, सेठी!

मुमुक्षु : वाणी तो है आत्मा के साथ।

पूज्य गुरुदेवश्री : जड़ है।

मुमुक्षु : जड़ है तो आत्मा के ऊपर प्रभाव की छाप पड़ती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कोई (छाप प्रभाव की) पड़ती नहीं। कौन कहता है पड़ती है? भगवान इनकार करते हैं। पड़ती ही नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो उसका उपादान है तो ख्याल आता है। वह तो निमित्त चीज़ है, उससे प्रभाव-प्रभाव पड़ता नहीं। मिथ्यादृष्टि ने माना है। अभी बात चलती नहीं। ऐसी गड़बड़ हो गयी है, ऐसी गड़बड़। पानी भी आत्मा ने पीया नहीं, फिर कहाँ प्रश्न है? भगवान की वाणी ही नहीं। यह तो आया न? परसों के दिन १७३ गाथा में दोपहर में आया था।

मुमुक्षु : सब लोग बोलते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो बोलने में आता है। निमित्त कौन, ऐसा बोलने में आता है। आरोप से कथन है। वाणी तो वाणी की है। यह कहा न? सशब्द होने के कारण, कौन? जड़। **संस्थान, संघातादि...** इकट्ठे होना-पृथक् होना। **पर्यायोंरूप से परिणत होने के कारण इन्द्रियग्रहणयोग्य है, वह पुद्गलद्रव्य है;...** लो! पुद्गलद्रव्य है। सब पुद्गलद्रव्य है। भाषा पुद्गल, भगवान की वाणी तो निमित्त से कही जाती है। वाणी भगवान को होती है? भगवान जड़वाले हैं? वे कहते हैं न कि अरर्र! भगवान की वाणी नहीं? अरे! भगवान की वाणी कहकर गाली देता है? भगवान तो अरूपी चैतन्यघन हैं। उनके पास वाणी कहाँ से आयी? वे बाहर में आ गये? आहाहा!

अभी तो रूपी-अरूपी में भी किसकी पर्याय कैसे होती है और कौन निमित्त है, इसकी भी खबर नहीं, किसी का अंश किसी में मिला देना, मूढ़ है। मिथ्याज्ञान है, असत् ज्ञान है, पापदृष्टि है।

मुमुक्षु : व्याप्य-व्यापक है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ से व्याप्य-व्यापक होगा? अपनी पर्याय में हो, फिर प्रश्न क्या है? एक परमाणु दूसरे परमाणु में व्याप्य-व्यापक नहीं होते। व्याप्य कहो या अवस्था कहो, व्याप्य कहो या उत्पाद कहो। उत्पाद, वह व्याप्य है और द्रव्य, वह व्यापक है। यह व्याप्य-व्यापक अपने में होता है या (पर में होता है)? कर्ता-कर्म

कहो या व्याप्य-व्यापक कहो। आहाहा! या उत्पाद और ध्रुव कहो। ध्रुव व्यापक, पर्याय व्याप्य, उत्पाद से। वस्तु का अनादि स्वभाव है, किसी ने किया नहीं। भगवान ने कहा, हुकम दे दिया कि यह मानो नहीं तो जेल होगी। ऐसा है नहीं।

मुमुक्षु : ऐसा नहीं मानो तो चौरासी में (घूमना पड़ेगा)।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो वस्तु ऐसी है। ऐसा नहीं माने तो—तुम्हारी दृष्टि में विपरीतता है, इसलिए जायेगा। समझ में आया? आहाहा! परिणमन की अपनी योग्यता से परिणमता है। उसकी योग्यता प्रमाण वह जानता है। अपने कारण से। श्रोता अपनी योग्यता से सामान्य ज्ञान में से विशेषरूप योग्यता उस समय में होती है, ऐसा जानता है। बस। वाणी से कहते हैं, यह भी निमित्त का कथन है। क्या किसी का विशेष कोई सामान्य बिना का होता है? उसका ज्ञानगुण सामान्य है। उसकी विशेष पर्याय होगी। सामान्य वहाँ है तो उससे यहाँ विशेष हुई? आहाहा! पूरी मोटी वस्तु ही अनन्त पदार्थ का नाश होता है दृष्टि में। दृष्टि में। वस्तु तो कहाँ चली जाती है! कहो, समझ में आया? ऐई, देवीलालजी! क्या है यह? यह भगवान की पूजा-बूजा फिर करना या नहीं? अष्टद्रव्य। निर्णय तो कर! क्रिया भी बीच में होनेवाली जड़ से होती है। तेरा तो शुभभाव, तेरा तो शुभभाव, बस! वह क्रिया उससे (जड़ से) होती है, तुझसे नहीं। समझ में आया? अरे, भगवान!

अभी जड़ से दृष्टि उठाना मुश्किल पड़ती है, तो उसके पुण्य के विकल्प से दृष्टि उठाकर मुझमें पुण्य ही नहीं। समझ में आया? जिसे अपने अतिरिक्त दूसरे पदार्थ और दूसरे से अपने में कार्यकारण माना, उसने सब विपरीत माना है। वह जड़ कारण और मेरी पर्याय कार्य। मेरी पर्याय कारण और जड़पर्याय कार्य। सब विपरीत घोटाला!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बात की। स्वरूप कारणविपर्यास, स्वरूपविपर्यास, भेदाभेदविपर्यास सब विपर्यास हो गया उसे। तत्त्व क्या है? वस्तु यह तो शान्ति से, धीरज से भेदज्ञान करने की बात है। जीव-अजीव से भेदज्ञान करने की बात है। भेद तो कब होगा कि मेरी पर्याय मुझसे, उसकी पर्याय उससे, तब भेद होगा। अभी तो अजीव

और जीव से भेद करने की बात है। पश्चात् पुण्य और पाप से भेद करने की बात स्वभाव की है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : यहाँ आ पड़े तो मोक्ष इतना कठिन पड़ेगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : कठिन! लो! यह कहते हैं कि यहाँ आ पड़े तो मोक्ष भारी कठिन पड़ेगा। कठिन हो गया। आ पड़े, अब इसमें से निकलना किस प्रकार? विष्टा को अमृत माना था। क्या कहे कि विष्टा अपने बहुत ही है, बहुत ही है। ऐसा है? यहाँ कहते हैं कि भगवान! तेरी चीज़ में पुद्गल का परिणमन तुझसे कभी हुआ ही नहीं। भूल निकालने के लिये कहते हैं या भूल रखने के लिये कहते हैं? यह कहा न। **जीव और अजीव का वास्तविक भेद सम्यग्ज्ञानियों के मार्ग की प्रसिद्धि...** मार्ग की प्रसिद्धि के लिये कहा जाता है। भगवान अमृतचन्द्राचार्य... भाई! '**सम्यग्ज्ञानिना मार्गप्रसिद्धयर्थं प्रतिपादित इति**'। संस्कृत में, नीचे हिन्दी में है। भावार्थ के ऊपर है। कहो, समझ में आया?

यह वास्तव में गुण और पर्याय से **परिणत होने के कारण इन्द्रियग्रहणयोग्य है, वह पुद्गलद्रव्य है;...** वह पुद्गलद्रव्य है। वह अपना आत्मद्रव्य नहीं और आत्मा की पर्याय भी नहीं। समझ में आया? शरीरादि पर्याय हो, आत्मा को निमित्त कहते हैं। निमित्त कहते हैं तो निमित्त है तो वह हुई है। तो निमित्त रहा नहीं। निमित्त का अर्थ यह कि वह चीज़ होती है स्वयं से, तब सामने संयोग है, उसे निमित्त कहा जाता है। निमित्त है तो उसमें पर्याय हुई। उसमें पर्याय हुई तो अपने निमित्त से हुई, ऐसा नहीं है। समझ में आया? यह तो शरीर की बात चलती है। बाह्य में भी सब, यह लड्डू बँधते हैं, ऐसा होता है, ढेबरा, पूड़ी सब, चक्कर, गोल सब पुद्गल की पर्याय परिणमती है। पुद्गल होकर परिणमती है। आत्मा की इच्छा वहाँ परिणमावे, ऐसा तीन काल में नहीं होता।

मुमुक्षु : थोड़ा ज्ञान जरूरी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हें... यह ज्ञान आवश्यक, बिना इसके सत्य की खबर नहीं पड़ती। कहते हैं, इतना ज्ञान आवश्यक है। जड़ से भिन्न चैतन्य की पर्याय ऐसा। संक्षिप्त में संक्षिप्त है। इन्द्र, चक्रवर्ती को भी भान है। उसमें भान है। छियानवें हजार स्त्रियाँ चक्रवर्ती

को है, करोड़ों अप्सरायें इन्द्र को है। है भान, हमारी पर्याय हमसे उठती है पर्याय, उससे हमारे से कुछ है नहीं। ऐसा इन्द्र को भान है। सम्यग्दृष्टि है। भेदज्ञान है। भेद का अर्थ- भिन्न। शरीर की पर्याय शरीर से, मुझसे नहीं। चक्रवर्ती भी सम्यग्दृष्टि हो। लड़ाई करने जाये, घुड़सवार होकर जाते हैं न। हजार देव तो सेवा करते हैं। तिमित गुफा थी। गुफा शोधते हैं न? हाथ में दण्ड है। एक दण्ड, हजार देव सेवा करते हैं। वह पर्याय मुझसे हुई नहीं, ऐसा मानते हैं। मुझसे हुई नहीं। मेरी पर्याय मेरी सीमा उल्लंघकर बाहर नहीं जाती। उसकी पर्याय उसकी पर्याय की सीमा उल्लंघकर दूसरे को स्पर्श नहीं करती। ओहोहो! यह पुद्गल आया। यह पुद्गल की व्याख्या की, शरीर। समझ में आया?

आदि सब लेना, हों! अकेला शरीर नहीं। यह तो शरीर की बात की है। औदारिकशरीर सम्बन्धी संघात, वर्णन आदि सब, सब लेना। और सब बाहर की भी पुद्गल की पर्याय, अक्षर पढ़ना, अक्षर लिखना, शीशपेन घुमाना, वह सब पुद्गल की पर्याय है। आत्मा उसे नहीं करता। कहो, समझ में आया? यह शरीर की एकता होती है न, परमाणु, वह बराबर हो, ऐसे... ऐसे.... ऐसे करो तो शरीर अच्छा रहेगा। कुछ है नहीं। तेरी कल्पना की मर्यादा कल्पना। शरीर की पर्याय में परिणमन हो, वह शरीर के कारण से। तेरी कल्पना से उसमें कुछ भी फेरफार हो, (ऐसा) तीन काल में नहीं होता। समझ में आया?

विकल्प तो आता है। ज्ञानी को भी क्षुधा तो आती नहीं? क्षुधा तो। परन्तु वह आहार आना, (वह) विकल्प आया तो आता है, ऐसा नहीं है। और उसमें जठर का उपशम होना, वह आहार आया, तो हुआ ऐसा भी नहीं है। वह पर्याय ऐसी उत्पन्न होने की थी, तो आहार को निमित्त कहा गया है। विकल्प आया तो आहार आया और क्षुधा मिट गयी, ऐसा नहीं है। संघात आया न संघात। पुद्गल (का) इकट्ठा होना, वह आत्मा की पर्याय है? नहीं; वह तो पुद्गल की पर्याय है। पुद्गल की पर्याय इकट्ठी होती है, वह पुद्गल एक गाथा का अर्थ हुआ। अब १२६ गाथा। देखो! '**पोग्गलदव्वभवाहोंति गुणा पज्जया य बहू**'

अब आत्मा। स्पर्श, रस, रंग, गन्ध, वर्ण, गुणरहित आत्मा। आत्मा में **स्पर्श-रस-**

गन्ध-वर्ण-गुणरहित होने के कारण, अशब्द... उसमें शब्द था न? आत्मा में शब्द होने का कारण नहीं है। अर्थात् शब्द होने का कोई कारण नहीं है। आत्मा शब्दरहित है।

मुमुक्षु : कब?

पूज्य गुरुदेवश्री : अनादि-अनन्त। आत्मा में शब्द है? शब्द में आत्मा है? दो भिन्न चीज़ है। यह उसको लगे, दो कारण लगाओ, परन्तु दो कारण का अर्थ क्या? अपने से होता है तो वह दूसरी चीज़ है, तो उसे आरोप उससे दिया जाता है। नहीं। जैसा निमित्त मिले, वैसी पर्याय होती है। अच्छा! चले जाओ चार गति में भटकने को।

मुमुक्षु : भगवान की वाणी खिरती है....

पूज्य गुरुदेवश्री : खिरती है तो वाणी खिरती है, ऐसा कहा न? वह तो वाणी खिरती है। आत्मा खिरता है? आहाहा! आत्मा खिरता है उसमें? भगवान खिरता है वाणी में? खिरते हों तो भगवान का ज्ञान क्षीण हो जाये। वह तो वाणी खिरती है, जड़। अनन्त रजकण परमाणु। भाषा होने की योग्यता से भाषा की पर्याय होती है। भगवान की वाणी है या जड़ की? जैन का क्या? जीव-अजीव यह भी सुना नहीं।

मुमुक्षु : .... देर लगेगी।

पूज्य गुरुदेवश्री : देर लगेगी तो भले लगे।

मुमुक्षु : आत्मा जिस भाव से... क्रिया होती है तो... अन्दर जाने का भाव हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : भाव हुआ।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं कर सकता तो वहाँ तो भाषा भी नहीं कर सकता। भाषा होने की हो वह होती है। शरीर भी अपने परिणमन से गति करने का हो तो हो। परन्तु भाव आया तो शरीर की गति हुई, ऐसा नहीं है। भाव हुआ तो वाणी निकलती है, ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : भगवान की वाणी थी तो भाव आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, ऐसा भी नहीं।

मुमुक्षु : क्रिया से तो पकड़ में आता है, भावक्रिया से पकड़ में आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, बिल्कुल किसी ने पकड़ा नहीं। भाव भाव में रहे, भाषा भाषा में रही।

मुमुक्षु : क्रिया....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, नहीं। जड़ की क्रिया जड़ में, आत्मा की क्रिया आत्मा में।

मुमुक्षु : अनुकूल अर्थात् एकरूप हो गये न?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, अनुकूल का अर्थ क्या? भाषा जैसे भाव थे, वैसी भाषा परन्तु भाषा भाषा के कारण निकली है। भाव के कारण नहीं। यह तो कहते हैं, यहाँ बतलाना है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन? किसका? यह तो व्यवहार के विकल्प आते हैं। पूज्य व्यवहार से कहा जाता है। शुभभाव आता है न? इस कारण से। आत्मा तो, यह भगवान की प्रतिमा भी जड़ है। परन्तु निक्षेप करते हैं तो यह भगवान, ऐसा शुभभाव आता है। वह अपने में शुभभाव है। परन्तु शुभभाव के कारण मन्दिर बने, ऐसा नहीं है और मन्दिर है तो शुभभाव आया, ऐसा नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : शास्त्रों में तो आता है, मन्दिर बनाना।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो भाषा आती है। विकल्प होनेवाला हो तो होता है। आत्मा का कर्तव्य है? आत्मा कर सकता है? आहाहा! भारी गड़बड़, भाई! अभी तो भगवान की वाणी की दिक्कत उठे। यहाँ कहते हैं कि वाणी जड़ की है, ले।

मुमुक्षु : वे कहते हैं कि जादू...

पूज्य गुरुदेवश्री : जादू करे, नहीं। ठीक है।....थोड़ी देर लगेगी। ऐसा कहते हैं। नहीं समझ में आये, ऐसा नहीं कहते। कहो, समझ में आया? निर्णय करने का बहुत ही खिचड़ा होता है न, तो उसमें से निकालना। अशब्द होने के कारण, कौन? आत्मा अशब्द है। देखो! कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि आत्मा में अशब्द है। और शब्द में आत्मा

का अभाव है। अत्यन्त अभाव है। शब्द की पर्याय में भगवान आत्मा का अत्यन्त अभाव है। भगवान आत्मा ने शब्द की पर्याय का अत्यन्त अभाव है। कौन किसे करे? आहाहा!

व्यवहार से बोलने में आता है। दोपहर में आया न? व्यवहारिक दृष्टि। वह तो व्यवहार से कथन किया गया, निमित्त से। अपने भाव की पर्याय करता है। बस, बस। अपने अस्तित्व में। दूसरे के अस्तित्व के क्षेत्र में क्या सीमा है अन्दर की अपनी कि उसमें घुसे?

स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण-गुणरहित होने के कारण, अशब्द होने के कारण,... कौन? आत्मा। **अनिर्दिष्टसंस्थान होने के कारण...** उसमें कोई संस्थान नहीं कि ऐसा संस्थान कहने में आता है। **तथा अव्यक्तत्वादि पर्यायोंरूप से परिणत होने के कारण...** इन्द्रियग्राह्य नहीं, ऐसी पर्यायरूप से परिणत है। इन्द्रियग्राह्य नहीं, ऐसी पर्याय से परिणत है। **इन्द्रिय ग्रहण योग्य नहीं...** लो! आत्मा इन्द्रिय ग्रहणयोग्य नहीं; शब्द इन्द्रिय ग्रहणयोग्य है। पुद्गल इन्द्रिय ग्रहणयोग्य। दोनों चीज़ भिन्न है। दोनों को किसी का कुछ लेना-देना नहीं है। समझ में आया?

मोक्षमार्गप्रकाशक में यह लिया है। अजीव से अजीव होता है, (उसमें) तेरा तो निमित्त है। वह तो अंश मिला देता है तेरा। मेरे अंश से उसका हुआ और उसके अंश से मेरा हुआ। कहो, समझ में आया? **चेतनागुणमयपने के कारण...** लो! कैसा भगवान है आत्मा? भगवान का अर्थ सब आत्मा, हों! **चेतनागुणमयपने के कारण रूपी तथा अरूपी अजीवों से विशिष्ट (भिन्न) ऐसा जीवद्रव्य है।** लो! भगवान आत्मा चेतनागुणमयपने के कारण उसकी पर्याय भी चेतनामय है। वह रूपी पुद्गल से भिन्न है। अरूपी आकाशादि से भी भिन्न है। अपने से भिन्न पाँच द्रव्य है न? रूपी पुद्गल और अरूपी यह धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश और काल। यह रूपी और अरूपी अजीवों से **विशिष्ट=भिन्न; विलक्षण; खास प्रकार का।** भिन्न ऐसा जीवद्रव्य है, लो! दोनों द्रव्य भिन्न-भिन्न हैं।

अभी जीव और अजीव भिन्न का भास न हो, भिन्न की खबर न हो, उसे धर्म, चलो करो सामायिक करो, प्रतिक्रमण करो, प्रौषध... क्या है? मूढ़ है। मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? लो! विशेष बात करेंगे। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. २९, गाथा-१२६-१३०
दिनांक - २४-०९-१९६४, भाद्र कृष्ण ३, गुरुवार

१२६-१२७ गाथा। पंचास्तिकाय; नौ पदार्थ का वर्णन चलता है। कल यह अधिकार पूरा हुआ। **इस प्रकार यहाँ जीव और अजीव का वास्तविक भेद...** है? जीव, वह रूपी-अरूपी अजीवों से भिन्न है। जीव रूपी पुद्गल और अरूपी धर्मास्ति आदि काल, उनसे चैतन्यद्रव्य भिन्न है। यह वास्तविक भेद यथार्थरूप से भेद भिन्न है।

सम्यग्ज्ञानियों के.... सच्चे ज्ञानियों के **मार्ग की प्रसिद्धि के हेतु,...** जड़ और चैतन्य, जड़ की पर्याय जड़ से होती है, चैतन्य की पर्याय चैतन्य से होती है। कल आया था न, समठाण आदि। सब शरीर की पर्याय का काल परमाणु से होता है। यहाँ अस्तित्व सिद्ध करना है। वह अस्तित्व किससे है? अपने आत्मा का अस्तित्व जड़ का, द्रव्य-गुण-पर्याय से भिन्न है। ऐसी वास्तविक भिन्नता, वास्तव में दोनों भिन्न है। इसलिए ऐसा नहीं कि एक जीव और एक अजीव और एक जीवसहित अजीवसहित जीव को, ऐसी गड़बड़ करते हैं न, बहुत ही। यह पुद्गलसहित जीव, ऐसा जीव, ऐसी बहुत ही बात करते हैं। एक अकेला जीव है। दो साथ में हैं। है ही नहीं।

जीव और अजीव तीनों काल भिन्न है। वह सचेतन पुद्गल, यह झूठ है। सचेतन पुद्गल कहाँ से आया? यह कोई कहता है। आत्मा सचेतन पुद्गल है, दूसरे अचेतन पुद्गल हैं, ऐसा नहीं, वास्तविक जीव और अजीव। द्रव्य-गुण-पर्याय अपने-अपने में तीनों काल भिन्न ही है। **सम्यग्ज्ञानियों के मार्ग की प्रसिद्धि के हेतु,...** कोई कहता है कि अकेला आत्मा ही जगत में है। और कोई कहता है कि अकेला अजीव ही है। जीव-बीव कोई दिखता नहीं। ऐसा नहीं है। रूपी-अरूपी, रूपी-अरूपी से भिन्न; रूपी पुद्गल अरूपी आकाश, धर्मास्ति आदि अरूपी से आत्मा भिन्न। कल आया था।

आत्मा रूपी और अरूपी अजीव से भिन्न। अजीव के दो प्रकार, एक रूपी अजीव और एक अरूपी अजीव। रूपी अजीव यह पुद्गल, अरूपी अजीव धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश और काल। कहो, समझ में आया? इन पाँच से भगवान आत्मा

अत्यन्त भिन्न अनादि का है। इस **मार्ग की प्रसिद्धि के हेतु प्रतिपादित किया गया।** लो! आचार्य महाराज अमृतचन्द्राचार्यदेव कहते हैं कि भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव ऐसा भिन्न बतलाने के लिये, भिन्न है, ऐसे ज्ञानी की प्रसिद्धि के लिये भिन्न बतलाया।

मुमुक्षु : अभी भिन्न है?

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी भिन्न है, अभी की बात है। सिद्ध की बात कहाँ है? शरीर की पर्याय शरीर में है। आत्मा की पर्याय आत्मा से अभिन्न ही है। कहो, समझ में आया? बहुत ही गड़बड़ होती है न, यह कहाँ से हुआ? वाणी जिनवाणी है या नहीं? वाणी जिनवाणी है या नहीं? जिनवाणी है या नहीं? जिनवाणी है नहीं और वाणी जिन की है नहीं। वाणी, वाणी की है; जिन, जिन के हैं। समझ में आया? जिन, जिन के हैं, वाणी, वाणी की है। वाणी क्या जिन की हो जाती है? और जिन क्या वाणी के हो जाते हैं? जिन की वाणी खिरती है न? जिन की नहीं खिरती। जिन में से निकलती है तो खिरती है? परमाणु की पर्याय होकर खिरती है। ओहोहो!

निकलती है, दूसरा क्या खिरता है? बाहर आवे न भणकार। क्या है?

मुमुक्षु : वाणी कहाँ से आती है?

पूज्य गुरुदेवश्री : वाणी जड़ में से आती है। कहाँ से आवे? आत्मा में भरी है? आत्मा में परमाणु की खान है?

मुमुक्षु : भाषा पर्याप्ति है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भाषा पर्याप्ति जड़ में है। उस पर्याप्ति से भी नहीं आती। भाषा पर्याप्ति भिन्न है। नामकर्म है। आदि सूक्ष्म है। दोनों भिन्न चीज़ है। कभी भी भिन्न किया भी नहीं। कब क्या भिन्न है। खबर भी नहीं। ऐसा करूँ, ऐसा बनाऊँ। कौन करे भाई! परपदार्थ के लिये आत्मा पंगु है। पंगु, पंगु, पंगु। है ही नहीं। अपने स्वरूप में वह है नहीं। और उसके स्वरूप में यह है नहीं। अत्यन्त भिन्न अभी या हमेशा और तीनों काल में।

अब भावार्थ। इसका थोड़ा भावार्थ लेते हैं।

अनादि मिथ्यावासना के कारण... अनादि मिथ्या गन्ध, रुचि अभिप्राय के कारण **जीवों को स्वयं कौन है,...** स्वयं कौन है, **उसका वास्तविक ज्ञान नहीं है...** स्वयं कौन है, कैसे है, किस प्रकार है, खबर नहीं।

मुमुक्षु : धर्म.... कौन है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : धर्म किसका ? धर्म करनेवाला कौन है, इसकी खबर नहीं तो धर्म कहाँ से होगा ? धर्म करनेवाला कैसा है, किस प्रकार है और धर्म क्या पर्याय है, द्रव्य है या गुण है।

मुमुक्षु : भगवान ने आचारांग कहे हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : आचारांग कहे हैं। आचारांग में सम्यग्दर्शन, ज्ञान नहीं कहा ? ऐसे के ऐसे उल्टे उठते हैं। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान का आचारांग में वर्णन नहीं ? पहले वर्तन का कथन किया है और दृष्टि का तो बारह अंग में कहा है। ऐसा कल आया है ? दृष्टि का विषय बारह अंग में दृष्टिबाद में और आचारांग के कथन पहले। सम्यग्दर्शन बिना आचारांग कहाँ से आया ? समझ में आया ? जेठाभाई ! यहाँ बड़े-बड़े पण्डित पढ़े, समझ में आया ? बैल परवाने (धोते) बैठते हैं। कुछ खबर नहीं क्या चीज़ है। आहाहा ! पण्डिताई की यह चीज़ नहीं है। यह तो वस्तु की अन्तर्दृष्टि की और अन्तर रुचि की चीज़ है। समझ में आया ?

ओले गिरे हों, उस पर लिख दिया और लिखे और भाषण भी दे दिया, पचास-पचास हजार, लाख को, इसलिए होशियार है - ऐसा नहीं। यह चीज़ ऐसी नहीं है। चीज़ चीज़ में है, चीज़ पर में तीन काल में नहीं है। भाषा आत्मा कर सकता है, दूसरे को समझा सकता है, यह वस्तु में नहीं है। आहाहा !

कहते हैं, अनादि मिथ्या वासना के कारण जीवों को स्वयं कौन है, इसका वास्तविक ज्ञान नहीं है, ऐसे तो कहते हैं कि हम जीव हैं, जीव हैं परन्तु जीव है तो अपने द्रव्य-गुण-पर्याय में उसकी सीमा-मर्यादा है। पर की सीमा पर में है। समझ में आया ? यह अँगुली हिले, यह हिले, यह तो इसके कारण से हिलती है। हिले बिना रहती नहीं। कोई कहे कि उसके कारण से हिलती है तो फिर तुम बन्द कर दो, तो

हिले? परन्तु कौन बन्द करे? उसके कारण से हिलती है तो उसके कारण से बन्द होगी। उसमें दूसरे का अधिकार है ही नहीं। दूसरे कार्य करके हट जाये तो दूसरे ने कार्य नहीं किया, ऐसा मानना। ऐसा है ही नहीं। यह तो वाणी, शरीर, उसकी पर्याय में जो रहनेवाली क्रिया है, वह तो होगी ही। होगी ही। वह कहाँ अपने आत्मा से होती है।

ऐसे **जीवों को स्वयं कौन है, उसका वास्तविक ज्ञान नहीं है और अपने को शरीरादिरूप मानते हैं।** किस कारण से? अपना अस्तित्व कैसा है, ऐसा जानने में नहीं आया तो कहीं भी अपना अस्तित्व मानना तो चाहिए। अपना वास्तविक स्वरूप कैसा है, ऐसा ज्ञान में लिया नहीं तो कहीं भी अपने अस्तित्व का अस्तित्व मानना तो पड़ेगा ही। यह शरीर मैं हूँ, वाणी मैं करता हूँ, शरीर को हिलाता हूँ, वाणी बोलता हूँ, कर्म बाँधता हूँ, ऐसे पर को अपना माना है। कहो, समझ में आया?

अपनी चीज़ भिन्न है, उसका ज्ञान नहीं तो अपने अस्तित्व की सत्ता का स्वीकार तो कहीं करना पड़ेगा न? अपनी सत्ता का स्वीकार नहीं कि मैं ज्ञायक अकेला चैतन्य भिन्न हूँ, ऐसा ज्ञान नहीं। अपना अस्तित्व शरीर मैं हूँ, यह मैं करता हूँ, यह करता हूँ, उसकी प्रसिद्धि से मेरी प्रसिद्धि, मेरा अस्तित्व, उससे है। बोलता हूँ कि मैं आत्मा, चलता हूँ तो मैं आत्मा, कर्म बाँधूँ तो मैं आत्मा। ऐसे पर के अस्तित्व में अपना (अस्तित्व) मान रखा है। समझ में आया?

अपने को शरीरादिरूप, शरीर, वाणी, कर्म, **उन्हें जीवद्रव्य तथा अजीवद्रव्य का यथार्थ भेद दर्शाकर...** भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा अथवा कुन्दकुन्दाचार्य आदि सन्त, जिन्हें ऐसा ज्ञान स्वयं कौन है, ऐसा नहीं तो पर को अपना माने बिना नहीं रहते। स्वयं अपना भिन्न क्या है, वह जानने में आया नहीं तो पर में अपनापना माने बिना रहता नहीं। **उन्हें जीवद्रव्य तथा अजीवद्रव्य का यथार्थ भेद दर्शाकर...** उन्हें भेद बताया, भाई! शरीरादि रूपी है, आकाशादि अरूपी है। वह तुझमें नहीं है। तेरा अरूपी ज्ञानघन भिन्न तत्त्व है। तुझे और पर को कुछ सम्बन्ध नहीं है। **उन्हें जीवद्रव्य तथा अजीवद्रव्य का यथार्थ भेद दर्शाकर मुक्ति का मार्ग प्राप्त कराने के हेतु...** लो!

मुक्ति का मार्ग... मुक्ति का मार्ग **मोक्ष का उपाय, प्राप्त कराने के हेतु यहाँ जड़-**

पुद्गल-द्रव्य के... जड़ पुद्गलद्रव्य के, **और चेतन जीवद्रव्य के...** शरीरादि जड़ पुद्गलद्रव्य के और चैतन्य जीवद्रव्य के, **वीतराग सर्वज्ञ कथित....** सर्वज्ञ परमात्मा परमेश्वर वीतराग ने कहे हुए **लक्षण कहे गए।** उसके-जीव के लक्षण और जड़ के लक्षण कहे गये हैं। समठाण, शब्द इत्यादि तो जड़ की पर्याय है। वह तो जड़ के लक्षण हैं, तुझसे वे कहाँ से आये? तेरा लक्षण तो ज्ञान है। आत्मा ज्ञान से जानने में आता है। आत्मा ज्ञाता है। दोनों को वीतराग सर्वज्ञ से कहा गया है। ऐसे लक्षण कहे गये हैं।

जो जीव उन लक्षणों को जानकर,... जड़ की पर्याय जड़ का लक्षण है अजीव का, ज्ञानलक्षण से आत्मा जानने में जाता है, आत्मा। ऐसे **जो जीव उन लक्षणों को जानकर,...** दोनों के लक्षण जीव। जाननेवाला तो आत्मा है न? लक्षण दोनों के, जाननेवाला एक। जड़ का लक्षण जाननेवाला जड़ है? जड़ का लक्षण और चैतन्य का लक्षण जाननेवाला तो आत्मा ही है। दोनों के लक्षण जाननेवाला तो एक है। लक्षण दो के, जाननेवाले दो—ऐसा नहीं है, एक ही है। समझ में आया?

जो जीव उन लक्षणों को जानकर,... देखो! जड़ का लक्षण समठाण आदि, शब्द आदि, वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श आदि वह तो उसका तत्त्व है और मेरा तत्त्व उससे भिन्न है। दोनों के लक्षण जाननेवाला एक जीव। समझ में आया?

अपने को स्वतःसिद्ध... दोनों का लक्षण जानकर अपने को स्वतःसिद्ध अपने से है। शरीर से, कर्म से, परद्रव्य से नहीं है। कोई ईश्वर से नहीं है, अपने से स्वयंसिद्ध है। **अपने को स्वतःसिद्ध स्वतन्त्र द्रव्यरूप से पहिचानकर,...** स्वतन्त्र द्रव्यरूप से पहिचान। मैं तो पदार्थ स्वतन्त्र हूँ। अनादि स्वयंसिद्ध, पर्याय में भी बिगड़ना, सुधरना, वह स्वयं से होता है। स्वतन्त्र हूँ। मेरी पर्याय और गुण-द्रव्य स्वतन्त्र है। समझ में आया? **एक स्वतःसिद्ध स्वतन्त्र द्रव्यरूप से पहिचानकर, भेदविज्ञानी अनुभवी होता है,...** लो! पर से भिन्न जानकर, दो के लक्षण भिन्न जानकर, अपना आत्मा पर से भिन्न है तो अपने द्रव्य पर लक्ष्य जाने से स्वयं को भेदज्ञान-अनुभव होता है। कहो, समझ में आया? क्योंकि पर से भिन्न और मेरे लक्षण से वह भिन्न, दोनों को जाना तो अपनी पर्याय-द्रव्य-गुण पर से भिन्न। पर्याय का लक्षण जाना तो पर्याय के बाद द्रव्य क्या है, यह जाना, द्रव्य-गुण

क्या है, यह ज्ञान से पहिचानने में आया? अकेले पर्याय के नहीं, पर्याय-गुण और द्रव्य तीनों को जानने में आवे तो लक्ष्य द्रव्य के ऊपर जाता है। तो भेदविज्ञानी होता है। समझ में आया?

पर से भिन्न करके स्वयं अनुभवी होता है, वह मुक्ति, मुक्तिमार्ग का उपाय है। वह मुक्ति का मार्ग है। पर से अपना आत्मा पर्याय तो भिन्न है परन्तु एक समय की पर्याय और द्रव्य-गुण भी पर से तो भिन्न हैं। तो द्रव्य कितना है, कैसा है? ऐसे अपने आत्मा को पर से भिन्न पहिचानकर अपने आत्मा का **भेदविज्ञानी अनुभवी होता है, वह निजात्मद्रव्य में लीन होकर,...** लो! वह अपने में लीन होकर अपने को पर से भिन्न जाना, वह अपने में लीन होकर, लो! पहले जाना भी भिन्न और अपने में लीन हुआ वह चारित्र। समझ में आया?

पर में लीन होना वह नहीं, राग-द्वेषादि विकार, क्योंकि वह तो पर्याय है, द्रव्य में है नहीं तो द्रव्य को पर से भिन्न जानकर भेदविज्ञानी अनुभवी होता है, यह करने का है। करने की यह चीज़ है। **वह निजात्मद्रव्य में लीन होकर, मोक्षमार्ग को साधकर...** निजात्मद्रव्य में लीन होकर मोक्षमार्ग को साधकर, अपना ज्ञायकस्वभाव चिदानन्द प्रभु आनन्द का धाम नित्यानन्द जिसमें आनन्द ही भरा है। ऐसा द्रव्य, ऐसा गुण, ऐसी जब अपनी दृष्टि आनन्दवन आनन्द भुवन भगवान, आनन्द के भुवन भगवान आत्मा की ओर दृष्टि हुई तो पर्याय में भी अतीन्द्रिय आनन्द प्रगट हो, उसका नाम भेदज्ञान अनुभव कहा जाता है। वह सच्चा ज्ञान है। समझ में आया?

निजात्मद्रव्य में लीन होकर, मोक्षमार्ग को साधकर... वह लीन होकर मोक्षमार्ग को साधकर, दूसरा साधना है ही नहीं। ज्ञायक चैतन्य नित्यानन्द जिसके आनन्द का स्वाद एक समय में निर्भर—पूरा आनन्द से भरपूर; पर्याय में कभी आनन्द लिया नहीं। क्योंकि पर से भिन्न जाना नहीं, भिन्न नहीं जाना तो द्रव्य में पूर्णानन्द है, ऐसी पहिचान नहीं हुई। समझ में आया?

जब दृष्टि ने परद्रव्य का लक्ष्य छोड़ा (और) अपने ज्ञानलक्षण से लक्ष्य होनेवाला भगवान, उसमें दृष्टि लगाकर, जो आत्मा पर से भिन्न जाना तो उसमें पर्याय में आनन्द

का अनुभव हुआ तो जाना कि पूरा आत्मा आनन्दमय है। मैं पूरा आत्मा अनादि-आनन्दमय हूँ। अतीन्द्रिय आनन्दमय हूँ। उसमें लीन होकर, आनन्द में लीन होना, वह चारित्र है। चारित्र कोई दुःखरूप नहीं। चारित्र को कष्ट सहन करना पड़े, ऐसा नहीं। आहाहा! समझ में आया? भगवान आत्मा पर से भिन्न एक पर्याय में जरा राग और दुःख है, उतना नहीं क्योंकि भिन्न जाना तो पर्याय से भिन्न जाना परन्तु सर्व द्रव्य भी भिन्न है। एक पर्याय जितना द्रव्य नहीं। ऐसी सत्ता, ज्ञान, आनन्द सत्तारूप द्रव्य, उसे पर से (भिन्न) अनुभव कर, मुक्ति अपने में लीन होकर **मोक्षमार्ग को साधकर...** देखो! यह मोक्ष का उपाय साधकर **शाश्वत निराकुल सुख का भोक्ता होता है।** शाश्वत् निराकुल, आकुलता बिना आनन्द का भोक्ता होता है। लो! समझ में आया?

कौन सी दो चीज़ है, दो में कहाँ से हटना और कहाँ जाना और उसमें लीन होना, वही मोक्ष का मार्ग है। और मोक्ष के मार्ग से मोक्ष पूर्ण निराकुल आनन्द की प्राप्ति होती है। आहाहा! समझ में आया? **मोक्षमार्ग को साधकर शाश्वत निराकुल सुख का भोक्ता होता है।** वह शाश्वत् सुख प्रगट हुआ तो अन्दर शाश्वत् अपना सुख, उसका अनुभव पूर्ण हुआ। पूर्ण हुआ और वैसा का वैसा अनादि (रहेगा), सादि से उत्पन्न हुआ सादि अनन्त काल फिर रहता है। सच्चा आनन्द प्रगट हुआ, अनन्त काल रहेगा। शाश्वत् में से आनन्द आया, शाश्वत् काल रहता है।

वह अपना चैतन्य पर से भिन्न, राग से भिन्न, गुण-गुणी का भी दृष्टि में भेद नहीं। गजब बात, भाई! समझ में आया? कहो, बेरियाजी! यह क्या करना, क्रमबद्ध में लोग उलझते हैं। यह क्रमबद्ध में करना क्या? परन्तु क्रमबद्ध में करना, 'मैं करता हूँ'—ऐसी बुद्धि का नाश होता है। क्रमबद्ध में 'मैं करता हूँ'—ऐसी बुद्धि का नाश होता है और अकर्ताबुद्धि उत्पन्न होती है, उसका नाम क्रमबद्ध माना का जाता है। ऐसा नहीं होता है, होता है, होता है परन्तु होता है किसमें (तो) तू कौन है? समझ में आया?

क्रमबद्ध में लोग कहे, स्वच्छन्दी बना देते हैं। ऐसा मानते हैं। स्वच्छन्द बने तो समझे नहीं। रोक सकता है, क्या? होता है, ऐसी उसकी दृष्टि नहीं रहती। उसे रोका जा सकता है, इसका अर्थ यह है। क्रमबद्ध माननेवाले की क्रम होता है, उस पर दृष्टि नहीं

होती। पर्याय होती है, अपनी अर्थपर्याय होती है, पर में होती है और अपने में होती है। होती है परन्तु क्रमबद्ध माननेवाले की दृष्टि, क्रमबद्ध माना कब कहा जाता है कि मैं पर का करूँ और राग का करूँ, ऐसी बुद्धि का नाश हो जाये। इसका अर्थ यह कि ज्ञातादृष्टा हो जाये, तब उसने क्रमबद्ध माना, जाना कहलाये। माना है कहाँ? ऐसे क्रमबद्ध... क्रमबद्ध करे तो कहाँ से चले? समझ में आया?

क्रमबद्ध का अर्थ—होता है। होता है, उसमें करना कहाँ से आया? कर्तृत्वबुद्धि अनादि से उसे बनाऊँ... बनाऊँ... बनाऊँ... बनाऊँ... अपने में बना, पर में बना, इस बुद्धि का प्रवेश ज्ञायक के ऊपर होता है। ज्ञायक के ऊपर प्रवेश होता है। बनाऊँ, यह बुद्धि छूट जाती है। है उसका ज्ञातादृष्टा रह जाता है। यह इसका नाम क्रमबद्ध जाना और माना कहलाता है। नहीं तो माना नहीं कहलाता। करूँ... करूँ - ऐसी बुद्धि है और क्रमबद्ध माने, यह कहाँ से आया? मैं ऐसा करूँ, मैं ऐसा करूँ, क्रमबद्ध तो होता है, उसमें कर्तृत्व—'मैं करूँ'—ऐसी बुद्धि का अभाव और अकर्तापने की बुद्धि का उत्पाद। अकर्तापने की उत्पत्ति का उत्पाद ज्ञातादृष्टा के आश्रय से होता है। भारी सूक्ष्म बात! वस्तु की खबर नहीं, पदार्थ क्या है?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसकी है। समकित (उसे है जिसे) कर्तृत्व नहीं। उसे क्रमबद्ध की श्रद्धा है। अज्ञानी को श्रद्धा कहाँ है? करूँ... करूँ... तो उसकी बुद्धि है। सेठी! क्रमबद्ध की मान्यता किसे होती है? क्रमसर होता है। क्रमसर होता है, तो क्रमसर होता है तो करूँ - ऐसी बुद्धि कहाँ से आयी? समाधान तो होता नहीं उसे। मैं ऐसा करूँ, मैं ऐसा करूँ, इसमें ऐसा कर दूँ, उससे मुझमें ऐसा आ जाये। ऐसी बुद्धि तो पड़ी है। उसमें क्रमबद्ध कहाँ आया? आस्था तो है नहीं, मानता तो नहीं। समझ में आया? प्रवीणभाई! भारी गड़बड़ चली है।

क्रमबद्ध शब्द नहीं था, तब तक मूढ़पना था। क्रमबद्ध आया तो वापस, अरे! यह क्या? होता है, होता है तो होने दो न? परन्तु होने देना किसे? पर को होने देना तुम्हारे अधिकार की बात है या पर का रोक दे? पर की पर्याय तो होती है, चलती जाती है। तुम्हारे से टिकती है और तुम्हारे से बनती है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : और अपने में भी, बने तो बनने दो, उसका अर्थ क्या? राग आता है तो, आता है तो उसकी दृष्टि कहाँ है? राग के ऊपर नहीं, पर्याय के ऊपर नहीं, पर के ऊपर नहीं, गुणभेद के ऊपर नहीं। अखण्ड ज्ञायकमूर्ति आत्मा है, उस ओर सावधानी से जुटकर पर का अकर्ता हुआ, तब उसकी क्रमबद्ध की मान्यता सच्ची हुई। वह तो ज्ञातादृष्टा हो गया। अमरचन्दभाई! आहाहा! बात ऐसी, वस्तुस्थिति ऐसी है। समझ में आया? निजात्मद्रव्य में लीन होकर कहो या क्रम में कर्तृत्वबुद्धि छूटकर अपना ज्ञातास्वभाव पूरा ज्ञान का भण्डार, पूरी जानने की क्रिया, वह ज्ञान की भी क्रमसर होनेवाली पर्याय, ज्ञानगुण की भी क्रमसर होनेवाली पर्याय, राग की भी क्रमसर होनेवाली पर्याय, पर की भी क्रमसर होनेवाली पर्याय, कर्तृत्वबुद्धि छूट गयी। मैं ज्ञानपर्याय करूँ, ऐसा भी विकल्प नहीं। राग को करूँ, ऐसा तो नहीं परन्तु मैं पर्याय को करूँ, ऐसी बुद्धि छूट गयी। ज्ञातादृष्टि की और दृष्टि झुक गयी, पर्याय निर्मल होती है। बस! धर्मचन्दजी! समझ में आया? गड़बड़ बहुत ही है तो बहुत ही स्पष्टीकरण करना पड़ता है। हें? आहाहा! अरे, भगवान! तेरी वास्तविक चीज़ का पता जहाँ आया, वहाँ तू गड़बड़ करता है! हाँ... अच्छा! हमारे मीठालालजी हैं न! मीठा! मीठालाल है मीठा! भाई! तेरा स्वरूप तो, यहाँ सर्वज्ञता सिद्ध करना है।

सर्वज्ञ है, किसका करते हैं? किसका करते हैं, किसका रोकते हैं? जानते हैं। वैसा ही तू है। सर्वज्ञस्वभाव जाननेवाला-देखनेवाला तू है, बस इतना ही यहाँ सिद्ध करना है। जानना-देखना किसे? सबको। किसमें रहकर? अपने में रहकर। पर में रहकर नहीं, अपनी ज्ञानपर्याय में रहकर और वह पर्याय द्रव्य के आश्रय से उत्पन्न हुई, उसका जानना-देखना रह गया। सर्वज्ञ पूर्ण जानते हैं, ज्ञानी अल्प जानते हैं, परन्तु जानना-देखना दोनों का एक समान है। समझ में आया? यहाँ राग आता है। तो भी जानता है। भगवान को राग नहीं तो नहीं जानते इतना। परन्तु जानना-देखना, यह क्रमबद्ध में सिद्ध करना है। आहाहा! समझ में आया या नहीं? कान्तिभाई! क्या है यह सब? सुधरे हुए लोग वापस यह सब गड़बड़ करे, क्रमबद्ध हो क्रमबद्ध। क्रमबद्ध क्रमबद्ध का अर्थ क्या? क्रमबद्ध तो बड़ी महान महत् चीज़ है।

अकेला ज्ञानस्वभाव सिद्ध किया। मैं ज्ञानस्वभाव हूँ, इतना निर्णय हुआ (तो) जानने की पर्याय उत्पन्न होती है बस! राग लाना है या राग छोड़ना है या राग करना है, यह कुछ नहीं रहता, इसका नाम क्रमबद्ध को माना कहा जाता है। ऐसे शब्द बोलने से क्या करे?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह वीतरागता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। निर्मल पर्याय को करूँ, ऐसे विकल्प को भी स्थान नहीं है। समझ में आया? **निजात्मद्रव्य में लीन होकर, मोक्षमार्ग को साधकर...** बस, ऐसा जहाँ ज्ञातादृष्टा हुआ, कर्तापना छूट गया, परम सत्स्वभाव की एकाग्रता होते-होते राग छूट जायेगा, केवलज्ञान हो जायेगा। शाश्वत् सुख का भोक्ता हो जायेगा। समझ में आया? परन्तु जिसे करना है न, अथवा करना छोड़ना है, करना रोकना है, उसे यह बात नहीं जँचती। सेठी! करना और करना छोड़ना, दोनों आत्मा में नहीं है।

पर का करना और पर का छोड़ना, राग को करना और राग को छोड़ना, दोनों आत्मा में नहीं है। ऐसी दृष्टि हो तो क्रमबद्ध उसे बैठती है, नहीं तो बैठती नहीं। झाँझरीजी!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : किसका करना? राग का करना है? राग का छोड़ना है? जानना-देखना है।

मुमुक्षु : राग आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आता है, करना नहीं। आता है और दूसरे तो परज्ञेयरूप से जानना है। सूक्ष्म विषय है। आता है तो आओ, उसे तो आत्मा जानता है। आया, जैसे पर है, वैसे आया, देखा तो राग भिन्न जाना, राग को करना नहीं, राग को छोड़ना नहीं। स्वभाव में कहाँ है राग को करना और छोड़ना। ऐसी दृष्टि हो तो क्रमबद्ध माना कहा जाये, नहीं तो बात करते हैं। है? क्या? धोखाबाजी करते हैं। ठीक कहते हैं। अपनी

बात में ठगाता है, अपने को ठगता, कर्तव्य के नाम से। बहुत सूक्ष्म बात है।

सर्वज्ञ भगवान किसे.... यह तो अपने आ गया, **'दिट्ठी जहेव णाणं'** यह दृष्टि देखती है, क्या करे दृष्टि ? क्या करे ? देखे ! ऐसा है, खड्डा पड़ा, निकला, ढ़ेर हुआ, आँख खड्डा करती है ? ढ़ेर करती है ? आत्मा क्या राग बनाता है ? आत्मा राग छोड़े, यह वस्तु में नहीं है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : राग हो तो हो, जानता है। मेरे स्वभाव में राग है ही नहीं। मैं तो राग का, राग का ज्ञान मेरे सन्मुख होकर मुझसे पर्याय में उसमें मुझे जानता हूँ, उसमें राग व्यवहार से जानने में आ जाता है। आहाहा ! ऐसा क्रमबद्ध का अकर्तापना, ज्ञातापना उसकी सिद्धि फल है। क्रमबद्ध का फल यह है। यह फल आये बिना क्रमबद्ध माने, उसने माना ही नहीं। समझे ? सौगन्धचन्दजी ! यहाँ चक्की के पड़ नहीं हिलाना। रोटी-बोटी बनाना हो तो लाओ चक्की के पाट हिलाओ, रोटी बनाओ, ऐसा लाओ, अमुक करो, समझ में आया या नहीं ?

यह तो रजकण-रजकण परद्रव्य है। अपनी पर्याय से आते-जाते हैं, बदलते हैं, टूटते हैं। टूटते हैं, उसमें आत्मा का अधिकार क्या है ? और अपनी पर्याय में दोष का राग आया तो क्रमबद्धवाले की दृष्टि राग पर है भी नहीं तो पर्यायबुद्धि गयी, वहाँ कर्ताबुद्धि हुई, क्रमबद्ध की बुद्धि हुई (नहीं)। मैं ज्ञायक हूँ, ज्ञायक स्व-परप्रकाशक चैतन्य हूँ, अपने को जानने में पर का जानना अपने को जानने में आ जाता है। पर का जानना अलग करना पड़े, ऐसा भी नहीं है। समझ में आया ?

देखो ! उसमें थोड़ा यह आया, क्रमबद्ध का भी। उसमें लीन होना है। सावधान ज्ञान की पर्याय द्रव्य की ओर ढली है, ढली कहते हैं न ? बस ! ढली, वह ढली। क्रमबद्ध का निर्णय करनेवाले की दृष्टि ज्ञान-ज्ञायक पर ढली। ढली, गयी, झुकी, बस हो गया। फिर राग आता है तो जानता है। परवस्तु होती है तो जानता है। इस प्रकार अपनी पर्याय हुई, उसे भी जानता है। मैं कर्ता हूँ, ऐसी बुद्धि है ही नहीं। समझ में आया ? बात बहुत सूक्ष्म है। लो ! १२६-१२७ हो गयी।

इस प्रकार अजीव पदार्थ का व्याख्यान समाप्त हुआ। इसका अर्थ जीव और अजीव दो का व्याख्यान। कल जीव का व्याख्यान पूरा हुआ, यह अजीव का, दोनों का पूरा हुआ। पहले जीव का कहा गया है। पहले भिन्न।

दो मूलपदार्थ कहे गये। कौन? दो। जीव और अजीव। **अब (उनके) संयोगपरिणाम से निष्पन्न होनेवाले...** संयोग परिणाम से निष्पन्न होनेवाले **अन्य सात पदार्थों के उपोद्घात के हेतु...** देखो! पुण्य-पाप अथवा आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष। आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष तथा पुण्य और पाप। ये सात। ये सात, इनके संयोग परिणाम से, भाषा ऐसी है। क्या है? जीव और अजीव संयोग परिणाम से, संयोग की अस्ति में अपने से पुण्य, पाप, आस्रव, बन्ध और संयोग के अभाव में अपने से संवर, निर्जरा और मोक्ष। इतनी भी अपेक्षा आयी तो संयोग परिणाम से निष्पन्न सात पदार्थ कहे गये हैं। मोक्ष भी संयोग परिणाम से निष्पन्न होनेवाले सात पदार्थ। समझ में आया?

अपनी पर्याय अपने में, द्रव्य-मोक्ष के परिणाम जड़ में। संवर के परिणाम अपने में और द्रव्य संवर के परिणाम परमाणु में। ये दो द्रव्य, उनकी सात पर्यायें। सात पर्याय में—सात पर्याय आत्मा की है और सात जड़ की है। समझ में आया? **(उनके) संयोगपरिणाम से निष्पन्न...** होनेवाले **अन्य सात पदार्थों के उपोद्घात...** उनका उपोद्घात करते हैं। समझ गये? यह कहेंगे। सूचनिका-सूचन, सूचन। **जीवकर्म और पुद्गलकर्म के चक्र का वर्णन किया जाता है।** जीवकर्म अर्थात् जीव का कार्य, और पुद्गल का चक्र वर्णन किया जाता है। पर्याय की बात करते हैं न! जरा संवर, निर्जरा फिर कहेंगे। सूचन। यह सूचन किया गया है। यह अब कहेंगे। उपोद्घात करते हैं न, इस पुस्तक में यह कहा गया है। ऐसी पहले सूचना करते हैं। प्रस्तावना करे न, क्या करे? प्रस्तावना।

गाथा में संवर, निर्जरा, मोक्ष नहीं ले। गाथा में तो एक दूसरे के निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध से परिभ्रमण करता है, ऐसा लेंगे। फिर लेंगे। स्वाधीन और निधन। अनादि-अनन्त अभव्य के संसार, भव्य के संसार अनादि सान्त। बस इतना।

गाथा - १२८-१३०

उक्तौ मूलपदार्थौं । अथ संयोगपरिणामनिर्वृत्तेतरसप्तपदार्थानामुपोद्घातार्थं जीवपुदगल-कर्मचक्रमनुवर्ण्यते ।

खो खलु संसारत्थो जीवो तत्तो दु होदि परिणामो ।
परिणामादो कम्मं कम्मादो होदि गदिसु गदी ।। १२८ ।।
गदिमधिगदस्स देहो देहादो इंदियाणि जायंते ।
तेहिं दु विसयग्गहणं तत्तो रागो व दोसो वा ।। १२९ ।।
जायदि जीवस्सेवं भावो संसारचक्कवालम्मि ।
इदि जिणवरेहिं भणिदो अणादिणिधणो सणिधणो वा ।। १३० ।।

यः खलु संसारस्थो जीवस्ततस्तु भवति परिणामः।
परिणामत्कर्म कर्मणो भवति गतिषु गतिः।। १२८ ।।
गतिमधिगतस्य देहो देहादिन्द्रियाणि जायन्ते।
तैस्तु विषयग्रहणं ततो रागो वा द्वेषो वा ।। १२९ ।।
जायते जीवस्यैवं भावः संसारचक्रवाले।
इति जिनवरैर्भणितोऽनादिनिधनः सनिधनो वा।। १३० ।।

इह हि संसारिणो जीवादनादिबन्धनोपाधिवशेन स्निग्धः परिणामो भवति । परिणामामात्पुनः पुद्गलपरिणामात्मकं कर्म । कर्मणो नारकादिगतिषु गतिः । गत्यधिगमनाद्देहः । देहादिन्द्रियाणि । इन्द्रियेभ्यो विषयग्रहणम् । विषयग्रहणाद्रागद्वेषौ । रागद्वेषाभ्यां पुनः स्निग्धः परिणामः । परिणामात्पुनः पुद्गलपरिणामात्मकं कर्म । कर्मणः पुनर्नारकादिगतिषु गतिः । गत्यधिगमनात्पुनर्देहः । देहात्पुन-रिन्द्रियाणि । इन्द्रियेभ्यः पुनर्विषयग्रहणम् । विषयग्रहणात्पुना रागद्वेषौ । रागद्वेषाभ्यां पुनरपि स्निग्धः परिणामः। एवमिदमन्योन्यकार्यकारणभूतजीवपुद्गल-परिणामात्मकं कर्मजालं संसारचक्रे जीवस्या-नाद्यनिधनं अनादिसनिधनं वा चक्रवत्परिवर्तते । तदत्र पुद्गलपरिणामनिमित्तो जीवपरिणामो जीव-परिणामनिमित्तः पुद्गलपरिणामश्च वक्ष्यमाण-पदार्थबीजत्वेन संप्रधारणीय इति ।। १२८-१३० ।।

संसार तिष्ठें जीव जो रागादि युत होते रहें।
रागादि से हो कर्म आस्रव करम से गति-गमन हो ।।१२८।।

गति में सदा हो प्राप्त तन-तन इन्द्रियों से सहित हो।
इन्द्रियों से विषयग्रहण अर विषय से फिर राग हो।।१२९।।
रागादि से भवचक्र में प्राणी सदा भ्रमते रहें।
हैं अनादि अनन्त अथवा, सनिधन जिनवर कहे।।१३०।।

अन्वयार्थ :— [यः] जो [खलु] वास्तव में [संसारस्थः जीवः] संसारस्थित जीव है। [ततः तु परिणामः भवति] उससे परिणाम होता है। (अर्थात् उसे स्निग्ध परिणाम होता है), [परिणामात् कर्म] परिणाम से कर्म और [कर्मणः] कर्म से [गतिषु गतिः भवति] गतियों में गमन होता है।

[गतिम् अधिगतस्य देहः] गति प्राप्त को देह होती है, [देहात् इन्द्रियाणि जायंते] देह से इन्द्रियाँ होती हैं, [तैः तु विषयग्रहणं] इन्द्रियों से विषयग्रहण और [ततः रागः वा द्वेषः वा] विषयग्रहण से राग अथवा द्वेष होता है।

[एवं भावः] ऐसे भाव, [संसारचक्रवाले] संसारचक्र में [जीवस्य] जीव को [अनादिनिधनः सनिधनः वा] अनादि-अनन्त अथवा अनादि-सान्त [जायते] होते रहते हैं—[इति जिनवरैः भणितः] ऐसा जिनवरों ने कहा है।

टीका:—इस लोक में संसारी जीव से अनादि बन्धनरूप उपाधि के वश स्निग्ध परिणाम होता है; परिणाम से पुद्गलपरिणामात्मक कर्म; कर्म से नरकादि गतियों में गमन; गति की प्राप्ति से देह; देह से इन्द्रियाँ; इन्द्रियों से विषयग्रहण; विषयग्रहण से राग-द्वेष; राग-द्वेष से फिर स्निग्ध परिणाम; परिणाम से फिर पुद्गलपरिणामात्मक कर्म; कर्म से फिर नरकादि गतियों में गमन; गति की प्राप्ति से फिर देह; देह से फिर इन्द्रियाँ; इन्द्रियों से फिर विषयग्रहण; विषयग्रहण से फिर राग-द्वेष; राग-द्वेष से फिर पुनः स्निग्ध परिणाम। इस प्रकार वह अन्योन्य [१]कार्यकारणभूत जीवपरिणामात्मक और पुद्गलपरिणामात्मक कर्मजाल संसारचक्र में जीव को अनादि-अनन्तरूप से अथवा अनादि-सान्तरूप से चक्र की भाँति पुनः-पुनः होते रहते हैं।

---

१. कार्य अर्थात् नैमित्तिक और कारण अर्थात् निमित्त। [जीवपरिणामात्मक कर्म और पुद्गलपरिणामात्मक कर्म परस्पर कार्यकारणभूत अर्थात् नैमित्तिक-निमित्तभूत हैं। वे कर्म किसी जीव को अनादि-अनन्त और किसी को अनादि-सान्त होते हैं।]

इस प्रकार यहाँ (ऐसा कहा कि), पुद्गलपरिणाम जिनका निमित्त है, ऐसे जीवपरिणाम और जीवपरिणाम जिनका निमित्त है, ऐसे पुद्गलपरिणाम अब आगे कहे जानेवाले (पुण्यादि सात) पदार्थों के बीजरूप अवधारना।

भावार्थः—जीव और पुद्गल को परस्पर निमित्त-नैमित्तिकरूप से परिणाम होता है। उस परिणाम के कारण पुण्यादि पदार्थ उत्पन्न होते हैं, जिनका वर्णन अगली गाथाओं में किया जायेगा।

प्रश्नः—पुण्यादि सात पदार्थों का प्रयोजन जीव और अजीव इन दो से ही पूरा हो जाता है, क्योंकि वे जीव और अजीव की ही पर्यायें हैं। तो फिर वे सात पदार्थ किसलिए कहे जा रहे हैं।

उत्तरः—भव्यों को हेय तत्त्व और उपादेय तत्त्व (अर्थात् हेय और उपादेय तत्त्वों का स्वरूप तथा उनके कारण) दर्शाने के हेतु उनका कथन है। दुःख, वह हेय तत्त्व है, उसका कारण संसार है, संसार का कारण आस्त्रव और बन्ध दो हैं (अथवा विस्तारपूर्वक कहे तो पुण्य, पाप, आस्त्रव और बन्ध चार हैं) और उनका कारण मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र है। सुख, वह उपादेय तत्त्व है, उसका कारण मोक्ष है, मोक्ष का कारण संवर और निर्जरा है और उनका कारण सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है। यह प्रयोजनभूत बात भव्य जीवों को प्रगटरूप से दर्शाने के हेतु पुण्यादि [१]सात पदार्थों का कथन है॥ १२८-१३०॥

---

१. अज्ञानी और ज्ञानी जीव पुण्यादि सात पदार्थों में से किन-किन पदार्थों के कर्ता हैं, तत्सम्बन्धी आचार्यवर श्री जयसेनाचार्यदेवकृत तात्पर्यवृत्ति नाम की टीका में निम्नोक्तानुसार वर्णन है :—

अज्ञानी जीव निर्विकार स्वसंवेदन के अभाव के कारण पापपदार्थ का तथा आस्त्रव-बन्धपदार्थों का कर्ता होता है; कदाचित् मन्द मिथ्यात्व के उदय से, देखे हुए—सुने हुए—अनुभव किए हुए भोगों की आकांक्षारूप निदानबन्ध द्वारा, भविष्य काल में पाप का अनुबन्ध करनेवाले पुण्यपदार्थ का भी कर्ता होता है। जो ज्ञानी जीव है वह, निर्विकार-आत्मतत्त्वविषयक रुचि, तद्विषयक ज्ञप्ति और तद्विषयक निश्चल अनुभूतिरूप अभेदरत्नत्रयपरिणाम द्वारा, संवर-निर्जरा-मोक्षपदार्थों का कर्ता होता है; और जीव जब

गाथा - १२८ से १३० पर प्रवचन

खो खलु संसारत्थो जीवो तत्तो दु होदि परिणामो।
परिणामादो कम्मं कम्मादो होदि गदिसु गदी।।१२८।।
गदिमधिगदस्स देहो देहादो इंदियाणि जायंते।
तेहिं दु विसयग्गहणं तत्तो रागो व दोसो वा।।१२९।।
जायदि जीवस्सेवं भावो संसारचक्कवालम्मि।
इदि जिणवरेहिं भणिदो अणादिणिधणो सणिधणो वा।।१३०।।

यहाँ तो यहाँ से शब्द उठाया है। 'संसारत्व जीव' पश्चात् टीकाकार जरा अधिक लेंगे। अनादि बन्ध के वश, इतना थोड़ा डालेंगे। देखो! यह निमित्त-निमित्त सम्बन्ध बतलाते हैं, हों! यहाँ लोग बहुत ही गड़बड़ करते हैं। देखो! पंचास्तिकाय में ऐसा लिखा है, '**कम्मादो हो हि गदिसु गदी**' लो! भव्य और अभव्य दोनों की बात।

टीका:-इस लोक में संसारी जीव से... जीव से स्निग्ध परिणाम होते हैं, ऐसा

पूर्वोक्त निश्चयरत्नत्रय में स्थिर नहीं रह सकता, तब निर्दोषपरमात्मस्वरूप अर्हंत-सिद्धों की तथा उनका (निर्दोष परमात्मा का) आराधन करनेवाले आचार्य-उपाध्याय-साधुओं की निर्भर असाधारण भक्तिरूप ऐसा जो संसारविच्छेद के कारणभूत, परम्परा से मुक्तिकारणभूत, तीर्थंकरप्रकृति आदि पुण्य का अनुबन्ध करनेवाला विशिष्ट पुण्य उसे अनीहितवृत्ति से निदानरहित परिणाम से करता है। इस प्रकार अज्ञानी जीव पापादि चार पदार्थों का कर्ता है और ज्ञानी संवरादि तीन पदार्थों का कर्ता है।

[यहाँ ज्ञानी के विशिष्ट पुण्य को संसारविच्छेद के कारणभूत कहा वहाँ ऐसा समझना कि—वास्तव में तो सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र ही संसारविच्छेद के कारणभूत हैं, परन्तु जब वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र अपूर्णदशा में होता है, तब उसके साथ अनिच्छितवृत्ति से वर्तते हुए विशिष्ट पुण्य में संसारविच्छेद के कारणपने का आरोप किया जाता है। वह आरोप भी वास्तविक कारण के—सम्यग्दर्शनादि के—अस्तित्व में ही हो सकता है।]

कहना है। समझ में आया? पाठ में है न, '**संसार जीवो तदो कोइ परिणामो**' पहला पद है। संसारी जीव को परिणाम होते हैं। कैसे होते हैं, यह स्पष्टीकरण किया कि **संसारी जीव से अनादि बन्धनरूप उपाधि के वश...** इतने शब्द लिये। कर्म से नहीं, कर्म के वश। हाँ... वे उपाधि के वश होते हैं। उपाधि तो पर है। पर के वश होता है। कर्म से नहीं परन्तु उपाधि के वश होता है। तो परिणाम स्निग्ध राग-द्वेष होते हैं। ऐसा बताया है।

पाठ ऐसा है न, '**ततो दु होदि परिणामो**' संसार में जीव रहा तो परिणाम होते हैं। तो परिणाम की व्याख्या की, उपाधि कर्म, कर्म की उपाधि के वश होकर। कर्म जड़ है, उपाधि परवस्तु। उसके वश होकर, जीव में स्निग्धता मिथ्यात्व राग-द्वेषभाव आत्मा करता है।

मुमुक्षु : स्निग्ध अर्थात्?

पूज्य गुरुदेवश्री : स्निग्ध अर्थात् चिकनाईवाले। राग-द्वेष मिथ्यात्व। मिथ्यात्व और राग-द्वेष स्निग्धता। वे चिकने भाव हैं। बन्ध का कारण बतलाना है न? **स्निग्ध परिणाम होता है।**

स्निग्ध अर्थात् मिथ्यात्व और राग-द्वेष। **उपाधि के वश...** इतना लिया। स्निग्ध परिणाम चिकने राग-द्वेष मिथ्यात्व होते हैं। वश लिया। उपाधि के वश लिया, हों! **परिणाम से पुद्गलपरिणामात्मक कर्म,...** यह निमित्त कहते हैं, अब। वहाँ निमित्त-निमित्त सम्बन्ध बताते हैं, वहाँ आगे की देखो! इस प्रकार से होते हैं, इस प्रकार से होते हैं। यह तो यह है तो वहाँ उसके कारण से होते हैं, उसका निमित्त-निमित्त सम्बन्ध बताते हैं। व्यवहार।

मुमुक्षु : व्यवहार-विभावपरिणति किसकी?

पूज्य गुरुदेवश्री : जीव की। जीव के विभावपरिणाम का निमित्त पाकर पुद्गल स्वयं से कर्मरूप होता है। पहले कर्म लेते हैं। **परिणाम से पुद्गलपरिणामात्मक कर्म,...** पुद्गल परिणामस्वरूप आठ कर्म। वह पुद्गल परिणामस्वरूप कर्म है, वह आत्मा ने किये नहीं। आत्मा ने तो अपने स्निग्ध परिणाम किये—मिथ्यात्व और राग-

द्वेष बस, इतना। देखो! परिणाम होते हैं, **परिणाम से पुद्गलपरिणामात्मक कर्म,...** उससे अर्थात् निमित्त से पुद्गल परिणामस्वरूप कर्म है। पुद्गल परिणामस्वरूप कर्म है, उसमें परिणाम निमित्त पड़े। समझ में आया?

इन परिणाम से अर्थात् निमित्त से, ऐसा लेना। निमित्त उसमें वहाँ आठ कर्म होने की पर्याय की योग्यता से पुद्गल परिणाम का कार्य जड़ में होता है। यह तो परिणाम कहे न निमित्त से। परिणाम कहो या जीव के मिथ्यात्व और राग-द्वेष निमित्त और वहाँ पुद्गल के परिणामरूपी कार्य जड़ में नैमित्तिक, जड़ के कारण से वहाँ हुआ। इस कारण से नहीं। वह तो निमित्त है। समझ में आया? नैमित्तिक जड़ की अवस्था, उपादान उसका। वहाँ राग का उपादान जीव, मिथ्यात्व का उपादान जीव, निमित्त पर को वह। समझ में आया? **परिणाम से पुद्गलपरिणामात्मक कर्म,...** सब यह बात ले!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यहाँ बात यह कहते हैं, निमित्त-निमित्त सम्बन्ध दो के संयोगपरिणाम से ऐसा होता है, यह बताते हैं। कर्म के कारण परिणाम है और परिणाम के कारण कर्म, यह तो पहले से निषेध किया। अलग तो बता दिया।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वतन्त्र है। बताया न! मिथ्यात्व, राग-द्वेष होने में स्वतन्त्र जीव है और कर्म होने में पुद्गल स्वतन्त्र है। कर्म होने की पर्याय में पुद्गल स्वतन्त्र है और राग-द्वेष किये तो कर्म होना पड़े, ऐसा नहीं। आहाहा! गजब बात, भाई!

मुमुक्षु : निमित्त-नैमित्तिक।

पूज्य गुरुदेवश्री : सम्बन्ध बस। बस इतना। पृथक्-पृथक् स्वयं अपनी पर्याय में निमित्त-निमित्त कैसा होता है, यह बताया है। लो! आया न, अब आयेगा, देखो! **कर्म से नरकादि गतियों में गमन,...** यह तो निमित्त से कथन है। यह तो पहले आ गया। नरकगति में अपनी योग्यता से जाता है, यह तो पहले आ गया है। समझ में आया?

चार गति की उदयभाव की पर्याय अपने से अपने में है। कर्म के कारण उदयभाव

चार गति का है, ऐसा है नहीं। कहो, समझ में आया? यहाँ तो होता है, उसमें निमित्त कौन, इतना बतलाना है। कहीं कर्म नरकगति में ले जाता है, जड़? जड़ की पर्याय से जीव को नरकगति में जाना पड़े? बिल्कुल नहीं।

मुमुक्षु : पूर्व में भाव तो किये हैं न?

पूज्य गुरुदेवश्री : भाव तो वर्तमान है, पूर्व नहीं, वर्तमान। नरकगति में जाने का भाव है। पूर्व भाव कौन कहता है? वर्तमान में नरकगति की योग्यता उदय से अपने में है। तो चला जाता है, अपनी क्रिया से जाता है। नरकगति के उदय से काम नहीं। निमित्त है। समझ में आया? यह भगवान कर्म से नरकगति में कहते हैं और तुम इनकार करते हो? यहाँ तो निमित्त-निमित्त सम्बन्ध कहते हैं। नरक में कर्म परद्रव्य, आत्मा को अपनी पर्याय में खींचकर ले जाये? कर्म में ताकत है? अपनी शक्ति नरक में जाने की न हो और कर्म नरक में जाने की शक्ति बना दे, ऐसा नहीं होता। अपने में शक्ति है, तो नरकगति में क्या किया? अपने से ही जाता है। वह तो निमित्तमात्र भिन्न चीज़ है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : विरुद्ध ही है। अज्ञानी करता है या नहीं अनादि से? वह करता है या नहीं? कौन करता है? जड़। यह तो पहले आ गया।

मुमुक्षु : अज्ञान फँसा देता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अज्ञान अपना। कौन अज्ञान? दूसरे का अज्ञान है? उसका अज्ञान। अज्ञान कोई जड़ नहीं है। उसका बेभान उसे अज्ञान में फँसाता है? उसे भान नहीं। अपना अज्ञान है, किसी दूसरे का अज्ञान है? स्वयं से बँधता है, राग से।

मुमुक्षु : कठिन है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कठिन कुछ नहीं। सब सीधा सट्ट हो गया है अब तो। नये हों उन्हें जरा, सुना न हो उसे नया (लगे)।

मुमुक्षु : बालकों को पढ़ाते हो। आप पढ़ाते हो न।

पूज्य गुरुदेवश्री : बालकों को पढ़ाते हैं, यहाँ तो बूढ़ा कोई नहीं। सब बालक ही है। समझनेवाले विद्यार्थी हैं न, विद्यार्थी।

मुमुक्षु : सत्य, पवित्र अधिक है....

पूज्य गुरुदेवश्री : अधिक है, ऐसा कुछ नहीं। बहुत सरल है। आत्मा क्या है, आत्मा तो सरल है, सीधा है। यह रहा—उपस्थित है। कहो, समझ में आया? नरकादि गति, देखो! चारों गतियाँ ली न? कर्म से चार गति में जाता है, यह निमित्त से कथन लिया। किसी द्रव्य से किसी द्रव्य की पर्याय कभी भी तीन काल में... यह तो ऐसा चक्रभाल बतलाना है न? संसार चक्रभाल में, देखो! संसार के चक्र में निमित्त-निमित्त सम्बन्ध से क्या होता है, यह बतलाना है। समझ में आया?

कर्म से नरकादि नरक, मनुष्य, देव, स्वर्ग, निगोद। निगोदादि गति में गमन। यह सबमें लेना। समझ में आया? परद्रव्य निमित्तमात्र है। परद्रव्य से परद्रव्य में क्रिया तीन काल में नहीं होती। यह तो पहले सिद्ध किया। पर के परिणाम पर का कर्तृत्व है, ऐसा नहीं है। अज्ञान से भी अपने को भूलकर अपने परिणाम अज्ञान करे तो इस कारण से नरक में (जाये)। श्रेणिक राजा तो ज्ञानी थे। लो! समकिती थे। क्षायिक समकिती, तीर्थंकरगोत्र (बाँधा), वह भी अपनी गति की योग्यता से वहाँ जाते हैं। गति की योग्यता के परिणाम अपने स्वत:सिद्ध हैं। गति का उदयभाव अपने में है। गति-कर्म तो भिन्न है। इस कारण जाते हैं। यह तो निमित्त बतलाना है। समयसार में ऐसा है। सबमें आता है।

आवे, **नरकादि गतियों में गमन,...** लो! किससे? कर्म से। उसके ऊपर भार दे। कर्म से... अरे! सुन न, भाई! पहले ही बता दिया, बन्ध के वश, अपने वश अपने परिणाम है। क्या पर के वश परिणाम होते हैं? और **गति की प्राप्ति से देह,...** लो! गति हुई तो वहाँ देह मिलेगी, ऐसा कहते हैं। देह तो जड़ है। गति देह के कारण से उदय हुई है। गति है, वहाँ देह होगी। यह शरीर नहीं रहेगा, ऐसा बताते हैं। गति है अपनी पर्याय के कारण से मिली है और वहाँ देह जड़ आयी और परमाणु के पिण्ड की शरीररूप होने की योग्यता हुई।

मुमुक्षु : पर्याय में निमित्त-निमित्त।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रत्येक निमित्त-निमित्त सम्बन्ध बतलाना है। चक्र बतलाना है न? **देह से इन्द्रियाँ,...** देखो! देह मिली-इन्द्रियाँ; इन्द्रियों से विषय ग्रहण, विषय ग्रहण का अर्थ क्या? विषय ग्रहण कर सकता है? विषय के ऊपर लक्ष्य से यह है मेरा यह विषय, यह शब्द, यह रूप, यह गन्ध, यह रस, यह स्पर्श, शरीर के विषय का वहाँ ही लक्ष्य जायेगा।

इन्द्रियों से विषयग्रहण,... विषय का लक्ष्य करेगा। शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, **विषयग्रहण से राग-द्वेष,...** वहाँ राग-द्वेष ही है। यह ठीक है और यह अठीक है। ऐसे शब्द ठीक हैं और ऐसे शब्द अठीक हैं। ऐसा रूप ठीक है और ऐसे रूप अठीक हैं, ऐसी वाणी ठीक है। ऐसे **विषयग्रहण से राग-द्वेष,...** कहो, समझ में आया? इन **राग-द्वेष से फिर स्निग्ध परिणाम,...** मिथ्या परिणाम। वह भी परिणाम वे ही हुए। यह चक्र... संसार चक्र आलम्बी। आहाहा! **राग-द्वेष से फिर स्निग्ध परिणाम,...** ऐसा लिया है। देखो! कर्म से नहीं। यह राग-द्वेष, यह चिकने भाव हैं। **परिणाम से फिर पुद्गलपरिणामात्मक कर्म,...** ऐसा वापस चक्र आया। यह परिणाम निमित्त और नये कर्म स्वयं से बँधते हैं। **कर्म से फिर नरकादि गतियों में गमन,...** और चार गतियों में जाना। एक में से दूसरी में।

मुमुक्षु : चक्र में है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह चक्र में अनादि से पड़ा है। यह बताना है, निगोद से लेकर अनादि से, **गति की प्राप्ति से फिर देह,...** गति मिली तो वहाँ देह होगी ही। **देह से फिर इन्द्रियाँ,...** यहाँ इन्द्रियाँ कहा क्योंकि उसका लक्ष्य तो पर के ऊपर है न? इन्द्रियों से वापस विषय ग्रहण, शुभ-अशुभ... हों! भगवान की वाणी प्रतिमा भी विषय, भगवान भी विषय, हाँ! समवसरण में विराजमान भगवान भी इन्द्रिय का विषय है। वहाँ लक्ष्य जायेगा तो राग होगा। लक्ष्य यहाँ आत्मद्रव्य क्या है, वह तो खबर नहीं।

मुमुक्षु : आत्मा का शरीर में... कहाँ जाये?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ जाये? बाहर जाये। यह तो कहा न बाहर जाये। यह तो

कहते हैं। अन्दर में प्रवेश न करे तो कहाँ जाये? बाहर जाये। यह तो दूसरा सिद्ध हो गया। इन्द्रियों से वापस विषय (ग्रहण), स्त्री, कुटुम्ब का विषय हो या देव-गुरु-शास्त्र की वाणी की मूर्ति या भगवान साक्षात् हो, परन्तु इन इन्द्रियों से वह परद्रव्य देखने में आयेंगे। शुभ-अशुभराग होगा। समझ में आया?

विषयग्रहण से फिर राग-द्वेष, राग-द्वेष से फिर पुनः स्निग्ध परिणाम। लो! चक्र। **इस प्रकार वह अन्योन्य कार्यकारणभूत...** देखो! अन्योन्य कार्यकारणभूत, निमित्त, देखो! नीचे (फुटनोट) है। **कार्य अर्थात् नैमित्तिक और कारण अर्थात् निमित्त।** नीचे फुटनोट है। **जीव परिणामात्मक कर्म और पुद्गलपरिणामात्मक कर्म, जीव परिणामात्मक कर्म,...** जीव के राग-द्वेषरूप परिणामरूपी कार्य और पुद्गल के परिणामरूपी जड़ का कार्य, **परस्पर कार्यकारणभूत अर्थात् नैमित्तिक-निमित्तभूत हैं।** कार्य वह नैमित्तिक और कारण वह निमित्त, **भूत है,...** बस। **वे कर्म किसी जीव को अनादि-अनन्त और किसी को अनादि-सान्त होते हैं।** अब स्पष्टीकरण आयेगा। पाठ में है न, पाठ में।

अभव्य को अनादि अनन्त, भव्य को अनादि सान्त। स्वभाव के ऊपर दृष्टि करेगा, तब उसका स्वयं काम होगा। जब तक कर्म के ऊपर दृष्टि है, तब तक संसारचक्र (चालू रहेगा)। अभव्य को अनादि-अनन्त, भव्य को अनादि सान्त। स्वभाव पर दृष्टि करेगा, तब उसका स्वयं काम होगा। जब तक कर्म के ऊपर दृष्टि है, तब तक संसारचक्र चलेगा।

कार्यकारणभूत जीवपरिणामात्मक... जीव के परिणामस्वरूप और पुद्गल के परिणामस्वरूप **कर्मजाल....** कर्मजाल, देखो! जीव परिणामस्वरूप कर्म और पुद्गल परिणामस्वरूप कर्मजाल है। विकारी परिणाम भी कर्मजाल है, जड़ के परिणाम जड़ की जाल है। **संसारचक्र में जीव को अनादि-अनन्तरूप से...** ऐसे संसारचक्र में जीव को अनादि-अनन्त रूप से अभव्य, **अनादि-सान्तरूप से...** भव्य। **चक्र की भाँति...** चक्र की भाँति। चक्र, किसी का चक्र रुक जाता है, किसी का चक्र चालू ही रहता है, ऐसा का ऐसा। **पुनः-पुनः होते रहते हैं।** लो! **अनादि-सान्तरूप से चक्र की भाँति पुनः-पुनः होते रहते हैं।** भव्य को भी अनादि, जब तक अन्त न आवे, तब तक घूमा करता है।

अभव्य भी घूमता है। भगवान का-तीर्थंकर का आत्मा भी ऐसा का ऐसा अनादि से सान्त घूमा, है अनादि? संसारचक्र... समझ में आया?

देखो! इस कथन की शैली में निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध से कारण-कार्यभाव कहा है। समझ में आया? वह व्यवहारनय का सम्बन्ध बतलाया है। टोडरमलजी कहते हैं न, व्यवहारनय का लक्षण ऐसा है, एक कारण को दूसरे में कार्य बना दे। कारण-कार्य को एक-दूसरे को, एक भाव को दूसरे भाव में; इस प्रकार परस्पर लगा दे, उसका नाम व्यवहार। ऐसी श्रद्धा करता है, वह मिथ्यादृष्टि है। ज्ञान करना, परन्तु ऐसा श्रद्धान कर ले कि इस कारण से यह कार्य हुआ, इस कार्य में यह कारण पड़ा, ऐसे एक-दूसरे के कारण बतावे, निमित्त का ज्ञान कराने के लिये कहा है। समझ में आया?

व्यवहार आता है न भाई में! टोडरमल (जी)! वह तो व्यवहार अभूत, उसमें से निकालकर सम्बन्ध कहा है। निमित्त-निमित्त सम्बन्ध को ऐसा मान ले कि निमित्त से यहाँ होता है, वहाँ से यहाँ हुआ, ऐसा है ही नहीं, मात्र निमित्त की उपस्थिति ज्ञान कराने के लिये है। ऐसा मान ले कि उससे आत्मा की गति हुई और कर्म आत्मा को गति में ले जाता है। तो वह कारण-कार्य दूसरे को दूसरे में माना, यह मिथ्यात्व है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, कहाँ से सूझे? यह तो कोई कर्म के कारण यहाँ हो और वहाँ के कारण यहाँ हो कभी अपने में आने की फुर्सत मिले ही नहीं। यह तो अपने कारण से अपने में है, तो अपनी दृष्टि लगा दे, हट जाये विकार। कर्म भी बँधते नहीं, कर्म के कारण बँधते नहीं। समझ में आया? इतना स्पष्ट कर्म का स्पष्टीकरण उन्होंने किया, वह वस्तु की स्थिति बताने के लिये। व्यवहारनय ऐसा है कि पर को कारण-कार्य में मिलाकर कहता है। है या नहीं? उसे तो मिथ्यात्व होता है, यह उनको नहीं बैठता वर्तमान में। गड़बड़... अपनी श्रद्धा नहीं बैठती उन्हें। देखो!

व्यवहारनय स्वद्रव्य-परद्रव्य को और उनके भावों को तथा कारण-कार्य आदि में किसी को किसी में मिलाकर कथन करता है। इसलिए ऐसे श्रद्धा से मिथ्यात्व है। इसलिए उसका त्याग करना। उस श्रद्धा का त्याग करना। और निश्चयनय उसका यथार्थ

निरूपण करता है, ऐसा किसी का किसी में मिलाता नहीं है, इसलिए वह श्रद्धान सम्यक् होता है। इसलिए ऐसा श्रद्धान करना। निश्चय का श्रद्धान करना, व्यवहार के श्रद्धान में कारण-कार्य लगाकर उसका श्रद्धान छोड़ना। है ऐसा मानना, निमित्त है परन्तु उससे होता है, ऐसा श्रद्धान छोड़ना। २५५ से शुरु है। २५६ में पूरा होता है। बहुत सरस लिया है। यह तो सबमें आया है। शास्त्र की (अर्थ करने की) पद्धति है न उसमें, वाँचन करने की। उसमें आया है। शुरुआत में, शुरुआत में आया है। परद्रव्य का निरूपण। देखो! देखो! श्रद्धान छोड़कर, यह न? यह तो पहले से वहाँ से लिया है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : तुमको नहीं मिला था न! देखो! व्यवहारनय स्वद्रव्य-परद्रव्य को और उनके भावों को, कारण-कार्य में मिलाकर निरूपण करता है, इसलिए ऐसे श्रद्धान से मिथ्यात्व होता है। यह तो त्याग, यह तो अपने चलता था वह। वह तो निमित्त का ज्ञान कराने के लिये है। समय हो गया।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. ३०, गाथा-१२८-१३०

दिनांक - २५-०९-१९६४, भाद्र कृष्ण ४, शुक्रवार

यह पंचास्तिकाय के नौ पदार्थ का कथन चलता है। यह आया। देखो! १३० गाथा - टीका की यह अन्तिम तीन लाईनें हैं। **इस प्रकार यहाँ (ऐसा कहा कि), पुद्गलपरिणाम जिनका निमित्त है,...** किसका? जीव के परिणाम में। ऐसे जीव परिणाम। द्रव्य दो हैं। जीव और अजीव। दोनों के परस्पर निमित्त-निमित्त सम्बन्ध से सात परिणाम उत्पन्न होते हैं। समझ में आया?

इस प्रकार यहाँ ऐसा कहा है कि, आया? इसे नहीं आया है। **पुद्गलपरिणाम जिनका निमित्त है, ऐसे जीवपरिणाम...** उस जीव परिणाम में तो, पुण्य, पाप, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष, (ऐसी) सात पर्यायें आती हैं। और जीव परिणाम जिनका निमित्त है। पुद्गल के, **ऐसे पुद्गलपरिणाम...** उसमें सात पर्याय है। **अब आगे कहे जानेवाले (पुण्यादि सात) पदार्थों के बीजरूप अवधारना।** पारस्परिक परिणाम के सम्बन्ध उसके बीज उससे सात पर्याय उत्पन्न होती हैं। देखो इसका भावार्थ। इसका भावार्थ है।

जीव और पुद्गल को परस्पर निमित्त-नैमित्तिकरूप से... जब जीव के परिणाम निमित्त तो पुद्गल के परिणाम नैमित्तिक; पुद्गल के परिणाम निमित्त तो जीव के परिणाम नैमित्तिक **जीव और पुद्गल को परस्पर निमित्त-नैमित्तिकरूप से परिणाम होता है। उस परिणाम के कारण पुण्यादि पदार्थ उत्पन्न होते हैं,...** वे परिणाम ही पुण्यादि पदार्थ हैं। कहो, समझ में आया? क्या शोभालालभाई? समझ में नहीं आया? कहाँ गये? सेठ आये नहीं? सेठ न आवे न, सेठ को देरी लगती है।

जीव और जड़ दो पदार्थ द्रव्य है। परस्पर निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध में सात पर्याय जीव में और सात पर्याय पुद्गल में उत्पन्न होती है। कहो, समझ में आया? क्या कहा? फिर से, जीवद्रव्य और पुद्गलद्रव्य दो पदार्थ हैं, वस्तु। अब वस्तु में जीव के परिणाम में सात पर्याय उत्पन्न होती है। पुण्य परिणाम, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष। ये सात परिणाम में पुद्गलपरिणाम निमित्त है और पुद्गल के सात

परिणाम में—द्रव्यपुण्य, द्रव्यपाप, द्रव्यास्रव, द्रव्यसंवर, द्रव्यनिर्जरा, द्रव्यबन्ध और द्रव्यमोक्ष, उसमें पुद्गल के परिणाम में जीव के परिणाम निमित्त हैं। कहो, अब समझ में आया या नहीं? मांगीरामजी!

मुमुक्षु : निमित्त का कुछ चलता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : चलता नहीं, ऐसा कहाँ कहा? है। यदि अपने परिणाम होते हैं तो, सद्गुरु को निमित्त कहा जाता है। वह भी यहाँ तो पुण्य, पाप, आस्रव, बन्ध जो है, ये चार विकारी भाव, उनमें पुद्गल के वर्तमान परिणाम निमित्त है। विद्यमान। संवर, निर्जरा, मोक्ष में वे परिणाम अभावरूप निमित्त हैं। समझ में आया? पुण्य, पाप, आस्रव, बन्ध ये जीव में चार परिणाम होते हैं, वह विकार है। कर्म के उदय का निमित्त-वहाँ विद्यमान निमित्त है और यहाँ संवर, निर्जरा, मोक्ष अपनी पर्याय में अपने से होते हैं, तब कर्म के निमित्त का अभावरूप निमित्त।

मुमुक्षु : चार सद्भावरूप, तीन अभावरूप।

पूज्य गुरुदेवश्री : तीन अभावरूप। तीन में, अभावरूप। सूक्ष्म बात! आत्मा में सात परिणाम होते हैं। शुभभाव-अशुभभाव दोनों मिलकर आस्रव। अटकना बन्ध; संवर निर्मल पर्याय; निर्जरा विशेष शुद्ध पर्याय; मोक्ष पूर्ण शुद्ध पर्याय। यह सात परिणाम वह जीव में होते हैं। उसमें पुद्गल का निमित्त विद्यमान, शुभ-अशुभ, आस्रव और बन्ध, उसमें विद्यमान निमित्त है। चार, चार में। और संवर, निर्जरा, मोक्ष में निमित्त का अभाव। उसके अभावरूप निमित्त है। लो! समझ में आया?

द्रव्य अपने-अपने परिणाम का कर्ता है। निमित्त कहना, वह दूसरी कौन चीज़ उपस्थित है, उसका ज्ञान कराना है। सात परिणाम का कर्ता जीव। शुभ, अशुभ, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष, सात पर्याय का कर्ता आत्मा—जीव। और पुद्गलपरिणाम में द्रव्य आस्रव, द्रव्यबन्ध, द्रव्यपुण्य, द्रव्यपाप और द्रव्यसंवर, द्रव्यनिर्जरा, द्रव्यमोक्ष। उसके परिणाम को करनेवाला पुद्गल। अमरचन्दभाई! क्या है? देखो! यह नौ तत्त्व की बात चलती है। नौ पदार्थ लिखा है न? **नवपदार्थपूर्वक मोक्षमार्ग प्रपंचक वर्णन...** है। प्रपंच का अर्थ विस्तार। समझ में आया? १५४ गाथा से अपने लिया था। यह तो पहले नौ पदार्थ का बीच में से छोड़ दिया था। देखो भावार्थ।

जीव और पुद्गल को... पुद्गल अर्थात् यहाँ अकेले कर्म पुद्गल लेना। दूसरे पुद्गल को नहीं लेना। **जीव और पुद्गल को परस्पर...** परस्पर **निमित्त-नैमित्तिकरूप से परिणाम होता है।** निमित्त-नैमित्तिकरूप से परिणाम; कर्ता-कर्म से नहीं। जीव परिणाम कर्ता और पुद्गल में कार्य, पुद्गलपरिणाम कर्ता और जीव परिणाम में कार्य— ऐसा नहीं। कर्ता-कर्म भिन्न चीज़ है और निमित्त-नैमित्तिक भिन्न चीज़ है।

मुमुक्षु : परिणाम पर्याय।

पूज्य गुरुदेवश्री : परिणाम कहो या पर्याय कहो, इतनी खबर नहीं? परिणाम कहो, पर्याय कहो, अवस्था कहो, दशा कहो, वर्तमान भाव कहो, सबका एक अर्थ है। समझ में आया? यह तो अभी नौ तत्त्व की बात चलती है और नौ किसे कहते हैं? हें? वहाँ आगे अभी बाधामण्डल! बाधामण्डल अर्थात् क्या है? अभी जो नौ तत्त्व मूल बात! पहली साधारण। उसमें जीव और जड़ दो द्रव्य है, पदार्थ। उनके परिणाम, पर्याय, अवस्था, दशा सब एक अर्थ में है। जड़ में भी परिणाम होते हैं, चैतन्य में भी (परिणाम) होते हैं। क्योंकि पर्याय को यहाँ परिणाम कहा गया है। परिणाम को पर्याय और पर्याय को परिणाम कहो, वह एक ही बात है। भाव कहो, वर्तमान परिणाम कहो, पर्याय कहो, अवस्था कहो, सब एक ही बात है। तो जीव में, जीवद्रव्य है, वस्तु ध्रुव, उसमें चार परिणाम विकारी होते हैं। शुभ-अशुभ, आस्रव और बन्ध। (तथा) संवर, निर्जरा, मोक्ष अविकारी परिणाम होते हैं। सात। कर्म में सात होते हैं। यहाँ शुभभाव उसमें निमित्त हुआ तो द्रव्यपुण्य अथवा नया पुण्य आया। नया पुण्य आया, वह द्रव्यपुण्य, द्रव्यपाप, द्रव्य आस्रव - रजकण आते हैं, द्रव्यबन्ध और संवर, निर्जरा यहाँ आती है तो उसके कारण रजकण उदय में आये नहीं, रुक जाये अथवा आस्रव नहीं, उसे कहते हैं कि द्रव्यसंवर, द्रव्यनिर्जरा कर्म के रजकण खिर गये, वह द्रव्यनिर्जरा। पूर्णरूप से कर्म खिर गये, वह मोक्ष। यह सात पर्याय परिणाम पुद्गल में होते हैं। और सात परिणाम पर्याय जीव में होते हैं। परस्पर निमित्त-निमित्त सम्बन्ध; कर्ता-कर्म सम्बन्ध नहीं। समझ में आया?

जीव और पुद्गल को परस्पर... परस्पर। **निमित्त-नैमित्तिकरूप से परिणाम होता है। उस परिणाम के कारण...** पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्षपदार्थ उत्पन्न होते हैं। **उस परिणाम के कारण उत्पन्न...** अर्थात् कि परिणाम स्वयं ही पदार्थ है।

जिनका वर्णन आगे की गाथाओं में किया जायेगा। बाद में आयेगा। जीव-अजीव आये। अब पुण्य-पाप पदार्थ १३१ गाथा से शुरु होंगे।

अब जरा अन्दर जयसेनाचार्य की टीका में से प्रश्न लिये हैं। प्रश्न। कहो, सेठ! समझ में आया? लो! क्या समझ में आया (कहे) तो जवाब देना पड़ेगा। शोभालालभाई! जवाब देना पड़ेगा। सेठ! हाँ करने में भी जवाबदारी है न? दो पदार्थ हैं, द्रव्य—अनादि अनन्त। जीव और जड़। अभी यहाँ पुद्गल परमाणु की बात लेनी है न? द्रव्य है, तो पारस्परिक अपने परिणाम जीव में सात प्रकार के होते हैं, तब पुद्गलकर्म को निमित्त कहा जाता है और पुद्गल में सात परिणाम होते हैं। जड़ में जड़ के कारण से पर्याय (होती है), उसमें जीव के परिणाम को निमित्त कहा जाता है। कर्ता कर्म कोई नहीं।

मुमुक्षु : परस्पर उपकार करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : उपकार करे, यह कहाँ से आया? उपकार का अर्थ यह तो निमित्त है, उसका नाम उपकार। निमित्त है, उसका नाम उपकार कहा जाता है। उपकार कौन करे और अपकार कौन करे? कहो, समझ में आया? अब देखो! टोडरमलजी ने नौ पदार्थ और मोक्षमार्ग यहाँ से विशेष खास लिये हैं। कितनी ही बात अन्यत्र से ली है। उसमें प्रयोजनभूत नौ तत्त्व कहते हैं न? हाँ, प्रयोजनभूत शब्द यहाँ से लिया है। यह जयसेनाचार्य की टीका में से। प्रयोजनभूत ऐसा शब्द कहाँ से आया? यहाँ से लिया है, जयसेनाचार्य की टीका में से।

प्रश्नः-पुण्यादि सात पदार्थों का प्रयोजन जीव और अजीव इन दो से ही पूरा हो जाता है,... शिष्य का प्रश्न है। भगवान! पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष, ये सात पर्यायें। सात पर्याय कहो या पदार्थ कहो, अवस्था कहो, भाव कहो। समझ में आया? एक समय की पर्याय को पदार्थ भी कहते हैं। तद्अर्थ शब्द बोलते हैं, ऐसा वहाँ है न? वहाँ भाव है न भाव! संवर। यह शब्द था। संवर पर्याय है या नहीं? वस्तु है या नहीं? और सातों को पदार्थ कहते हैं। पदार्थ कोई द्रव्य को ही कहते हैं, ऐसा नहीं है। पर्याय को भी पदार्थ कहते हैं। नौ पदार्थ हैं या नहीं? सात तो पर्याय है। पर्याय को भी यहाँ पदार्थ कहा गया है। अनादि से चलता है। यह कोई नयी बात नहीं है। नौ पदार्थ हैं न? देखो, ऊपर। **नौ पदार्थ पूर्वक मोक्षमार्ग प्रपंच वर्णन।**

पुण्यादि सात पदार्थों का... देखो! शुभभाव भी पुण्यपदार्थ, अशुभभाव पापपदार्थ। दो होकर आस्रवपदार्थ, रुक जाना अबन्धस्वभावी, वहाँ राग में रुक जाये वह भावबन्धपदार्थ और शुद्धि का होना वह संवर पर्यायरूप पदार्थ। शुद्धि की वृद्धि होना, वह शुद्धरूप पर्यायरूप पदार्थ और पूर्ण शुद्धि होना, वह मोक्षरूप पदार्थ। समझ में आया? सम्प्रदाय में जन्मे परन्तु सम्प्रदाय क्या, वह खबर नहीं। शोभालालभाई! इन सेठियाओं को भी खबर नहीं, उनको भी खबर नहीं। इन सेठियाओं को तो सामने बैठानेवाले हैं। आओ... आओ... आओ...! सामने बैठो। (परन्तु) समझते क्या हैं? कुछ नहीं।

मुमुक्षु : समझने के लिये तो आगे बैठे।

पूज्य गुरुदेवश्री : आगे बैठे तो अभी तक क्या किया? दिगम्बरधर्म में जन्म लिया और चलती नहीं? समझ में आया? जीव और पुद्गल में सात पदार्थों का प्रयोजन। शिष्य पूछता है। जीव-अजीव दो से ही पूरा हो जाता है। दो द्रव्य से दूसरी चीज़ सात पदार्थ है नहीं। दो की अवस्था है। तो दो कहने में सात आ जाते हैं। सात से कहाँ प्रयोजन की आवश्यकता है, ऐसा शिष्य का प्रश्न है। दो में आ जाते हैं। दो के अतिरिक्त कोई तीसरी चीज़ जीव और जड़ दो के परिणाम हैं (तो) दो में आ गया।

सात परिणाम दो से भिन्न ऐसे नौ का करना तो सात से क्या प्रयोजन है? सात पर्याय का। पर्याय तो द्रव्य की है। जीव की पर्याय सात और जड़ की पर्याय सात, वह तो पर्याय है, अवस्था है। द्रव्य कहीं दूसरा नहीं है।

मुमुक्षु : आस्रव बन्ध निर्जरा क्रिया है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्रिया है। पर्याय कहो या क्रिया कहो। राग, आस्रव-बन्ध राग की क्रिया है। राग की क्रिया कहो, या रागपदार्थ कहो या रागपर्याय कहो या रागपरिणाम कहो या राग अवस्था कहो।

मुमुक्षु : पदार्थ.....

पूज्य गुरुदेवश्री : इसके लिये तो यह बात ठीक खुली। पर्याय को यहाँ पदार्थ कहते हैं। वहाँ कहा नहीं? देखो! थोड़ी देर लगेगी। है नहीं न! थोड़ी देर लगेगी। देखो! आया है न भाई! प्रश्न देखो।

पुण्यादि सात पदार्थों का... देखो! पुण्यादि सात पदार्थ। उन्हें पदार्थ कहते हैं। अभी अर्थ किया न? पद शब्द का अर्थ उसमें है। संवर शब्द अर्थ, वह पर्याय है। निर्जरा शब्द शुद्धि, वह पर्याय है। पर्याय को पदार्थ कहते हैं। द्रव्य को भी पदार्थ कहते हैं और पर्याय को भी पदार्थ कहते हैं। तीनों को पदार्थ (कहते हैं)। तीनों को भाव कहते हैं, पर्याय कहते हैं, अवस्था कहते हैं। द्रव्य को भी अवस्था और पर्याय को भी अवस्था। यहाँ अवस्था साथ में है, उसे पदार्थ कहते हैं।

नौ पदार्थ किसे कहते हैं? नौ तो नाम सुना है या नहीं? नौ तत्त्व। तो नौ तत्त्व में सात तो पर्याय आयी, जीव और अजीव दो द्रव्य आये। सात तो पर्याय आयी। एक समय की पर्याय है। विकारी पर्याय वह क्रिया है। राग की क्रिया, वह आस्रव, पुण्य-पाप की क्रिया वह पर्याय, वह पदार्थ। संवर, निर्जरा, मोक्ष की पर्याय वह क्रिया। वह शुद्ध पदार्थ। शुद्ध पर्याय, पदार्थ। समझ में आया?

मुमुक्षु : भाववान और भाव....

पूज्य गुरुदेवश्री : दो पदार्थ हैं। पर्याय पदार्थ है या नहीं? एक समय की अवस्था है। और एक समय की अवस्था में भी अनन्त-अनन्त धर्म स्वभाव भरा है। उस पर्याय में भी अनन्त स्वभाव भरा है। अपनी पर्याय से, दूसरी पर्याय से नहीं, द्रव्य-गुण से नहीं। एक पर्याय में अनन्त सप्तभंगी उठती है। अमरचन्दभाई! एक पर्याय में अनन्त सप्तभंगी उठती है। अनन्त द्रव्य से पर्याय नहीं, अनन्त गुण से पर्याय नहीं, दूसरी पर्याय से नहीं, वर्तमान पर्याय अनन्त है, उसमें एक-एक पर्याय दूसरी पर्याय से नहीं है। अस्ति-नास्ति ऐसी अनन्त सप्तभंगी। पदार्थ, पर्याय, वस्तु है न? शाश्वत् नहीं परन्तु एक समय का सत् है या नहीं? सत् है, कोई असत् चीज़ नहीं है।

यह तो भाई ने पूछा न कि पदार्थ क्या? तो पदार्थ सिद्ध किये। एक समय की पर्याय, पदार्थ क्या कि उसमें अनन्त धर्म है। एक समय की पर्याय में अनन्त-अनन्त शक्ति है। स्वयं से है, पर से नहीं, द्रव्य से नहीं, गुण से नहीं, दूसरी पर्याय से नहीं। ऐसा अस्तिधर्म, उसमें अनन्त है। पर्याय ऐसी। समझ में आया? अभी यह बात चलती नहीं। बाहर से या लोक सेवा और यह बात चलेगी, अथवा यह बाह्य क्रिया भक्ति, पूजा करना और व्रत, नियम ले लेना। परन्तु क्या चीज़ है? व्रत क्या है, पूजा क्या है? किसकी

पर्याय है ? कहाँ उत्पन्न होती है ? कौन उसमें निमित्त है ? कितने काल वह पर्याय रहती है ? द्रव्य कितने काल रहता है ?—(इसकी कुछ) खबर नहीं। चलो अन्धदौड़ से, दिखानेवाला अन्धा और चलनेवाला भी अन्धा। पलाय, चलो।

मुमुक्षु : एक बार प्रश्न तो ऐसा रखा था कि...

पूज्य गुरुदेवश्री : धीरे-धीरे उल्टे रास्ते है। यह रास्ता नहीं। रास्ता यह नहीं। कोई राग मन्द हो उसमें, परन्तु उसकी भी इसे खबर नहीं कि राग मन्द हो तो भी शुभभाव कहा जाता है। उसे तो ऐसा कि यह शरीर में आहार दो दिन नहीं किया तो हमारे निर्जरा हो गयी। तेरा काल गया। निर्जरा कहाँ से आयी ? समझ में आया ? अपवास-बपवास करते हैं या नहीं ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : बेकारी थी। गयी कहाँ से ? बेकार नहीं थी और बेकार हुए, ऐसा नहीं। सेठी !

नौ पदार्थ, देखो ! ऊपर नाम है। **नौ पदार्थपूर्वक मोक्षमार्ग प्रपंच वर्णन।** यह उसमें से मोक्षमार्ग (प्रकाशक) में बहुत अधिकार लिये हैं। एक शब्द भी उनके घर का नहीं है। टोडरमलजी ने शास्त्र का सामान्य थोड़ी बात का विशेष स्पष्टीकरण किया है। उन्होंने लिखा है, किसी जगह सामान्य अथवा विशेष कहूँगा। बाकी तो मैं शास्त्र की ही बात करता हूँ। हमारे घर की कोई (बात नहीं)। पंचास्तिकाय में से नौ पदार्थ लिये हैं और मोक्षमार्ग यहाँ से लिया है। निश्चय-व्यवहार। समझे ?

कितने ही पुष्टि करने के लिये अन्यत्र से लिये हैं, प्रवचनसार, समयसार,... लोग-स्वयं से कोई दूसरा बड़ा हो जाये और हम पण्डित हैं और हम रह जायें ? नहीं, जाओ, वे अप्रमाणिक हैं (ऐसा कहे)। अरे ! कोई भी आठ वर्ष का बालक हो और यथार्थ बात कहे तो वह प्रमाण है। सम्यग्दृष्टि बालक हो सम्यग्दृष्टि। आठ वर्ष का बालक क्या, आठ वर्ष की लड़की हो। बात करे अन्दर की कि मार्ग ऐसा है। उसका वचन प्रमाण है। समझ में आया ?

सम्यग्ज्ञानी का वचन प्रमाण है। आठ वर्ष की लड़की है और हम सौ-सौ वर्ष

के हैं और हम बड़े-बड़े करोड़पति हैं। तो ऐसा वहाँ नहीं चलता। आठ वर्ष की लड़की पिताजी को कहे, पिताजी! तुम खोटा करते हो। क्यों बहिन? तुम राग से धर्म मानते हो, वह तो विकल्प है। निर्विकल्प (वस्तु है), मानना पड़ेगा। ऐसा नहीं कि हम अस्सी वर्ष के हो गये और यह बड़े-बड़े विद्वान हो गये तो मेरी भूल निकालते हैं? अरे! भूल तो ढेढ-हरिजन भी निकाले। उसमें क्या? समझ में आया? वह तो स्वीकार करना पड़े न? उसमें क्या?

पुण्यादि सात पदार्थों का... लो! सात पदार्थ। ऊपर नौ पदार्थ कहते हैं न? जीव-अजीव तो दो द्रव्य पदार्थ हैं, सात पर्याय पदार्थ हैं। दो द्रव्य पदार्थ हैं, सात पर्याय पयार्थ हैं। पर्याय पदार्थ कहो या परिणामरूपी पदार्थ कहो। कहो, समझ में आया? यह **प्रयोजन,...** शिष्य का प्रश्न है, हों! **जीव और अजीव इन दो से ही पूरा हो जाता है, क्योंकि वे जीव और अजीव की ही पर्यायें हैं।** जीव और अजीव की ही पर्याय है। दूसरे की नहीं। **तो फिर वे सात पदार्थ किसलिए कहे जा रहे हैं?** शिष्य का प्रश्न है। वह सात पर्याय तो जीव की ही है। जीव-अजीव की ही है। कोई दूसरी चीज़ नहीं (कि) कोई तीसरा द्रव्य है। **तो सात पदार्थ किसलिए कहे जा रहे हैं?** ऐसा शिष्य का प्रश्न है। आचार्य ने सामनेवाले का स्पष्टीकरण करने के लिये प्रश्न शिष्य के मुख में लिया।

उत्तर - भव्यों को... देखो! भव्यों को। अभव्य को नहीं। भव्यों को बात समझायी जाती है न? अभव्य को समझ में आती नहीं। पहले से (भव्यों को) शब्द लिया है।

भव्यों को.... लायक जीवों को, **हेय तत्त्व और उपादेय तत्त्व...** देखो! **(अर्थात् हेय और उपादेय तत्त्वों का स्वरूप तथा उनके कारण) दर्शाने के हेतु...** उनका कथन है। भव्यों को छोड़नेयोग्य क्या, आदरनेयोग्य क्या अर्थात् उपादेय क्या और हेय क्या, (यह) दर्शाने के लिये और उनके कारण दर्शाने के लिये, हेय का कारण कौन और उपादेय का कारण कौन?

हेय-उपादेय का स्वरूप क्या? और हेय-उपादेय का कारण क्या? समझ में आया? **दर्शाने के हेतु...** उनका कथन है। अब सिद्धान्त लिया। **दुःख वह हेय तत्त्व है,...** देखो! समझो। दुःख, वह हेयतत्त्व है। प्राणी को दुःख छोड़नेयोग्य चीज़ है। दुःख। आत्मा की पर्याय में दुःख, आकुलता। दुःख, वह हेयतत्त्व है, छोड़नेयोग्य है। लोगों को

दुःख नहीं चाहिए। सुख चाहिए। (दुःख), वह हेयतत्त्व हो गया। अपनी पर्याय में जो आकुलता उत्पन्न होती है, वह दुःख है, हेयतत्त्व है। **उसका कारण संसार है,...** दुःख वह हेय और उसका कारण संसार। देखो! कहा था न, **तत्त्वों का स्वरूप तथा उनके कारण...** कोष्ठक में लिया है। समझ में आया? **उसका कारण संसार है,...** उस दुःख का कारण वह संसरणं दशा है।

संसार का कारण आस्रव और बन्ध दो हैं... यह संसशरणं—भटकने का भाव, उसका कारण पुण्य-पापरूपी आस्रव। अबन्ध भगवान राग में रुक जाता है, वही आस्रव और बन्ध ही संसार का कारण है। कहो, समझ में आया? तीन ओर से बात ली है। दुःख तो हेयतत्त्व है। एक बात। उसका कारण संसार। उसका अर्थ यह संसरणदशा, आत्मा में जो संसरणदशा है, वह दुःख का कारण है। और संसार का कारण वही आस्रव और बन्धभाव है। दोनों पर्याय है। पुण्य-पाप की पर्याय, वह आस्रव दुःखरूप है। संसार है, हेय है। और बन्ध। आत्मा अबन्धस्वभावी राग में रुक जाता है, उतना बन्ध। वह आस्रव-बन्ध ही संसार का कारण है। कहो, समझ में आया?

मुमुक्षु : पुण्य-पाप से तो आस्रव-बन्ध होता है, यहाँ पुण्य-पाप...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह आ गया न! आ गया। आस्रव और बन्ध में पुण्य-पाप आ गया। यह है, देखो! **(अथवा विस्तारपूर्वक कहे तो पुण्य, पाप, आस्रव और बन्ध चार हैं)...** सात में लो तो आस्रव में पुण्य-पाप आ गया। नौ (पदार्थ) में लो तो विस्तार में चार आ गये। पाँच पर्याय लो, दो द्रव्य और पाँच पर्याय—आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष। वह पाँच होती है। विस्तार करो तो आस्रव में से पुण्य-पाप दूसरे दो पुण्य-पाप, सात पर्यायें हो गयीं। सात हो गयीं। समझ में आया?

बहुत सरस अधिकार है। जयसेनाचार्य ने बहुत सरस बात की है। भाई! तुझे दुःख चाहिए? तो कहे, नहीं। दुःख कहाँ है, वह तुझे खबर नहीं परन्तु दुःख चाहिए है? तो कहे, नहीं। तो दुःख हेय है। दुःख छोड़नेयोग्य है। दुःख का कारण संसरणदशा है। स्वभाव में से निकलकर संसरण-विकार परिणाम में (जाना), वह संसार है। वह संसार दुःख का कारण है। और वही संसार आस्रव-बन्ध का कारण संसार है। समझ में आया? **(अथवा विस्तारपूर्वक कहे तो पुण्य, पाप, आस्रव और बन्ध चार हैं)...** संसार

का कारण। लो! संसार का कारण पुण्यपरिणाम है। वह विकारी संसरणदशा है न?

मुमुक्षु : है तो सही परन्तु! जोर चलता है....

पूज्य गुरुदेवश्री : अनादि से अज्ञानी का जोर चला आता है। हेय है, दु:खरूप है, संसाररूप है, उसके कारणरूप है, इतना तो सिद्ध किया। पुण्यपरिणाम हेयरूप है। क्योंकि दु:खरूप है। वह संसार का कारण संसरण है। संसार का कारण शुभभाव है, आस्रवभाव है। वर्तमान में चलता है। दया, दान, व्रत, भक्ति का विकल्प है, वह धर्म है। (ऐसा लोग मानते हैं)। खबर नहीं होती। व्यवहारधर्म तो जिसे निश्चयधर्म होता है, उसे शुभभाव में व्यवहारधर्म का आरोप किया जाता है। निश्चय से तो वह धर्म नहीं है। निश्चय से तो अधर्म है।

मुमुक्षु : पूरा फेरफार है। सोनगढ़ का है, ऐसा कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : सोनगढ़ का होगा? आत्मावलोकन में स्पष्ट कहा है, मिश्र धर्म में ऐसे श्रावकों को अधर्म और धर्म दो है, ऐसी बात ली है। पाठ में ली है, अधम्म। पंचाध्यायी में लिया है। संवर, निर्जरा के अतिरिक्त भाव रहता है, वह अधर्म है। उसमें क्या है? समझ में आया? पहले (संवत्) १९८५ के वर्ष में सभा में कहा था—जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बाँधे, वह भाव धर्म नहीं है। धर्म से बन्ध नहीं है। तब क्या? धर्म विरुद्ध है। उसमें समझ लो न? ८५ के वर्ष। कितने वर्ष हुए? ३५। बोटाद में बड़ी सभा थी। बोटाद के सम्प्रदाय में थे न? हमारा नाम बहुत ही प्रसिद्ध था न? हम व्याख्यान करने बैठें तो लोग चींटियों की तरह आते थे। चींटियाँ। बहुत ही लोग। ८५ के वर्ष पौष माह। बहुत ही लोग पूरा भरचक। व्याख्यान में आवे तो खिड़की है न खिड़की—बाहर पूरी गली भर जाती थी। नाम तो बहुत ही प्रसिद्ध था न? हम तो, पहले से... उसमें दो नामधारी साधु बैठे थे। उसमें हमने कहा कि जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधता है, वह भाव धर्म नहीं है। धर्म से विरुद्ध है। धर्म से बन्ध नहीं होता। और जिस भाव से बन्ध होता है, वह धर्म नहीं है। तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भाव भी धर्म नहीं है।

मुमुक्षु : कल्याण तो हो जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : कल्याण उससे होगा? या राग का अभाव करने से कल्याण होता है।

मुमुक्षु : बन्ध में लाभ है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बन्ध में बिल्कुल लाभ नहीं होता। वह यहाँ कहेंगे। परम्परा.... पुण्य से बिल्कुल तीर्थंकरगोत्र का बन्ध पड़ा है, वह तो जड़ प्रकृति है। क्या उससे आत्मा का कल्याण होता है? सेठ! निर्णय करना पड़ेगा। अभी तक बहुत ही गप्प चलायी है। प्रकृति जड़ है। क्या अजीव प्रकृति आत्मा को शान्ति देती है? जिस भाव से प्रकृति बँधती है, वह शुभभाव तो राग है। राग वीतरागभाव का कारण होता है? केवलज्ञान का कारण होता है? ...नन्दजी! हें... खलबलाहट हो गयी! खड़े हो गये, भाग गये। वोसरे... वोसरे... भाग गये। सभा तो बड़ी थी। ऐसा कि ऐसा सत्य का मार्ग नहीं चाहिए। हमें यह बात रुचती नहीं। ८५ में।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसके बिना जरा बैठे नहीं। धर्म नहीं। धर्म है, वह आत्मा की शान्ति का कारण है। धर्म बन्ध का कारण होता ही नहीं। धर्म बन्ध का कारण हो तो मोक्ष कब होगा? और बन्ध का कारण है तो धर्म कहाँ से होगा? बन्ध का कारण बन्धरूप है। मोक्ष का कारण मोक्षरूप है।

मुमुक्षु : मीठी जबान....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें मीठी जीभ क्या है? बात समझने में मिठास है, नहीं समझने में अज्ञान है। कहो, समझ में आया? और इसका कारण, अब देखो! उसका कारण। किसका? आस्रव और बन्ध का। कितना भेद लिया! एक तो दुःख हेय है, एक बात। दुःख हेय है, **उसका कारण संसार है,...** विकार, संसरण दशा, उसका कारण आस्रव-बन्ध है और उसका कारण मिथ्यादर्शन, ज्ञान, चारित्र है। चार स्पष्ट बात ली है। समझ में आया?

आत्मा आनन्दमूर्ति है। आत्मा का स्वभाव तो अतीन्द्रिय आनन्दमूर्ति है। उसे भूलकर पर्याय में आनन्द से उल्टी विकारी दशा दुःखरूप है। उसका स्वभाव तो सच्चिदानन्द आनन्द है। पर्याय में आनन्द से उल्टी दशा दुःख है, आकुलता है। उस आकुलता का कारण संसरण दशा है। उस संसरण का कारण आस्रव और बन्धभाव है। आस्रव-बन्ध

का कारण मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र है। एक बात को चार में लगाया। समझ में आया?

वास्तव में मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र, वह दुःख है। लो! मिथ्याश्रद्धा, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र, वही दुःख है।

मुमुक्षु : ....आस्रव कम....

पूज्य गुरुदेवश्री : हें? आस्रव तो उसमें कम हुए हैं। यहाँ कहाँ आया? यहाँ कहाँ आया? आत्मा में आया? वह तो रजकण... जड़ में। आत्मा में क्या है? जड़ की पर्याय हुई। भाव न करे अर्थात् क्या? ....परमाणु में आनेवाली ताकत नहीं थी। उसमें कहाँ आया? वह तो उसके कारण से नहीं आये। आत्मा ने भाव नहीं किये, तो रुक गये? ऐसा नहीं है। उसके कारण से आनेवाले नहीं थे, उसे द्रव्यास्रव से रुके, ऐसा कहा जाता है। ओहोहो! देखो! पूरा संसार दुःख को हितकर नहीं मानता। यह तो बराबर है। तो दुःख कहाँ है, इसकी खबर नहीं। संयोग में निर्धनपना मानता है। ऐसा दरिद्रपना... जिसमें आनन्द है, उसकी दशा में ही दुःख है। दुःख नहीं संयोग में, दुःख नहीं स्वभाव में। दुःख उसकी पर्याय में (होता) विपरीत भाव है। विपरीत पर्याय है, उसका नाम दुःख है। पर में दुःख नहीं, स्वभाव में दुःख नहीं। पर में सुख नहीं, स्वभाव सुख से खाली नहीं।

आनन्द-इस आनन्दस्वभाव को उल्टा माना, वह पुण्यपरिणाम, पापपरिणाम वही मैं, उतना ही मैं, वही मेरा कार्य, वही मेरा सर्वस्व अधिकार तो वही भाव दुःखरूप है। उस दुःखरूप को यहाँ संसार कहा। उस संसार का कारण पुण्य, पाप, आस्रव, बन्ध कहा। वही बन्ध का कारण मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र। जो परविषय करके, स्वविषय को छोड़कर, पुण्य-पाप को विषय बनाकर, वही मैं हूँ—ऐसी मिथ्याश्रद्धा, उसका ज्ञान करना, स्व का ज्ञान छोड़ना - मिथ्याज्ञान और राग-द्वेष में एकाकार होना, वह मिथ्याचारित्र है। मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र ही आस्रव-बन्ध है, संसार है, दुःख है, इसलिए वह हेय है।

स्त्री, पुत्र छोड़ना है? वे तो छूटे ही पड़े हैं। वे अन्दर में कहाँ घुस गये हैं? मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र। मिथ्याचार तो यह कि जो अपने स्वभाव में

नहीं, उसे अपना मानना और अपना स्वभाव श्रद्धा में भूल जाना, इसका नाम मिथ्यादर्शन। पुण्य और पाप का भाव अपने स्वभाव में नहीं है, उसे अपना मानना, वह मिथ्यादर्शन है। उसका पूरा स्वभाव विषय करनेयोग्य है, वह विषय छोड़कर जिस ज्ञान ने अकेले राग-द्वेष को विषय किया (तो वह) मिथ्याज्ञान है। और पूरे स्वभाव में तो विकल्प है नहीं। पुण्य-पाप उत्पन्न हुए और वही आचरण किया, वह मिथ्याचारित्र है।

मुमुक्षु : मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं बदलते। फिर से कहो, ऐसा कहते हैं। भगवान आत्मा अपना नित्यानन्द प्रभु, उसकी स्वविषय करके प्रतीति करे तो सम्यग्दर्शन। उसका विषय छोड़कर पुण्य-पाप का विषय करके, वही मैं हूँ, वही। पर की बात एक ओर रखो। उसका नाम मिथ्यादर्शन और ज्ञान की पर्याय स्वविषय न करके अकेले पुण्य-पाप को ज्ञेय करके ज्ञान रुक गया, उसका नाम मिथ्याज्ञान और पुण्य-पाप के विकल्प स्वरूप में हैं नहीं। उसके विपरीत भाव करके, उसका आचरण करना, वर्तन करना, लीन होना, वेदन करना, इसका नाम मिथ्याचारित्र है। समझ में आया? लो! यह एक बात की। दुःख की। हेय कहा। दुःख हेय है और संसारपरिणाम भी हेय है। और उसके पुण्य, पाप, आस्रव, बन्ध भी हेय है और उनका कारण मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र, वह भी हेय है। समझ में आया?

अब **सुख वह उपादेय तत्त्व है,...** आनन्द, वह आदरणीय है। समझ में आया? उस आनन्द की पर्याय प्रगट करना, वह उपादेय है। आनन्द—लोग आनन्द ही चाहते हैं या नहीं? पूर्ण आनन्द-अनाकुल शान्ति, पूर्ण शान्ति वह सुख, वही उपादेय है। हेय करनेयोग्य है, इसलिए उसे दुःखरूप है, हेय करनेयोग्य, व्यय करनेयोग्य, इसलिए उसे हेय कहा। समझ में आया? उत्पन्न करनेयोग्य है, इसलिए उसे उपादेय कहा। क्या उत्पन्न करना है? पूर्ण आनन्द। आनन्द उत्पन्न करना, वह उपादेय है। सुख, वह उपादेय तत्त्व है।

उसका कारण मोक्ष है,... मोक्ष में ही सुख है। दूसरे में सुख है नहीं। संसारपरिणाम दुःख, मोक्षपरिणाम सुख। समझ में आया? **मोक्ष का कारण संवर और निर्जरा है...** मोक्ष का उपाय संवर और निर्जरा। शुद्धस्वभाव, वह तो उपादेय है ही। परन्तु पूर्ण शुद्ध

प्रगट करना है, तो उपादेय है। अंगीकार करनेयोग्य है। उत्पन्न करके अंगीकार करनेयोग्य है। दु:ख, राग-द्वेष, पुण्य-पाप व्यय करनेयोग्य है, इसलिए हेय है। उत्पन्न करनेयोग्य है, इसलिए उपादेय है। **मोक्ष का कारण संवर और निर्जरा है...** देखो! संवर और निर्जरा मोक्ष का कारण है। आस्रव और पुण्य-पाप भाव, बन्ध का कारण है, हेय है। यह उपादेय। **और उनका कारण...** संवर, निर्जरा का कारण **सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है।** सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है, वह संवर-निर्जरा का कारण है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र बिना संवर-निर्जरा नहीं होती। समझ में आया? और क्या संवर-निर्जरा का कारण सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र व्यवहार है? समझ में आया? संवर, निर्जरा का कारण सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र निश्चय है।

मुमुक्षु : बारहवें गुणस्थान में।

पूज्य गुरुदेवश्री : बारहवें गुणस्थान में, वह तो पूर्ण की बात है। यहाँ तो चौथे (गुणस्थान) से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का अंश उत्पन्न होता है। चौथे से तीन का अंश उत्पन्न होता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र की व्याख्या ही अलग है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न? स्वस्वभाव पूर्णानन्द प्रभु, उसका विषय करके, अनुभव करके प्रतीति करना, वह सम्यग्दर्शन और उसका वेदन करना, वह ज्ञान। और उसका विषय करके ज्ञान करना वह सम्यग्ज्ञान और उसके विषय में लीन होना - द्रव्य में लीन होना, वह चारित्र। गजब बात! यह तो अभी नौ पदार्थ की बात चलती है। अभी मूल एकड़ा की!

मुमुक्षु : एकड़ा ही सीखनेवाले हैं साहिब!

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी एकड़ा सीखनेवाले हैं? ७६-७७ वर्ष हुए न? सच्ची बात है। सेठी को ७७ वर्ष चलता है। ७७ न? शरीर को चलता है न? आत्मा को क्या है? कहाँ तुम जयपुर के! तुमको बड़ा खानदान कहते हैं। उन्होंने ऐसा सुना नहीं। यह बात चलती ही नहीं थी। बाहर की बात—यह ऐसा करो और ऐसा करो। ऐ... भगवान की प्रतिमा को नहाये बिना छूते नहीं। ऐसा करते नहीं। जय भगवान! परन्तु क्या है अब? एक बार हम गये न, हम ऊपर चढ़े भगवान-ऐ... छूते नहीं। क्या है परन्तु अब

तुझे ? झगड़ा.... झगड़ा... झगड़ा... ऐसा कि स्नान किये बिना छूआ नहीं जाता। सुन न! तेरी अपेक्षा भी हम अधिक स्नान करते हैं। वापस ऐसे के ऐसे! आहाहा! झगड़ा! मूर्ति के और पूजा के झगड़े। वह तो एक शुभभाव होता है, वहाँ मूर्ति, पूजा इत्यादि निमित्तरूप से आते हैं। समझ में आया ? परन्तु उसमें झगड़ा! हम बड़े भगत हैं। देखो! ऐसे। नहा-धोकर आवे उसमें क्लेश किसलिए करता है ?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, नहीं। यह तो हम ऊपर चढ़े न, है न मन्दिर में कोई खड्गासन भगवान ऊपर है, कोई मन्दिर में। तो हम ओटला के ऊपर चढ़े। ओटला समझते हो ? वेदी में चढ़े। आगे भगवान थे इसलिए। अरे! छूते नहीं, खड़े रहना। अरे! कहा, ऐसे के ऐसे। कुछ भान नहीं होता, क्रियाकाण्ड न अकेला, मूर्ति की पूजा करे और कहे कि हम भगत हैं। और उसे बराबर ऐसा कि विवेक से (करते हैं)। क्लेश... क्लेश... क्लेश।

मोक्ष का कारण संवर और निर्जरा है... संवर-निर्जरा का अर्थ शुद्धपर्याय प्रगट करना और शुद्धि में वृद्धि होना, इसका नाम निर्जरा। **और उनका कारण सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है।** देखो! मोक्षमार्ग आ गया। यह निश्चयसम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र संवर-निर्जरा का कारण है ? ....यह तो कहे, देखो! सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र संवर-निर्जरा का कारण है, सातवें गुणस्थान तक। भाई! गजब किया है न ? कोई पूछनेवाला नहीं होता। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अपने ऊपर घात करता है, उसे खबर नहीं। देखो! अब आचार्यदेव स्पष्टीकरण करते हैं। **यह प्रयोजनभूत बात भव्य जीवों को...** देखो! यह शब्द आया। शिष्य ने प्रश्न किया था कि प्रयोजन तो दो से चलेगा। सात से क्या ?—सात तो उसकी पर्याय है। तो कहे, नहीं। यह दुःख बतलाना है, दुःख हेय कराना है। दुःख का कारण संसार है, संसार का कारण पुण्य-पाप आस्रव-बन्ध है। उसका कारण मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र है। मिथ्या। इस कारण सात पर्याय प्रयोजनभूत है। (वह) बतलाना चाहिए। इसके बिना यह समझ नहीं सकता। कहो, समझ में आया ?

यह प्रयोजनभूत बात... देखो! अब आचार्यदेव स्वयं कहते हैं। वह तो शिष्य के मुख में प्रश्न स्वयं रखा है न? **यह प्रयोजनभूत बात भव्य जीवों को प्रगटरूप से दर्शाने के हेतु...** प्रगट यह शुभभाव, यह आस्रव, यह बन्ध, यह संवर, यह निर्जरा, यह मोक्ष। पर्याय ख्याल में आ जाये। इस कारण वह प्रयोजनभूत है। सात पर्यायसहित दोनों द्रव्य प्रयोजनभूत है। देखो न! यहाँ उसे प्रयोजनभूत कहा न? श्वेताम्बर प्रयोजनभूत नहीं कहते। नौ को मानो (परन्तु) प्रयोजनभूत है, उसका नहीं कहते। यह इसमें से लिया है। प्रयोजनभूत क्या है? (यह कहा है)। अकेले घट को जाना और घट लाल है और पीला है और काला है और अमुक है। उसमें क्या आया? प्रयोजनभूत अजीव क्या है? अपने सम्बन्ध में निमित्त, पर्याय क्या है? राग। उसमें क्या होता है - पर्याय। बस वह प्रयोजनभूत। समझ में आया?

यह प्रयोजनभूत बात भव्य जीवों को प्रगटरूप से दर्शाने के हेतु... देखो! प्रगटरूप से, खास उसे ख्याल में आ जाये, (कि) यह पर्याय पुण्य और यह पर्याय पाप है। दोनों होकर आस्रव-बन्ध, दोनों होकर बन्ध वही दुःख, वही हेय। उसकी श्रद्धा से लाभ मानना, वह मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्र है। ऐसा समझाने के लिये, बराबर। **प्रगटरूप से दर्शाने के हेतु पुण्यादि सात पदार्थों का कथन है।** लो! पुण्यादि सात पदार्थों के कथन हैं न? नीचे (फुटनोट में) थोड़ी बात है, देखो! नीचे (फुटनोट में चिह्न) २ है। नोट में है, नोट में।

अज्ञानी और ज्ञानी जीव पुण्यादि सात पदार्थों में से किन-किन पदार्थों के कर्ता हैं, तत्सम्बन्धी... अब कर्ता किसका है, वह बताते हैं अब। आचार्यवर श्री जयसेनाचार्यदेवकृत तात्पर्यवृत्ति नाम की टीका में निम्नानुसार वर्णन है। बहुत सरस बात की है।

अज्ञानी जीव निर्विकार स्वसंवेदन के अभाव के कारण... यहाँ कारण दिया। कारण कर्म-फर्म तो है ही नहीं। कर्म तो निमित्त कर्म में है। यहाँ कहाँ है? अज्ञानी जीव निर्विकारी स्वसंवेदन आत्मा आनन्द, उसके आनन्द का वेदन। स्वसंवेदन-स्वसंवेदन, स्व अर्थात् अपना वेदन, आनन्द का वेदन, अनाकुल आत्मा की शान्ति का वेदन। देखो! आत्मा अनाकुल और आनन्दरूप है। उसका अभाव अज्ञानी को अभाव। स्वसंवेदन

नहीं। अपने आनन्द का वेदन हो तो **पुण्य-पाप पदार्थ का कर्ता नहीं होता। उसके अभाव के कारण पापपदार्थ का...** पाप पदार्थ अर्थात्? अशुभभाव। हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग, क्रोध, मान, माया।

तथा आस्रव-बन्धपदार्थों का कर्ता होता है;... पुण्य का फिर लेंगे। **आस्रव-बन्ध पदार्थों का कर्ता होता है;...** अज्ञानी को अपने आनन्द के वेदन की खबर नहीं और वेदन में पूरा आत्मा आनन्दमय पड़ा है, उसकी दृष्टि नहीं। आनन्द का वेदन नहीं तो वेदन होवे तो पूरा आत्मा आनन्दमूर्ति है, ऐसी दृष्टि हो तो वह पुण्य-पाप का कर्ता नहीं होता। अपनी रचना, शान्ति की रचना का कर्ता होता है। अज्ञानी अपने निर्विकार आनन्द-जो नित्य आनन्द, ध्रुव आनन्द, उस ओर झुकने से पर्याय में जो आनन्द का भान, उसका अज्ञानी को अभाव है। पाप पदार्थ का-अशुभभाव का कर्ता होता है। अज्ञानी अशुभभाव का कर्ता होता है। क्योंकि आत्मा के आनन्द का तो भान नहीं। आनन्द का भान हो तो आनन्द की पर्याय का कर्ता हो। अथवा संवर, निर्जरा, मोक्ष का कर्ता हो। वह तो है नहीं, खबर नहीं। समझ में आया? क्या?

पापपरिणाम के, पाप पदार्थ है न? पापपरिणाम। वह अरूपी पापपरिणाम, उसे यहाँ पदार्थ कहा। हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग, राग-द्वेष, रति-अरति, आस्रव। आस्रव में पुण्य-पाप इकट्ठे आ गये। **तथा बन्धपदार्थों का कर्ता होता है;...** अब जरा पुण्य को पृथक् करके बताते हैं। **कदाचित् मन्द मिथ्यात्व के उदय से,...** मन्द मिथ्यात्व। वाह! मन्द मिथ्यात्व।

अनन्तानुबन्धी का मन्द मिथ्यात्व, मन्द भाव। **देखे हुए....** देखे हुए। आत्मा को तो अज्ञान में देखा नहीं। बाहर देखे पदार्थ। सुने हुए बाहर पदार्थ। **अनुभव किए हुए भोगों की आकांक्षारूप...** क्योंकि अज्ञानी को स्वसंवेदन में आनन्द का तो अभाव है, तो उसके **देखे हुए—सुने हुए—अनुभव किए हुए भोगों की आकांक्षारूप...** बस वह। यह होवे तो ठीक, यह होवे तो ठीक, यह होवे तो ठीक। निदानबन्ध द्वारा, निदान करता है। हेतु वहाँ बाँधता है। स्वभाव के ऊपर नहीं, शुभभाव के ऊपर हेतु पड़ा है। वह हेतु पड़ा है, अच्छा फल मिलेगा। हम शुभभाव करते हैं (तो) अच्छा फल मिलेगा। हेतु वहाँ है। भविष्य में पाप का अनुभव करनेवाला। है न? भविष्य काल में तो उसमें पाप

का अनुबन्ध होगा। पुण्यपदार्थ का भी कर्ता होता है। अज्ञानी शुभभाव का कर्ता है। दया, दान, व्रत, तप, भक्ति, करुणा, कोमलता, सेवा, इस भाव का कर्ता मिथ्यादृष्टि है। भविष्य में पाप बाँधेगा। रोग लगेगा। क्या करता है? राग करता है। बहुत अच्छा करता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : निदान बँधेगा...

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु वह निदान हेतु ही है निदान। हेतुबन्ध द्वारा, हेतु वहाँ पड़ा है न? राग में हेतु पड़ा है। भोग में हेतु पड़ा है। स्वभाव के अनुभवरूप भोग नहीं, वहाँ अच्छा है या मिठास है। राग में मिठास है। **निदानबन्ध द्वारा....** भविष्य में वापस पाप करेगा। अभी थोड़ा पुण्य बाँधता है, भविष्य में वापस पाप करके जाओ। नरक में चला जायेगा। भारी कठिन! समझ में आया? पुण्यपदार्थ का कर्ता,...

मुमुक्षु : आकांक्षा।

पूज्य गुरुदेवश्री : आकांक्षा ही है। आनन्द की भावना नहीं।

मुमुक्षु : तो भी वह कषाय...

पूज्य गुरुदेवश्री : तो भी कषाय है, परन्तु राग है, मन्द कषाय है न? मन्द है न? **और जो ज्ञानी जीव है...** देखो! यह अज्ञानी की बात की। आत्मा आनन्दस्वरूप की दृष्टि नहीं, निर्विकल्प चैतन्य के श्रद्धान का ज्ञान नहीं, ऐसे पुण्य-पाप यह... यह... क्रिया और यह भाव, इसकी मान्यता है। समझ में आया? यह बड़े-बड़े नेता कहलाते हैं न? हम सेवा करते हैं, पाप बाँधकर भविष्य में भटकनेवाले हैं। ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : इन्द्र बन जायेंगे।

पूज्य गुरुदेवश्री : इन्द्र-बिन्द्र नहीं बने, इन्द्र का घोड़ा बन जायेंगे। घोड़ा अर्थात् यह देव है परन्तु वह घोड़ा का रूप धारण करता है। घोड़ा का रूप धारण करना पड़ता है। हाथी का रूप धारण करे, ऐसे चाकर-नौकर हो। वापस भविष्य में पाप बाँधकर जाये नीचे। चार गति में भटकने। समझ में आया? कहाँ गये वासुदेवभाई? है या नहीं? ठीक। कहो, समझ में आया? यह कहा न? **भविष्य काल में पाप का अनुबन्ध**

करनेवाले पुण्यपदार्थ का भी कर्ता होता है। भविष्य में पाप बाँधेगा। मिथ्यात्वभाव है। जाओ चौरासी में भटकने।

आत्मा परमानन्द है, उसका तो आदर नहीं। यह दया, दान का भाव आया, सेवा का आया। (उसका) आदर करता है। हम बहुत ही करते हैं, सब हम बहुत ही करते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बात झूठ है। नहीं, कहते हैं कि देखो! ऐसा होगा तो स्वतन्त्रपर्याय हुई। मूढ़ है। कोई गुलाम ऐसा विचार भी नहीं। बड़ा गुलाम रहा। गुलामी किसे कहते हैं? ऊपर राजा राज करे तो गुलामी है? वह तो परिणाम मन्द हो तो ऐसा होता है। उसमें क्या है?

मुमुक्षु : नक्शा ही बदल डाला।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं; नक्शा बदल गया। जेल में गया, इसलिए बदल गया है? तुम्हारी बात करते हैं। जेल में गये न? महीने-महीने गये थे। एक-एक महीने, दो महीने। कहो, समझ में आया? ज्ञानी किस भाव का कर्ता है? उसकी बात करेंगे। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. ३१, गाथा-१२८-१३१
दिनांक - २६-०९-१९६४, भाद्र कृष्ण ५, शनिवार

नौ पदार्थ का अधिकार चलता है। नीचे (फुट) नोट चलता है। (फुट) नोट १२८ से १३० गाथा का नोट चलता है। नीचे नोट है न? अज्ञानी और ज्ञानी किस पदार्थ का कर्ता होता है, उसी बात है। पहले अज्ञानी आ गया। फिर से, देखो! पैराग्राफ है न? हिन्दी में १९३वें पृष्ठ पर नीचे है।

अज्ञानी जीव निर्विकार स्वसंवेदन के अभाव के कारण... अपना स्वरूप निर्विकार आनन्द शुद्ध, उसका अन्तर स्वसंवेदन के अभाव के कारण **पापपदार्थ का कर्ता होता है;...** पापपदार्थरूप परिणमन-कर्ता होता है। **आस्रव-बन्धपदार्थों का कर्ता होता है;...** आत्मा आनन्द और ज्ञायक स्वसंवेदन में आया नहीं तो वह बन्ध और आस्रव और पुण्य-पाप का कर्ता, बुद्धि में वही वर्तता है।

कदाचित् मन्द मिथ्यात्व के उदय से,... अपने परिणाम में मिथ्यात्व का मन्द उदय हो। **देखे हुए—सुने हुए—अनुभव किए हुए भोगों की आकांक्षारूप निदानबन्ध द्वारा,...** उसका हेतु इस राग पर पड़ा है। स्वभाव में वेदन का अभाव है। तो वह **आकांक्षारूप निदानबन्ध द्वारा, भविष्य काल में पाप का अनुबन्ध करनेवाले पुण्यपदार्थ का भी कर्ता होता है।** पुण्य पदार्थ ऐसा है कि भविष्य में भी पाप परम्परा करेगा। दृष्टि वहाँ रहेगी तब तक। अब यहाँ तक आया था। अर्थ।

जो ज्ञानी जीव है वह,... सम्यग्दृष्टि, देखो! उसमें क्या लिखा है? स्पष्टीकरण है। **निर्विकार-आत्मतत्त्वविषयक रुचि,...** देखो! इसका नाम अभेद रत्नत्रय परिणाम कहा है। कोई कहे कि भेद रत्नत्रयात्मक से संवर-निर्जरा का कर्ता होता है। तो यहाँ निषेध करते हैं। चौथे से सातवें तक भेदरत्नत्रय-व्यवहाररत्नत्रय, ऐसा कहते हैं। और उससे संवर और निर्जरा होती है। ऐसा कहते हैं। कहते हैं कि **निर्विकार-आत्मतत्त्वविषयक रुचि,..** ज्ञायक शुद्ध निर्विकार अनाकुल ऐसा जो आत्मतत्त्वस्वभाव, उस सम्बन्धी रुचि उस निश्चय अभेदरत्नत्रय में निश्चय सम्यग्दर्शन है। समझ में आया?

निर्विकार-आत्मतत्त्व-निर्विकारी आत्मस्वभाव। शुद्ध ज्ञायक वीतरागस्वभाव,

उस सम्बन्धी रुचि, **तद्विषयक ज्ञप्ति...** वह आत्मा निर्विकार तत्त्व, उस सम्बन्धी उसका ज्ञान, वह निश्चयज्ञान और **तद्विषयक निश्चल अनुभूतिरूप...** तत्सम्बन्धी निर्विकारी भगवान ज्ञायकभाव स्वभाव, उस सम्बन्धी निश्चय अनुभूति, अनुभवन, निर्विकल्प अन्तर अनुभवन। वह अभेद रत्नत्रय परिणाम। उसे अभेद निश्चय रत्नत्रय परिणाम कहा गया है। कहो, समझ में आया? अभेद रत्नत्रय परिणाम द्वारा **संवर-निर्जरा-मोक्षपदार्थों का कर्ता होता है;...**

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। देखो! उसमें है या नहीं, क्या कहा? शुद्ध ज्ञायकद्रव्य वस्तुस्वभाव, उस सम्बन्धी सम्यक् रुचि। निश्चय सम्यक्त्व; उस सम्बन्धी ज्ञप्ति, स्व का ज्ञान। निश्चय ज्ञान कहो या यह भेदज्ञान कहो। और **तद्विषयक अनुभूति...** उस सम्बन्धी आत्मा निर्विकार, उस सम्बन्धी स्वरूप की स्थिरता। अनुभूतिरूप चारित्र। अभेद रत्नत्रय, ये तीनों अभेद रत्नत्रय हैं। चौथे गुणस्थान में भी अंश है। नहीं तो संवर, निर्जरा का कर्ता नहीं होता। देखो! समझ में आया?

अभेदरत्नत्रयपरिणाम द्वारा,... पूर्ण शुद्ध निर्मल भगवान अनाकुल आनन्दरस स्वभाव, उस सम्बन्धी रुचि, उस सम्बन्धी ज्ञान, उस सम्बन्धी अनुभूति, वह अभेद रत्नत्रय परिणाम हुए। वह पर्याय है। वह निश्चयरत्नत्रय, वह परिणाम है, पर्याय है, विषय है। क्या? उसका विषय आत्मा।

मुमुक्षु : अभेद रत्नत्रय अर्थात्?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न? दो बार, अभेद अर्थात् निश्चय। अपना निर्विकारी आत्मभाव। तत्त्व अर्थात् भाव। निर्विकारी ज्ञायक आनन्दस्वभावभाव। उस सम्बन्धी अन्तर रुचि। वह अभेद सम्यग्दर्शन। पर्याय द्रव्य के साथ अन्दर अभेद हुई। और उस सम्बन्धी ज्ञप्ति-ज्ञान, स्वभाव सम्बन्धी और स्वभाव सम्बन्धी की अनुभूति। उस अभेद स्वरूप सन्मुख की पर्याय अभेद हुई। भेदरत्नत्रय जो व्यवहाररत्नत्रय है, वह भेद है, विकल्प है, आस्रव है। समझ में आया? लो! यह जयसेनाचार्य में से ऐसा निकला। लोग कहते हैं कि यहाँ व्यवहाररत्नत्रय है, चौथे (गुणस्थान) से छठवें-सातवें तक। है इसमें? देखो! देवीलालजी! क्या कहा?

अभेदरत्नत्रयपर्याय... पर्याय कहो, परिणाम कहो, अवस्था कहो। उस बार यह **संवर-निर्जरा-मोक्षपदार्थों का कर्ता होता है;...** अमरचन्दभाई! अभी यह बड़ी चर्चा बाहर में चलती है। अभी उल्टी, उल्टे का अर्थ। वह तो कहते हैं, व्यवहाररत्नत्रय अकेला चौथे, पाँचवें, छठवें में होता है। अकेला व्यवहाररत्नत्रय। निश्चय नहीं। अभेद रत्नत्रय नहीं। और वह व्यवहाररत्नत्रय, वही मोक्ष का मार्ग और संवर-निर्जरा का करनेवाला वह है। देवीलालजी! इस बोल से निर्णय करना, हों! इस बन्ध के कारण को संवर का कारण बताते हैं। यही पहला मोक्षमार्ग है, ऐसा कहते हैं। क्योंकि परम्परा मोक्ष का कारण यह है। साक्षात् कारण निश्चय है। सातवें से थोड़ा लिया है। आठवें से होता है और परम्परा व्यवहार है, ऐसा है ही नहीं। साक्षात् अभेद रत्नत्रय, संवर, निर्जरा का कर्ता है। धर्मचन्दजी! यह देखो! यह बात बहुत ही चलती है। तुम्हारे हिन्दी में, हिन्द में बहुत ही गड़बड़ चलती है।

मुमुक्षु : बिना दूल्हे की की बारात।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या? हाँ, दूल्हा नहीं, सच्ची बात है। हमारे (गुजराती में) कहते हैं वर बिना की जान (बारात)। वर बिना की जान। तो यहाँ कहते हैं कि वह तो शास्त्र में मोक्षमार्ग नाम पड़ा न? व्यवहार और निश्चय। तो व्यवहाररत्नत्रय पहले, उससे संवर-निर्जरा होकर आगे बढ़ते-बढ़ते सातवें गुणस्थान में निर्विकल्प अनुभव हो जाये तो वह निश्चय अभेद रत्नत्रय। यहाँ तो कहते हैं जहाँ से संवर, निर्जरा पर्याय प्रगट हुई, उसका कर्ता अभेद रत्नत्रय परिणाम है, वहाँ से कर्ता कहा गया है। समझ में आया?

अभेद रत्नत्रय अर्थात् आत्मा ज्ञायकभाव निर्मल, निर्विकारी तत्त्व कहा न? आत्मा निर्विकारी तत्त्व है। अचल निर्दोष वीतराग समस्वभावी आत्मा उस सम्बन्धी निर्विकल्प रुचि। वह विषय कहलाये न? विषय अर्थात् उस सम्बन्धी राग बिना का निर्विकल्प ज्ञान। अन्तर ज्ञायक का ज्ञान और ज्ञायक में अनुभूति। वह तीनों निर्विकार अभेद रत्नत्रय वीतरागी पर्यायरूप परिणाम है। उसके द्वारा **द्वारा, संवर-निर्जरा-मोक्षपदार्थों का कर्ता होता है;...** समझ में आया?

मोक्ष का कर्ता अभेद रत्नत्रय परम्परा, साक्षात् निश्चय। यहाँ तो कहते हैं कि मोक्ष की पर्याय और संवर, निर्जरा की पर्याय का कर्ता अभेद रत्नत्रय परिणाम द्वारा ही

कर्ता होता है। सेठी! समझ में आया? बहुत ही शास्त्र के वाँचनवाले ऐसा मानते हैं। हमने शास्त्र में से ऐसा निकाला है, ऐसा निकाला है। टोडरमलजी ने निकाला है, ऐसा नहीं। पण्डित जयचन्द्रजी ने निकाला है ऐसा नहीं, बनारसीदासजी ने निकाला है ऐसा नहीं। हमने निकाला है। चौथे से छठवें तक व्यवहाररत्नत्रय होता है। सातवें तक होता है, यह तो और ऐसा कहते हैं। बारहवें (गुणस्थान में) निश्चय होता है। यहाँ तो कहते हैं, जहाँ से संवर-निर्जरा की पर्याय उत्पन्न हुई, उसका करनेवाला परिणमनेवाला अभेद रत्नत्रय है। देवीलालजी! समझ में आया?

अभी शास्त्र का अर्थ कैसे है, उसे समझने की तैयारी नहीं और अपनी कल्पना से अर्थ करते हैं। यशोविजयजी कहते हैं। 'जाति अन्ध का दोष नहीं आकरो जो जाने नहीं अर्थ, जाति अन्ध।' समझे? जन्मान्ध। जन्मान्ध तो कुछ देखता नहीं बेचारा! क्या करे? जाति अन्ध का रे दोष नहीं आकरो। जो जाने नहीं अर्थ, मिथ्यादृष्टि रे इससे आकरो। करे अर्थ का अनर्थ। वह अन्ध तो कुछ देखता नहीं। यह मिथ्यादृष्टि अन्धा अर्थ के अनर्थ करता है। आहाहा! जयसेन आचार्य में से आधार लेकर हमारे पण्डितजी ने डाला है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : है। नहीं, पहले इतना सब नहीं था। पहले तो समुच्चय था। व्यवहार-निश्चय, व्यवहार-निश्चय। परन्तु यह तो अब पहले व्यवहार होता है, ऐसे तर्क बहुत आते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : लाओ यहाँ। लाओ तुम्हारे यहाँ लाना, वहाँ जयपुर ले जाना, ऐसा नहीं। आहाहा! मीठालाल है न! धीरे-धीरे मीठा बोले। देखो!

अभेदरत्नत्रयपरिणाम द्वारा,... वास्तविक स्व-आश्रय। स्व-आश्रय। अभेद शब्द से आत्मा ज्ञायक निर्विकारी तत्त्व, उसकी स्वरूप सम्बन्धी रुचि, उस सम्बन्धी ज्ञान और उस सम्बन्धी अनुभूति-स्थिरता। वह अभेदरत्नत्रय कहो, निश्चयरत्नत्रय कहो, यथार्थ मोक्षमार्ग कहो, वह पूरे **संवर-निर्जरा-मोक्षपदार्थों का कर्ता होता है;...** लो! देखो!

चौथे, पाँचवें, छठे में संवर-निर्जरा है या नहीं? समझ में आया? संवर-निर्जरा है या नहीं? तो संवर-निर्जरा का कर्ता व्यवहाररत्नत्रय है, भेदरत्नत्रय? वह तो पराश्रित भाव है। भेदरत्नत्रय स्व-पर प्रगटे, वह भाव है। मैल है, आस्रव है, उदयभाव है। तो वे कहते हैं नहीं। वह तो क्षयोपशम, क्षायिक, औपशमिकभाव है। बहुत गड़बड़, बहुत गड़बड़! सामने किसी को ज्ञान नहीं होता। सुननेवाले! और यह सब ऐसा का ऐसा चलता है। ओहोहो! वाह! वाह! अच्छा निकाला!

यहाँ कहते हैं कि वह **संवर-निर्जरा-मोक्षपदार्थों का कर्ता होता है;...** स्वशुद्ध चैतन्य निर्विकारी स्वभाव, स्व कहो या निर्विकारी आत्मतत्त्व कहो। आत्मतत्त्व। आत्मा का निर्दोष त्रिकाली आनन्द पवित्र स्वभाव। उस सम्बन्धी श्रद्धा, ज्ञान और अनुभूति वह परिणाम द्वारा, संवर-निर्जरा और मोक्ष के परिणाम का कर्ता आत्मा होता है। समझ में आया? भेदरत्नत्रय से संवर, निर्जरा और मोक्ष का कर्ता नहीं। भेदरत्नत्रय से मोक्ष की परिणति नहीं होती। भेदरत्नत्रय से संवर, निर्जरा की परिणति नहीं होती, ऐसा कहते हैं लो! समझ में आया?

और जीव पहले से संवर, निर्जरा का कर्ता अभेद रत्नत्रय है, पूरा मोक्ष होने में अभेद रत्नत्रय परिणाम मोक्षपर्याय का कर्ता हैं। कहो, समझ में आया? और **जब पूर्वोक्त निश्चयरत्नत्रय में...** देखो! **पूर्वोक्त।** इस अभेद रत्नत्रय को ही निश्चयरत्नत्रय कहा। निश्चय का स्वआश्रय। अकेला ज्ञायकभाव परमनिर्दोष, उसके आश्रय से दृष्टि ज्ञान लीनता हुई, उसे अभेद रत्नत्रय कहो या निश्चयरत्नत्रय कहो, वह **निश्चयरत्नत्रय में स्थिर नहीं रह सकता...** स्थिर नहीं रह सकता है, तब **तब निर्दोषपरमात्मस्वरूप अर्हंत-सिद्धों की...** भक्ति करता है। ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

असाधारण भक्तिरूप,... समझ में आया? **निर्दोषपरमात्मस्वरूप अर्हंत-सिद्धों की भक्ति करते हैं। तथा उनका (निर्दोष परमात्मा का) आराधन करनेवाले आचार्य-उपाध्याय-साधुओं की निर्भर असाधारण भक्ति...** बहुत ही उल्लास, विकल्प से असाधारण भक्ति वह सम्यग्दृष्टि को ही होती है, इस कारण उसे असाधारण कहा।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह हुआ। उसमें फिर स्थिर नहीं रह सकता। थोड़ा हुआ तो

है, परन्तु अन्दर स्थिर नहीं रह सकता तो अरिहन्त, सिद्ध की भक्ति का शुभभाव आता है और अरिहन्त सिद्ध का आराधन करनेवाले आचार्य-उपाध्याय-साधु की भक्ति का भाव करता है, करता है अर्थात् आता है, ऐसा कहने में आता है। समझ में आया? यह परम्परा अर्थात् इसका अभाव करके जायेगा, इस कारण से। समझ में आया? **असाधारण भक्तिरूप ऐसा जो संसारविच्छेद के कारणभूत,....** है तो शुभभाव। परम्परा विच्छेद के कारण का आरोप आया। संसार विच्छेद का कारण तो अन्दर निश्चयरत्नत्रय है, परन्तु शुभभाव में संसार विच्छेद का आरोप आया। अभी कहेंगे। आगे कहेंगे, आगे। स्पष्टीकरण करेंगे। नीचे (फुटनोट में) फिर भाई-पण्डितजी स्पष्टीकरण करेंगे पीछे-पीछे। **असाधारण भक्तिरूप ऐसा जो संसारविच्छेद के कारणभूत, परम्परा से मुक्तिकारणभूत,...** देखो!

तीर्थंकरप्रकृति आदि पुण्य का अनुबन्ध करनेवाला विशिष्ट पुण्य... यह लेना है, भाव लेना है। **परम्परा से मुक्तिकारणभूत, तीर्थंकरप्रकृति आदि पुण्य...** आहारकशरीरादि। बँध जाये। **अनुबन्ध करनेवाला...** इस पुण्य का अनुबन्ध करनेवाला, खास पुण्य से **अनिहत वृत्ति से....** ज्ञानी। अनिहित वृत्ति से, उसमें निदान था। भाव नहीं कि मैं करूँ परन्तु अनिहित वृत्ति से ऐसा भाव आये बिना नहीं रहता। **निदानरहित परिणाम से करता है।** लो! हेतु उसका यह हो, वह मुझे लाभदायक है, ऐसे निदानरहित परिणामकर्ता अर्थात् परिणमता है। ज्ञानी भी शुभपरिणामरूप परिणमता है। उसे यहाँ कर्ता कहने में आया है। समझ में आया?

संवर, निर्जरारूप परिणमता है और मोक्षरूप परिणमता है। ऐसे निर्विकल्प अनुभव के उपयोग में स्थिर न रह सके, तब ऐसे भावरूप पुण्यभाव (आते हैं)। जिससे तीर्थंकरप्रकृति बँधे, ऐसे शुभभाव का कर्ता होता है। कहो, समझ में आया? **इस प्रकार अज्ञानी जीव पापादि चार पदार्थों का कर्ता है...** स्पष्टीकरण कर दिया, योगफल। अज्ञानी जीव पाप, पुण्य, आस्रव, बन्ध का कर्ता होता है। संवर, निर्जरा, मोक्ष का नहीं। अपने ज्ञायकभाव का स्वसंवेदन निर्विकल्प ज्ञानचेतना के अभाव से अज्ञानी पाप-पुण्य और आस्रव, बन्ध के परिणाम का कर्ता होता है। इन चार प्रकार के परिणाम के परिणमनरूप दशा है। ज्ञानी संवर आदि तीन पदार्थों का कर्ता है। संवर, निर्जरा और

मोक्ष। पुण्य को कहा परन्तु अनिहित वृत्ति से, उसे छोड़ दिया। संवर, निर्जरा और मोक्ष का ही कर्ता है।

मुमुक्षु : अनिहित वृत्ति से अर्थात् ?

पूज्य गुरुदेवश्री : इच्छा बिना। अनिहित वृत्ति से (अर्थात्) इच्छा नहीं कि ऐसा करूँ, (परन्तु) आये बिना रहती नहीं। कहो, समझ में आया? देखो! इसका स्पष्टीकरण पीछे फुटनोट में किया है। पीछे के पृष्ठ में फुटनोट। विच्छेद, विच्छेद कहा न? उसका स्पष्टीकरण करते हैं। (नीचे) फुटनोट है न?

यहाँ ज्ञानी के विशिष्ट पुण्य को... खास पुण्य को, **संसारविच्छेद के कारणभूत कहा...** वहाँ शुभभाव को कहा न? जिससे तीर्थंकरगोत्र बँधे आदि, उस भाव को संसार विच्छेद के कारणभूत कहा है। **वहाँ ऐसा समझना कि—वास्तव में तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र...** अभेद रत्नत्रय निश्चय। वह संसार विच्छेद के कारणभूत है। संसार की पर्याय के पापादि का नाश करनेवाला तो निश्चयरत्नत्रय है, **परन्तु जब वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र अपूर्णदशा में होता है,...** पूरी दशा नहीं है, अपूर्ण दशा है। दर्शन-ज्ञान तो है परन्तु चारित्र में अभी अपूर्णदशा है। तब उसके साथ अनिहितवृत्ति, अनिहितवृत्ति का अर्थ किया। अनिश्चितवृत्ति से, इच्छा बिना वृत्ति से वर्तता हुआ, **विशिष्ट पुण्य में संसारविच्छेद के कारणपने का आरोप किया जाता है।** वास्तव में तो निश्चयरत्नत्रय संसार विच्छेद के कारणभूत है। शुभभाव में आरोप से संसार विच्छेद का कारण कहा गया है। **वह आरोप भी वास्तविक कारण के—सम्यग्दर्शनादि के—अस्तित्व में ही हो सकता है।** देखो!

वह आरोप भी वास्तविक अर्थात् आत्मा निर्दोष, निर्विकारी की रुचि, ज्ञान और रमणता ऐसी भूमिका में जो शुभभाव आया, उसे आरोप दिया जाता है। अज्ञानी के शुभभाव में भी संसार विच्छेद का आरोप भी नहीं कहा जाता।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : तीन हो गये हैं। राग का अभाव। उसका राग का अभाव। उस भाव से बँधा है, वह राग का अभाव करेगा। प्रकृति उसके कारण से नाश होगी। भाव

का नाश करके हो जायेगा। ज्ञानी को शुभभाव में आरोप आया। क्योंकि उसकी दृष्टि वहाँ नहीं है, स्वसंवेदन में है। अनिहितवृत्ति से आया। उसका अभाव करके वीतरागता हो जायेगी। तो उसे परम्परा का आरोप दिया गया है। अज्ञानी को आत्मा के स्वद्रव्य का आश्रय, दृष्टि ज्ञान नहीं (तो) उसका चाहे जितना शुभभाव हो, संसार विच्छेद का आरोप भी उस पुण्यपरिणाम में नहीं आता। समझ में आया?

क्योंकि स्वद्रव्य के आश्रय से ही भव का अभाव होता है। तीन काल-तीन लोक में विकल्प के आश्रय से भव का अभाव नहीं होता। सेठी! निर्दोष, निर्विकार आत्मतत्त्व। तत्त्व कहो या भाव कहो। त्रिकाली ज्ञान, आनन्दस्वभाव के आश्रय से ही दृष्टि, ज्ञान और लीनता, वही भव के अभाव का कारण है। ज्ञानी को शुभभाव बीच में आया तो आरोप दिया गया कि परम्परा कारण संसार विच्छेद का है। वास्तव में तो है ही नहीं। यह आरोप भी ज्ञानी सम्यग्दृष्टि स्वसंवेदन, अपने द्रव्य के आश्रय से दृष्टि—ज्ञान किये हों, उसे शुभभाव में ऐसा आरोप आता है। स्वद्रव्य का आश्रय नहीं, अकेला शुभराग होता है। चाहे तो पंच महाव्रत का हो या अट्ठाईस मूलगुण हो, उस भाव में परम्परा संसार विच्छेद के कारण का आरोप भी नहीं आता। बराबर है? देखो! यह स्पष्टीकरण अभेद रत्नत्रय संवर-निर्जरा का कारण यहाँ से, हाँ, चौथे में उतने अंश में संवर, निर्जरा है या नहीं? या भेदरत्नत्रय-व्यवहाररत्नत्रय से संवर-निर्जरा होते हैं? व्यवहाररत्नत्रय तो उदय भाव है, राग है, विकल्प है। ओहोहो!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, हाँ। सातवें में कहो या आठवें में कहो या बारहवें में। खबर है। कोई और तेरहवें में पूरा। बहुत ही गड़बड़ हो गयी है। नहीं, नहीं, चारों का एक मत नहीं उसमें। अज्ञानी के अनेक मत होते हैं। समझ में आया? फिर विकल्प आता है, उसे भेदरत्नत्रय कहते हैं। समझ में आया? क्या है? क्या चरणानुयोग में आता है? शुभभाव की बात चलती है। चरणानुयोग में पाप से बचने के लिये शुभभाव की बात चलती है। परन्तु उस शुभभाव में सम्यग्दर्शन-ज्ञान अपना शुद्धस्वभाव, ऐसी दृष्टि न हो तो अकेले शुभभाव में संसार विच्छेद का आरोप भी कहा नहीं जाता।

भगवान आत्मा ज्ञान चिदानन्दस्वरूप सर्वज्ञ परमात्मा तीर्थंकर प्रभु ने जैसा आत्मा

देखा, तो आत्मा किसे कहते हैं ? शरीर, वाणी इस जड़ को आत्मा कहते हैं ? और दया, दान के परिणाम को आत्मा कहते हैं ? वह तो आस्रव है। पुण्य-पाप परिणाम तो आस्रव है, वह आत्मा नहीं। आत्मा निर्दोष स्वभावभाव। देखो! इसलिए विशेषण दिया। निर्विकार आत्मतत्त्व। समझ में आया ? पुण्य-पाप का विकल्प जो भाव है, वह तो आस्रव है। बन्ध का कारण है। उससे रहित निर्दोष, निर्विकारी आत्मतत्त्व भगवान ज्ञानमूर्ति प्रभु की अन्तररुचि, उस सम्बन्धी ज्ञान, उस सम्बन्धी लीनता, साक्षात् संवर, निर्जरा मोक्ष का कारण है। अमरचन्दभाई! यह बात है।

'लाख बात की बात यही निश्चय उर लाओ' आता है या नहीं ? भाई! (छह) ढाला में आता है। छहढाला में (आता है)। यह बात ही, परन्तु व्यवहार करते-करते क्या निश्चय बिना व्यवहार कहते ही नहीं। यहाँ तो यह कहते हैं। स्वचैतन्य ज्ञायकभाव निर्दोष स्वभावभाव। पुण्य, पाप व्यवहाररत्नत्रय सदोष भाव है, रागभाव है, उदयभाव है। सम्यग्दृष्टि को होता है परन्तु वह भाव स्वभावभाव है, वह नहीं। अरे! ऐसे निर्णय का भी ठिकाना नहीं! आहाहा! इस गहरे कुँऐं की गम्भीरता का इसे कहाँ से पता लगे ? यह गम्भीर पदार्थ! ओहोहो! कितना आनन्द चैतन्य... सबसे निर्दोष, कहा न ? निर्दोष, निर्विकार आत्मतत्त्व। निर्विकार आत्मभाव, त्रिकाल स्वभावभाव, निर्विकार निर्दोष आत्मतत्त्व। पुण्य, दया, दान के विकल्प सब राग। वे तो आस्रवतत्त्व हैं। उनसे रहित निर्विकारी अपना भगवान महान सत्ता धाम आनन्द, उस सम्बन्धी रुचि, ज्ञान और रमणता, वह अभेद रत्नत्रय—निश्चयरत्नत्रय है। संवर, निर्जरा, मोक्ष का परिणामवाला वह।

मुमुक्षु : यह तो एकान्त हो गया, अनेकान्त नहीं हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : एकान्त यह। ऐसा है और व्यवहाररत्नत्रय से नहीं, इसका नाम अनेकान्त है। व्यवहार से है और निश्चय से भी है, ऐसा अनेकान्त है ही नहीं। उस अभेद रत्नत्रय से संवर, निर्जरा, मोक्ष का कर्ता है। भेद रत्नत्रय से संवर, निर्जरा, मोक्ष का कर्ता नहीं। इसका नाम अनेकान्त है। परस्पर विरुद्ध शक्ति, देखो! परस्पर विरुद्ध शक्ति का नाम अनेकान्त है। वह इसमें है। एक वस्तु को वस्तुपने को निपजानेवाली अस्ति-नास्ति आदि परस्पर (विरुद्ध) दो शक्तियों का प्रकाशित होना अनेकान्त है। विरुद्ध अस्ति-नास्ति। अपने अभेद रत्नत्रय से एक ही मोक्षमार्ग है। व्यवहार से कहा,

वह कथनमात्र है। है नहीं। आहाहा! अभी तो यह घड़ी हो गयी वह। डाल दिया नहीं। उसकी अनसमझ से डाल दिया है। सेठ! व्यवहारनय से नहीं।

मुमुक्षु : व्यवहारनय से भी नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहारनय तो श्रुतज्ञान की एक पर्याय है। जाननेयोग्य बराबर हुआ, वहाँ राग है, ऐसा ज्ञान हुआ तो सम्यग्ज्ञान का अंश है। समझ में आया? जैसा त्रिकाली ज्ञायक का ज्ञान हुआ, ऐसा व्यवहार का ज्ञान हुआ। राग है, भेद है। उसका ज्ञान भी व्यवहारनय श्रुतज्ञान का एक अंश है। नय है। निश्चयनय श्रुतज्ञान का अंश है, वैसे व्यवहारनय भी श्रुतज्ञान का अंश है, परन्तु जानने के लिये है। आदरने के लिये नहीं। आहाहा! समझ में आया?

व्यवहार को न जाने और न माने तो वह एकान्त मिथ्यादृष्टि है और व्यवहार को आदरणीय माने तो भी एकान्त मिथ्यादृष्टि है। यह बात है। सर्वथा बन्ध का कारण है। सर्वथा बन्ध का कारण है। यह यहाँ आयेगा। कलश-टीका आयेगी न? सर्वथा बन्ध का कारण। समझ में आया? अलम्-अलम् है न? कहाँ गया अलम्? यह बतायेगा। देखो! क्या कहते हैं, देखो!

द्रव्य क्रिया, सिद्धान्त को पढ़ो, लिखो इत्यादि किंचित् न अस्ति। शुद्ध जीवस्वरूप अनुभव सर्वथा मोक्षमार्ग है। अन्य समस्त मोक्षमार्ग सर्वथा है नहीं। यह बारह गाथा आते-आते देर लगी न? आवे तब आवे न? बाकी तो ऐसा स्पष्ट किया है! समझ में आया? शुद्ध जीव को, अनुभवी को इतना मोक्ष का कारण है। समयसार उपरान्त जिस जीव को स्वरूप का अनुभव नहीं, उसे दूसरा, द्रव्यक्रिया—सिद्धान्त को वाँचन करो, लिखो, वह किंचित् भी मोक्षमार्ग नहीं है। राग है, बन्धमार्ग है। समझ में आया? उसका ज्ञान करना है, वह भी श्रुतज्ञान का अंश है। जाननेयोग्य है। आहाहा! समझ में आया? शुद्ध जीवस्वरूप अनुभव मोक्षमार्ग सर्वथा है। जयपुर की ढूंढारी भाषा में वहाँ छे, लिखा है। हों! है। अन्य समस्त मोक्षमार्ग सर्वथा है नहीं। लो! आगे भी वही मोक्षमार्ग है, उससे अधिक कोई मोक्षमार्ग कहे, ऐसे अभेदरत्नत्रय से दूसरा कोई मोक्षमार्ग कहे (तो वह) बहिरात्मा है। ...

मुमुक्षु : पंच महाव्रत पालता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन पालता है? बीच में आते हैं। पाले कौन? कहा न? अनिहित वृत्ति से शुभभाव पंच महाव्रत आदि मुनि को आये बिना नहीं रहते। आते अवश्य हैं। वहाँ पालना है, आस्रव का रक्षण करना है? बच्चे को पालनकर बड़ा करना, ऐसा है। सेठी! आता है। व्यवहार के साथ कहने में आता है। आता है इसका अर्थ क्या? अनिहितवृत्ति से, निश्चयरत्नत्रय में स्थिर न हो (तब) ऐसा भाव अवश्य आता है। व्यवहार... राग शुभभाव, उसमें आरोप भी आता है कि संसार विच्छेद का परम्परा कारण है, ऐसा भी आरोप आता है। यह निश्चयरत्नत्रय की अभेद की दृष्टि हो तो। समझ में आया? तो शुभभाव आता है। है बन्ध का कारण।

भगवान आत्मा ज्ञायक चिदानन्द प्रभु, सर्वज्ञ परमात्मा तीर्थंकरदेव ने जैसी वस्तु देखी, वैसी वस्तु की अन्तर्दृष्टि ज्ञान और रमणता एक ही मोक्ष का मार्ग है। कोई बीच में विकल्प... जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बाँधे, वह भाव भी मोक्षमार्ग नहीं है। जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बाँधे, वह भाव भी मोक्षमार्ग नहीं है। वह भाव बन्धमार्ग। तेरे पास तेरी पूँजी पड़ी है, महानिधान, उसकी तो तू दृष्टि करता नहीं, निहारता नहीं और यह गड़बड़ क्रियाकाण्ड चरणानुयोग में कहा है, यह सब कहा है। निश्चय की भूमिका में कैसा व्यवहार होता है, उसका ध्यान (ख्याल) कराया है। व्यवहारनय से कहते हैं कि पालन करो। पालता है, ऐसा कहा जाता है। समझ में आया?

देखो! यह अलम्-अलम् में है, हों! न समयसार, न परम किंचित् अस्तिहलो। हलोमा।.....समझ में आया? वास्तविक **वह कारण के—सम्यग्दर्शनादि के—अस्तित्व में ही हो सकता है।** नहीं तो आरोप भी नहीं होता। लो, यह पूरा हो गया। १३१ गाथा। १३० गाथा पूरी हुई। १३१ गाथा। **अब पुण्य-पापपदार्थ का व्याख्यान है।** पुण्य किसे कहते हैं, पाप किसे कहते हैं, यह व्याख्या। पश्चात् आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष चलेगा। पश्चात् मोक्षमार्ग, पाप के व्याख्यान के बाद। कहो, समझ में आया?

गाथा - १३१

मोहो रागो दोसो चित्तपसादो य जस्स भावम्मि ।
विज्जदि तस्स सुहो वा असुहो वा होदि परिणामो ।। १३१ ।।

मोहो रागो द्वेषश्चित्तप्रसादः वा यस्य भावे ।
विद्यते तस्य शुभो वा अशुभो वा भवति परिणामः ।। १३१ ।।

पुण्यपापयोग्यभावस्वभावाख्यापनमेतत् ।

इह हि दर्शनमोहनीयविपाककलुषपरिणामता मोहः । विचित्रचारित्रमोहनीयविपाकप्रत्यये प्रीत्यप्रीती रागद्वेषौ । तस्यैव मन्दोदये विशुद्धपरिणामता चित्तप्रसादपरिणामः । एवमिमे यस्य भावे भवन्ति, तस्यवश्यं भवति शुभोऽशुभो वा परिणामः । तत्र यत्र प्रशस्तरागश्चित्तप्रसादश्च तत्र शुभः परिणामः, यत्र तु मोहद्वेषावप्रशस्तरागश्च तत्राऽशुभ इति ।। १३१ ।।

मोह राग अर द्वेष अथवा हर्ष जिसके चित्त में।
इस जीव के शुभ या अशुभ परिणाम का सद्भाव है।।१३१।।

अन्वयार्थ :— [यस्य भावे] जिसके भाव में [मोहः] मोह, [राग] राग, [द्वेषः] द्वेष, [वा] अथवा, [चित्तप्रसादः] चित्तप्रसन्नता [विद्यते] है, [तस्य] उसे [शुभः वा अशुभः वा] शुभ अथवा अशुभ [परिणामः] परिणाम [भवति] है।

टीका :— यह, पुण्य-पाप के योग्य भाव के स्वभाव का (—स्वरूप का) कथन है।

यहाँ, दर्शनमोहनीय के विपाक से जो कलुषित परिणाम, वह मोह है; विचित्र (-अनेक प्रकार के) चारित्रमोहनीय का विपाक जिसका आश्रय (-निमित्त) है। ऐसी प्रीति-अप्रीति, वह राग-द्वेष है; उसी के (-चारित्रमोहनीय के ही) मन्द उदय से होनेवाले जो विशुद्ध परिणाम, वह [१]चित्तप्रसादपरिणाम (-मन की प्रसन्नतारूप परिणाम) है। इस प्रकार यह (मोह, राग, द्वेष अथवा चित्तप्रसाद) जिसके भाव में है, उसे अवश्य शुभ अथवा अशुभ परिणाम है। उसमें, जहाँ प्रशस्त राग तथा चित्तप्रसाद है, वहाँ शुभ परिणाम है और जहाँ मोह, द्वेष तथा अप्रशस्त राग है, वहाँ अशुभ परिणाम है ॥१३१॥

१. प्रसाद = प्रसन्नता; विशुद्धता; उज्ज्वलता।

गाथा - १३१ पर प्रवचन

मोहो रागो दोसो चित्तपसादो य जस्स भावम्मि।
विज्जदि तस्स सुहो वा असुहो वा होदि परिणामो।।१३१।।

टीका :— यह, पुण्य-पाप के योग्य भाव के स्वभाव का (-स्वरूप का) कथन है। है ? १९४ पृष्ठ, पीछे टीका है।

टीका :— यह, पुण्य-पाप के योग्य, भाव! हों! भाव की बात। आत्मा में पुण्यभाव और पापभाव जो दोष है, बन्ध का कारण है, वह किसे कहना, उसकी यहाँ पहिचान कराते हैं। **पुण्य-पाप के योग्य भाव के स्वभाव का...** देखो! ऐसे भाव के स्वभाव का अर्थात् स्वरूप का कथन है।

यहाँ, दर्शनमोहनीय के विपाक से जो कलुषित परिणाम, वह मोह है;... आत्मा में पुण्य परिणाम मेरा धर्म है, पापभाव में मुझे मजा आता है—ऐसा मिथ्यात्वभाव, वह अशुभभाव है। वह मोह है। पापपरिणाम और उसमें मुझे मजा आता है। पुण्यपरिणाम वह मेरा धर्म है और अल्पज्ञपना, वह मेरा पूर्ण तत्त्व है—ऐसी जिसकी दृष्टि है, उसे मोह अर्थात् मिथ्यात्व कलुषित परिणाम कहा जाता है। वह मिथ्यात्वभाव है। मिथ्यादर्शनशल्य।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या अन्तर है ? यह या दूसरा ? कहा न ? यह एक बात की है। आत्मा में जो पापभाव होता है—हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, भोग, वासना, उसमें मुझे मजा आता है, आनन्द आता है, वह मिथ्यात्वभाव है। और दया, दान, पुण्य के परिणाम होते हैं, वह धर्म है, परमार्थ धर्म है, वह मिथ्यात्वभाव है। और आत्मा में अल्पज्ञ, अल्प दर्शी, अल्प वीर्य जो अल्प पर्याय है, उसे पूर्ण तत्त्व मानना, वह मिथ्यात्व है। अल्प में पूर्ण को मानना और पुण्य को धर्म मानना और पाप में मजा मानना, इसका नाम कलुषित मिथ्यात्वभाव है। कहो, समझ में आया ? परपदार्थ की बात नहीं करते। विकार और अल्पज्ञ। समझ में आया ? इस प्रकार का विकार और एक अल्पज्ञ, अल्पदर्शी, अल्पवीर्य,

इतना ही मैं हूँ, इतनी ही दृष्टि रखी है, उसमें मुझे मजा है, वही मिथ्यात्व कलुषित भाव है।

बाहर पैसा मेरा और मकान मेरा मानना तो कहीं रह गया। वह तो धूल रह गयी कहीं। पैसा कहाँ आत्मा में घुस गया है! वह तो बाहर है, खबर है। यहाँ जेब में लाये हैं? कहाँ है? यहाँ पैसे लाये हैं? जेब में हैं? कहाँ है? गुंजा समझते हो? जेब, जेब। है? यहाँ पैसा है? हम पैसेवाले हैं, ऐसी अपने पास ममता है। यह ममता, वही पाप है और उस पाप में मुझे मजा है, यह मिथ्यात्वभाव है। धूल में रुपये दान में... दान तो राग की मन्दता करे तो होता है। पैसा हो या न हो, उसकी बात कहाँ करते हैं। एकेन्द्रिय को भी पुण्यभाव नहीं होता? यहाँ पैसा नहीं है, मुनि को दान नहीं? अमरचन्दभाई! यह निगोद के जीव, नित्यनिगोद। मनुष्य होता है, पुण्यभाव-शुभभाव होता है, उसमें क्या है? कषाय की मन्दता होती है, शुभभाव होता है। पैसा भी नहीं। आहार-पानी देने के लिये कुछ नहीं। पुण्य भी नहीं। एक शरीर के अतिरिक्त मन और वाणी भी नहीं। तो क्या आया? भाव तो अपनी कषाय की मन्दता से होता है। कहो, समझ में आया?

दर्शनमोहनीय के विपाक से जो कलुषित परिणाम। यह तो कर्म के निमित्त से लिया, परन्तु परिणाम में अपना सम्बन्ध किया तो उसमें कलुषित परिणाम मिथ्यात्व हुआ, उसे मोह कहते हैं। समझ में आया? मिथ्यादर्शन शल्य। मिथ्याश्रद्धा, विपरीत अभिप्राय। एक बात। वह अशुभभाव है। यहाँ अशुभ की बात पहले की। शुभ को बाद में लेंगे।

वह पापभाव है। मोह एक पापभाव है। पापभाव जिसका स्वभाव है, स्वरूप है, लो! **(-अनेक प्रकार के) चारित्रमोहनीय का विपाक जिसका आश्रय (-निमित्त) है।** परिणाम में। जीव में शुभ-अशुभ परिणाम होते हैं, चारित्रमोहनीय का विपाक जिसका आश्रय है, देखा! पहले दर्शनमोहनीय के विपाक से कलुषित परिणाम, ऐसा कहा था। यहाँ स्पष्टीकरण कर दिया। **चारित्रमोहनीय का विपाक जिसका आश्रय (-निमित्त) है।** समझ में आया? उसमें ऐसा लेना। दर्शनमोहनीय का उदय, मिथ्यात्व परिणाम करता है तो उसे निमित्त कहा जाता है। समझ में आया? **ऐसी प्रीति-अप्रीति**

वह राग-द्वेष है;... लो! यह राग और द्वेष। दया, दान का भाव वह पुण्य, राग और दूसरा द्वेष। तथा स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, लक्ष्मी के प्रति प्रेम, वह अशुभराग। समझ में आया?

उसी के (-चारित्रमोहनीय के ही) मन्द उदय से... है न? **ऐसी प्रीति-अप्रीति वह राग-द्वेष है; मन्द उदय से होनेवाले जो विशुद्ध परिणाम वह...** पुण्य है। राग में भी, यह तो पहले आया, वह अशुभ है। मन्द उदय से, राग का मन्द भाव हो—दया का, दान का, विशुद्ध परिणाम, वह शुभ पुण्य है, पुण्यबन्ध का कारण है। धर्म नहीं, संवर-निर्जरा नहीं। **चित्तप्रसादपरिणाम...** देखो! **चित्त की प्रसन्नता; विशुद्धता; उज्ज्वलता।** यह सब शुभभाव है। **(-मन की प्रसन्नतारूप परिणाम) है। इस प्रकार यह (मोह, राग, द्वेष अथवा चित्तप्रसाद) जिसके भाव में है, उसे अवश्य शुभ अथवा अशुभ परिणाम है।** लो! जिसके भाव में ऐसे भाव हैं। उसे शुभ और अशुभ (परिणाम हैं)। राग-द्वेष अकेले स्त्री, कुटुम्ब, अगाड़ी है, वह अशुभ है। द्वेष को यहाँ अशुभ गिनने में आया है। मोह-मिथ्यात्व अशुभ है। दया, दान आदि में राग की मन्दता हो तो वह शुभ है।

इस प्रकार यह (मोह, राग, द्वेष अथवा चित्तप्रसाद) जिसके भाव में है,... जो आत्मा की पर्याय में वह है, **उसे अवश्य शुभ अथवा अशुभ परिणाम है।** कहा जायेगा। दोनों पुण्य और पाप के भाव हैं। पुण्य और पाप तत्त्व है। ज्ञायकतत्त्व भिन्न आत्मा। निर्दोष स्वभावभावरूपी ज्ञायकभाव, उसमें परिणमन में यह शुभ और अशुभभाव हो, (वह) बन्ध का कारण है। समझ में आया? धर्म का किंचित् कारण नहीं। दया, दान, व्रत, भक्ति, विकल्प, वह पुण्यपरिणाम। हिंसा, झूठ, चोरी, अव्रत, विकल्प, वह पापपरिणाम, जिसके परिणाम में पुण्य और पापभाव दोनों बन्ध का कारण है। समझ में आया? **उसमें, जहाँ प्रशस्त राग तथा चित्तप्रसाद है,...** देखो! स्पष्टीकरण करते हैं। जिसमें शुभराग है, दया, दान, भक्ति, पूजा और चित्त की प्रसन्नता, देव-गुरु-शास्त्र के प्रति उल्लास, प्रसन्नता, ऐसे शुभपरिणाम। वे शुभपरिणाम हैं, पुण्यपरिणाम हैं। पुण्यबन्ध का कारण है; धर्म नहीं। समझ में आया? अभी तो बहुत ही गड़बड़ चलती है। सारे वीतरागमार्ग में.... दया, दान, व्रत, तप, भक्ति करो, वह धर्म है। भगवान कहते हैं कि वह राग मन्द हो तो पुण्य है। धर्म-बर्म नहीं। धर्म संवर, निर्जरा है। यह तो पुण्य-

पापतत्त्व की बात चलती है। पुण्य-पाप, (वह) संवर-निर्जरा नहीं है। संवर, निर्जरा, (वह) पुण्य-पाप नहीं है। समझ में आया? सात पदार्थ की व्याख्या चलती है। जीव और अजीव दो द्रव्य हैं। दो के संग से सात पर्याय जीव में और सात पर्याय जड़ में है। यहाँ जीव की बात चलती है और जहाँ मिथ्यात्वभाव है, द्वेषभाव है और **अप्रशस्त राग (अशुभ) है, वहाँ अशुभ परिणाम है।** लो! शुभ-अशुभपरिणाम की व्याख्या। समझ में आया? इतना भी समझ में नहीं आता? कहो, आहाहा! कितने होशियार?

आत्मा में जितना विपरीत मिथ्यात्व का भाव है कि पुण्य-परिणाम में धर्म है। वह पुण्य-परिणाम दया, दान, वह संवर है - ऐसी मान्यता का भाव, मिथ्यात्वभाव है, वह अशुभभाव है और पर के प्रति द्वेष करना, वह अशुभभाव है और स्त्री, परिवार के प्रति राग करना, वह अशुभभाव है तथा देव-गुरु-शास्त्र के प्रति, सच्चे के प्रति उल्लास करना, भक्ति, चित्त की प्रसन्नताभाव, वह शुभ है। शुभ और अशुभ दोनों बन्ध का कारण है। कर्म का उदय किसने कहा? सुना नहीं? वह तो निमित्त है। उदय किसने कहा? जैन में कर्म की विपरीतता घुस गयी है। और एक पुण्यपरिणाम से धर्म होता है, ऐसी विपरीतता घुस गयी है। अनादि की है और वर्तमान में ऐसा कहनेवाले मिले तो पुष्टि हो गयी। सेठी! यह बड़े पुराने वृद्ध व्यक्ति हैं, इन्हें भी विपरीतता घुस गयी। यह तो यहाँ आकर जरा बदले। नहीं तो, नहीं... नहीं, यह क्या? प्रवीणभाई! ...यह तो पूर्व की बात है। देखो! अनादि काल से...

मुमुक्षु : चमक होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : चमक होती है। चमक होती है न? लोहे को जंग लग जाता है न, फिर चमक होती है न? अरे! सुन तो सही! यहाँ तो कहते हैं कि जितने दया, दान, व्रत, भक्ति विकल्प, तप मैंने किया, ऐसा विकल्प उठता है, वे सब पुण्यपरिणाम हैं। वह पुण्यपरिणाम है, उससे पुण्य बँधेगा। आत्मा को धर्म बिल्कुल नहीं होगा। अनादि से यह करता है और करता आया है। अपना स्वभाव पुण्यपरिणाम से भिन्न है। उसकी दृष्टि किये बिना, उसका अनुभव किये बिना कभी भी संवर-निर्जरा नहीं होते।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : तप से क्या? क्या तप? यह मैं नहीं, ऐसा विकल्प वह शुभ है। तप क्या? शुभपरिणाम है, यदि राग मन्द किया हो तो। मान के लिये किया हो तो अशुभभाव है। अपवास-बपवास पन्द्रह किये और मेरी, क्या कहलाती है? सांझी बाँटते हैं वह? इकट्ठे होकर साँझी बाँटते हैं न? प्रभावना करे, सांझी या ऐसा कुछ करे, दे ऐसा दे। ओहोहो! और पच्चीस लोग पूछने आवे। ओहो! बहिन! बहुत उपवास... सोंठ-बोंठ चोपड़े और करे... ओहो! वह तो अकेला पापभाव है। जगत में मान लेने का भाव है। और ऐसी कोई विधवा महिला हो, पाँच-पच्चीस हजार खर्च करना हो, पति से या किसी पुत्र से, वह तो पापभाव है। परन्तु राग मन्द किया हो तो पुण्य है। धर्म तो नहीं।

धर्म तो आत्मा आनन्दकन्द, शुद्ध द्रव्य में दृष्टि लगाये बिना धर्म की पर्याय द्रव्य में से आती नहीं। समझ में आया? अनादि से माना है और लोगों ने पुष्टि की है। हाय! हाय! महिलायें यह सब वर्षीतप करे और फिर खर्च करावे, पाँच, दस हजार.... पाँच, दस हजार खर्च। आहाहा! और नहीं तो वह व्यक्ति मर जाता है न? फिर न सोये तो। छाती न कूटे तो, विपरीतता पड़ी है यह? ऐसी महिलायें रूलावे।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी जानता नहीं। वहाँ पाप है। इसी प्रकार यह जरा अपवास-बपवास करे, लंघण। और वापस दो-पाँच हजार खर्च करावे तो, आहाहा! पुजाये-पुजाये बापू! धूल में भी तप नहीं। अब सुन न! तप किसे कहना? तुझे खबर नहीं है।

भगवान त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमात्मा तीर्थंकरदेव जैन परमेश्वर जिन्हें सौ इन्द्र पूजते हैं। वे भगवान कहते हैं कि भगवान! तेरी चीज़ इन दया, दान, पुण्य-पाप के विकल्प से भिन्न अन्दर है। ऐसी दृष्टि किये बिना तुझे धर्म तीन काल में संवर-निर्जरा होती नहीं। समझ में आया? भगवानभाई! यह भगवानभाई यहाँ पड़ाव डाला है। हाँ, वह मिथ्यात्व है, बापू! वह बड़ा मिथ्यात्व है। प्रत्येक मिथ्यात्व साथ में है।

यहाँ तो कहते हैं, हें! सर्वत्र घूम आवे। ऐसा कि यहाँ धर्म भी महँगा हो गया,

ऐसा। तेल महँगा, गुड़ महँगा, अनाज महँगा, धर्म महँगा हो पड़ा, ऐसा कहते हैं। यहाँ धमाल है। समझ में आया? सब महँगा हो गया। धर्म भी महँगा हो गया है। धर्म तो दुर्लभ ही है। अनादि से दुर्लभ है। अपना है, इसलिए सुलभ है; नहीं प्राप्त किया, इसलिए दुर्लभ है। यह बात है। स्वयं से प्राप्त होता है, उसमें किसी की आवश्यकता नहीं। विकल्प की आवश्यकता नहीं, मन की आवश्यकता नहीं, पैसे की आवश्यकता नहीं... नहीं। किसी की आवश्यकता नहीं। वह अपने आत्मा से प्राप्त होता है। उसे तो सुलभ को दुर्लभ मानता है। और यह लक्ष्मी-बक्ष्मी धूल अनन्त बार मिली। अनन्त बार मिली और अनन्त बार गयी। वह तो पुण्य हो तो आवे, उसमें क्या है? धूल में है? समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं, **प्रशस्त राग तथा चित्तप्रसाद है, वहाँ शुभ परिणाम, शुभभाव है और जहाँ मोह, द्वेष तथा अप्रशस्त राग है, वहाँ अशुभ परिणाम है।** यह उसका— शुभाशुभपरिणाम का स्वरूप। इसमें निर्णय करना चाहिए। नौ तत्त्व की श्रद्धा करने में पुण्य-पाप का तीसरा स्वरूप किस प्रकार का है, उसमें इसे समझकर श्रद्धा करना चाहिए। यह नौ तत्त्व की श्रद्धा कराते हैं। पुण्यतत्त्व को संवर माने और संवरतत्त्व भूल जाये। मूढ़ है, मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? बात करके कितना स्पष्ट किया है। देखो!

यहाँ तो कहे, चित्त प्रसन्नता शुभभाव है। नामकर्म में आता है.... चार कारण से शुभभाव है, वह शुभ है। उससे पुण्य बँधता है। नामकर्म से पुण्य बँधता है, लो! यह चार बोल अपने तत्त्वार्थसूत्र में आते हैं न? चार प्रकार से पुण्य बँधता है। नामकर्म। ....काया की सरलता, वचन की सरलता, मन की सरलता, अविसंवाद—किसी को ठगना नहीं। ऐसे चार भाव आते हैं। चार से पुण्य बनता है पाप। नामकर्म का पुण्य बँधता है। समझ में आया? आता है? नामकर्म में आता है। शुभ नामकर्म बँधता है न? काया, वाणी, मन, वह तो जड़ है, परन्तु उसमें सरल परिणाम रखना, (वह) पुण्यभाव है। समझ में आया? यह कहते हैं। यह ज्ञानार्णव में आता है। ज्ञानार्णव क्या कहलाता है? देखो! ज्ञानसागर, वह हमारे वीरजीभाई के पिताजी थे न? वह क्रियाकाण्ड में माननेवाले। यह जहाँ ८२ में (संवत् १९८२ में) बोल आया,... काया, मन और वाणी

के परिणाम अन्दर सरल हों, (वह) पुण्यबन्ध है, धर्म नहीं। महाराज! कुछ बात तो कहो। अकेले एकान्त में आये थे। क्या बात है? ...वह तो निमित्त है परन्तु अन्दर सरलता के परिणाम हों काया सम्बन्धी, भाषा सम्बन्धी शुभ नाम देखो! तुम्हारे ज्ञानसागर में लिखा है।

यह प्रौषध करे और सामायिक करे। कहाँ तेरे प्रौषध और सामायिक! अभी वस्तु की खबर नहीं, आत्मा कौन है, क्या कर सकता है, कैसा ज्ञाता-दृष्टा है? क्या कर सकता है, खबर नहीं। यह तेरे प्रौषध और सामायिक कहाँ से आये? प्रौषध और सामायिक तो पंचम गुणस्थान में होते हैं। अभी सम्यग्दर्शन की तो खबर नहीं। सेठी! वे बड़े-बड़े थे। वीरजीभाई के पिताजी, बड़े व्रत! बत्तीस सूत्र, प्रचलित सूत्र कहलाते। बत्तीस सूत्र कहलाते हैं न? साधु-आर्यिका को पढ़ावे। जामनगर में बड़े... वे जहाँ दो व्याख्या सुने, वहाँ उलझन में आ गये। ८२ के वर्ष, ३८ वर्ष हुए। एक दिन जहाँ व्याख्यान सुना यह... देखो तो ज्ञानसागर में, तुम्हारे जामनगर से प्रकाशित हुआ है, पूनातर की ओर से। तीन योग की सरलता पुण्यबन्ध का कारण है। तीन योग में सरलता धर्म है, ऐसा उसमें लिखा नहीं... समझ में आया? ....

शुभ और अशुभ नौ तत्त्व में शुभ-अशुभ किसे कहते हैं, उसका स्वरूप बताया। उसे ऐसा समझना, उसे संवर-निर्जरा नहीं समझना। उसे पूरा आत्मा नहीं समझना। दया, दान आदि का राग आया, राग मन्द प्रसन्नता, उसे पुण्य समझना। साथ में मिथ्यात्वादि भाव, उसे पाप समझना। ज्ञायकभाव को जीव समझना। और संवर, निर्जरा दूसरी चीज़ है, वह आगे नौ तत्त्व में विस्तार से कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - १३२

सुहपरिणामो पुण्णं असुहो पावं ति हवदि जीवस्स ।
दोण्हं पोग्गलमेत्तो भावो कम्मत्तणं पत्तो ।। १३२ ।।

शुभपरिणाम: पुण्यमशुभ: पापमिति भवति जीवस्य।
द्वयो: पुद्गलमात्रो भाव: कर्मत्वं प्राप्त: ।। १३२ ।।

पुण्यपापस्वरूपाख्यानमेतत् ।

जीवस्य कर्तु: निश्चयकर्मतामापन्न: शुभपरिणामो द्रव्यपुण्यस्य निमित्तमात्रत्वेन कारणीभूतत्वात्तदास्रवक्षणादूर्ध्वं भवति भावपुण्यम् । एवं जीवस्य कर्तुर्निश्चयकर्मतामापन्नोऽ-शुभपरिणामो द्रव्यपापस्य निमित्तमात्रत्वेन कारणीभूतत्वात्तदास्रवक्षणादूर्ध्वं भावपापम् । पुद्गलस्य कर्तुर्निश्चयकर्मतामापन्नो विशिष्टिप्रकृतित्वपरिणामो जीवशुभपरिणामनिमित्तो द्रव्यपुण्यम् । पुद्गलस्य कर्तुनिश्चियकर्मतामापन्नो विशिष्टप्रकृतित्वपरिणामो जीवाशुभपरिणामनिमित्तो द्रव्यपापम् । एवं व्यवहारनिश्चयाभ्यामात्मनो मूर्तममूर्तञ्च कर्म प्रज्ञापितमिति ।। १३२ ।।

शुभभाव जिय के पुण्य हैं अर अशुभ परिणति पाप हैं।
उनके निमित से पौद्गलिक परमाणु कर्मपना धरें।।१३२।।

अन्वयार्थ :— [जीवस्य] जीव के [शुभ परिणामः] शुभपरिणाम, [पुण्यम्] पुण्य हैं और, [अशुभः] अशुभ परिणाम, [पापम् इति भवति] पाप हैं; [द्वयोः] उन दोनों के द्वारा [पुद्गलमात्रः भावः] पुद्गलमात्र भाव, [कर्मत्वं प्राप्तः] कर्मपने को प्राप्त होते हैं। (अर्थात् जीव के पुण्य-पापभाव के निमित्त से साता-असातावेदनीयादि पुद्गलमात्र परिणाम व्यवहार से जीव का कर्म कहे जाते हैं)।

टीका :— यह, पुण्य-पाप के स्वरूप का कथन है।

जीवरूप कर्ता के [१]निश्चयकर्मभूत शुभपरिणाम द्रव्यपुण्य को निमित्तमात्ररूप से कारणभूत हैं इसलिए 'द्रव्यापुण्यास्त्रव' के प्रसंग का अनुसरण करके (-अनुलक्ष करके) वे शुभपरिणाम 'भावपुण्य' हैं। (सातावेदनीयादि द्रव्यपुण्यास्त्रव का जो प्रसंग बनता है, उसमें जीव के शुभपरिणाम निमित्तकारण हैं इसलिए 'द्रव्यपुण्यास्त्रव'

१. जीव कर्ता है और शुभपरिणाम उसका (अशुद्धनिश्चयनय से) निश्चयकर्म है।

प्रसंग के पीछे-पीछे उसके निमित्तभूत शुभपरिणाम को भी 'भावपुण्य' ऐसा नाम है।) इस प्रकार जीवरूप कर्ता के निश्चयकर्मभूत अशुभपरिणाम द्रव्यपाप को निमित्तमात्ररूप से कारणभूत हैं इसलिए 'द्रव्यपापस्त्रव' के प्रसंग का अनुसरण करके (-अनुलक्ष करके) वे अशुभपरिणाम 'भाव पाप' हैं।

पुद्गलरूप कर्ता के [२]निश्चयकर्मभूत विशिष्टप्रकृतिरूप परिणाम (-साता-वेदनीयादि खास प्रकृतिरूप परिणाम)—कि जिनमें जीव के शुभपरिणाम निमित्त हैं वे—द्रव्यपुण्य हैं। पुद्गलरूप कर्ता के निश्चयकर्मभूत विशिष्टप्रकृतिरूप परिणाम (-असातावेदनीयादि विशिष्ट प्रकृतिरूप परिणाम)—कि जिनमें जीव के अशुभ-परिणाम निमित्त हैं वे—द्रव्यपाप हैं।

इस प्रकार व्यवहार तथा निश्चय द्वारा आत्मा को मूर्त अथवा अमूर्त कर्म दर्शाया गया।

भावार्थ :— निश्चय से जीव के अमूर्त शुभाशुभपरिणामरूप भावपुण्यपाप जीव का कर्म हैं। शुभाशुभपरिणाम द्रव्यपुण्यपाप का निमित्तकारण होने के कारण मूर्त ऐसे वे पुद्गलपरिणामरूप (साता-असातावेदनीयादि) द्रव्यपुण्यपाप व्यवहार से जीव का कर्म कहे जाते हैं॥१३२॥

प्रवचन नं. ३२, गाथा-१३२

दिनांक - २७-०९-१९६४, भाद्र कृष्ण ६, रविवार

पंचास्तिकाय, १३२ गाथा चलती है। भगवान तीर्थंकरदेव ने जो नौ पदार्थ का विस्तार कहा, उसका विस्तार चलता है। यह १३२वीं गाथा आयी है। पुण्य-पाप के स्वरूप का कथन। नौ पदार्थ है न, नौ तत्त्व। जीव-अजीव यह दो द्रव्य हैं, द्रव्य। द्रव्य अर्थात् वस्तु। जीव-अजीव दो पदार्थ। उनके संयोग में सात पर्याय उत्पन्न होती है। जीव में सात पर्याय—पुण्य, पाप, आस्त्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष। जड़ में सात पर्यायें कर्म में उत्पन्न होती हैं। यह दो कर्म मिलकर नौ तत्त्व कहे गये हैं।

---

२. पुद्गल कर्ता है और विशिष्टप्रकृतिरूप परिणाम उसका निश्चयकर्म है (अर्थात् निश्चय से पुद्गल कर्ता है और सातावेदनीयादि विशिष्ट प्रकृतिरूप परिणाम उसका कर्म है।)

नौ तत्त्व है, यह समझे बिना उसकी सच्ची श्रद्धा नहीं होती और सच्ची श्रद्धा बिना सम्यग्दर्शन नहीं होता। सम्यग्दर्शन बिना उसे कोई व्रत, तप, संवर नहीं होता। सब अज्ञान होता है। तो कहते हैं, पुण्य और पाप भगवान तीर्थंकरदेव परमात्मा ने क्या स्वरूप कहा कि जो पुण्य और पापभाव दोनों हेय हैं। समझ में आया? हेय हैं, छोड़नेयोग्य हैं। धर्म नहीं। पुण्य और पाप दोनों भाव धर्म नहीं है परन्तु है, उन्हें जाननेयोग्य है। सम्यग्दृष्टि को भी पुण्य आदि, पाप का भाव आता है। वह जाननेयोग्य है। आदरनेयोग्य नहीं। उस पुण्य-पाप का क्या स्वरूप है, वह बताते हैं। देखो! गाथा १३२।

सुहपरिणामो पुण्णं असुहो पावं ति हवदि जीवस्स।
दोण्हं पोग्गलमेत्तो भावो कम्मत्तणं पत्तो।।१३२।।

टीका:-जीवरूप कर्ता के निश्चयकर्मभूत शुभपरिणाम... देखो! इतने शब्द की व्याख्या। आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड पूर्ण स्वरूप आत्मा है। उसकी पर्याय में जीव कर्ता होकर, कर्ता होकर पुण्यपरिणाम का रटनेवाला होकर आत्मा में शुभभाव पुण्य होता है। समझ में आया? देखो! **जीवरूप कर्ता के...** जीव कर्ता है। करनेवाला है **निश्चयकर्मभूत...** आत्मा की पर्याय में, अवस्था में। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का जो विकल्प उठता है, वह राग है, वह पुण्य है, वह निश्चय से आत्मा का कार्य है। समझ में आया? क्या? सेठी! क्या हुआ?

मुमुक्षु : सर्वथा हेय बताया।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, सर्वथा हेय।

मुमुक्षु : आश्रय करनेयोग्य है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आश्रय-बाश्रय करनेयोग्य बिल्कुल नहीं। पुण्यभाव आश्रय करनेयोग्य माने, वह मिथ्यादृष्टि मूढ़ है। वह जैन है नहीं। उसे जैन की, वीतराग की आज्ञा क्या है, उसकी खबर नहीं।

मुमुक्षु : आता तो है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आता है तो आज्ञा है रखने की? उसमें क्या आया? यह तो कल आ गया। समझ में आया? यहाँ कहते हैं कि जीवरूप कर्ता, अपना निश्चयकर्म

अर्थात् कार्यभूत। आत्मा की पर्याय में होता है, इस कारण निश्चय और शुभभाव है, वह कार्य है। आत्मा की दया का, अहिंसा का, सत्य का, अचौर्य का, ब्रह्मचर्य का, अपरिग्रह के, दान इत्यादि के भाव, भक्ति, व्रत, पूजा ऐसा जो राग आता है, वह निश्चय से कर्ता आत्मा का कार्य है। है वह पर्याय। वह शुभरागरूपी विकारी पर्याय, उसे पुण्य कहते हैं। किसलिए पुण्य कहते हैं, यह भी यहाँ थोड़ा ले लेंगे। समझ में आया? खबर नहीं होती, क्या पर्याय है? बेरियाजी! पर्याय सिद्ध में भी लागू पड़ गयी। पर्याय पीछा नहीं छोड़ती। पर्याय तो अपना स्वभाव है। विकारी हो या अविकारी हो, प्रत्येक आत्मा के पर्याय परिणाम अवस्था कहो, पर्याय कहो, वह उसका धर्म है। धर्म का नाम उसका स्वभाव है। पर्याय न हो तो द्रव्य नहीं होता, द्रव्य न हो तो पर्याय नहीं होती। परन्तु खबर नहीं। वस्तु ऐसे ऐसी अन्धाधुन्ध चले और मान ले।

भगवान आत्मा द्रव्य है। अनन्त गुण का पिण्ड, पदार्थ। उसकी पर्याय में परिणमन है। पलटना-अवस्था होती है। उसमें यह पुण्यपरिणाम एक अवस्था है। दया, दान, व्रत, भक्ति, तप ऐसा जो विकल्प उठता है, वह बाहर की क्रिया नहीं है। राग उठता है, वह शुभपरिणाम-पुण्य है। जिससे सातावेदनीय आदि बन्ध पड़ता है। धर्म नहीं। **निश्चय कर्मभूत...** देखो! यह निश्चय से आत्मा का कार्य है। कौन? शुभपरिणाम, शुभभाव, शुभपर्याय, शुभविकारी दशा वह आत्मा में, आत्मा से कर्ता होकर शुभपरिणाम आत्मा की पर्याय में होते हैं। उसका कर्ता आत्मा है। कहो, समझ में आया?

वह शुभपरिणाम निश्चयकर्मभूत द्रव्यपुण्य को निमित्तमात्ररूप से कारणभूत हैं... क्या कहते हैं, जो शुभभाव हुए अहिंसा, सत्य, अचौर्य, दया, आदि नये पुण्य सातावेदनीय, उच्चगोत्र, लम्बा आयुष्य इत्यादि। जिसका लम्बा हो—नारकी का तो सात है। मनुष्य आदि का। ऐसा आयुष्य और नामकर्म पुण्य-यशकीर्ति इत्यादि। ऐसी जड़ प्रकृति बँधती है, उसमें शुभपरिणाम निमित्त पड़ता है। उसे निमित्त कहा जाता है। कहो, समझ में आया? शुभपरिणाम, जो जीव का निश्चय कार्य है। यह द्रव्यपुण्य। द्रव्यपुण्य समझ में आता है? जड़... जड़। कर्म में सातावेदनीय आदि रजकण जो पड़े, रजकण धूल बारीक आठ कर्म हैं, उनमें चार कर्म अघाति में पुण्य हैं आधे। दूसरे पाप हैं। और चार घातिकर्म तो अकेले पाप ही हैं।

मुमुक्षु : घात करनेवाले...

पूज्य गुरुदेवश्री : घात करनेवाले नहीं। ऐसा नहीं कहते। पाप है, ऐसा कहते हैं। कर्म अपनी पर्याय का घात नहीं करते। कहनेमात्र हैं। कर्म तो जड़ हैं। परपदार्थ अपनी पर्याय को घात करे, ऐसा कभी नहीं होता। घातिकर्म घात करे। यह नाम आया। भिखारी का लक्ष्मीचन्द नाम आया तो लक्ष्मीचन्द हो गया? भिखारी को लक्ष्मीचन्द नाम नहीं देते। ऐसा यह नाम है। वह परमाणु की पर्याय का नाम घातिकर्म कहा गया है। आत्मा अपनी पर्याय को उल्टा होकर घात करता है, तब वह घातिकर्म निमित्त कहे जाते हैं। इस कारण से घाति कहने में आया है। आहाहा! घात अपने से अपनी पर्याय में (होता है)। पर से होता है? समझ में आया? दोपहर में आता है। अपने परिणाम अपने में होते हैं, पर के परिणाम पर में हैं।

जैन सम्प्रदाय में जन्मे, परन्तु जैन परमेश्वर क्या कहते हैं, नहीं खबर अपने को, नहीं खबर त्यागी को। जय नारायण, ऐसा चले। 'जय नारायण' भटकने का हो। चार गति में भटकेगा। कहो, समझ में आया? भगवान आत्मा अपने अन्तर आनन्द और ज्ञातादृष्टा स्वभाव में से अस्थिर होकर जो पुण्य के शुभपरिणाम होते हैं, वह आत्मा का निश्चय से यथार्थ से कार्य है। वह शुभकार्य नये द्रव्यपुण्य को निमित्त है। सातावेदनीय आदि नये कर्म बँधते हैं, उसमें यह शुभपरिणाम निमित्त है। समझ में आया?

द्रव्यपुण्य को निमित्तमात्ररूप से कारणभूत हैं, इसलिए 'द्रव्यापुण्यास्त्रव' के प्रसंग का अनुसरण करके (-अनुलक्ष करके)... देखो! यह आया? द्रव्यपुण्य जड़ में परमाणु में होता है। सातावेदनीय जड़, अजीव मिट्टी, सूक्ष्म धूल है। उस धूल में जो सातावेदनीय है, वह जड़ के पुण्यप्रकृति परिणाम कहे जाते हैं। जड़ के परिणाम, हों! उस **'द्रव्यापुण्यास्त्रव' के प्रसंग का अनुसरण करके (-अनुलक्ष करके)...** यह निमित्त जो जड़-पुण्य होता है, उसका अनुसरण-अनुलक्ष करके शुभपरिणाम को पुण्य कहा गया है। समझ में आया? यह विवाद है न! पहला निमित्त, पहला निमित्त। पहला निमित्त क्या है? यह बदल दिया। पण्डितजी ने पक्ष लिया, ऐसा कहते हैं। कहो, समझ में आया?

अरे! भगवान! तत्त्व क्या है, नव तत्त्व में द्रव्य कितने और पर्याय कितनी, यह तो खबर नहीं होती! भगवान जाने! भगवान तो जानते हैं न! तुझे क्या खबर है? नव तत्त्व

भगवान ने कहे, उसकी यथार्थ श्रद्धा आत्मज्ञानपूर्वक होती है। तो सम्यग्दर्शन होता है। सम्यग्दर्शन बिना कोई व्रत, तप, संयम होता ही नहीं। सब बाल (तप), अज्ञान तप है। मूर्खता से भरपूर, अज्ञान मूर्खता है। यह तो खबर नहीं। क्या है? कहते हैं कि नौ तत्त्व में जो पुण्यपरिणाम है, वह शुभभाव, वह नये जड़कर्म में निमित्त पड़ता है। जड़कर्म पुण्य है तो पुण्य का अनुलक्ष करके शुभभाव को भी पुण्य कहा। ऐसा यहाँ सम्बन्ध लगाया है। यहाँ शुभभाव से, वहाँ पुण्य का निमित्त नहीं लगाया। सेठी! यह फिर से कहते हैं न?

शुभभाव हुआ, उससे वहाँ द्रव्य पुण्य बँधा तो उसे पुण्य कहा, ऐसा यहाँ नहीं कहा। नया जो जड़ द्रव्य पुण्य बँधता है, सातावेदनीय, उच्च गोत्र, देवाधिदेव का लम्बा आयुष्य इत्यादि। समझ में आया? वह जड़ की-परमाणु की पर्याय है। द्रव्य पुण्य परमाणु पुद्गल अजीव मिट्टी मूर्त धूल की पर्याय है। उसे पुण्य कहा तो उसमें जो भाव निमित्त पड़ा, उसका अनुलक्ष करके, उसे अनुसरण कर शुभभाव को भी पुण्य कहा है। अमरचन्दभाई! यह दूसरी गति से बात है। यहाँ से लगाया है, यहाँ से नहीं। कर्म पुण्य बँधाता है, इसलिए भाव को पुण्य कहा गया है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....भाव तो पहले है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले नहीं। पहले कहाँ से आये? कौन कहता है पहले?

मुमुक्षु : ...हुए।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, हुए बुए नहीं। सब एक साथ है। कहाँ से आये?

मुमुक्षु : शुभ होने पर भी....

पूज्य गुरुदेवश्री : बस, इतना सिद्ध करना है। एक समय में, एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में जब द्रव्य पुण्य बँधता है, जड़ में जड़ के परिणाम होते हैं, पुण्यरूप परिणाम जड़ में, जड़ में जड़ के परिणाम। यह अपेक्षा लेकर शुभभाव को आत्मा में शुभभाव हुआ। दया, दान, व्रत, तप का विकल्प जो शुभराग, उसे भगवान कहते हैं कि द्रव्य पुण्य का अनुलक्ष करके उसे पुण्य कहा है। समझ में आया? पहले-पश्चात् नहीं। सेठी! क्या हुआ? और पहले वहाँ हुए और यहाँ कहाँ से आये? यह विवादी प्रश्न है।

पहले निमित्त हुआ और फिर नैमित्तिक हुआ, ऐसा कोई निकालता है। ऐसा है ही नहीं। साथ में है। स्वतन्त्र नहीं, साथ है। स्वतन्त्र तो है परन्तु दोनों एक समय....

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, यह नहीं। भाव तो द्रव्यपुण्य में निमित्त है। इस कारण उसे पुण्य कहा। पश्चात् कहा गया। द्रव्य पुण्य में शुभपरिणाम निमित्त है। नये बँधते हैं, वह शुभपरिणाम में निमित्त है नहीं। उसे पुण्य कहा गया है। ऐसी बात है। समझ में आया?

आत्मा में तो अनन्त गुण आनन्द सच्चिदानन्द सिद्ध समान आत्मा है। द्रव्य वस्तु वस्तु। पर्याय में जितने दया, दान, व्रत के परिणाम आते हैं, वह शुभराग है, पुण्य है। तो कहते हैं कि उसे पुण्य क्यों कहा? कि सातावेदनीय आदि जड़ कर्म पुण्य बँधता है, उसका अनुलक्ष करके शुभभाव को पुण्य कहा गया है। वे नये (कर्म) बँधते हैं, वह शुभपरिणाम में निमित्त है, ऐसा नहीं। क्या? यहाँ तो बहुत अन्तर है। नये कर्म बँधते हैं, वे शुभपरिणाम में निमित्त हैं, ऐसा नहीं। परन्तु नये बँधते हैं, उनमें शुभपरिणाम निमित्त है। शुभपरिणाम निमित्त है। शुभपरिणाम में नये कर्म निमित्त हैं, ऐसा नहीं। समझ में आया? यहाँ तो इतना सिद्ध करना है कि भगवान आत्मा अपनी पर्याय में जो जितने परिणाम दया, दान, व्रत, यह तप में राग मन्द करने से हो तो, शुभपरिणाम हो तो उसे पुण्य क्यों कहा? वह नये सातावेदनीय परमाणु में से बँधते हैं, वह पुण्य बँधता है। पुण्य बँधता है, उसका अनुलक्ष करके शुभभाव को पुण्य कहा गया है। शुभभाव में द्रव्य पुण्य निमित्त है, ऐसा नहीं है। परन्तु द्रव्यपुण्य के कारण शुभभाव को पुण्य कहा गया है। बस इतना। और शुभभाव नये द्रव्यकर्म बँधते हैं, वह स्वयं के कारण से बँधते हैं, उसमें शुभपरिणाम निमित्त है। कहो, समझ में आया? लो! यह पण्डित व्यक्ति है और गम्भीर व्यक्ति यह तो हमारे पण्डित में गिना जाता है। कहो, समझ में आया?

यह १३२वीं गाथा चलती है। इस गाथा सम्बन्धी चर्चा बहुत ही चली थी। बारह दिन। फिर से कहते हैं। यहाँ भावपुण्य और द्रव्यपुण्य दो की बात चलती है। भावपुण्य आत्मा के परिणाम हों, उसे भावपुण्य कहते हैं। कौन से परिणाम? दया, दान, अहिंसा, व्रत, भक्ति, पूजा, सेवा, अनुकम्पा ऐसे भाव वह भावपुण्य है। राग की मन्दता है।

भावपुण्य है। किसे भावपुण्य निमित्त पड़ता है? नये सातावेदनीय आदि बँधते हैं, उनमें भावपुण्य निमित्त है। परन्तु जो द्रव्यपुण्य कहे गये हैं, बँधते हैं, इस कारण शुभ को भावपुण्य कहा गया है। समझ में आया?

पहले-बाद की यहाँ बात है ही नहीं कि द्रव्यपुण्य पहले और भावपुण्य बाद में, भावपुण्य पहले और द्रव्यपुण्य बाद में। एक समय में दोनों साथ में होते हैं। सबमें एक साथ होते हैं न! आगे-पीछे होते हैं। समझ में आया? बल्लभदासभाई! समझ में आया इसमें? ऐई! जयन्तीभाई! भगवान जाने क्या होगा, खबर नहीं होती। अन्ध के अन्ध ऐसे के ऐसे। करो सामायिक और करो प्रौषध और करो प्रतिक्रमण। धूल में भी तेरे सामायिक नहीं। अब सुन न! अभी दृष्टि मिथ्यात्व है, अज्ञान क्या है, मिथ्यात्व क्या है, इसकी तो खबर नहीं। सम्यग्दर्शन क्या है, यह भी खबर नहीं। सम्यग्दर्शन तो है नहीं परन्तु सम्यग्दर्शन किसे कहते हैं, उसकी भी खबर नहीं। हो गये व्रत, संयम और महाव्रत और दया, दान। भगवानभाई! यह सब पुराने लोग हैं। यह जयन्तीभाई और यह बल्लभदासभाई। देखो! जामनगर के पुराने लोग हैं न? आहाहा! अरे रे! कुछ खबर नहीं होती!

वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ नौ तत्त्व का क्या रूप है, क्या स्वरूप है। उसमें हेय कौन है, उपादेय कौन है। खबर नहीं होती। समझ में आया? और (ऐसा कहे कि) उसे सम्यग्दर्शन है, मान लो। अब व्रत ले लो तो संयम हो गया। धूल में भी नहीं। मूढ़ है। बाल-मूर्खता भरे व्रत, मूर्खता बाल अज्ञानी के वे तप हैं। वैसे व्रत, तप में कोई संवर, निर्जरा है नहीं। सेठी! अब तो बहुत ही सुनते आये हैं न? अब क्या कठिन पड़ता है?

क्या कहा? देखो! यहाँ आचार्यदेव ने इतने नये बोल लिये कि आत्मा तो पवित्रधाम अनन्त गुण का पुंज आत्मा भगवान है। उसे आत्मा ज्ञायकभाव (कहते हैं)। अब उसकी पर्याय का नाम आत्मा कहा। अब पर्याय में कैसे भाव को पुण्य कहा और इसे पुण्य क्यों कहा? दो बोल है। उसकी पर्याय में, भाव में जितने दया, दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव होते हैं, वे शुभपरिणाम है। शुभपर्याय है, विकारी पर्याय है, मलिन दशा है, उपाधिभाव है, वह शुभपरिणाम भावपुण्य कहा गया है। भावपुण्य। भावपुण्य क्यों? कि आत्मा की पर्याय में होता है, अवस्था में। इसलिए भावपुण्य कहा गया है। वह

भावपुण्य निमित्त नये सातावेदनीय आदि नये कर्म बँधते हैं, वह द्रव्यपुण्य। तो द्रव्यपुण्य का लक्ष्य करके, अनुसरकर है तो समय एक ही। शुद्ध भाव को पुण्य कहा गया है। द्रव्यपुण्य को अनुसरकर कहा गया है। द्रव्यपुण्य भावपुण्य में निमित्त से है, ऐसा नहीं। भावपुण्य द्रव्यपुण्य में निमित्त है। द्रव्यपुण्य भावपुण्य को निमित्त है, ऐसा नहीं। परन्तु द्रव्यपुण्य को पुण्य कहा तो उस पुण्य का अनुलक्ष करके शुभभाव को भावपुण्य कहा गया है। समझ में आया? इतना यहाँ कहा। समझ में आया?

वास्तव में तो यह शुभभाव है, वह आत्मा का स्वभाव है ही नहीं। समझ में आया? वह तो विकार है, विभाव है, मैल है, जैसे हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग, वासना, काम, क्रोध, पाप मैल है, उसी प्रकार दया, दान, अहिंसा, विकल्प, पुण्य मैल है। धर्म नहीं। अज्ञानी को खबर नहीं। वह धर्म। दूसरे को धर्म कहे, मिथ्यात्व का सेवन करे, मिथ्यादृष्टि की पुष्टि करे और माने कि हमने धर्म किया। कहो, जयन्तीभाई! क्या किया? अभी तक क्या किया है?

मुमुक्षु : प्रातिहार्य मिले न?

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रातिहार्य मिले। धूल में से मिले। उसमें आत्मा को क्या हुआ? धर्म नहीं। हो गया। ....पुण्यबन्ध... भवकट्टी का नाश न हो। दया, दान, परिणाम से चार गति में परिभ्रमण करेगा। समझ में आया? वह हेय है। जयसेनाचार्य में लिखा है। उसमें से सब लिया है। जयसेनाचार्य की टीका में १३३ गाथा शुरु करके तो यह हेय की बात की द्रव्यभाव की। उसमें से सब मोक्षमार्गप्रकाशक (में लिया है)। समझ में आया?

शुभपरिणाम 'भावपुण्य' हैं। देखो! कोष्ठक में। **सातावेदनीयादि...** नये कर्म बँधते हैं न शुभभाव से? नये कर्म बँधते हैं। शुभभाव से संवर, निर्जरा नहीं होती। संवर, निर्जरा तो आत्मा अखण्डानन्द शुद्ध चिदानन्द की मूर्ति, उसका अन्तर में अवलम्बन करके भगवान परमानन्द अपनी ही ज्योति, उसकी अन्तर में दृष्टि करके जब निर्मल पर्याय होती है, उसे भगवान संवर, निर्जरा कहते हैं। समझ में आया? बाकी थोथेथोथा पुण्य और पाप के परिणाम करे, बन्ध करे और चार गति में भटके। समझ में आया? **सातावेदनीयादि....** आदि शब्द से? सातावेदनीय, नामकर्म, गोत्र, आयुष्य। ऊँचा मनुष्य,

आयुष्य और स्वर्गादि। **द्रव्य पुण्यास्त्रव....** द्रव्य पुण्यास्त्रव कहा, **जो प्रसंग बनता है, उसमें...** द्रव्य पुण्यास्त्रव कौन? नये आते हैं वे। यह नये आते हैं, उसमें यहाँ पूर्व की बात नहीं है। जो शुभभाव नये परमाणु स्वयं के कारण से आते हैं, **सातावेदनीयादि द्रव्यपुण्यास्त्रव का जो प्रसंग बनता है, उसमें प्रसंग बनता है...** परमाणु में कर्म की पर्याय **उसमें जीव के शुभपरिणाम निमित्तकारण हैं...** द्रव्य पुण्यास्त्रव जो आता है, उसमें जीव के शुभपरिणाम निमित्त हैं। **इसलिए 'द्रव्यपुण्यास्त्रव' प्रसंग के पीछे-पीछे उसके...** द्रव्य पुण्यास्त्रव जो रजकण आये, उसे अनुसरकर, लक्ष्य करके, पीछे-पीछे का अर्थ बाद में पर्याय हुई, ऐसा नहीं। उसे द्रव्य पुण्य कहा, तो यहाँ शुभ को भावपुण्य कहा गया। साथ-साथ में। पीछे-पीछे अर्थात् साथ में नाम लिया। सेठ हो तो उसका नाम नौकर देते हैं।

उसके निमित्तभूत... किसके निमित्तभूत? नये द्रव्य पुण्यास्त्रव आते हैं। नये जड़कर्म का बन्ध आता है, वह द्रव्यपुण्य, **उसके निमित्तभूत शुभपरिणाम को भी 'भावपुण्य' ऐसा नाम है।** भावपुण्य ऐसा नाम है। भावपुण्य आत्मा की विकारी पर्याय है। जड़कर्म पुण्य की विकारी पर्याय है। पुद्गल की विकारी पर्याय है। दोनों भिन्न-भिन्न चीज़ है। द्रव्यपुण्य जड़ की पर्याय है। भावपुण्य जीव की विकारी पर्याय है। दोनों चीज़ भिन्न-भिन्न है। समझ में आया? भगवान जाने भावपुण्य क्या होगा और द्रव्यपुण्य क्या होगा? समझ में आया? भगवान तो जानते हैं। वह भगवान बतलाते हैं।

इस प्रकार जीवरूप कर्ता के... एक बोल चला। पुण्यपरिणाम की बात। उसे शुभभाव पुण्य क्यो कहा? कि द्रव्यपुण्य आता है, वह द्रव्यपुण्य वास्तव में जड़ की पर्याय है, उसका लक्ष्य करके उसे भावपुण्य कहा गया है। नहीं तो विकारी भाव है, उसे पुण्य कैसे कहा? द्रव्यपुण्य के कारण उसे भावपुण्य कहा। समझ में आया? खास बात है इसलिए उसमें से एक व्यक्ति कहता है। देखो! पहले निमित्त, उसके पीछे-पीछे नैमित्तिकभाव। ऐसा है नहीं।

मुमुक्षु : समयभेद नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : समयभेद नहीं।

मुमुक्षु : कालभेद।

पूज्य गुरुदेवश्री : कालभेद भी कहाँ है ? वह तो द्रव्यपुण्य सातावेदनीय में कहा तो यहाँ भावपुण्य उसमें निमित्त है। तो द्रव्यपुण्य वहाँ निमित्त है, तो यहाँ भावपुण्य कहा गया है। वास्तव में विकारी परिणाम को भावपुण्य क्यों कहा ? कि जिस द्रव्यपुण्य का उसमें निमित्त पड़ा। और द्रव्यपुण्य को पुण्य कहा, इस कारण इसे भावपुण्य कहा। बस यह बात है। आहाहा! देखो! अमृतचन्द्र आचार्य महाराज ने ऐसा शब्द लिया है। पाठ में लिया है, अनुसरकर, **'द्रव्यपुण्यास्त्रव' प्रसंग के अनुसरण करके...** ऐसा पाठ है। अमृतचन्द्राचार्य की टीका। समझ में आया ? ऐसी बात यह समझना। इसकी अपेक्षा तो पाल न दया और व्रत, हो जायेगा कल्याण। इसलिए तो बेचारा मर गया, ऐसा का ऐसा। अनन्त काल चला गया। उसमें भी कहीं इसके जन्म-मरण नाश हुए नहीं। देवीलालजी! क्या है ? करो भक्ति भगवान की! कर डालो। वह कहे पालो दया, वह कहे करो यात्रा, वह कहे करो व्रत, दूसरा कहे कर डालो अपवास। सब मूढ़ के मूढ़ हैं। उसमें धर्म मानते हैं वे। भाव शुभ है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : अज्ञानी के शुभभाव की क्या कीमत है ? ज्ञानी के शुभभाव भी बन्धनरूप है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह बन्धनभाव... यह तो अज्ञानी मिथ्यादृष्टि है न, इसे शुभभाव है उसमें तो कुछ लाभ है नहीं। चार गति... सम्यग्दृष्टि को शुभभाव आता अवश्य है भक्ति का, व्रत का, परन्तु उसे राग-पुण्य बन्ध का कारण जानता है। अपने आत्मा की शान्ति और धर्म का कारण नहीं मानता। अज्ञानी उसे धर्म मानता है। कहो, भीखाभाई!

मुमुक्षु : मान्यता....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, तो उसके लिये तो नौ पदार्थ बतलाते हैं। यह आत्मा के सन्मुख होकर नौ पदार्थ जैसे हैं, वैसे उन्हें मानना, तो उसका नाम सम्यग्दर्शन कहते हैं। समझ में आया ? भगवान क्या कहते हैं ? भगवान क्या ? नौ तत्त्व के नाम भी अभी बहुतों को नहीं आते। वापस जीव-अजीव बोल जाये, परन्तु किसे कहते हैं ? समझ में आये बिना वापस उसे समझाये। यह भीख माँगने की टेव है, कहते हैं। भीखालाल है न ? समझ में आया ? भीखालाल नाम है न ?

यहाँ तो भगवान कहते हैं कि किसी की पर्याय का कोई करनेवाला है ही नहीं। भीखाभाई की याचना कहाँ आयी ? कहो, समझ में आया ? यह पुण्यपरिणाम की बात

की। पुण्यपरिणाम है। अरूपी विकारी आत्मा में भाव होते हैं। अहिंसा के, दया के, दान के, अनुकम्पा के, सेवा के, भगवान के नाम स्मरण के। वे सब शुभराग हैं। पुण्यभाव हैं, पुण्यबन्ध का कारण हैं। संवर, निर्जरा नहीं। वह नया पुण्य बँधता है, उसे पुण्य कहा गया। उसे अनुसरकर शुभभाव को पुण्य कहा गया है। बस! समझ में आया? सेठ! पूछे तो यह कहना आयेगा या नहीं? इनकार करते हैं तुम्हारे। राजमलजी कहे, आता नहीं। इतनी हिम्मत भी थोड़ी नहीं आयी? कि कह सके। इतनी बार तो बात की।

आत्मा अनादि-अनन्त वस्तु है। किसी ने बनायी नहीं। अकृत्रिम पदार्थ आत्मा। उसकी पर्याय में इतना भाव दया, दान, भक्ति, व्रत, तप का आया, उसे भावपुण्य क्यों कहा? उस भाव को पुण्य क्यों कहा? कि उसके निमित्त से नया द्रव्य पुण्य बँधता है। उसे अनुसरकर उसे भावपुण्य कहा गया है। बस, इतनी बात है, लो! यह भावपुण्य आत्मा का निश्चय कार्य है। यह आ गया निश्चय कर्म। भावपुण्य आत्मा का निश्चय कार्य है और द्रव्यपुण्य, वह परमाणु का निश्चय कार्य है। समझ में आया?

इस प्रकार... अब पाप की बात लेते हैं। **जीवरूप कर्ता के निश्चयकर्मभूत...** कर्म अर्थात् कार्यभूत अशुभपरिणाम। हिंसा का भाव, भूत का भाव, चोरी का, विषय का, परिग्रह का, क्रोध, मान, माया, लोभ, भोग-वासना सब अशुभभाव हैं, पापभाव हैं। मलिनभाव पापभाव हैं। वह **जीवरूप कर्ता के निश्चयकर्मभूत है।** कर्म अर्थात् कार्य। वह जीव का निश्चय कार्य है। अपनी पर्याय का वह कार्य है। जीव में पाप होता है। कोई जड़ में नहीं। पुण्य भी जीव में होता है, पर में नहीं। अपना आत्मा द्रव्य-गुण-पर्याय। द्रव्य अनन्त गुण का पिण्ड, गुण अनन्त शक्तियाँ, उसकी पर्याय, हालत-हालत में पाप भाव होते हैं। पुण्य भी उसकी हालत में और पाप भी उसकी हालत में / पर्याय में (होते हैं)। समझ में आया?

कहते हैं, **जीवरूप कर्ता के निश्चयकर्मभूत...** कर्म अर्थात् कार्य। **अशुभपरिणाम द्रव्यपाप को निमित्तमात्ररूप से...** नये पाप बँधते हैं न? ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय, अन्तराय, असातावेदनीय, नरक आयुष्य आदि। वह पापकर्म का बन्ध है। उसमें यह पापपरिणाम निमित्त कहने में आता है। नया बन्ध पड़ता है, उसमें पापपरिणाम अशुभभाव निमित्त कहने में आता है। समझ में आया?

वह अशुभपरिणाम **द्रव्यपाप को निमित्तमात्ररूप से...** द्रव्य-पाप अर्थात् जड़। असातावेदनीय, ज्ञानावरणीय कर्म बँधे वह जड़, वह द्रव्यपाप। मिट्टी, धूल, अजीव। उसे अशुभपरिणाम निमित्त हुए, वह भाव जीव का पाप। जीव के भावरूपी पाप। वह अरूपी विकारी भाव। और जड़कर्म है, रूपी, मूर्त जड़ पर्याय। कर्म की जड़पर्याय। समझ में आया? ऐसी बात भी सुनी न हो। जयन्तीभाई! चलती कहाँ है पूरे दिन मूढ़ते हैं, यह करो और यह करो। अपवास कर डालो, आम्बेल कर डालो। सामायिक करो, प्रोषध करो। परन्तु तू कौन है? क्या करता है, यह तुझे कुछ खबर है? (आत्मा के) भान बिना। समझ में आया? मिथ्यादर्शन में धर्म कर लो! श्रद्धा तो विपरीत है। भान तो है नहीं। क्या पुण्य, क्या पाप, क्या बन्धन, क्या जड़। जड़ में निमित्त कौन है? समझ में आया?

तो कहते हैं, निश्चय जीव का कार्य पापपरिणाम है। हिंसा, झूठ, चोरी, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग-द्वेष पापपरिणाम है। अरूपी जीव के परिणाम हैं। जीव का कार्य है। जीव में होता है। जीव स्वतन्त्र होकर पापपरिणाम को करता है। समझ में आया? कर्म-बर्म की यहाँ बात नहीं की, हों! पूर्व के कर्म निमित्त हैं, वह साधारण बात दोनों में ली ही नहीं। पुण्य में भी पूर्व के कर्म निमित्त हैं, यह बात ही नहीं ली। पाप में भी पूर्व के कर्म निमित्त हैं, यह बात ही नहीं ली। पापपरिणाम होते हैं, नये असाता आदि बँधे, उसमें पापपरिणाम निमित्त कहे जाते हैं। ऐसा लिया है।

अमृतचन्द्राचार्य की शैली भगवान कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। भगवान के पेट (अभिप्राय) खोलकर जो बात की, उसे टीका में स्पष्ट कर दिया। समझ में आया? अशुभपरिणाम, कौन? कि जीव का निश्चय कार्य है, वास्तव में जीव का पापपरिणाम कार्य है। विकल्प पाप का हिंसा, झूठ, चोरी, विषय इत्यादि, वह अशुभपरिणाम द्रव्य पाप को ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, असातावेदनीय को **निमित्तमात्रपने...** क्योंकि जड़ पर्याय भिन्न है, यह पापपरिणाम भिन्न है। निमित्त का अर्थ कारणभूत है। नये जड़कर्म बँधें, उसमें पापपरिणाम निमित्तरूप कारण है। पाप के परिणाम में पूर्व के कर्म निमित्त हैं, यह बात यहाँ नहीं ली है। नये कर्म में तो निमित्त है। नये कर्म पाप के परिणाम में निमित्त है, ऐसा है ही नहीं। भारी गड़बड़, भाई! समझ में आया?

नया बन्ध पड़ता है, वह अशुभपरिणाम में निमित्त है, ऐसा है नहीं। नया बन्ध पड़ता है, उसमें अशुभ पापपरिणाम निमित्त है। यहाँ पाप को पाप क्यों कहा? यह कहते हैं, देखो! **इसलिए 'द्रव्यपापस्त्रव' के प्रसंग का अनुसरण करके (-अनुलक्ष करके)...** वह द्रव्य पाप बँधा, उस द्रव्य पापास्त्रव का प्रसंग बना, वहाँ परमाणु की पर्याय बनी, असातावेदनीय जड़ में बना, उस **'द्रव्यपापस्त्रव' के प्रसंग का अनुसरण करके (-अनुलक्ष करके) वे अशुभपरिणाम 'भाव पाप' हैं।** ऐसा कहा गया है। कहो, समझ में आया?

उदय की बात है ही नहीं। यह तो कहा न पहले? उदय का क्या काम है? स्वयं से परिणाम होते हैं, उसका क्या काम है? यह परिणाम स्वयं से हुए, उसमें नया बन्ध पड़ा, वह परिणाम उसे निमित्त पड़े और जो बन्ध हुआ, वह पुण्य का बन्ध हुआ, तो यहाँ शुभभाव को पुण्य कहा। अशुभपरिणाम निमित्त नये असाता के बँधे, वह पाप। तो यहाँ अशुभपरिणाम को पाप कहा। बस, इतनी बात है। समझ में आया? पूर्व को पूर्व के पुण्य की बात है ही नहीं। पूर्व की यहाँ बात है ही नहीं।

यहाँ तो शुभभाव परिणाम हुए तो अपने राग की मन्दता करने से दया, दान, व्रत के शुभभाव हुए। इस परिणाम में पूर्व के कर्म की बात ली ही नहीं। वे परिणाम नये बन्ध में निमित्त हैं और नये बन्ध में पुण्य पड़ा तो शुभपरिणाम को पुण्य कहा, पाप पड़ा तो अशुभपरिणाम को पाप कहा। बस इतनी बात ली गयी है। समझ में आया? दो बोल हो गये। भावपुण्य, द्रव्यपुण्य, भावपाप, द्रव्यपाप। भावपुण्य-भावपाप, वह जीव की पर्याय है, द्रव्यपाप-द्रव्यपुण्य वह कर्म की, पुद्गल की जड़ पर्याय। उस जड़ की पर्याय का करनेवाला आत्मा नहीं और आत्मा के पुण्य-पापभाव को करनेवाला कर्म जड़ नहीं। समझ में आया?

अब पुद्गल की बात लेते हैं, देखो! जीव की ली, अब पुद्गल की। **पुद्गलरूप कर्ता के निश्चयकर्मभूत...** देखो! पुद्गलकर्ता। कौन कर्ता? यह सातावेदनीय बँधती है, सातावेदनीय, उच्चगोत्र ऐसे पुण्य के परमाणु बँधते हैं। उस पुण्य की पर्याय का कर्ता कौन? तो कहते हैं। वह पुद्गल कर्म है। जड़ पुण्य की पर्याय का कर्ता निश्चय से पुद्गलकर्म है। वह पुद्गल का निश्चय कार्य है। कौन? जो सातावेदनीय बँधी, उच्च

गोत्र बँधा, वह पुद्गल का निश्चय कार्य है। जड़ की पर्यायरूपी कार्य, वह पुद्गल का निश्चय कार्य है। आत्मा का नहीं। समझ में आया?

पुद्गलकर्म नये परमाणु, रजकण हैं न? धूल। आठ कर्म मिट्टी। वह मिट्टी है। यह जैसे मिट्टी, वैसे आठ कर्म अन्दर सूक्ष्म धूल है। बारीक मिट्टी। **पुद्गलरूप कर्ता के...** वह पुद्गल कर्ता होकर **निश्चयकर्मभूत...** नीचे (फुटनोट में है।) लिखा है। **पुद्गल कर्ता है और विशिष्टप्रकृतिरूप परिणाम उसका निश्चयकर्म है...** देखो! **(अर्थात् निश्चय से पुद्गल कर्ता है और सातावेदनीयादि विशिष्ट प्रकृतिरूप परिणाम उसका (पुद्गल का कर्म है।)** यह पुद्गल का कार्य है।

आठ कर्म में सातावेदनीय आदि चार कर्म जो अघाति के बँधते हैं, वह पुद्गल की पर्याय है। पुद्गल की पर्याय जो साता आदिरूप हुई, उसका निश्चय से कर्ता पुद्गल है। पुद्गल के पुण्यपरिणाम, जड़ की पर्याय में हुए, सातावेदनीय जड़ की पर्याय वह पुद्गल का निश्चय कार्य है। कुछ खबर नहीं होती.... और हो जाये समझे बिना धर्म।

मुमुक्षु : समझ नहीं पड़ती तब आँसु पड़ते है।

पूज्य गुरुदेवश्री : तब आँसु पड़ते है न? कहो, समझ में आया? पहले जीव की बात की। शुभ-अशुभभाव को पुण्य-पाप क्यों कहा? और किसमें वह पुण्य-पाप निमित्त पड़े। उसका नाम कैसे पड़ा, इसकी बात पहले कर दी। अब यह पुण्यपरिणाम जो जीव में हुए, वहाँ जड़ में सातावेदनीय बँधे, उच्च गोत्र बँधे, वह पुद्गल का निश्चय कार्य है। आत्मा उसे बाँधता नहीं। आत्मा अरूपी है, वह (कर्म) तो जड़, मिट्टी, धूल है। धूल की पर्याय आत्मा कहाँ से करे? लोग कहते हैं न आत्मा अकत्ता और विकत्ता, आत्मा कर्म को करे और आत्मा कर्म को भोगे। मूढ़ है, ऐसा कहाँ से लाया? जड़ की पर्याय आत्मा करे? जड़ की पर्याय आत्मा भोगे? समझ में आया? यह तो निमित्त का कथन है। निमित्त का कथन आयेगा। समझ में आया?

आठ कर्म हैं। उनमें चार कर्म अघाति, वे दो प्रकार से हैं। पुण्य और पाप। चार घाति, अकेले पाप। मिट्टी, धूल, हों! आठ कर्म जड़ रजकण है। तो वह **पुद्गलरूप कर्ता का...** निश्चय कार्य। वह पुद्गल का कार्य। और पुद्गल को कार्य होगा? जीव

को कार्य होगा? अरे, सुन न! वह पुद्गल का कार्य है। क्या कहते हैं यह? पुद्गल की पर्याय है।

मुमुक्षु : हैरान किया।

पूज्य गुरुदेवश्री : हैरान किया तुम्हारे भाव ने। किसी ने हैरान किया नहीं। जैचन्दभाई! अपने आप हैरान हो गया न, कर्म ने हैरान किया, (ऐसा) मूढ़ मानता है। जैचन्दभाई! तुमने कर्म देखे हैं? कर्म कहाँ हैं? कर्म तुमको हैरान कर गये? कर्म तो जड़ हैं। जड़ की पर्याय आत्मा को हैरान कर सकती है? यह मानता है। मूढ़-मिथ्यादृष्टि जैन नहीं है। उसे वीतरागमार्ग की खबर नहीं है, ऐसा कहते हैं। वे कहाँ गये? क्या कहते हैं? हैरान हो गये। हैरान हो गये। दोनों इकट्ठे थे तब प्रसन्न होंगे मानो मजा होगा, धूल में। दो भाई इकट्ठे हों तब मजा होगा। धूल में भी मजा नहीं। कल्पना है, कल्पना के घोड़े। धूल में मजा कहाँ था वहाँ? पाँच-पच्चीस लाख पैसा (रुपया) हो या दस लाख धूल हो, वह सब दुःखी के सरदार हैं। समझ में आया? हैरान... हैरान... हैरान... हैरान। हैरान भाव में, हों! पर के कारण नहीं। अपनी पर्याय में कल्पना दौड़ावे, ऐसे हम पैसेवाले हैं, हम सुखी हैं। हमारे पैसे आते हैं। मूढ़ है। पर के पैसे कहाँ तेरी चीज़ है। वह तो जड़ है। मानते हैं कि हम सुखी हैं। मूढ़ है। प्रतिकूलता में हैरान हो गये। वह भी तेरी (स्वयं की) मूढ़ता से हैरान हुआ है। क्या प्रतिकूल संयोग से हैरान होता है। समझ में आया?

पुद्गलरूप कर्ता के निश्चयकर्मभूत.... हों! कार्य निश्चय। जड़ में कार्य होता है। पर्याय उसकी जड़ का कार्य है। खबर नहीं जड़ का कार्य है या नहीं? कार्य तो आत्मा करे। कहीं जड़ करता होगा? अरे! भगवान! सुन तो सही! कोई भी जड़ कार्य बिना एक समय में भी नहीं रहता। कार्य कहो, पर्याय कहो, अवस्था कहो। वस्तु-परमाणु कायम रहकर उसकी पर्याय होती है। वह जड़ का कार्य है। वह कर्म का कार्य पुद्गल का है। आत्मा का नहीं। समझ में आया?

निश्चर्य कर्मभूत... कहाँ गये मलूकचन्दभाई! वह पैसे में याद आये? तुम्हारा लड़का, दुःख का सरदार है। धूल में करोड़, दो करोड़ हो गये, लो! कहाँ गये वृद्ध। यह वृद्ध रहे। यह इनके मामा के पुत्र के पास पन्द्रह करोड़ हैं। लो न! यह प्रेमचन्दभाई का

मामा। पन्द्रह करोड़। एक दिन की तीस, चालीस हजार की आमदनी। धूल में भी सुख नहीं। हैरान-हैरान गोवा में है। मूढ़! पैसा तो धूल है। वह तो मिट्टी अजीव पुद्गल है। उसके कारण तुझमें सुख कहाँ से आ गया?

मुमुक्षु : ऐसा मानते थे कि पैसे में सुख है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यही कहते हैं कि मूढ़ है। और मानते थे (कि) पैसे में सुख है। व्यर्थ का मूढ़ होकर! मोहनभाई! दोनों अलग पड़े न तो ऐसे अन्दर से खदबद... खदबद... खदबद...। दोनों भाई अलग हुए। वह छोटा अलग पड़ा और कुछ पैसा हो गया, बड़ा पागल हो गया। मस्तिष्क अस्थिर हो गया। एक जगह। आहाहा! यह छोटे को कुछ हुआ। उस बड़े को कुछ हुआ था।

ऐसी की ऐसी दुनिया चलती जाती है। क्या पर के कारण होता है? समझ में आया? आहाहा! यहाँ कहते हैं कि पुद्गल जो मिट्टी रजकण है, 'विहूयरयमला' नहीं आता लोगस्स में। यह उसमें अपने दिगम्बर में भी आता है। विहूरयमला रय=सूक्ष्म धूल है। आठ कर्म की मिट्टी। उसे रज कहा जाता है। रय 'य' का 'ज' होता है। और मल, यह पहले कहा राग-द्वेष, दया-दान के परिणाम वे मैल भावकर्म हैं। वह पापपरिणाम भावकर्म है। उस भावकर्म को मल कहा है, जड़कर्म को रज कहा है। दोनों चीज़ें अलग हैं। मल, वह अपनी पर्याय में (होता है)। यह पुण्य-पाप के भाव वह मैल है और जड़कर्म बँधता है, वह रज है। सूक्ष्म मिट्टी, यह मिट्टी है न? यह स्थूल है। वह आठ कर्म की सूक्ष्म मिट्टी है सूक्ष्म। कार्मण रजकण। धूल अजीवतत्त्व है, मिट्टी है। उस मिट्टी में जो कर्म की पर्याय होती है, वह पुद्गलकर्ता होकर होती है, ऐसा कहते हैं। ओहोहो! स्वतन्त्र! कर्ता की व्याख्या स्वतन्त्र। उसमें भी कर्ता होकर किया न? स्वतन्त्र। कर्ता की व्याख्या स्वतन्त्र।

आत्मा पुण्य और पाप के परिणाम करे, वह स्वतन्त्र होकर करता है। कर्म है तो पुण्य-पाप करता है, ऐसा नहीं। और आत्मा ने पुण्य-पाप किये तो कर्म उसके अवलम्बन से बँधकर पड़े हैं, ऐसा है ही नहीं। **पुद्गलरूप कर्ता के निश्चयकर्मभूत विशिष्ट-प्रकृतिरूप...** विशिष्ट अर्थात् खास। जैसे कि साता आदि परिणाम। किसके परिणाम? जड़ के। जड़ में सातावेदनीय आदि पर्याय हुई, वे पुद्गल के परिणाम हैं। परिणाम कहो,

पर्याय कहो, अवस्था कहो, दशा कहो, हालत कहो या कार्य कहो। समझ में आया?

पुद्गलरूप कर्ता के निश्चयकर्मभूत विशिष्टप्रकृति... खास प्रकृति परिणाम, ऐसा। सातावेदनीय आदि मुख्य प्रकृति। विशिष्ट कहा न? यहाँ विशिष्ट का अर्थ मुख्य। मुख्य प्रकृतिरूप परिणाम। साता अर्थात् उच्च गोत्र लें, **कि जिनमें जीव के शुभपरिणाम निमित्त हैं...** देखो! सातावेदनीय पर्याय हुई, वह कर्म का कार्य है। निश्चय से कर्म का कर्तृत्व है - **कि जिनमें...** जिनमें अर्थात् सातावेदनीय कर्म बँधा, उसमें। **जीव के शुभपरिणाम निमित्त हैं...** कहो, समझ में आया?

वे—द्रव्यपुण्य हैं। जड़ को द्रव्यपुण्य कहते हैं। जड़-जड़ रजकण, मिट्टी, धूल। जो पाप होता है न, यह पैसा आदि मिलते हैं, वह निमित्त से कहने में आता है। इसके विकल्प में पुरुषार्थ है नहीं। यह धूल आती है न? पाँच-पचास लाख। वह धूल आती है, उसमें पूर्व का द्रव्यपुण्य निमित्त कहने में आता है। उसके राग से और पुरुषार्थ पैसा आता है, ऐसा तीन काल तीन लोक में नहीं है। ऐसे द्रव्यपुण्य को जड़ का कार्य कहा जाता है। ओहोहो! उसे कैसे खबर पड़े कि मुझे सातावेदनीयरूप से बन्धन... खबर की कहाँ आवश्यकता है? खबर हो तो एक ही द्रव्य सिद्ध होगा।

भगवान ने तो छह द्रव्य देखे हैं। भगवान ने ज्ञान में छह द्रव्य देखे हैं। अनन्त आत्मा, अनन्त परमाणु, एक धर्मास्ति, एक अधर्मास्ति, एक आकाश और काल असंख्य। ऐसा भगवान ने केवलज्ञान में छह द्रव्य देखे हैं। जाननेवाला एक ही द्रव्य है और दूसरे पदार्थ नहीं, ऐसा है नहीं। अनन्तगुणे जड़ हैं। आत्मा से तो अनन्तगुणे परमाणु हैं। इस जगत में परमाणु हैं, वे अनन्तगुणे हैं। जितनी संख्या जीव की है, उससे अनन्तगुणे परमाणु की संख्या है। अनादि से है। जो खबरवाला द्रव्य है तो अकेला आत्मा सिद्ध होगा और अनन्तगुणे परमाणु साबित नहीं होंगे। उस परमाणु में अपनी पर्याय होने की ताकत है। वास्तव में उसके द्रव्य में वह पर्यायशक्ति पड़ी है। आहाहा! और यह आया, लो! यह द्रव्य पुण्य होने की पर्याय में परमाणु में अन्दर गुण में शक्ति पड़ी है। उस रूप काल आया तो द्रव्यपुण्यरूप पर्याय हो गयी। कार्य का कारण में कथंचित् सत्त्व है। कारण में सत्त्व न हो और अध्धर से कार्य हो जाये, ऐसा नहीं होता। समझ में आया? ऐसी बात है।

आत्मा में भी जो पुण्य-पाप के परिणाम हुए, वह परिणाम की शक्ति की योग्यता तो अन्दर थी। गुण है, उसमें क्षणिक पर्याय की ऐसी एक-एक पर्याय की भिन्न-भिन्न योग्यता है। सब गुण में विकार होने की योग्यता नहीं है। उसमें भी भिन्न-भिन्न क्षणिक अवस्था है। जो अवस्था होने की योग्यता है, उसमें उस जाति की शक्ति है। कारण में थोड़ा सत् है। कार्य बिल्कुल नया होता है, ऐसा नहीं है। भारी सूक्ष्म तत्त्व, भाई!

मुमुक्षु : सत्य बात।

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्दर है न? इतनी उस जाति की पर्याय की योग्यता, गुण तो अनन्त पर्याय का पिण्ड है, परन्तु ऐसी एक पर्याय की योग्यता है। पुण्यरूप होता है, पापरूप होता है। समझ में आया?

और परमाणु में भी ऐसी शक्ति पड़ी है तो पुण्यरूप पर्याय होती है, पापरूप पर्याय होती है। अन्दर पड़ी है। पर्यायरूप होना, वह अनन्त परमाणु का स्कन्ध है। परमाणु में ऐसी योग्यता तो पड़ी है; नहीं तो स्कन्धरूप कहाँ से हो? समझ में आया? कर्मरूप पर्याय तो प्रत्येक परमाणु की होती है या नहीं? कोई ऐसा खास गुण नहीं कि गुण के कारण अन्दर कर्म की पर्याय हो। परन्तु उसमें ऐसी पर्याय होने की योग्यता है। समझ में आया? यह द्रव्यपुण्य। किसे द्रव्यपुण्य कहा? सातावेदनीय आदि बँधे, उसमें भगवान आत्मा के शुभपरिणाम निमित्त हुए, उसे द्रव्यपुण्य कहा गया। जड़ का कार्य, मिट्टी का कार्य।

पुद्गलरूप कर्ता के निश्चयकर्मभूत... अब पाप लेते हैं। जड़ का पाप, हों! **पुद्गलरूप कर्ता के निश्चयकर्मभूत विशिष्टप्रकृति...** समझे न? विशिष्ट अर्थात् खास। विशिष्ट अर्थात् असाता आदि। असाता आदि परिणाम जड़ में पड़ते हैं, **वेदनीयादि विशिष्ट प्रकृतिरूप परिणाम—कि जिनमें जीव के अशुभ-परिणाम निमित्त हैं...** लो! नये पाप के परिणाम जड़ से होते हैं, उसमें आत्मा के पापपरिणाम निमित्त कहे जाते हैं। इसमें कितना याद रखना? फावाभाई! संसार की पाप की बात कितनी याद रखता है? हाँ! वर्तन की सीधी याद आवे एकदम! जहाज की। अभी छोड़ दिया है तो भी। जिसकी जिसे रुचि, उसे उसकी यादगिरी रहे बिना नहीं रहती। समझ में आया?

यहाँ तो पदार्थ नौ तत्त्व क्या है, उसकी बात चलती है। जड़पाप और जड़पुण्य परमाणु की पर्याय का कार्य है। परमाणु का कार्य है। भावपुण्य और भावपाप वह जीव का निश्चय से कार्य है। समझ में आया? भाषा एक-एक देखो तो यहाँ है तो और दूसरी जगह ऐसा कहा तो विरोध होगा? कि पुण्य-पाप के परिणाम जीव का स्वभाव नहीं। जीव पुण्य-पापरूप परिणमता ही नहीं। यह तो दृष्टि की अपेक्षा.... सम्यग्दर्शन हुआ— 'मैं चैतन्यस्वरूप ज्ञायक हूँ' ऐसी दृष्टि हुई तो फिर पुण्य-पाप के थोड़े परिणाम होते हैं, उसे कर्म का कार्य है, ऐसा कहकर निकाल दिया। परन्तु पहले इसमें है नहीं और नहीं करता तो निकालने का कहाँ से आया? समझ में आया?

पहले से ही कह दे कि पुण्य-पाप पर के, पुण्य-पाप पर के, कर्म के कारण वे भाव... वह तो मूढ़ है। अभी तो तेरी पर से भिन्न पड़ने की ताकत नहीं। यहाँ पुण्य-पाप का विकल्प, उससे मेरी चीज़ भिन्न है। निर्णय करने के बाद, बाद, पहले से (कहे कि) पुण्य-पाप जड़ है। पुण्य-पाप जड़ है तो मर जायेगा। समझ में आया? पूनातर! किसी दिन आवे, उसमें कितनी सूक्ष्म बात! इसमें याद कहाँ रहे? यह तो साधारण बात है। उसमें कहीं ऐसी बात है नहीं। आहाहा! लो! यह इसे द्रव्य-पाप कहते हैं। किसे? उस परमाणु को। असातावेदनीय और ज्ञानावरणीय जड़ की पर्याय मैं भगवान आत्मा के अशुभपरिणाम निमित्त हुए, उसे पाप कहा। पाप के अनुलक्ष से पाप कहने में आये। इतनी बात। देखो!

इस प्रकार व्यवहार... देखो! **तथा निश्चय द्वारा आत्मा को मूर्त अथवा अमूर्त कर्म दर्शाया गया।** व्यवहार द्वारा मूर्त कर्म का करनेवाला निमित्तरूप से कहा। निश्चय से अपने परिणाम का कर्ता कहा गया। समझ में आया? इसका भावार्थ कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - १३३

जम्हा कम्मस्स फलं विसयं फासेहिं भुंजदे णियदं ।
जीवेण सुहं दुक्खं तम्हा कम्माणि मुत्ताणि ।। १३३ ।।

यस्मात्कर्मण: फलं विषय: स्पर्शैर्भुज्यते नियतम् ।
जीवेन सुखं दु:खं तस्मात्कर्माणि मूर्तानि ।। १३३ ।।

मूर्तकर्मसमर्थनमेतत् ।

यतो हि कर्मणां फलभूत: सुखदु:खहेतुविषयो मूर्तो मूर्तैरिन्द्रियैर्जीवेन नियतं भुज्यते, तत: कर्मणां मूर्तत्वमनुमीयते । तथाहि-मूर्तं कर्म, मूर्तसम्बम्धेनानुभूयमानमूर्तफल-त्वादाखुविषवदिति ।। १३३ ।।

जो कर्म का फल विषय है, वह इन्द्रियों से भोग्य हैं।
इन्द्रिय विषय हैं मूर्त इससे करम फल भी मूर्त है।।१३३।।

अन्वयार्थ :— [यस्मात्] क्योंकि [कर्मण: फलं] कर्म का फल [विषय:] जो (मूर्त) विषय वे, [नियतम्] नियम से, [स्पर्शै:] (मूर्त ऐसी) स्पर्शनादि-इन्द्रियों द्वारा [जीवेन] जीव से [सुखं दु:खं] सुखरूप से अथवा दु:खरूप से [भुज्यते] भोगे जाते हैं, [तस्मात्] इसलिए [कर्माणि] कर्म [मूर्तानि] मूर्त हैं।

टीका :— यह, मूर्त कर्म का समर्थन है।

कर्म का फल जो सुख-दु:ख के हेतुभूत मूर्त विषय, वे नियम से मूर्त इन्द्रियों द्वारा जीव से भोगे जाते हैं, इसलिए कर्म के मूर्तपने का अनुमान हो सकता है। वह इस प्रकार :— जिस प्रकार मूषकविष मूर्त है, उसी प्रकार कर्म मूर्त है, क्योंकि (मूषकविष के फल की भाँति) मूर्त के सम्बन्ध द्वारा अनुभव में आनेवाला ऐसा मूर्त उसका फल है। [चूहे के विष का फल (-शरीर में सूजन आना, बुखार आना आदि) मूर्त है और मूर्त शरीर के सम्बन्ध द्वारा अनुभव में आता है—भोगा जाता है; इसलिए अनुमान हो सकता है कि चूहे का विष मूर्त है; उसी प्रकार कर्म का फल (-विषय) मूर्त है और मूर्त इन्द्रियों के सम्बन्ध द्वारा अनुभव आता है—भोगा जाता है, इसलिए अनुमान हो सकता है कि कर्म मूर्त है] ॥१३३॥

प्रवचन नं. ३३, गाथा-१३३-१३४
दिनांक - २९-०९-१९६४, भाद्र कृष्ण ९, मंगलवार

नौ पदार्थ की व्याख्या में पुण्य-पाप की व्याख्या हुई। उसके फल की जरा बात करते हैं। १३३,

जम्हा कम्मस्स फलं विसयं फासेहिं भुंजदे णियदं।
जीवेण सुहं दुक्खं तम्हा कम्माणि मुत्ताणि।।१३३।।

टीका :— यह, मूर्त कर्म का समर्थन है। कर्म अन्दर है, आठ कर्म, वह मूर्त है, मूर्त-रूपी है। उसकी बात यहाँ सिद्ध करते हैं। आत्मा अमूर्त है और कर्म मूर्त है। उसका फल भी बाहर से विषय अनुकूल-प्रतिकूल मिले, वह भी मूर्त है। यह बात सिद्ध करते हैं। मूर्त द्वारा भोगने में आते हैं तो कर्म मूर्त है। ऐसा कहते हैं, देखो!

कर्म का फल जो सुख-दुःख के हेतुभूत मूर्त विषय... कर्म है जो साता-असाता आदि कर्मबन्ध पड़ा है, वह मूर्त है, अजीव है, रूपी है। क्यों? कि कर्म का फल तो आत्मा में सुख-दुःख के परिणाम जो होते हैं, सुख-दुःख का भाव होता है, उसके हेतुभूत मूर्त विषय है। समझ में आया?

आत्मा में यह मुझे ठीक है, मुझे अठीक है - ऐसी जो कल्पना, सुख-दुःख की कल्पना —है तो दोनों दुःख। सेठी! दोनों दुःख हैं। सुख यह। देखो न! यह लोग मानते हैं, यह सुख। लकड़ी का घोड़ा किया तो बालक मानता है कि यह लकड़ी का घोड़ा, तो यह घोड़ा ले। इसी प्रकार भगवान आत्मा अपने अतीन्द्रिय आनन्द सुख को भूलकर, अपने अतीन्द्रिय आनन्दस्वभाव को भूलकर, कर्म के फलरूप जो इष्ट-अनिष्ट विषय, उनमें सुख-दुःख की कल्पना करता है, वह सुख-दुःख को भोगता है तो कर्म का फल जड़ है, इन्द्रिय द्वारा भोगता है तो कर्म जड़ है, ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। समझ में आया?

कर्म का फल जो... इतना। **सुख-दुःख के हेतुभूत...** कर्म का फल कौन? कि सुख-दुःख की जो कल्पना होती है कि यह लक्ष्मी मुझे मिली, निर्धनता हुई। अरे रे!

शरीर में रोग आया, अरे! ठीक नहीं। निरोगता हो तो ठीक—ऐसी अज्ञानी की कल्पना अपने अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप स्वभाव को छोड़कर, पूर्व के कर्म के फलरूप प्राप्त हुए इष्ट-अनिष्ट पदार्थ, उस ओर की सुख-दुःख की कल्पना होती है, उसमें हेतुभूत पूर्व के कर्म से प्राप्त इष्ट-अनिष्ट पदार्थ। कहो, समझ में आया? समझ में आया या नहीं?

कर्म के फल जो सुख-दुःख, वह यहाँ कर्म का फल नहीं। कर्म का फल जो सुख-दुःख—ऐसा नहीं परन्तु कर्म का फल इतना। जो, क्या कर्म का फल? कि अपनी पर्याय में जीव आनन्द को भूलकर अपने आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द है, उसे भूलकर, जो सुख-दुःख की कल्पना करनेवाला जीव, उसे हेतुभूत निमित्त-मूर्तविषय, वह कर्म का फल मूर्त विषय है। यह पाँच-पच्चीस लाख धूल मिले, स्त्री-कुटुम्ब मिले, बँगला-बँगला मिले, निर्धनता मिले, सरोगता हो, वह सब मूर्त कर्म का बाह्य फल है। ऐ, जैचन्दभाई!

अनुकूल-प्रतिकूल बाह्य संयोग वह कर्म का फल है, इष्ट-अनिष्ट विषय जड़ मिले, वह कर्म का फल है। वह अपने सुख-दुःख की कल्पना में निमित्त है। समझ में आया? कर्म का फल, भगवान आत्मा का फल तो आनन्द है। अतीन्द्रिय आनन्दमय सच्चिदानन्दस्वरूप आत्मा है। सत्-चिदानन्द। सत्-शाश्वत्। चिद् अर्थात् ज्ञान और अणीन्द्रिय आनन्दस्वरूप आत्मा है।

मुमुक्षु : वह आत्मा कैसा होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह भान बिना का नहीं ऐसा। यह दुःख भोगता है या नहीं इस कल्पना में? अन्दर उल्टा स्वभाव है—अतीन्द्रिय आनन्द। समझ में आया? पूर्व के कर्म जो पुण्य-पाप बँधे हैं, उसके पापकाल में बाह्य में अनुकूल-प्रतिकूल जगत कहे, ऐसी चीज़ का मिलना। वह पूर्वकर्म का फल। उसमें अज्ञानी अपने आनन्द को भूलकर सुख-दुःख की कल्पना करता है, उसमें इष्ट-अनिष्ट विषय निमित्त पड़ते हैं। वे कराते नहीं। समझ में आया?

प्रतिकूल संयोग आये तो दुःख उत्पन्न कराते नहीं। दुःख में निमित्तभूत है। मानता है कि अरे! मुझे निर्धनता, मैं अकेला हो गया, मैं विदुर, मैं बाँझ, मैं निर्धन,

दरिद्र—ऐसी अज्ञानी की कल्पना में प्रतिकूल चीज़ें निमित्त कही जाती है। कोई प्रतिकूल चीज़ दुख को कराती नहीं और जो अनुकूल है। शरीर सुन्दर, इज्जत, कीर्ति, पाँच - पचास लाख धूल। धूल अर्थात् यह पैसा। यह हो तो अज्ञानी मूढ़ मानता है कि मैं सुखी हूँ। ऐसी जो कल्पना, उस कल्पना में मिले हुए विषय निमित्त कहलाते हैं। वे विषय पूर्व के मूर्त कर्म का फल है। बराबर है, मोहनभाई! भाई! सुविधा में तो सब बराबर लगता है। असुविधा में कठिन लगता है, ऐसा कहते हैं। सुविधा हो शरीर सुन्दर, इन्द्रियाँ अच्छी, कुटुम्ब अच्छा, पैसा, इज्जत, कीर्ति, सब बराबर है। पूर्व के पुण्यकर्म का फल है। अपनी कल्पना करता है तो मानता है कि मैं सुखी हूँ। सुखी है नहीं। वह तो दुःख है। कल्पना तो दुःख है परन्तु माना हुआ है न कि उससे मैं सुखी हूँ। अभी तो हमारे सबसे बादशाही है। समझ में आया?

तो कहते हैं कि कर्म का फल, जो आत्मा में सुख-दुःख के परिणाम होना, उसके हेतुभूत मूर्त विषय, **वे नियम से मूर्त इन्द्रियों द्वारा जीव से भोगे जाते हैं,...** वे विषय शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, वे नियम से मूर्त इन्द्रियों द्वारा, निमित्त है न निमित्त? मूर्त इन्द्रियों द्वारा भोगे जाते हैं। भोगता है तो सुख-दुःख के परिणाम, परन्तु यहाँ इन्द्रियों द्वारा उसकी कल्पना हुई न (कि) यह मुझे ठीक है, यह मुझे अठीक है, ऐसी कल्पना का भाव अज्ञानी का, उसे सुख-दुःख की कल्पना में पूर्व के कर्म का फल निमित्त कहा जाता है। कहो, समझ में आया? यह अनेकान्त में लेख है। इस श्रीमन्ताई का। यह श्रीमन्ताई का लेख है और एक बुजुर्गों को। समझ में आया? लिया है, यह रखो तुम्हारे पास।

यह मूर्त विषय लड्डू, पैसा, निर्धनता, रोग, सड़ा हुआ शरीर, शरीर में दाने-दाने में कीड़े पड़े। दाना-दाना समझते हो? शीतला होती है न, शीतला? शीतला कहते हैं। जीवांत पड़ती है जीवांत। वह प्रतिकूलता मूर्त कर्म का फल है। वह इन्द्रिय द्वारा कल्पना से मैं दुःखी हूँ, ऐसा भोगने में आता है। तो कर्म मूर्त है और उसका फल मूर्त है। इन्द्रियाँ—मूर्त द्वारा भोगने में आये, इसलिए कर्म मूर्त, ऐसा सिद्ध करना है। समझ में आया? आहाहा!

इसलिए कर्म के मूर्तपने का अनुमान हो सकता है। इस कारण कर्म में मूर्तपना है, ऐसा अनुमान हो सकता है। समझ में आया? क्यों अनुमान हुआ? मूर्त कर्म का फल

मूर्त और लक्ष्य करके इन्द्रिय मूर्त द्वारा भोगने में आया, तो कर्म मूर्त है तो उसका फल मूर्त इन्द्रियों के द्वारा सुख-दुःख की कल्पना भोगना, उसमें वह निमित्त हुए। तो इन्द्रियों द्वारा भोगने में आता है, ऐसा कहने में आता है। समझ में आया? यह श्रीमन्ताई का भोगना क्या है? श्रीमन्ताई पूर्व के पुण्य का फल है और इन्द्रियों द्वारा कल्पना करके हम सुखी हैं, मूढ़ ऐसा मानता है। उसमें मूढ़ लिखा नहीं, हों!

भगवान आत्मा अतीन्द्रिय रस की सूरण गाँठ। भगवान आत्मा देह में विराजमान अतीन्द्रिय आनन्द की सूरण गाँठ। यह गाँठ सुनी है सूरण की? पूरी सूरण की गाँठ। ऐसे भगवान इस देह के रजकण से भिन्न, वाणी से भिन्न, कर्म के रजकण यह सूक्ष्म धूल है, उससे भिन्न, चैतन्य आनन्दरस का कन्द है। खबर नहीं कभी भी। क्या है? मैं हूँ। भगवान आत्मा आनन्द देह में विराजमान सबका आत्मा, हों! अतीन्द्रिय शान्तरस, अनाकुल आनन्दरस की भेली है। हमारे भेली किसे कहते हैं? समझ में आया? गुड़ की भेली आती है। ध्रुव आनन्दरस की भेली को भूलकर अनादि से अज्ञानी मूर्त कर्म का फल मूर्त के ऊपर लक्ष्य करके इन्द्रिय द्वारा सुख-दुःख की कल्पना करता है। तो मूर्त का फल मूर्त और इन्द्रियों द्वारा भोगा जाता है, इस कारण से कर्म में मूर्तपने की सिद्धि हुई। शोभालालभाई! बराबर है? ऐ सेठ! यह समझ में आता है? ध्यान पड़ता है परन्तु याद नहीं रहता। हें? हाँ... क्या मिला? धूल मिली, उसमें भी क्या हुआ? कर्म से पैसा आया श्रीमन्ताई (मिली), तो उसमें आत्मा में क्या आया? आत्मा पाँच-पचास लाख करोड़ पैसा, तो उसके पास क्या आया? लाओ। वह तो अरूपी है, उसके पास 'मेरे हैं', ऐसी ममता आयी। चीज़ तो वहाँ रह गयी। साथ में लाये हैं सेठ? ये दोनों सेठिया बैठे हैं। हम वहाँ कानपुर की सम्हाल करते हैं, यह सेठ सबके ऊपर अब ध्यान रखते हैं। यह सब ममता है।

कहते हैं, भगवान! एक बार सुन तो सही! कि तुझमें आनन्द है, भाई! तू तो सिद्ध जैसा अतीन्द्रिय आनन्दमय है। सिद्ध भगवान को आनन्द है। परमात्मा शरीरी अरिहन्त और सिद्ध हुए। अरिहन्त और सिद्ध भगवान। जैसे अतीन्द्रिय आनन्द अनन्त चतुष्टय प्रगट हुआ। अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य। ऐसे तेरे आत्मा में अन्दर में बेहद ज्ञान, दर्शन, आनन्द और वीर्य पड़ा है। उसकी रुचि बिना, उसके आश्रय

बिना, उसके अवलम्बन बिना, उसके अनुभव बिना मूर्त धर्म का फल मूर्त मिला। उसका लक्ष्य करके मुझे ठीक-अठीक है, ऐसी कल्पना को अज्ञानी आनन्द को भूलकर भोगता है। समझ में आया? कुछ तो मजा होगा या नहीं वहाँ? हें? जैचन्दभाई! पाँच-पच्चीस लाख की पूँजी हो, पाँच-छह लाख की आमदनी हो तो उसमें कुछ तो सुख होगा या नहीं?

मुमुक्षु : अभी तक ऐसा ही मानते थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी तक ऐसा माना है। हाँ... यह ठीक कहा। यह कहते हैं कि अभी तक माना था। भाई! ऐसा कहते हैं कि अब क्या है? आहाहा! कौन दे और कौन ले? अनन्त काल का अनजाना भटकता हुआ, भटकता भिखारी। अनन्त काल का अनादि.... अनादि.... अनादि.... अनादि.... अनादि.... आत्मा है। उसे कोई आदि है? है... है... तत्त्व अनादि-अनन्त भगवान अपना निज स्वरूप तो त्रिकाली है, उसकी खबर बिना यह इष्ट-अनिष्ट पदार्थ देखकर कूद पड़ता है। जैसे वे पतंगे दीपक देखकर, दीवा (गुजराती में) कहते हैं न? कूद पड़ते हैं। इसी प्रकार मूर्त विषय को देखकर अज्ञानी कूद पड़ता है खड्डे में पड़े वैसे कल्पना के खड्डे में पड़ता है। समझ में आया? हाँ, तो क्या? है? है क्या? शरीर तुम्हारा नहीं, कर्म तुम्हारा नहीं। बाहर की चीज़ तुम्हारी नहीं। कल्पना के खड्डे में पड़े। इसलिए अब निर्णय करना कि यह कल्पना का खड्डा नुकसानकारक है। अन्दर आनन्दधाम भगवान है। अतीन्द्रिय आनन्द का धाम जिसका स्वाद इन्द्रों के इन्द्रासन में हैं नहीं। ऐसा भगवान आत्मा मैं हूँ, ऐसी रुचि कराने के लिये यह बात करते हैं। समझ में आया? तात्पर्य तो यह बतलाना है और ऐसा-ऐसा भी यह बतलाना है। अमूर्त भगवान आत्मा का अन्दर अमूर्त आनन्द, उसकी रुचि किये बिना अपने में आनन्द का पोषण किये बिना बाहर के विषय में इन्द्र हो, नरेन्द्र हो, वह कूद पड़ते हैं तो कहते हैं कि मूर्त का फल मूर्त में भोगने में आता है, तो कर्म मूर्त है, ऐसा सिद्ध हो गया। समझ में आया?

ओ भीखाभाई! कितना सुख होगा मकान में? अब भाई! वह तलहटी की अपेक्षा अभी मकान बड़ा है। तलहटी या क्या कहलाती है? तलाटी। तलहटी तो पर्वत के नीचे तलहटी कहलाये।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, तलहटी। मजदूरी करने की। कहो, समझे।

अब दृष्टान्त देते हैं। **वह इस प्रकार :—** कर्म मूर्त कैसे है ? कि मूर्त उसके फल में इन्द्रियों द्वारा भोगने में आता है। अब इसका दृष्टान्त देते हैं। **जिस प्रकार मूषकविष मूर्त है,...** चूहा-चूहा। चूहे का जहर है न ? जहर। रात्रि में चूहे नहीं काटते ? फूंक मारते हैं चूहे। फूं...फूं... फूंफ मारे, उस समय खबर नहीं पड़ती। अन्दर से चमड़ी काट जाये। खुल्ले पैर रह गये हों तो फूंफ... फूंप...। उस समय इसे दु:ख नहीं होता। सवेरे जहाँ ऐसे नजर के वहाँ एकदम लाल। अरे ! यह क्या ? फिर उसका जहर चढ़े तो सूजन जाये। सूजन। हमारी भाषा में सोजा-सोजा। सूजन हो जाती है।

जिस प्रकार मूषकविष... मूषक अर्थात् चूहे का जहर **मूर्त है, उसी प्रकार कर्म मूर्त है, क्योंकि (मूषकविष के फल की भाँति)...** चूहे के जहर के फल की भाँति। मूर्त के सम्बन्ध द्वारा अनुभव में आता ऐसा मूर्त उसका फल है। मूर्त के सम्बन्ध द्वारा अनुभव में आता हुआ ऐसा मूर्त उसका फल है। क्या ? कि **चूहे के विष का फल (-शरीर में सूजन आना, बुखार आना आदि)...** बहुत काट गया हो न, बुखार आ जाये। पैर में (काटा हो) तो चल नहीं सकते, हों ! सवेरे इतनी (सूजन) चढ़ जाये। एक घण्टे, दो घण्टे... सवेरे उठे तो आहाहा ! विष मूर्त है तो शरीर में सूजन, बुखार इत्यादि मूर्त में होता है। तो **मूर्त है और मूर्त शरीर के सम्बन्ध द्वारा अनुभव में आता है...** समझ में आया ? कौन ? वह फल। चूहे का जहर। **सम्बन्ध द्वारा अनुभव में आता है—भोगा जाता है; इसलिए अनुमान हो सकता है कि चूहे का विष मूर्त है;...** लो ! चूहे का जहर मूर्त है। क्योंकि शरीर द्वारा भोगने में—भोगने में तो राग-द्वेष आये, परन्तु उसमें निमित्त पड़े न ? एकदम लाल... उसी प्रकार कर्म का फल (विषय) मूर्त है, लो ! यहाँ तो स्पष्ट कहा है। बाहर का मिले, तब मिलता है। बाह्य पदार्थ। कर्म का फल, विषय पाँच इन्द्रिय के शब्द, दुनिया प्रशंसा करे, सुन्दर रूप देखने को मिले, सुगन्ध अच्छी मिले, भोजन में खाने-पीने का अच्छा मिले और सरस-सुन्दर-सुन्दर मखमल की गद्दी... यह सब कर्म के फल—संयोग है। **और मूर्त इन्द्रियों के सम्बन्ध द्वारा अनुभव आता है, इसलिए**

अनुमान हो सकता है कि कर्म मूर्त है। लो! जैसे चूहे का जहर मूर्त है, वैसे कर्म के फल मूर्त हैं। चूहे का फल जहर वह शरीर द्वारा, मूर्त द्वारा भोगने में आया, वह जहर है; उसी प्रकार इन्द्रियों द्वारा उसका फल जड़ भोगने में आया, कर्म मूर्त है, उसका अनुमान हो सकता है। यह कर्म की सिद्धि की। कर्म है या नहीं? कि तू है और कर्म नहीं तथा कर्म है और तू नहीं? दोनों है। समझ में आया? ऐसा किसलिए कहा? कि जो बाहर की सामग्री मिलती है, वह तेरे वर्तमान प्रयत्न से नहीं। वर्तमान में तेरी विचक्षणता और समझण बहुत ही हो तो बहुत ही प्राप्त की जा सकती है, ऐसा नहीं। बाहर में मिले, वह तो मूर्त कर्म का ही फल है। तेरा प्रयत्न उसमें कुछ भी काम नहीं करता। समझ में आया? जैचन्दभाई! वहाँ चतुराई काम नहीं करती कि मैं होशियार हूँ तो बारह महीने में पचास हजार पैदा करता हूँ, लाख पैदा करता हूँ, लाख। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....दान करते जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : दान करते जाये क्या? दान में राग मन्द हो तो पुण्य होता है। मान हो तो पाप होता है, उसमें क्या है?

मुमुक्षु : आश्रम खुले?

पूज्य गुरुदेवश्री : आश्रम खुले? कौन खोले? राग मन्द हो तो पुण्य होता है। आश्रम खोलने में, प्रभावना में पैसे में मन्द राग हो। तृष्णा मन्द हो, पुण्य होता है। उसमें धर्म कहाँ है? उसके द्वारा कोई धर्म नहीं होता। पचास लाख, करोड़ मिले न, पचास लाख खर्च किये तो धर्म हो गया, धूल में भी धर्म नहीं। यह और दूसरी बात की किसी को मान न भी हो। धर्म की प्रभावना हुई तो उसमें राग की मन्दता हुई, पुण्यबन्ध हुआ, शुभभाव हुआ। परन्तु उससे कोई धर्म होता है (ऐसा नहीं है)। कि पाँच-पचास लाख के मन्दिर बनाये तो धर्म हुआ है (ऐसा नहीं है।) और वहाँ धर्म करेगा, उसे कुछ भाग मिलेगा, ऐसा भी नहीं है। सेठी!

मुमुक्षु : ...लाभ ले।

पूज्य गुरुदेवश्री : लाभ ले तो उसके पास रहा। तुम्हारे क्या आया? तुम्हारे पास कहाँ आया? भाई! बात तो ऐसी है। उसके कारण से तो हुआ है। उसके कारण से

शुभभाव किया तो पुण्य हुआ। धर्म तो अपने स्वभाव की दृष्टि करने से वहाँ धर्म होता है। मन्दिर और देरासर के ऊपर लक्ष्य करने से धर्म नहीं होता।

मुमुक्षु : ....करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या करते हैं? स्वयं से शुभभाव करते हैं। निमित्त कौन हुआ? बाह्य यहाँ मन्दिर निमित्त पड़ा। पड़ा तो उससे नहीं हुआ तो इससे कैसे होगा? उस समय का भाव इसने किया कि मन्दिर हो तो दुनिया लाभ ले। ऐसा अपना भाव उस समय में करनेवाला था, तो उसका नाम पुण्य। इतना पुण्य हुआ, बस। फिर कोई करे तो यहाँ थोड़ा लाभ मिलेगा...

मुमुक्षु : वह तो पाप है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो पुण्य है, परन्तु वहाँ पुण्य करता है, उसका यहाँ लाभ है, ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : ...पर का लाभ मिले...

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा नहीं है। पर का लाभ पर से अपने में लाभ मिले, ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : आशीर्वाद तो देता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन दे आशीर्वाद।? किसी का आशीर्वाद किसी को फलता है? ऐसा है गाँधीजी!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या वर्णन है? शास्त्र में कहीं है नहीं। पुण्य हो ऐसा है। मोक्ष कहाँ से आया? है ही नहीं। पंच महाव्रत पाले तो भी मोक्ष नहीं तो फिर मन्दिर बनावे तो मोक्ष कहाँ से आया? भाई! यहाँ तो बात... भाव आवे, भगवान की प्रतिमा आदि की भक्ति करे तो शुभभाव है। पुण्य होगा परन्तु उससे कोई संवर, निर्जरा, मोक्ष हो जाये, यह बात है (नहीं)। और वहाँ किसी को मोक्ष हुआ तो करनेवाले को लाभ हुआ... वह तो स्वयं की पर्याय से अपने द्रव्य के आश्रय से लाभ हुआ है। बात बहुत विचित्र है।

लोगों ने ऐसी मान ली है, अपने नफा एक लाख करोड़, उसमें से जितने लोग वहाँ धर्म करेंगे, उसमें से अपने को दसवाँ प्रतिशत तो मिलेगा।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ से करे तो भी क्या है? उसके परिणाम प्रमाण उसे मिलेगा। हो, उसके परिणाम में जैसे भाव किये, उसके पुण्य का फल उसे है। दूसरे ने वह भाव किया था, उसमें सब मिले। बहुत लाभ हो तो ऐसे भाव जिस प्रमाण में किये थे, उतना पुण्य बँधा। उसमें है दूसरे से कोई मर जाये और वहाँ जाये और यहाँ बहुत लोभ करे तो उसका फल वहाँ जाये, ऐसा नहीं है सेठ! निर्णय करना चाहिए, हाँ, सबको। यह देखो अपने देरियाजी स्पष्टीकरण करते हैं। इन सेठियाओं का, अरे! यह पैसेवाले इतने खर्च करे तो इन्हें कुछ नहीं मिले? यहाँ बड़ी नसियाँ बनायीं, ऐसा बनाया। लो! उसमें से कुछ यहाँ लाभ होगा या नहीं? तो कहे, बिल्कुल नहीं। बात ऐसी है। जिस प्रकार जिसने भाव किये हों, करते... करते... करते,... लोग लाभ ले ऐसा। ऐसे भाव किये, वैसा उसे पुण्य (बँधता है)।

मुमुक्षु : मान से किया हो तो...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो बात यहाँ है नहीं। मान से क्या, परन्तु भाव अच्छे किये हों, लोग लाभ ले, धर्म की प्रभावना स्वाध्याय करे शास्त्र से, ऐसे ऐसे जैसे भाव हों, तत्प्रमाण पुण्य बँधता है। परन्तु दूसरे से पुण्य आ जाता है, ऐसा है नहीं।

मुमुक्षु : हमारी बिरादरी नहीं चलती।

पूज्य गुरुदेवश्री : बिरादरी नहीं चलती... निर्णय करना चाहिए। १३३ गाथा हुई, लो! समझ में आया? बाहर के अनुकूल-प्रतिकूल फल मिलना, वह अपने पूर्व के पुण्य-पाप के फल हैं। और वे इन्द्रिय द्वारा भोगने में आये मूर्त, पूर्व के कर्म मूर्त हैं, इतना सिद्ध किया। अर्थात् वह कर्म मैं नहीं और उसका फल भी मैं नहीं। और भोगने में विकल्प आया सुख-दुःख, वह वास्तव में मेरी चीज़ में नहीं है। ऐसा अन्तर अनुभव निर्णय कराने के लिये यह बात करते हैं। मात्र बात ही नहीं कि ऐसा है... ऐसा है... ऐसा है। समझ में आया?

भगवान! बाहर की चीज़ तुझसे भिन्न है, उसका कारण कर्म भी उससे भिन्न है और तुझे इन्द्रिय द्वारा भोगने की कल्पना हुई, वह सुख-दुःख की कल्पना भी तेरे स्वभाव से वास्तव में भिन्न है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....अमूर्त है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अमूर्त है। विकारी परिणाम अमूर्त है। विकारी परिणाम अमूर्त है, परन्तु वास्तव में स्थूल परिणाम है। शुद्ध चैतन्यस्वभाव में अतीन्द्रिय आनन्दरस परिपूर्ण भरा है, ऐसा भगवान आत्मा, उसकी अन्तर्दृष्टि करना, वह सब यहाँ कहने का तात्पर्य है और फल है। समझ में आया? साथ में कर्म और फल भी साबित करते हैं। अस्ति से। आस्था तो सब करनी है या नहीं?

किसी के सामने देखना नहीं, ऐसा कहते हैं। अरे! मुझे बहुत प्रतिकूल दे दिया और मुझे सहायता करके बहुत ही अनुकूल दे दिया, इस बात में कुछ माल नहीं है। तेरे पूर्व के पुण्य-पाप से बाहर की सामग्री आती है, बस। और स्वभाव को भूलकर जितना तेरा अपराध हुआ, उतना अपराध सुख-दुःख की कल्पना करो, उतना तुझे नुकसान है। तेरे घर में टोटा पड़ता है। समझ में आया? तो यह पैसे मिले, उसका लाभ तो नहीं परन्तु सुख-दुःख की कल्पना का घाटा पड़ा।

भाई! वीतरागमार्ग ऐसा है। जगत को झट... इतना कठिन पड़े। यह बाह्य सामग्री! आहाहा! कितना सुख है, ऐई! मलूकचन्दभाई! यह सुख देखकर मैंने सवेरे पूछा। मुम्बई गये थे न क्या? बहुत जबाव नहीं दिया। सब अन्धेरे में मुम्बई जाते हैं। पैसा लेकर आयेंगे। वहाँ कहाँ पैसा इसकी जेब में आ पड़े थे कि ले आवे।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह इसे खबर नहीं परन्तु लोग ऐसा मानते हैं। लोग ऐसा मानते हैं। है? लोग ऐसा मानते हैं। भाई! मेरा पुत्र! करोड़पति! वहाँ गया होगा तो कुछ लेने गया होगा। तो लायेगा कुछ तो लोग माने। यह तो चाहे जिस कारण से गया हो। वह तो वहाँ सामने भी देखे नहीं। हो...हा...! सब समझने जैसा है, बापू! बापू करे! बापू... बापू..! बापू वहाँ पैसे में कहाँ बैठे? कितना सुख होगा इन पैसेवालों को, ऐसा यह

कहते हैं। नहीं? दो लड़के बड़े करोड़पति हैं। एक-एक करोड़-करोड़ रुपये हैं। लो! धूल में भी नहीं लड़के को रुपये नहीं तो फिर बाप को कहाँ से आये? आहाहा!

यहाँ तो पूर्व के पुण्य की पाप की सामग्री मिले, उसका लक्ष्य करके इन्द्रिय से भोगे। क्या वह अतीन्द्रिय से भोगने में आता है? इन्द्रिय द्वारा लक्ष्य करके यह चीज़ ऐसी है, हैरान! हैरान! इन्द्रिय से पराधीन होकर हैरान हो गया। अपने को आप भूल के हैरान हो गया। यहाँ तो कर्म की सिद्धि की। ...कर्म जड़ साबित किये, फल जड़ साबित किया, सुख-दुःख की कल्पना साबित की। आत्मा के आनन्द से वह भाव विपरीत था। 'है' इतना सिद्ध किया। वह आस्रवतत्त्व है। सुख-दुःख की कल्पना, वह आस्रवतत्त्व है। कर्म जड़तत्त्व है। उससे मुझे सामग्री मिले, वह परवस्तु है। समझ में आया?

अकेला आत्मा ही है, अकेला जड़ ही है - ऐसा नहीं। आत्मा सर्वथा निर्मल ही है। पर्याय में अनादि संसार में निर्मल नहीं। विकारी भाव है। निर्मल हो तो अन्दर उसे आनन्द का अनुभव होना चाहिए। अन्दर आनन्दस्वभाव निर्मल है। पर्याय में निर्मल हो तो अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव होना चाहिए। इसलिए उसकी दृष्टि पर के ऊपर है। सुख-दुःख को भोगता है। अपना आनन्द पड़ा रहता है।

गाथा - १३४

मुत्तो फासदि मुत्तं मुत्तो मुत्तेण बंधमणुहवदि ।
जीवो मुत्तिविरहिदो गाहदि ते तेहिं उग्गहदि ।। १३४ ।।

मूर्तः स्पृशति मूर्तं मूर्तो मूर्तेन बन्धमनुभवति ।
जीवो मूर्तिविरहितो गाहति तानि तैरवगाह्यते ।। १३४ ।।

मूर्तकर्मणोरमूर्तजीवमूर्तकर्मणोश्च बन्धप्रकारसूचनेयम् ।

इह हि संसारिणि जीवेऽनादिसन्तानेन प्रवृत्तमास्ते मूर्तकर्म । तत्स्पर्शादिमत्त्वादागामि मूर्तकर्म स्पृशति, ततस्तन्मूर्तं तेन सह स्नेहगुणवशाद्बन्धमनुभवति । एष मूर्तयोः कर्मणोर्बन्धप्रकारः । अथ निश्चयनयेनामूर्तो जीवोऽनादिमूर्तकर्मनिमित्तरागादिपरिणामस्निग्धः सन् विशिष्टतया मूर्तानि कर्माण्यवगाहते, तत्परिणामनिमित्तलब्धात्मपरिणामैः मूर्तकर्मभिरपि विशिष्टतयाऽवगाह्यते च । अयं त्वन्योन्यावगाहात्मको जीवमूर्तकर्मणोर्बन्धप्रकारः । एवममूर्तस्यापि जीवस्य मूर्तेन पुण्यपापकर्मणा कथञ्चिद्बन्धो न विरुध्यते ।। १३४ ।।

-इति पुण्यपापपदार्थव्याख्यानम् ।

मूर्त का स्पर्श मूरत, मूर्त बँधते मूर्त से।
आत्मा अमूरत करम मूरत, अन्योन्य अवगाहन लहें ।।१३४।।

अन्वयार्थ :— [मूर्तः मूर्तं स्पृशति] मूर्त मूर्त को स्पर्श करता है, [मूर्तः मूर्तेन] मूर्त मूर्त के साथ, [बंधम् अनुभवति] बन्ध को प्राप्त होता है; [मूर्तिविरहितः जीवः] मूर्तत्वरहित जीव, [तानि गाहति] मूर्त कर्मों को अवगाहता है और [तैः अवगाह्यते] मूर्तकर्म जीव को अवगाह हैं (अर्थात् दोनों एक-दूसरे में अवगाह प्राप्त करते हैं)।

टीका :— यह, मूर्तकर्म का मूर्तकर्म के साथ जो बन्ध प्रकार तथा अमूर्त जीव का मूर्तकर्म के साथ जो बन्ध प्रकार उसकी सूचना है।

यहाँ (इस लोक में), संसारी जीव में अनादि संतति से (-प्रवाह से) प्रवर्तता हुआ मूर्तकर्म विद्यमान है। वह, स्पर्शादिवाला होने के कारण, आगामी मूर्तकर्म को स्पर्श करता है; इसलिए मूर्त ऐसा वह उसके साथ, स्निग्धत्वगुण के वश (-अपनी स्निग्धरूक्षत्वपर्याय के कारण), बन्ध को प्राप्त होता है। यह, मूर्तकर्म का मूर्तकर्म के साथ बन्धप्रकार है।

पुनश्च (अमूर्त जीव का मूर्तकर्मों के साथ बन्धप्रकार इस प्रकार है कि), निश्चयनय से जो अमूर्त है ऐसा जीव, अनादि मूर्तकर्म जिसका निमित्त है ऐसे रागादिपरिणाम द्वारा स्निग्ध वर्तता हुआ, मूर्तकर्मों को विशिष्टरूप से अवगाहता है (अर्थात् एक-दूसरे को परिणाम में निमित्तमात्र हों ऐसे सम्बन्धविशेष सहित मूर्तकर्मों के क्षेत्र में व्याप्त होता है) और उस रागादिपरिणाम के निमित्त से जो अपने (ज्ञानावरणादि) परिणाम को प्राप्त होते हैं ऐसे मूर्तकर्म भी जीव को विशिष्टरूप से अवगाहते हैं (अर्थात् जीव के प्रदेशों के साथ विशिष्टतापूर्वक एकक्षेत्रावगाह को प्राप्त होते हैं)। यह, जीव और मूर्तकर्म का अन्योन्य-अवगाहस्वरूप बन्धप्रकार है। इस प्रकार अमूर्त ऐसे जीव का भी मूर्त पुण्यपापकर्म के साथ कथंचित् (-किसी प्रकार) बन्ध विरोध को प्राप्त नहीं होता॥१३४॥

इस प्रकार पुण्य-पापपदार्थ का व्याख्यान समाप्त हुआ।

गाथा - १३४ पर प्रवचन

मुत्तो फासदि मुत्तं मुत्तो मुत्तेण बंधमणुहवदि।
जीवो मुत्तिविरहिदो गाहदि ते तेहिं उग्गहदि।।१३४।।

टीका :—१३४ गाथा। **यह, मूर्तकर्म का मूर्तकर्म के साथ जो बन्ध प्रकार...** बन्ध का प्रकार। यह पूर्व के मूर्त कर्म के साथ नये मूर्त कर्म बँधते हैं, उसकी बात करते हैं। जड़ से जड़ बँधते हैं। पूर्व के कर्म हैं जड़, उनसे नये कर्म मूर्त के साथ मूर्त बँधते हैं। **तथा अमूर्त जीव का मूर्तकर्म के साथ जो बन्ध प्रकार उसकी सूचना है।** यहाँ दो सूचना बतलानी है।

यह पूर्व के कर्म जो हैं जड़, मिट्टी, धूल पड़ी है सूक्ष्म, उससे नये कर्म धूल से धूल बँधती है। रूपी से रूपी और आत्मा अरूपी। उसके साथ नये कर्म रूपी ही बँधते हैं। वे किस प्रकार से, यह बात यहाँ सिद्ध करनी है। मूर्त-मूर्त से बँधे हैं और अमूर्त मूर्त से बँधे हैं। दो बात सिद्ध करनी है। समझ में आया? **यहाँ (इस लोक में), संसारी जीव में अनादि संतति से (-प्रवाह से) प्रवर्तता हुआ मूर्तकर्म विद्यमान है।**

क्या कहते हैं ? भगवान आत्मा अरूपी ज्ञानघन आदि शुद्ध निर्मल स्वभाव और पर्याय में मलिनता और उसके साथ कर्म अनादि सन्तान प्रवाह से चला आता है। आत्मा कभी कर्मरहित हुआ नहीं।

संसारी जीव में संसरण करते ऐसे आत्मा में अनादि प्रवाह से, ओहोहो! खान में जैसे पत्थर और सोना साथ में है, वैसे भगवान आत्मा के कर्म अनादि से साथ में है। पहले आत्मा कर्मरहित था और फिर कर्म हुए, ऐसा नहीं है। समझ में आया ? खान में जैसे सोना और पत्थर साथ में है, तब पहले सोना पृथक् था और पत्थर फिर लगा, ऐसा नहीं है। समझ में आया ? संसारी जीव को **अनादि संतति से (-प्रवाह से) प्रवर्तता हुआ मूर्तकर्म विद्यमान है।** देखो! मूर्त कर्म विद्यमान है। सर्वज्ञ परमात्मा के अतिरिक्त ऐसी बात कहीं तीन काल में नहीं होती। वीतराग परमेश्वर सर्वज्ञदेव जिन्होंने एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में, तीन काल-तीन लोक देखे और जाने, ऐसे परमेश्वर वीतराग तीर्थंकर के सिवाय कर्म की ऐसी जाति, इस प्रकार से किसी ने जानी नहीं और किसी ने कही नहीं और किसी के ख्याल में आयी नहीं। समझ में आया ?

अनादि संतति से (-प्रवाह से) प्रवर्तता हुआ मूर्तकर्म विद्यमान है। जड़ विद्यमान है। भगवान आत्मा भी विद्यमान है। उसके साथ वह कर्म भी अनादि प्रवाह... प्रवाह... प्रवाह... अनादि, हों! वह के वह कर्म नहीं। वह के वह रजकण नहीं। वर्तमान के जो कर्म के रजकण हैं, वे नहीं। परन्तु कर्म... कर्म... कर्म... कर्म प्रवाह से चले आते हैं। नये परमाणु आते हैं। पूर्व के चले जाते हैं। ऐसे कर्म का प्रवाह अनादि से साथ में चला आता है। समझ में आया ? वर्तमान में जो कर्म है, अनादि के वे ही कर्म रजकण हैं, ऐसा नहीं है। समझ में आया ? क्योंकि कर्म की स्थिति ७० कोड़ाकोड़ी की है। उससे अधिक होते नहीं। तो किसी भी प्राणी के साथ ७० कोड़ाकोड़ी की स्थिति से अधिक कर्म उसके साथ होते ही नहीं। अभव्य हो या भव्य हो, अनन्त संसारी हो या एकावतारी हो। समझ में आया ?

आठ कर्म जड़ हैं। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय की स्थिति अधिक में अधिक मिथ्यात्व की है। सत्तर कोड़ाकोड़ी। हमारी काठियावाड़ी भाषा में

सीतेर कहते हैं। सात और शून्य को हमारे सीतेर कहते हैं। तुम्हारे (हिन्दी में) सत्तर कहते हैं। उसे करोड़ से गुणे ७० कोड़ाकोड़ी। एक करोड़ को करोड़ से गुणे, ऐसे ७० कोड़ाकोड़ी। सात और शून्य करोड़। उसे करोड़ से गुणा करने से ७० कोड़ाकोड़ी। ऐसी कर्म की स्थिति अधिक में अधिक हो तो इतनी होती है। इतनी अधिक स्थिति किसी जीव की नहीं होती। अभव्य अनन्त काल रोवे, कर्म की स्थिति अनन्त काल की नहीं है। नये बँधते हैं, पुराने खिरते हैं, नये बँधते हैं। ऐसा प्रवाह चला ही जाता है। जैसे पानी का प्रवाह है न? वह प्रवाह समा जाता है और नया उत्पन्न होता है, समा जाये, नया उत्पन्न हो। नये-नये उत्पन्न हों परन्तु प्रवाह ऐसा प्रवाह रहता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नये कर्म आते हैं। पुराने चले जाते हैं, नये आते हैं। पुराने चले जाते हैं। सर्वथा तो चले नहीं आते। थोड़े-थोड़े आते हैं और थोड़े जाते हैं। ऐसा प्रवाह चलता है। **अनादि संतति से (-प्रवाह से) प्रवर्तता हुआ मूर्तकर्म विद्यमान है।** ऐसा सिद्ध किया। देखो! इस आत्मा के साथ जड़कर्म हैं। साथ में, हों! है तो भिन्न। कर्म कर्म का कार्य करे, आत्मा आत्मा का कार्य करे। आत्मा का कार्य कर्म नहीं करता और कर्म का कार्य आत्मा नहीं करता। दोनों द्रव्य भिन्न हैं। दोनों वस्तु भिन्न है। किसी का कोई करे नहीं, परन्तु साथ में है। समझ में आया? गाय को नहीं करते? दो गाय के अन्दर रस्सी डाले। दो गाय को। अन्दर रस्सी डाले। आगे डाले। ऐसे दो हाथ हैं परन्तु हैं भिन्न-भिन्न। यह गाय भिन्न है, वह गाय भिन्न है। इसी प्रकार कर्म रजकण जड़ भिन्न, आत्मा भगवान भिन्न। परन्तु है दोनों एकक्षेत्र में एकसाथ।

मुमुक्षु : भाग जाये तो?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो दृष्टान्त दिया है। भाग जाये कहाँ? यह तो दृष्टान्त दिया है। गधे के दो पैर नहीं बाँधते? बहुत दौड़नेवाला-भागनेवाला हो तो बाँधकर रखते हैं। वह इतने में और इतने में रहे। इसी प्रकार यहाँ निमित्त-निमित्त सम्बन्धरूप से जड़ और आत्मा। निमित्त-निमित्त सम्बन्ध से अनादि से साथ में हैं, बस इतना। **वह, स्पर्शादिवाला होने के कारण,...** कौन? वह विद्यमान कर्म अनादि से पड़े हैं वे। उनके परमाणु में कर्म

में रंग, गन्ध, रस, स्पर्श है। जैसे यह शरीर मिट्टी है, उसमें रंग, गन्ध, रस, स्पर्श है, वैसे उसमें रंग, गन्ध, रस, स्पर्श आठ कर्म सूक्ष्म मिट्टी है, सूक्ष्म मिट्टी धूल है।

स्पर्शादिवाला होने के कारण, आगामी मूर्तकर्म को स्पर्श करता है;... क्या कहते हैं? भविष्य के मूर्त कर्म को स्पर्श करता है, ऐसा। नये कर्म को स्पर्श, स्निग्धता-रूक्षता की ऐसी योग्यता और उसकी योग्यता के साथ सम्बन्ध होता है। यह कर्म के, अजीव के, अजीवतत्त्व है या नहीं? नौ तत्त्व में अजीवतत्त्व और जीवतत्त्व ऐसे भेद डालकर यहाँ समझाते हैं। समझ में आया? **वह, स्पर्शादिवाला होने के कारण,...** वह अर्थात् कौन? पूर्व में बाँधा हुआ कर्म। प्रवाह से चला आता है वह; रंग, गन्ध, रस, स्पर्शवाले हैं। तो **आगामी मूर्तकर्म को स्पर्श करता है;...** नये कर्म भी उसके साथ बँध में आ जाते हैं। स्पर्श के साथ बँध जाते हैं। **इसलिए मूर्त ऐसा वह वह उसके साथ,...** मूर्त ऐसा उसके साथ, **स्निग्धत्वगुण के वश...** देखो! **(-अपनी स्निग्धरूक्षत्वपर्याय के कारण),...** नये परमाणु अपनी स्निग्ध-रूक्ष, स्निग्ध-रूक्ष की योग्यता के कारण, **बन्ध को प्राप्त होता है।** पूर्व के साथ सम्बन्ध हो जाता है। कहो, समझ में आया या नहीं?

एक परमाणु अपनी दो पर्याय होती है और दूसरे में चार हो, ऐसा होवे तो, साथ में मिलकर यहाँ चार हो जाये, वह स्कन्धरूप कहने में आता है। इस प्रकार पूर्व के परमाणु में नये में अपने स्पर्श की स्निग्धता-रूखता के मेलवाला सम्बन्ध उसे हो तो बन्ध में आ जाता है। '**मुत्तो फासदि मुतं**' यह उसका अर्थ करते हैं। पहला शब्द है न? '**मुत्तो फासदि मुतं मुत्तो मुतेण बंधमणुहवदि**' पहली ही लाईन का अर्थ है। आहाहा! **इसलिए मूर्त ऐसा वह वह उसके साथ, स्निग्धत्वगुण के वश...** अपनी स्निग्ध-रूक्षत्व पर्याय के कारण से, उसमें दोनों डाला है, हों! वह तो स्निग्ध तो एक शब्द रखा है। स्निग्धता और रूक्षता दोनों के कारण से बन्ध को परमाणु में ऐसी योग्यता है, पुराने कर्म के साथ बँध जाते हैं। **यह, मूर्तकर्म का मूर्तकर्म के साथ बन्धप्रकार है।** लो!

देखो! पाठ में ऐसा है— '**बंधमणुहवदि**' मूर्त-मूर्त के साथ बन्ध को अनुभव करता है, अनुभव करता है, ऐसा पाठ है। अनुभव का अर्थ - ऐसा होता है। उसका नाम अनुभव है। ऐसा कहने में आता है। पाठ है न? '**मुत्तो मुतेण बंधमणुहवदि**' जड़ को अनुभव... अनुभव अर्थात् होना। बन्ध की परमाणु में ऐसी योग्यता हो नये कर्म जैसे

उसने दया, दान, भक्ति, काम, क्रोध, पापभाव किये, तत्प्रमाण ऐसे नये कर्म स्वयं की योग्यता से, स्निग्धता-रूक्षता की योग्यता से पूर्व के कर्म के साथ बँध जाते हैं। समझ में आया?

जड़ को ऐसी कैसे खबर पड़े? हें? अपना पर्याय धर्म है, उसका बहुत ही.... एक-एक परमाणु में कर्म होने की योग्यता है। समझ में आया? मूर्त कर्म, मूर्त कर्म के साथ बन्ध प्रकार है। ऐसा लिखा न? '**बंधमणुहवदि**' का अर्थ किया। मूर्त कर्म मूर्त को अनुभवता है। अनुभव का ऐसा अर्थ है। अनुभव का अर्थ यह कि बन्ध में बन्धरूप हो जाता है, इसका नाम अनुभव करता है, ऐसा कहा जाता है। आहाहा!

पुनश्च (अमूर्त जीव का मूर्तकर्मों के साथ बन्धप्रकार इस प्रकार है कि),... अब यह तो ठीक, परन्तु यह भगवान अमूर्त और यह कर्म मूर्त, ऐसे दो लकड़े कहाँ से घुस गये? कर्म के साथ कर्म तो बँध हो, वह तो जड़ है। जड़ को स्पर्शवाला है। परन्तु अस्पर्शी आत्मा और स्पर्शवाले कर्म पुद्गल, उसके साथ कहाँ जुड़ान हो गया? उसका बँध कैसे हुआ? समझ में आया? अमूर्त जीव का, कितने ही कहते हैं न कि आत्मा तो निर्मल है, आत्मा तो। परन्तु कहाँ निर्मल? सुन तो सही! पर्याय में मलिनता न हो तो कर्म का निमित्तरूप सम्बन्ध कहाँ से रहा? समझ में आया? तेरी पर्याय में राग, द्वेष, अज्ञान, मिथ्यात्व पड़े हैं, पर्याय में। तूने किये हैं, वे पड़े हैं। पर्याय के कर्म। सब कर्म पड़े हैं, वे निमित्त हैं। दो चीज़ है।

आत्मा निर्मल है, निर्मल है। क्या निर्मल है? निर्मल तो वस्तु स्वभाव निर्मल है। पर्याय में निर्मल हो तो फिर कर्म और मलिनता कहाँ से आयी? समझ में आया? निश्चयनय से जो अमूर्त है, ऐसा जीव, देखो! भगवान आत्मा तो अमूर्त है। उसमें रंग, गन्ध, रस, स्पर्श आत्मा में नहीं। अरूपी आत्मा ज्ञानघन, रंग, गन्ध, रस, स्पर्श बिना की वह चीज़। अनादि-अनन्त भगवान आत्मा अमूर्त, अरूपी। आत्मा तो कहाँ गया इसमें? स्त्री, पुत्र, पैसे के कारण, इज्जत के कारण, पुण्य-पाप के कारण। आड़े को (हिन्दी में) क्या कहते हो? सम्बन्ध में घुस गया।

आत्मा अन्दर महान पदार्थ... महान पदार्थ (है)। जिसकी एक समय की पर्याय में तीन काल-तीन लोक देखे। ऐसी एक समय की पर्याय का, अनन्त पर्याय का पिण्ड

गुण, ऐसे अनन्त गुण का पिण्ड द्रव्य। महान पदार्थ गुम हो गया। कोई चीज़ खो जाये तो शोधने जाते हैं। कहाँ गयी? कहाँ गयी? सोने की कोई चीज़ गिरती है न? ओहो! ...सोने की खो गयी। यह तू खो गया कहाँ? तेरी तुझे खबर है? खोवाई गयो (को) क्या कहते हैं? खो गया। पूरा आत्मपदार्थ खो गया। यह भी क्या बात करते हैं? यह बात करे तो ठीक, यह शरीर, वाणी, और यह धूल-बूल को। परन्तु पूरा पदार्थ चिदानन्द प्रभु अनन्त गुण का धाम परमात्मा जैसे सिद्ध हुए, वैसी परमात्म शक्ति की सम्पदावाला आत्मा है। प्रत्येक जीव। इसलिए तो कहते हैं कि परन्तु यह खो गये की खबर नहीं। समझ में आया? खो गया, उसकी खबर नहीं। जोरावर में हुआ था न? क्या? किसी का खो गया। उस लड़की का खो गया। कौन था? कोई यहाँ?... सोने का। बूट-बूट कुछ कहते हैं न? कांटेवाला हो। खो गया, खोजा परन्तु मिलता नहीं। उसमें जरा चरण करने गये तो उसके कपड़े में गिर गया (तो) पैर में लगा। वह हाथ आया, लो! कहा पैर से, सोने की बूट थी। कीरचन्दभाई की पुत्री को। पैर में खोज दिया।

इसी प्रकार आत्मा क्या है, ऐसी निर्मल कला प्रगट करे तो आत्मा को शोधे। यह तो खबर नहीं क्या है? यह जगत की विद्या, कीर्ति, शिक्षा। बी.ए., एल.एल.बी. के पूंछड़े लगावे। ऐ... माँगीरामजी! तुम्हारी लड़कियाँ तो पढ़ती हैं न वहाँ? सब लड़कियाँ। भाई की लड़की और तुम्हारी लड़की है न? ऐसे ऐसे पूंछड़े लगावे, पढ़े। पच्चीस वर्ष की। आहाहा! मानो होशियार हो गये। कहीं मानो नीचे पैर टिके नहीं। क्या है परन्तु? क्या हुआ? पागलपन हुआ। हम तो बस ऐसे—बाल खुले—हाथ में बैग, बैग रखे। क्या कहलाता है? एक हाथ में रखे और एक हाथ में ऐसा। क्या है परन्तु? कहाँ जाना है? क्या कहते हैं? हमारी नजर में तो मजा दिखता है और तुम तो कहीं पड़ने जाते हो दुर्गति में। बहुरुपिया हो गये।

कहते हैं न भगवान! तुम अरूपी हो, प्रभु! परन्तु **अनादि मूर्तकर्म जिसका निमित्त है, ऐसे रागादिपरिणाम द्वारा...** देखो! आत्मा अमूर्त है, ज्ञानानन्द है, तथापि **अनादि मूर्तकर्म जिसका निमित्त है...** किसका? रागादि परिणाम। आत्मा ने राग-द्वेष, दया, दान, पुण्य, पाप के भाव किये, वह राग, उसके पूर्व के कर्म निमित्त। पूर्व के। **अनादि**

मूर्तकर्म जिसका निमित्त है... जिसका अर्थात् ऐसे राग-द्वेष, पुण्य-पाप, दया-दान, भक्ति, व्रत, तप, सब विकल्प उठते हैं। राग, वह राग-द्वेष उठे,... वह सब विकार परिणाम तेरी पर्याय में तुझसे होते हैं। उसमें पूर्व के कर्म निमित्त कहे जाते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त-निमित्त सम्बन्ध बताते हैं। **अनादि मूर्तकर्म जिसका निमित्त है ऐसे रागादिपरिणाम द्वारा...** कौन? आत्मा। वह अपने में राग-द्वेष द्वारा चिकना वर्तता हुआ। वह चिकनाई उसकी है। जड़ की चिकनाई जड़ में है। दो का निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध हो जाता है, ऐसा कहना है। आत्मा में तो दया, दान, काम, क्रोध, पुण्य, पाप के भाव, वे राग है, वह चिकनाई है, द्वेष है, वह भी चिकनाई है। वह चिकनाई विकार, वह चिकनाई है।

उस चिकनाहट **द्वारा स्निग्ध वर्तता हुआ, मूर्तकर्मों को विशिष्टरूप से अवगाहता है...** देखो! चिकनाहट के कारण नये मूर्त कर्मों को खास एक-दूसरे के लिये परिणाम में निमित्तमात्र है। **एक-दूसरे को परिणाम में निमित्तमात्र हों, ऐसे सम्बन्धविशेष सहित...** सम्बन्ध विशेष। कर्म का उदय हो और राग, द्वेष आत्मा करे तो उसे निमित्त कहते हैं। यहाँ राग-द्वेष करे तो नये कर्म बँधे, उसमें राग-द्वेष निमित्त कहे जाते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नये में वह कुछ करता ही नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : चिपटता है या नहीं, ऐसा कहते हैं। स्निग्धता यहाँ उसका मूल तो स्निग्धता निमित्त-निमित्त सम्बन्ध है, यह कहा एक-दूसरे को निमित्त-नैमित्तिक होना, इसका नाम अमूर्त के साथ मूर्त का बन्ध कहा गया है। उसके कारण से, हों! वहाँ राग-द्वेष की स्निग्धता हुई, परमाणु में उतनी स्निग्धता प्रमाण परमाणु आकर पूर्व कार्य सम्बन्ध है। आत्मा के साथ निमित्त-निमित्त सम्बन्ध है। बस, अपने परिणाम किये विकार, नये कर्म में वह निमित्त पड़ा। अपने परिणाम किये, पूर्व के कर्म उसमें निमित्त

पड़े, बस इतना सम्बन्ध है। विशिष्ट कहा न! खास निमित्त-निमित्त सम्बन्ध ऐसा है। नहीं तो वहाँ तो धर्मास्ति और अधर्मास्ति दूसरे भी पड़े हैं।

जहाँ आत्मा है, वहाँ धर्मास्ति और अधर्मास्ति निमित्तरूप से पड़े हैं। परन्तु यह खास विशिष्ट निमित्त अर्थात् राग-द्वेष करे तो कर्म को निमित्त कहा गया है और राग-द्वेष करे तो नये कर्म में राग-द्वेष निमित्त कहने में आये। समझ में आया? भाई! नौ पदार्थ का अभ्यास करना चाहिए। यह नौ पदार्थ की व्याख्या करते हैं। पश्चात् मोक्षमार्ग की बात, अपने चल गयी है। लौकिक पदार्थ का ज्ञान करे, विज्ञान, नहीं आता? पदार्थविज्ञान। परन्तु यह तो भगवान का कहा हुआ पदार्थविज्ञान। सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ वीतराग अचिन्त्य सम्पदा के स्वामी, उनकी वाणी में से निकला है। उनकी वाणी कहने में निमित्त से कथन है।

ऐसे **मूर्तकर्मों को विशिष्टरूप से अवगाहता है...** देखो न! अवगाहते हैं, इसका अर्थ है न? पाठ में है सही न? **'जीवो मुतिविरहिदो गाहदि ते तेहिं उग्गहदि'** ऐसा। अवगाहते हैं, ऐसा। पाठ में है। **अर्थात् एक-दूसरे को परिणाम में निमित्तमात्र हों, ऐसे सम्बन्धविशेष...** लो! इसका नाम विशेष सम्बन्ध। सहित मूर्त कर्मों के क्षेत्र में प्राप्त होता है। कहो, समझ में आया? मूर्त कर्मों के क्षेत्र में आत्मा प्राप्त हुआ। आत्मा के क्षेत्र में कर्म प्राप्त हुए। बस **और उस रागादिपरिणाम के निमित्त से...** जितने प्रमाण में जीव अपनी भूल को भूलकर राग-द्वेष और अज्ञान परिणाम के निमित्त से जितने परिणाम करता है, जितने निमित्त से। **अपने (ज्ञानावरणादि) परिणाम को प्राप्त होते हैं...** कौन? कर्म, ज्ञानावरणीयादि आठ कर्म अपनी पर्याय को कौन प्राप्त हुए? **ऐसे मूर्तकर्म भी जीव को विशिष्टरूप से अवगाहते हैं...** यह मूर्त कर्म भी जीव को अवगाहते हैं। आत्मा ने उनके साथ निमित्तरूप अवगाहन किया। उसके साथ निमित्तरूप से अवगाहन किया। समझ में आया?

इस प्रकार अकेला आत्मा ऐसा-ऐसा करे परन्तु, वास्तविक पर्याय क्या? मलिन क्या, निर्मल कैसे होती है, मलिन में निमित्त कौन है, कर्म क्या है? - खबर नहीं तो उल्टा हुए बिना रहे ही नहीं। किसी की निश्चय की ऐसी बात सुने तो अपने जैसे हैं,

हों! अरे! तुझे खबर नहीं। यह वीतराग की बात ऐसी है कि किसी के साथ उसका मिलान है ही नहीं। समझ में आया?

ऐसे मूर्तकर्म भी जीव को विशिष्टरूप से अवगाहते हैं (अर्थात् जीव के प्रदेशों के साथ...) कौन? **विशिष्टतापूर्वक...** खास निमित्त-निमित्त सम्बन्धपूर्वक। **एकक्षेत्रावगाह को प्राप्त होते हैं।** कर्म। आत्मा कर्म के क्षेत्र को प्राप्त। क्षेत्र में अर्थात् निमित्त-निमित्त सम्बन्धरूप। और कर्म आत्मा के निमित्त-निमित्तसम्बन्ध में रहता है, अनादि से रहता है।

यह, जीव और मूर्तकर्म का... देखो! यह भगवान आत्मा और मूर्त कर्म का, **अन्योन्य-अवगाहस्वरूप बन्धप्रकार है।** अन्योन्य-अवगाह, बस। अन्योन्य निमित्त सम्बन्ध से व्यापना, रहना—ऐसा बन्ध का प्रकार है। दूसरा कोई है नहीं, बस.... जीव रहे वहाँ कर्म और कर्म है वहाँ जीव निमित्त-निमित्त अवगाह करके रहते हैं। एक-दूसरे के परिणाम में निमित्त होते हैं। इतना सम्बन्ध है। कर्ता-कर्म सम्बन्ध नहीं। आत्मा ने राग-द्वेष किये तो, आत्मा ने कर्मबन्ध भी किया और कर्म उदय आये तो उसमें कार्य कर्म का आया न, आत्मा में कर्म ने राग-द्वेष किये, कराये - ऐसा नहीं है। कर्म दो काम नहीं करते और आत्मा दो काम नहीं करता। कर्म अपनी पर्याय को करता है और आत्मा अपनी विकारी पर्याय को करता है। बस! अपनी विकारी पर्याय को कर्म नहीं करता और कर्म की पर्याय को आत्मा विकारी पर्याय से नहीं करता। कितना याद रखना इसमें?

यह, जीव और मूर्तकर्म का अन्योन्य-अवगाहस्वरूप बन्धप्रकार है। इस प्रकार अमूर्त ऐसे जीव का भी... लो, है? अमूर्त होने पर भी **मूर्त पुण्य-पापकर्म के साथ...** देखो! पुण्य-पाप लेना है न? पुण्य-पाप की व्याख्या चलती है न? **पुण्य-पापकर्म के साथ कथंचित् (-किसी प्रकार) बन्ध विरोध को प्राप्त नहीं होता।** द्रव्य बन्ध निमित्तरूप है। सर्वथा बन्ध है नहीं। एकरूप नहीं। निमित्तरूप बन्ध व्यवहार से है। विरोध को प्राप्त नहीं होता। लो! (इस प्रकार) पुण्य-पाप की व्याख्या पूरी हुई। अब आस्रव पदार्थ की व्याख्या चलेगी।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - १३५

अथ आस्रवपदार्थव्याख्यानम् ।

रोगो जस्स पसत्थो अणुकंपासंसिदो य परिणामो ।
चित्तम्हि णत्थि कलुसं पुण्णं जीवस्स आसवदि ।। १३५ ।।

रागो यस्य प्रशस्तोऽनुकम्पासंश्रितश्च परिणामः ।
चित्ते नास्ति कालुष्यं पुण्यं जीवस्यास्रवति ।। १३५ ।।

पुण्यास्रवस्वरूपाख्यानमेतत् ।

प्रशस्तरागोऽनुकम्पापरिणतिः चित्तस्याकलुषत्वञ्चेति त्रयः शुभा भावाः द्रव्यपुण्यास्रवस्य निमित्तमात्रत्वेन कारणभूतत्वात्तदास्रवक्षणादूर्ध्वं भावपुण्यास्रवः । तन्निमित्तः शुभकर्मपरिणामो योगद्वारेण प्रविशतां पुद्गलानां द्रव्यपुण्यास्रव इति ।। १३५ ।।

अब आस्त्रवपदार्थ का व्याख्यान है।

हो रागभाव प्रशस्त अर अनुकम्प हिय में है जिसे।
मन में नहीं हो कलुषता नित पुण्य आस्रव हो उसे।।१३५।।

अन्वयार्थ :— [यस्य] जिस जीव को, [प्रशस्तः रागः] प्रशस्त राग है, [अनुकम्पासंश्रितः परिणामः] अनुकम्पायुक्त परिणाम है; [च] और, [चित्ते कालुष्यं न अस्ति] चित्त में कलुषता का अभाव है; [जीवस्य] उस जीव को, [पुण्यम् आस्त्रवति] पुण्य आस्त्रवित होता है।

टीका :— यह, पुण्यास्त्रव के स्वरूप का कथन है।

प्रशस्त राग, अनुकम्पापरिणति और चित्त की अकलुषता—यह तीन शुभ भाव द्रव्यपुण्यास्त्रव को निमित्तमात्ररूप से कारणभूत हैं इसलिए 'द्रव्यपुण्यास्त्रव' के प्रसंग का [१]अनुसरण करके (-अनुलक्ष करके) वे शुभभाव भावपुण्यास्त्रव हैं और वे

---

१. सातावेदनीयादि पुद्गलपरिणामरूप द्रव्यपुण्यास्त्रव का जो प्रसंग बनता है, उसमें जीव के प्रशस्त रागादि शुभभाव निमित्तकारण हैं इसलिए 'द्रव्यपुण्यास्त्रव' प्रसंग के पीछे-पीछे उसके निमित्तभूत शुभभावों को भी 'भावपुण्यास्त्रव' ऐसा नाम है।

(शुभभाव) जिसका निमित्त हैं, ऐसे जो योगद्वारा प्रविष्ट होनेवाले पुद्गलों के शुभकर्मपरिणाम (-शुभकर्मरूप परिणाम), वे द्रव्यपुण्यास्त्रव हैं॥१३५॥

प्रवचन नं. ३४, गाथा-१३५-१३६

दिनांक - ३०-०९-१९६४, भाद्र कृष्ण १०, बुधवार

अब आस्त्रव पदार्थ का व्याख्यान है। यह नौ पदार्थ का क्या स्वरूप है, यह बताते हैं। नौ पदार्थ जैसे हैं, वैसे मानना, इसका नाम 'तत्त्वार्थश्रद्धानम् सम्यग्दर्शनम्' है। तो उस सम्यग्दर्शन की व्याख्या में उसका विषय नौ क्या है, उसकी बात करते हैं। गाथा १३५।

रोगो जस्स पसत्थो अणुकंपासंसिदो य परिणामो।
चित्तम्हि णत्थि कलुसं पुण्णं जीवस्स आसवदि।।१३५।।

टीका - यह पुण्य-पाप का अधिकार तो आ गया था। परन्तु एक गाथा में दोनों साथ ले लिये थे। पुण्य और पाप। यहाँ आस्त्रव अधिकार है तो उसका विस्तार से पुण्य और पाप दोनों आस्त्रव हैं, यह बताने के लिये उसमें विस्तार से कहते हैं। आस्त्रव में छह गाथा लेंगे।

टीका :— यह, पुण्यास्त्रव के स्वरूप का कथन है। प्रशस्त राग,... प्रशस्त राग, शुभराग, **अनुकम्पापरिणति...** परप्राणी को दुःख मिश्रित अनुकम्पा की पर्याय। यह सब शुभराग है, विकल्प है। प्रशस्त राग शुभ, उसका विषय प्रशस्त है, आगे कहेंगे। समझ में आया? १३६ गाथा में कहेंगे। उसका विषय प्रशस्त, देव-गुरु-शास्त्र आदि तो राग को भी प्रशस्त कहा गया है।

प्रशस्त अर्थात् शुभ। **अनुकम्पापरिणति...** परप्राणी को दुःखी देखकर अनुकम्पा के परिणाम, वह भी शुभपुण्य है। शुभपुण्य है। **चित्त की अकलुषता...** चित्त में कलुषिततारहित भाव अर्थात् शुभभाव। **यह तीन शुभ भाव द्रव्यपुण्यास्त्रव को निमित्तमात्ररूप से कारणभूत हैं...** यह तीन शुभभाव—नामस्मरण, देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, पूजा अथवा विकल्प, णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं आदि स्मरण, वह सब

प्रशस्त राग, शुभराग है। समझ में आया? भगवान की भक्ति, पूजा का भी जो राग है, वह शुभराग, प्रशस्त राग है।

यह तीन शुभ भाव द्रव्यपुण्यास्त्रव को... नये जो द्रव्य पुण्य आने के परमाणु की जो योग्यता है, सातावेदनीय, उच्च गोत्र, नाम आयुष्य, वह रजकण उस समय उसका द्रव्य पुण्यरूप होने का काल है। किसका? जीव का नहीं, जड़ का। बराबर! द्रव्य पुण्यास्त्रव, नये परमाणु में पुण्यरूप पर्याय परमाणु में होने की योग्यता का कालवाला है, उसे द्रव्य पुण्यास्त्रव कहते हैं। **उसे निमित्तमात्ररूप से कारणभूत हैं...** उसे यह शुभराग निमित्तमात्र कारण है। वह धर्म नहीं। अनुकम्पा, प्रशस्त राग, अकलुषितता, वह राग की मन्दतारूप शुभभाव है। और वह नये द्रव्य पुण्यास्त्रव, उसी समय में आनेवाले परमाणु की सातावेदनीय, उच्च गोत्र आदि पर्याय परमाणु में होनेयोग्य है। उसे यह शुभभाव निमित्त कहने में आता है। कहो, समझ में आया?

यहाँ भाव की बात नहीं। पहले तो द्रव्य पुण्यास्त्रव कौन है? कि जिसमें रजकण की पुण्यरूप पर्याय होने की योग्यता है, वह आनेवाले है, उनमें यह शुभभाव निमित्त कहा जाता है। यहाँ तो स्वतन्त्र शुभभाव किया तो परमाणु द्रव्यपुण्यास्त्रव आये, ऐसा नहीं है। उन परमाणु में पुण्य की सातावेदनीय पर्याय होनेवाली थी, इसलिए यहाँ प्रसंग-प्रसंग लिया है न? उसका प्रसंग था। द्रव्य-पुण्य आने का परमाणु की पर्याय में प्रसंग—काल था। उसमें यह शुभभाव निमित्त पड़ा। जड़ को नहीं। जड़ की बात, इसलिए शुभभाव निमित्त हुआ। कौन सा जड़ भाव। पुराने कर्म या नये आते हैं वे? किसे पूछें? कितनी बात चली अब? अभी इतना भी नहीं कहते? लो! यह क्या कहा? सेठी ठीक है। कहाँ चलता है? विचार कहाँ चलता है? द्रव्य पुण्य जो परमाणु की पर्याय आनेवाली है, उसका परमाणु का पुण्य होने का काल है। जीव ने शुभभाव किया तो वहाँ पुण्य होने का काल आया, ऐसा नहीं है। समझ में आया? सेठ! ध्यान रखे तो समझ में आये? ऐसी बात है। ऐसा नहीं। अभी तक तो बहुत ही गड़बड़ चली है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह उदय की बात नहीं है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : दरबार है तो क्या समझना है कि कैसे बैठे? यह तो दलाल है न। बेरियाजी! हमारा दलाल है। ऐसा कि यहाँ बैठे हैं तो हमें समझने की कहाँ चिन्ता है? ऐसा। बात सच्ची है। समझ में आया? स्वयं से काम होता है, किसी से काम नहीं होता। स्वयं ही समझना पड़ेगा।

यहाँ जो कहते हैं कि **प्रशस्त राग, अनुकम्पापरिणति और चित्त की अकलुषता...** शुभराग बस! उससे कुछ पर में होता है, ऐसी यहाँ बात है ही नहीं। परन्तु वह शुभराग नये सातावेदनीय के परमाणु पर्यायरूप से आनेवाली योग्यता का प्रसंग है। उसका काल है।

मुमुक्षु : पुण्य से नहीं आये।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसके शुभभाव से नहीं आये है। शुभभाव से नहीं आये। वह तो जड़ की पर्याय है। शुभभाव तो इसकी पर्याय में हुआ, बस। नये परमाणु आने का उसका काल था पुण्यरूप होने का। सेठी! ध्यान रखना है। ऐसा नहीं चलेगा, वहाँ हीरा-माणेक में चलाया और तम्बाकू में चलाया। प्रसंग का अर्थ क्या? काल। यह प्रसंग घटित होना, इसका अर्थ क्या? ऐसे इस प्रसंग का उस काल में ऐसी बात हुई।

यहाँ तो आचार्य इतना सिद्ध करते हैं कि नये परमाणु आनेवाले की स्वतन्त्रपर्याय योग्यता से आती है। तब वहाँ भावपुण्य हुआ, उसे निमित्त कहा गया है। ऐसी बात है। शुभराग तो विकारी पर्याय, धर्म नहीं। अनुकम्पा, प्रशस्त राग, धर्म-बर्म नहीं, संवर-बंवर नहीं, मोक्ष का कारण नहीं। समझ में आया? ज्ञानी को भी आता है और अज्ञानी को भी (आता है)। स्पष्टीकरण करेंगे। छह गाथा में है, आस्रव अधिकार।

यहाँ तो जरा **इसलिए 'द्रव्यपुण्यास्रव' के प्रसंग का...** देखो! यह परमाणु में साता होने की, उच्च गोत्र होने की, नाम की प्रकृति, यशकीर्ति आदि होने की ऐसी प्रकृति का परमाणु की पर्याय में उसी समय में यह द्रव्य पुण्यास्रवरूप परिणमने का उसका काल था। अमरचन्दभाई! इसने शुभभाव किया तो वहाँ काल आया, ऐसा नहीं है... बड़ा आश्चर्य! ऐसी बात है ही नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसके काल में। वह काल एक ही, परन्तु अपने-अपने काल में है। समझ में आया? यहाँ तो कहा कि **द्रव्यपुण्यास्त्रव को शुभराग निमित्तमात्ररूप होने से कारणभूत हैं इसलिए 'द्रव्यपुण्यास्त्रव' के प्रसंग का अनुसरण करके...** कल १३२ में आया था। यह अनुसरण करके यहाँ भावपुण्य क्यों कहा? कि द्रव्य-पुण्य की पर्याय उसमें-परमाणु में होनेवाली थी, तो उसका लक्ष्य करके शुभभाव को भावपुण्य कहा गया। समझ में आया? भावपुण्य, वह अरूपी विकार है और द्रव्यपुण्य वह रूपी जड़-पुद्गल कर्म की पर्याय है। उस पर्याय के प्रसंग का लक्ष्य करके शुभभाव को पुण्य कहा। इस प्रकार यहाँ भावपुण्य क्यों कहा? द्रव्यपुण्य का आस्त्रव होता है, उसका लक्ष्य करके यहाँ शुभभाव को भावपुण्य कहा गया है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। वह यहाँ हुआ है। समझ में आया? वहाँ पुण्य-पाप एक साथ एक गाथा में लिये थे। अब यहाँ भिन्न-भिन्न विस्तार करते हैं। पुण्य-पाप सब आस्त्रव है, दोनों आस्त्रव है। यह बताने के लिये विस्तार करते हैं। समझ में आया?

यह द्रव्यपुण्यास्त्रव के प्रसंग का अनुसरण करके, देखो! नीचे (फुटनोट) में है। देखो! **सातावेदनीयादि....** परमाणु में सातावेदनीयादि पर्याय होनी थी, उच्च गोत्रवाली होनी थी। कर्म में, जड़ में वह पर्याय होनेवाली थी। आहाहा! इसने भाव किया तो उसने (जड़ में) होनेवाली थी, ऐसा नहीं। इस प्रकार स्वतन्त्र सिद्ध करते हैं। उच्च गोत्र, आयुष्य, नाम, बादर, पंचेन्द्रियपना, पर्याप्तपना आदि बँधते है न, वह सब पुण्यप्रकृति है।

पुद्गलपरिणामरूप द्रव्यपुण्यास्त्रव का जो प्रसंग बनता है,... प्रसंग बनता है। देखो! यह प्रसंग, काल उसका बनता है। **उसमें जीव के प्रशस्त रागादि शुभभाव निमित्तकारण हैं इसलिए 'द्रव्यपुण्यास्त्रव' प्रसंग के पीछे-पीछे...** पीछे-पीछे का अर्थ? काल पीछे नहीं, भाव। जब द्रव्य पुण्यास्त्रव आया तो उसका नाम जब द्रव्य पुण्यास्त्रव है, तो यहाँ प्रशस्त राग अनुकम्पा अकलुषित भाव को भावपुण्य, द्रव्य पुण्य का प्रसंग बननेवाली पर्याय हुई है, उसमें जो भावपुण्य निमित्त था, उसे यहाँ द्रव्य पुण्य के आस्त्रव

के कारण से वहाँ भावपुण्य कहा गया है। समझ में आया? आहाहा! टीका, वह भी किस प्रकार की है! अमृतचन्द्राचार्य, तो इतना सिद्ध करते हैं। वास्तव में भाव भावपुण्य और भावपाप कहना, वह तो द्रव्य पुण्य और द्रव्य पापास्त्रव की पर्याय होने का प्रसंग था, उसका लक्ष्य यहाँ किया। भगवान (आत्मा) तो शुद्ध है, वस्तु शुद्ध है। पर्याय में पुण्य-पाप का नाम क्यों दिया? वह उसकी पर्याय जो आनेवाली थी, उसका अनुलक्ष करके यहाँ पुण्य-पाप कहा। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : प्रशस्त राग, प्रशस्त शब्द से....

पूज्य गुरुदेवश्री : शुभराग। प्रशस्त अर्थात् शुभ-शुभ। पुण्य। अशुभ अप्रशस्त, शुभ प्रशस्त। दोनों प्रशंसा करनेयोग्य नहीं है। दोनों बन्ध का कारण हैं। समझ में आया? आत्मा को बिल्कुल धर्म का कारण नहीं। इसलिए तो स्पष्टीकरण करते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : प्रशस्त कहना और वापस धर्म....

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रशस्त का अर्थ? अशुभ की अपेक्षा से प्रशस्त। बाकी वास्तव में तो वह भी अशुभ ही है। अपने शुद्ध परिणाम संवर, निर्जरा इस अपेक्षा से तो उसे अशुभ कहा गया है। परन्तु अशुभ जो परिणामों की कलुषितता है, इस अपेक्षा से उसे अप्रशस्त कहो तो शुभराग को प्रशस्त कहो, बस इतना। बाकी दोनों बन्ध का कारण है। दोनों विकल्प है, राग है। समझ में आया?

देखो! ...जरा पड़ना, सीखना पड़ेगा। पुस्तक-बुस्तक सीखते हैं तो पढ़ते हैं या नहीं? या ऐसे का ऐसा खतौनी करते हैं? कि यह क्या है, जमा, उधार किससे क्या लिया है? क्या दिया? किस अपेक्षा से है, उसका स्वयं स्वाध्याय करने की प्रेक्टिस करना चाहिए। समझ में आया? धर्मचन्दजी! डॉक्टर की प्रेक्टिस कितनी की है? उड़ा देते हैं। क्या उसमें कुछ नहीं होता थोथा। समझ में आया? द्रव्य पुण्यास्त्रव के प्रसंग का अनुसरण करके **पीछे-पीछे उसके निमित्तभूत शुभभावों को भी 'भावपुण्यास्त्रव' ऐसा नाम है।** नाम है। शुभभाव भावपुण्यास्त्रव है। वह शुभभाव भाव पुण्यास्त्रव और शुभभाव जिसका निमित्त है, देखो! जिस काल में आनेवाले परमाणु का...

ऐसे जो योगद्वारा प्रविष्ट होनेवाले... आत्मा में कम्पन हुआ। योग द्वारा परमाणु आये। आत्मा के प्रदेश में प्रविष्ट होनेवाले **पुद्गलों के शुभकर्मपरिणाम...** पुद्गलों के शुभ कर्मपरिणाम- **(-शुभकर्मरूप परिणाम) वे द्रव्यपुण्यास्त्रव हैं।** शुभकर्मरूप पर्याय वह द्रव्यपुण्यास्त्रव है। जीव और जड़ वह दो है। यह सात पर्याय है। एक भावपुण्य जीव की विकारी शुभपर्याय और द्रव्य पुण्य पुद्गल की विकारी पर्याय। है वह पर्याय। नहीं समझ में आता? ऐई! सेठी!

मुमुक्षु : इनकार करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : इनकार नहीं करते। इसमें इनकार करे तो इज्जत जाये। नहीं जाये। इतनी बात याद नहीं रहती? ऐसा कहते हैं। समझ में क्यों न रखे? कहा न? कि द्रव्य परमाणु पुण्य के परमाणु आनेवाले का काल है तो यहाँ उसे शुभभाव निमित्त पड़ा तो पुण्य आने के कारण उसे भावपुण्य कहा जाता है और जिसे भावपुण्य निमित्त है, उस रजकण को द्रव्य-पुण्य कहा गया है। सीधी बात है। यह योग कम्पन है न? आत्मा के प्रदेश। कम्पन द्वारा आते हैं। यह शुभ और अशुभपरिणाम विकार है। उससे स्थिति-रस पड़ता है। और योग द्वारा आते हैं। प्रकृति और प्रदेश योग द्वारा आते हैं और यह शुभ और अशुभपरिणाम द्वारा स्थिति और रस पड़ता है। यह बताने के लिये कहा है। समझ में आया?

मुमुक्षु : उदय....

पूज्य गुरुदेवश्री : उदय क्या और द्रव्य पुण्य का? यहाँ कौन कहता है द्रव्य पुण्य का उदय होता है? यहाँ किसने कहा? हुकमीचन्दजी! बराबर ध्यान रखना चाहिए न? अभी तक बहुत ही गप्प गोले चलाये? द्रव्य पुण्य तो आनेवाले रजकण की बात है। भाई! क्या? आनेवाले हैं। नये आते हैं, उनकी बात है। पुराने कर्म की (बात नहीं)। यह तो बहुत बार आ गया। समझ में आया?

नये रजकण पुद्गल में-कर्म में पुण्यपरिणाम होनेवाले परमाणु की पर्याय हुई, वह द्रव्यपुण्य। उसमें यह भावपुण्य निमित्त पड़ता है, इतना। और वह द्रव्यपुण्य कहा तो उसके प्रसंग को इसका नाम भावपुण्य कहा। यह भावपुण्य है, वह द्रव्यपुण्य है। दोनों भिन्न-भिन्न है। यह चैतन्य की पर्याय है, वह जड़ की पर्याय है।

मुमुक्षु : योग द्वारा....

पूज्य गुरुदेवश्री : कम्पन। नहीं, नहीं, प्रदेश का कम्पन। आत्मा के प्रदेश अन्दर कंपते हैं, धूजते हैं। उसके द्वारा आते हैं। जैसे तालाब में छिद्र हो और पानी आता है न? वैसे कम्पन प्रदेश के अन्दर आत्म प्रदेश के। उसके द्वारा प्रकृति-यह परमाणु आते हैं। और शुभ-अशुभपरिणाम विकार है, उसमें स्थिति-रस पड़ता है।

यहाँ तो निमित्त की बात की, परन्तु निमित्त से क्या आया? ऐसा कहा न? आनेवाले परमाणु को निमित्त योग है और पड़नेवाली स्थिति-रस में निमित्त कषायभाव है। ऐसी दो बात करनी है न? निमित्त। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो बात चलती है। यहाँ तो निमित्त का ज्ञान कराना है न? आनेवाले हैं तो निमित्त कौन है, उसकी तो बात करते हैं। समझ में आया? यह तो पहले बात की न? प्रसंग तो उसका है कर्म परमाणु में आनेवाली पर्याय में, यह पुण्यपरिणाम निमित्त पड़े तो भावपुण्य कहे गये। अब उसे आये कैसे, यह बताना है। आये योग के कम्पन है और आने की प्रकृति, प्रदेश की योग्यता से आये हैं। उसमें निमित्त योग है। स्थिति-रस में शुभ-अशुभपरिणाम है। यह चार बातें आयी। समझ में आया? **ऐसे जो योगद्वारा प्रविष्ट होनेवाले पुद्गलों के शुभकर्मपरिणाम (-शुभकर्मरूप परिणाम) वे द्रव्यपुण्यास्त्रव हैं।** लो! अब सेठी को कहो कि (स्पष्ट) हो गया या नहीं अब? जड़ की और चैतन्य की दोनों की पर्याय भिन्न-भिन्न है। अभी निश्चित हुआ नहीं?

एक परमाणु पुद्गलद्रव्य पुद्गल है। कर्म होने के योग्य। उसमें कर्म होने की पुण्य की पर्याय हुई, बस वह जड़ और यहाँ आत्मा में प्रशस्तराग अनुकम्पा आदि वह शुभभाव, उसमें वह निमित्त पड़े। उसे द्रव्य पुण्यास्त्रव कहा है, वह है। उसका प्रथम लक्ष्य करके इसे यहाँ भावपुण्य कहा। वह द्रव्यपुण्य है। दोनों पर्याय है। दोनों दो द्रव्य की पर्याय है। एक जीव की विकारी भावपुण्य पर्याय और द्रव्यपुण्य जड़ की पर्याय, वह पुद्गल की विकारी पर्याय है। वह अजीव है। यह जीव की (विकारी) पर्याय जीव है। समझ में आया?

एक ही समय की बात है। वह तो एक समय में चलता है। आगे-पीछे है नहीं। उस ओर का उसका लक्ष्य करके यहाँ पुण्य कहा गया है। अब विशेष। १३६ गाथा।

मुमुक्षु : होनेवाली पर्याय हुई....

पूज्य गुरुदेवश्री : हुई ही है। परन्तु वह आने में निमित्त कौन? शुभराग। तीन बोल कहे न? उसमें निमित्त। परन्तु उसे भावपुण्य क्यों कहा? निमित्त को भावपुण्य क्यों कहा? कि द्रव्यपुण्य का प्रसंग बनने से उसे भावपुण्य कहा गया है। ओहोहो! अब १३६(गाथा)। बराबर अभ्यास करना थोड़ा। घर में कभी पढ़ते हो या नहीं? इनकार करते हैं। शोभालालभाई! थोड़ा-थोड़ा अभ्यास करना। घर में भी थोड़ा अभ्यास करना। बहियाँ कैसे इधर-उधर करते हैं? करते हैं, बहियाँ उलट-पुलट करते हैं या नहीं? कितने हैं, कितने हैं, सब ख्याल में है। डालचन्दजी क्या करते हैं, प्रेमचन्दजी क्या करते हैं, सब ख्याल (होता है)। समाचार लाओ, नहीं तो पत्र क्यों नहीं आया?

गाथा - १३६

अरहंतसिद्धसाहुसु भत्ती धम्मम्मि जा य खलु चेट्ठा ।
अणुगमणं पि गुरूणं पसत्थरागो त्ति वुच्चंति ।। १३६ ।।

अर्हत्सिद्धसाधुषु भक्तिर्धर्मे या च खलु चेष्टा ।
अनगमनमपि गरूणां प्रशस्तराग इति ब्रुवन्ति ।। १३६ ।।

प्रशस्तरागस्वरूपाख्यानमेतत्।

अर्हत्सिद्धसाधुषु भक्तिः, धर्मे व्यवहारचारित्रानुष्ठाने वासनाप्रधाना चेष्टा, गुरूणामाचार्यादीनां रसकित्वेनानुगमनम्एषः प्रशस्तो रागः प्रशस्तविषयत्वात् । अयं हि स्थूललक्ष्यतया केवलभक्ति-प्रधानस्याज्ञानिनो भवति । उपरितनभूमिकायामलब्धास्पदस्यास्थानरागनिषेधार्थं तीव्ररागज्वर-विनोदार्थं वा कदाचिज्ज्ञानिनोऽपि भवतीति ।। १३६ ।।

अरहंत सिद्ध अर साधु भक्ति गुरु प्रति अनुगमन जो।
वह राग कहलाता प्रशस्त जँह धरम का आचरण हो।।१३६।।

अन्वयार्थ :— [अर्हत्सिद्धसाधुषु भक्तिः] अरहन्त-सिद्ध-साधुओं के प्रति भक्ति, [धर्मे या च खलु चेष्टा] धर्म में यथार्थतया चेष्टा, [अनुगमनम् अपि गुरुणाम्] और गुरुओं का अनुगमन, [प्रशस्तरागः इति ब्रुवन्ति] वह 'प्रशस्त राग' कहलाता है।

टीका :— यह, प्रशस्त राग के स्वरूप का कथन है।

[१]अर्हन्त-सिद्ध-साधुओं के प्रति भक्ति, धर्म में-व्यवहारचारित्र के [२]अनुष्ठान

---

१. अर्हन्त-सिद्ध-साधुओं में अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु पाँचों का समावेश हो जाता है, क्योंकि 'साधुओं' में आचार्य, उपाध्याय और साधु तीन का समावेश होता है। [निर्दोष परमात्मा से प्रतिपक्षभूत ऐसे आर्त-रौद्रध्यानों द्वारा उपार्जित जो ज्ञानावरणादि प्रकृतियाँ उनका, रागादिविकल्परहित धर्म-शुक्लध्यानों द्वारा विनाश करके, जो क्षुधादि अठारह दोष रहित और केवलज्ञानादि अनन्त चतुष्टय सहित हुए, वे अर्हन्त कहलाते हैं। लौकिक अंजन सिद्ध आदि से विलक्षण ऐसे जो ज्ञानावरणादि-अष्टकर्म के अभाव से सम्यक्त्वादि-अष्टगुणात्मक हैं और लोकाग्र में बसते हैं, वे सिद्ध हैं।

में—[३]भावनाप्रधान चेष्टा और गुरुओं का—आचार्यादि का—रसिकरूप से [४]अनुगमन, यह 'प्रशस्त राग' है, क्योंकि उसका विषय प्रशस्त है।

यह (प्रशस्त राग) वास्तव में, जो [५]स्थूल-लक्ष्यवाला होने से केवल भक्तिप्रधान है ऐसे अज्ञानी को होता है; उच्च भूमिका में (-ऊपर के गुणस्थानों में) स्थिति प्राप्त न की हो तब, [६]अस्थान का राग रोकने के हेतु अथवा तीव्र रागज्वर मिटाने के हेतु कदाचित् ज्ञानी को भी होता है॥१३६॥

विशुद्ध ज्ञान-दर्शन जिनका स्वभाव है ऐसे आत्मतत्त्व की निश्चयरुचि, वैसी ही ज्ञप्ति, वैसी ही निश्चल-अनुभूति, परद्रव्य की इच्छा के परिहारपूर्वक उसी आत्मद्रव्य में प्रतपन अर्थात् तपश्चरण और स्वशक्ति को गोपे बिना वैसा ही अनुष्ठान—ऐसे निश्चयपंचाचार को तथा उसके साधक व्यवहारपंचाचार को—कि जिसकी विधि आचारादि शास्त्रों में कही है उसे—अर्थात् उभय आचार को जो स्वयं आचरते हैं और दूसरों को उसका आचरण कराते हैं, वे आचार्य हैं।

पाँच अस्तिकायों में जीवास्तिकाय को, छह द्रव्यों में शुद्धजीवद्रव्य को, सात तत्त्वों में शुद्धजीवतत्त्व को और नव पदार्थों में शुद्धजीवपदार्थ को जो निश्चयनय से उपादेय कहते हैं तथा भेदाभेदरत्नत्रयस्वरूप मोक्षमार्ग की प्ररूपणा करते हैं और स्वयं भाते (-अनुभव करते) हैं, वे उपाध्याय हैं।

निश्चय-चतुर्विध-आराधना द्वारा जो शुद्ध आत्मस्वरूप की साधना करते हैं, वे साधु हैं।]

२. अनुष्ठान = आचरण; आचरना; अमल में लाना।

३. भावनाप्रधान चेष्टा = भावप्रधान प्रवृत्ति; शुभभावप्रधान व्यापार।

४. अनुगमन = अनुसरण; आज्ञांकितपना; अनुकूल वर्तन। [गुरुओं के प्रति रसिकभाव से (उल्लास से, उत्साह से) आज्ञांकित वर्तना, वह प्रशस्त राग है।]

५. अज्ञानी का लक्ष्य (-ध्येय) स्थूल होता है, इसलिए उसे केवल भक्ति की ही प्रधानता होती है।

६. अस्थान का = अयोग्य स्थान का, अयोग्य विषय की ओर का; अयोग्य पदार्थों का अवलम्बन लेनेवाला।

गाथा - १३६ पर प्रवचन

१३६ (गाथा)

अरहंतसिद्धसाहुसु भत्ती धम्मम्मि जा य खलु चेट्ठा।
अणुगमणं पि गुरूणं पसत्थरागो त्ति वुच्चंति।।१३६।।

देखो! यह प्रशस्तराग की व्याख्या। तीन बोल आये न? तीन। प्रशस्त उपयोग की व्याख्या। एक गाथा में एक-एक भिन्न-भिन्न व्याख्या करेंगे। समझ में आया? फिर अनुकम्पा थी, फिर अकलुषिता थी।

इसमें कहाँ हरिगीत है? इसमें हरिगीत है ही नहीं। नहीं तो कहाँ से लाना यहाँ? कहो, समझ में आया? टीका। इसकी टीका।

टीका :— यह, प्रशस्त राग के स्वरूप का कथन है। है टीका? २०० पृष्ठ। २००। तीसरी पंक्ति के बीच में हिन्दी में। टीका—**यह, प्रशस्त राग...** देखो! पहले प्रशस्त राग कहा न? उसका स्वरूप कहते हैं। **यह, प्रशस्त राग के स्वरूप का कथन है।** यह प्रशस्त राग पहले कहा, उसकी व्याख्या करते हैं।

अर्हन्त-सिद्ध-साधुओं के प्रति भक्ति,... देखो! तीन लोक के नाथ साक्षात् परमात्मा हो या प्रतिमा हो और सिद्ध भगवान की मूर्ति हो और सिद्ध भगवान को लक्ष्य में लेना-सिद्ध भगवान भक्ति में भाव से लक्ष्य में लेना, वह सब शुभराग है, प्रशस्तराग है। अरिहन्त-सिद्ध-साधु, साधु में तीनों आ गये। नीचे (फुटनोट में) है, देखो! नीचे है ऐकड़ा।

अर्हन्त-सिद्ध-साधुओं में अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु पाँचों का समावेश हो जाता है, क्योंकि 'साधुओं' में आचार्य, उपाध्याय और साधु तीन का समावेश होता है। कहो, समझ में आया? यह सब है न लाईन सही। देखो! पंच परमेष्ठी। उनके प्रति भक्ति, स्मरण, उनका नाम याद करना प्रशस्त राग है। पश्चात् साक्षात् भगवान हो और स्मरण करना, फिर स्मरण करे, भगवान.... भगवान.... भगवान.... भगवान.... भगवान.... भगवान.... णमोकार आदि। भगवान की प्रतिमा में पूजा का भाव। सब प्रशस्तराग की जाति है। समझ में आया? नीचे फुटनोट।

निर्दोष परमात्मा से प्रतिपक्षभूत ऐसे आर्त-रौद्रध्यानों द्वारा उपार्जित जो ज्ञानावरणादि प्रकृतियाँ... क्या कहते हैं ? अर्हंत की व्याख्या करते हैं। अर्हंत कैसे हुए ? अर्हंत कैसे हुए या उस प्रकार हुए, उनका जो भक्ति, स्मरण आदि उसे प्रशस्तराग कहा जाता है। वह भी संवर-निर्जरा नहीं। जैसे भगवान की पूजा, भक्ति भी शुभराग है, वैसे स्मरण करना, वह भी शुभराग ही है। उसमें कोई यह स्मरण करने में संवर-निर्जरा है और भगवान की भक्ति में दूसरा राग है, ऐसा है नहीं। सबको भगवान शुभराग कहते हैं। ऐसा शुभराग ज्ञानी या अज्ञानी को भी आता है।

निर्दोष परमात्मा से प्रतिपक्षभूत ऐसे आर्त-रौद्रध्यानों द्वारा उपार्जित जो ज्ञानावरणादि प्रकृतियाँ... देखो! जरा **उनका, रागादिविकल्परहित धर्म-शुक्लध्यानों द्वारा विनाश करके,...** भगवान अरिहन्त कैसे हुए ? जो अज्ञान और राग-द्वेष भाव से, आर्त और रौद्रभाव से ऊपार्जित किये हुए आठ कर्म, उन रागादि विकल्परहित दोनों धर्म-शुक्लध्यान। देखो! धर्मध्यान भी रागादि विकल्परहित, शुक्लध्यान भी रागादि विकल्परहित।

अभी धर्मध्यान में बहुत ही गड़बड़ चलती है। धर्मध्यान है तो थोड़ा साथ में प्रशस्तराग है। उसमें निर्जरा (और) संवर भी है, यह इनकार करते हैं। देखो! रागादि विकल्परहित धर्मध्यान में शुद्धता थोड़ी है। शुक्लध्यान में शुद्धता विशेष है। परन्तु है तो दोनों रागरहित। पुण्य और पाप का जो विकल्प है, उससे रहित अपने स्वरूप की धर्मध्यान परिणति और शुद्धि की वृद्धिरूप शुक्लध्यान की परिणति, उस **द्वारा विनाश करके...** आठ कर्म उसके द्वारा विनाश हुए हैं। समझ में आया ?

मुमुक्षु : धर्मध्यान का काउसग्ग हो ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह धर्मध्यान काउसग्ग में कहाँ है ? यह तो विकल्प है। यहाँ तो आत्मा अनन्त-अनन्त आनन्द का कन्द, उसकी अन्तर्दृष्टि करके जो रागरहित ध्यान अपनी शुद्धता में हुआ, वह धर्मध्यान है। वही धर्मध्यान कर्म का नाश करने का उपाय है। बाकी दूसरे शुभराग—उपवास किये और ऐसा किया और वैसा किया, वह सब यहाँ आत्मा आनन्दकन्द ज्ञातादृष्टा में लीनता की धर्मध्यान की पर्याय प्रगट करे, उससे कर्म का नाश होता है। दूसरा कोई नाश का उपाय नहीं है। कहो, समझ में आया ? सेठी!

धर्मध्यान और शुक्लध्यान में शुद्धता के हीनाधिकता का अन्तर है। धर्मध्यान में शुद्धता थोड़ी है। शुक्लध्यान में शुद्धता विशेष है। यह पहले बीच में कहा था। याद नहीं रहा।

मुमुक्षु : प्रशस्तराग में धर्मध्यान है?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। प्रशस्तराग, वह धर्मध्यान नहीं। यह तो यहाँ कहते हैं। उसके सामने ही बात है। प्रशस्तराग, वह शुभपरिणाम है। समझ में आया? आहाहा! धर्म और शुक्लध्यान द्वारा अरिहन्त हुए। कोई उपवास-बुपवास करके, किसी ने इतने किये परन्तु उसमें धर्म और शुक्लध्यान आवे तो कर्म का नाश होता है। समझ में आया? यहाँ तो मुझे दूसरा कहना था। धर्मध्यान को कोई दो प्रकार से कहता है। एक विकल्प है राग, वह धर्मध्यान, उससे भी निर्जरा होती है—ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : शुद्धता में अन्तर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : (शुद्धता में) अन्तर है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। शुद्धता तो है निर्विकल्प। धर्मध्यान और शुक्लध्यान दोनों निर्विकल्प शुद्ध परिणति है। पुण्य विकल्प प्रशस्तराग में सामने दिया है न? उन्होंने यह। प्रशस्त राग तो शुभबन्ध का है। उसे व्यवहार धर्मध्यान कहते हैं। परन्तु यह निश्चय धर्मध्यान हो तो उसे (प्रशस्त राग को) व्यवहार कहते हैं और वह पुण्यबन्ध का कारण है। समझ में आया?

रागादिविकल्परहित... धर्म, शुक्लध्यान का दोनों को अभी एक शब्द लागू किया है। वे क्या कहते हैं? कि चौथे से यह सातवें तक अभी तो धर्मध्यान है, शुभराग। वह शुभउपयोग धर्मध्यान, वहाँ से संवर-निर्जरा होती है। फिर शुक्लध्यान आठवें से और कोई बारहवें से... समझ में आया? ऐसा है नहीं। धर्मध्यान आत्मा के ज्ञाता स्वभाव का ध्यान एकाग्रता, वह धर्मध्यान है। बीच में प्रशस्त राग आया भगवान का स्मरण आदि, वह तो शुभराग है। वह पुण्यबन्ध का कारण है। वह कर्म के नाश का कारण

नहीं। कहो, देवीलालजी! भगवान की भक्ति करना, वह पुण्य है और सामायिक करके विकल्प करके बैठना, वह धर्म है। ऐसा है? नहीं। ऐसा कहते हैं।

ऐसा कि यहाँ सामायिक करके बैठे और यह शुभराग वर्ते, वह संवर-निर्जरा। भगवान की भक्ति पुण्य, ऐसा नहीं। सामायिक में भी जितना भगवान के स्मरण, नाम आदि का विकल्प उठता है, वह सब पुण्यबन्ध है। उसे वास्तव में सामायिक नहीं है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सब बन्ध के ही कारण है। भगवान ज्ञायक चैतन्यमूर्ति, निर्विकल्प स्वभाव को पकड़कर लीन होना, उसका नाम सामायिक है। उसका नाम धर्मध्यान है। उसका नाम कर्म का नाश करने का उपाय है। वह संवर है। समझ में आया? आगे संवर का अधिकार आयेगा।

जो क्षुधादि अठारह दोषरहित, देखो! स्पष्टीकरण किया है। कैसे हैं अरिहन्त भगवान? एक तो रागादि विकल्परहित धर्म-शुक्लध्यान द्वारा विनाश करके। विनाश हुआ तो क्या हुआ? क्षुधादि अठारह दोष रहित हो गये। भगवान अरिहन्त को क्षुधा, तृषा, रोग नहीं होते। ऐसे अरिहन्त का स्पष्टीकरण किया। कोई कहता है न कि अरिहन्त को क्षुधा होती है। विचार लेते हैं रोग आया (तो) औषधि ली। यह सब बात यथार्थ नहीं है। कहो, समझ में आया? **क्षुधादि अठारह दोष रहित...** रहित है तो गुण क्या हुए? **और केवलज्ञानादि अनन्त चतुष्टय सहित हुए,...** लो।

केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य, ऐसी पर्याय अस्ति हुई। अठारह दोष कर्म नाशवान, ऐसे दोष से रहित हुए। **लौकिक अंजन सिद्ध आदि से विलक्षण...** अब सिद्ध की व्याख्या करते हैं। यह अरिहन्त की की। ऐसे अरिहन्त की भक्ति आदि को अर्थात् प्रशस्त राग कहा जाता है। ऐसे अरिहन्त। दूसरे अरिहन्त माने कि राग, उसके राग को वास्तव में प्रशस्त राग कहने में नहीं आता। यहाँ यह कहते हैं। अब सिद्ध। यह पाँच बोल हैं न अरिहन्त, सिद्ध, साधु, यह तीन बोल, इनकी व्याख्या है।

लौकिक अंजन सिद्ध आदि... लौकिक में ऐसा कहते हैं न? अंजन ऐसे उसके पैर तप जाये, ऐसी सिद्धि। ऐसी पुण्य की सिद्धि होती है। वह नहीं। सिद्धपुरुष। हाँ। यह

सिद्ध चिन्तवन पुण्य के। वह नहीं। उनसे विलक्षण। **ज्ञानावरणादि-अष्टकर्म के अभाव से...** लो! सम्यक्त्व आदि अष्ट गुणात्मक है। आठ कर्म का अभाव और आठ गुण की पर्याय का सद्भाव। **और लोकाग्र में बसते हैं,...** लो! यहाँ लोकाग्र में बसते हैं, ऐसा कहा। वे सिद्ध हैं। लोकाग्र में बसते हैं। क्षेत्र बताया। भाव अपने अनन्त चतुष्टय में बसते हैं। यह भाव कहा। समझ में आया? उनकी भक्ति, वह प्रशस्तराग है, ऐसा कहना है। उनका स्मरण करना, उन्हें याद करना, उनसे प्रेम करना, उनका बहुमान करना, बारम्बार मनन रटन करना अरिहन्त सिद्ध का, वह प्रशस्तराग है - शुभराग है - पुण्यराग है। उससे पुण्य आता है।

अब साधु की बात करते हैं। आचार्य, उपाध्याय। **विशुद्ध ज्ञान-दर्शन जिनका स्वभाव है ऐसे आत्मतत्त्व...** कैसा है आत्मभाव? आत्मतत्त्व कैसा है? कि विशुद्ध ज्ञानदर्शन जिसका स्वभाव, अकेला ज्ञाता-दृष्टा विशुद्ध निर्मल ज्ञान-दर्शन विशुद्ध स्वभाव, वह आत्मतत्त्व। **उसकी निश्चयरुचि,...** उसकी निश्चयदृष्टि, इसका नाम सम्यग्दर्शन। **वैसी ज्ञप्ति....** वैसी ही, ऐसे आत्मतत्त्व की ज्ञप्ति। ऐसा ज्ञान-दर्शन स्वभाववाला आत्मा, उसका ज्ञान, उसका ज्ञान, वह निश्चय सम्यग्ज्ञान है। **वैसी ही निश्चल-अनुभूति,...** वैसी ही अन्तर में निश्चल अनुभूति, स्थिरता, रमणता, उसका नाम चारित्र।

परद्रव्य की इच्छा के परिहारपूर्वक उसी आत्मद्रव्य में प्रतपन अर्थात् तपश्चरण... लो! यह तपश्चरण। पहले सम्यक् आकार कहा। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र। अब सम्यक् तप। **परद्रव्य की इच्छा के परिहारपूर्वक उसी आत्मद्रव्य में प्रतपन अर्थात् तपश्चरण...** स्थिर विशेष, उग्र पुरुषार्थ से होना, इसका नाम तपश्चरण आचार कहते हैं। आचार के नाम कहते हैं। पाँच आचार पाले, वह आचार। वह पाँच आचार। समझ में आया? **और स्वशक्ति को गोपे बिना...** यह वीर्य। **स्वशक्ति को गोपे बिना वैसा ही अनुष्ठान...** यह वीर्याचार। वीर्याचार, दर्शनाचार, ज्ञानाचार, चारित्राचार, तपाचार और वीर्याचार - पाँच आचार।

वैसा ही अनुष्ठान—ऐसे निश्चयपंचाचार को तथा उसके साधक व्यवहारपंचाचार को... अब यहाँ तो साथ में लिया। साधक और बाधक, पहले साधक हो और साध्य

बाद में हो न, वह इसमें तो नहीं आया।-**कि जिसकी विधि आचारादि शास्त्रों में कही है...** व्यवहाराचार, हों! **अर्थात् उभय आचार को जो स्वयं आचरते हैं...** उभय आचार को जो स्वयं आचरते हैं। यहाँ तो भाई! उभय कहा। एक समय में दो। देखो! हें? कहाँ हुआ? **उभय आचार को जो स्वयं आचरते हैं...** एक साथ कहा, उभय किसे कहे? निश्चयदृष्टि, ज्ञान और रमणता, तप और वीर्याचार यह निश्चय। उसके साथ व्यवहार ज्ञान के आचार हैं न? काल में पढ़ना, विनय से पढ़ना, दर्शनशुद्धि.... चारित्र का, तीर्थ का इत्यादि। विकल्पात्मक भाव व्यवहार है, वह पंचाचार साथ में है। निश्चय पंचाचार के साथ। **उभय आचार को जो स्वयं आचरते हैं...** स्वयं आचरता है, यह कहाँ से आया? व्यवहार को आचरता है और निश्चय को दृष्टि में रखता है, ऐसा है?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ आचरता है? स्वयं आचरता है, वर्तमान आचरता है कहा। स्वयं आचरता है और दूसरों को आचरण कराता है। इसका नाम वह निश्चय-व्यवहार को कराता है, ऐसा कहते हैं, देखो!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या? यह जयसेनाचार्य ने लिखी है। जयसेनाचार्य की बात है। हिम्मतभाई के घर की नहीं। समझ में आया? .... कौन जाने क्या करते हैं? कहाँ उठलावी-मारी है। फेरफार फेरफार। उभय आचार को जो स्वयं आचरते हैं और दूसरे को आचरण कराते हैं। यहाँ तो ऐसा लिखा है। समझ में आया? जयसेनाचार्य की टीका में है न, टीका में। शब्द-शब्द है। फिर क्या? ओहोहो! ऐसे आचार्य की, ऐसे आचार्य की भक्ति। समझ में आया?

अब उपाध्याय। भेदाभेदरत्नत्रय, यहाँ लेंगे। उपाध्याय किसे कहते हैं, यह बताते हैं। ऐसे उपाध्याय की भक्ति प्रशस्तराग है। भेदाभेद रत्नत्रय व्यवहार दोनों में आ गया। साधु तो अपना साधन करते हैं न? पहिचान किसे ऐसी? उसके ख्याल में हो कि यह वस्तु है इतनी। यह तो ज्ञान और दर्शन हो, वह शुद्धि उसमें स्वयं को स्वयं के कारण से हुई। यह ऐसे हैं, इतना लक्ष्य किया, वह तो व्यवहारज्ञान है। और उसके प्रति भक्ति का

भाव, वह शुभराग है। समझ में आया?

अपने आत्मा में अन्दर में ज्ञान-दर्शन की परिणति स्व के अवलम्बन से प्रगट हो, वह निश्चयसम्यग्दर्शन है। यह आचार्य ऐसे... ऐसे... ऐसे.... (ऐसा) लक्ष्य परावलम्बी, परसत्तावलम्बी परज्ञान है। और उनकी भक्ति आदि का भाव शुभराग है। कहो, समझ में आया?

मुमुक्षु : उभय व्यवहार में काल भेद है या यह काल है?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह काल है, यह मैंने कहा न? पहले कहा। एक साथ में है। पहले कहा। उभय अर्थात् एक साथ में है। वहाँ निश्चय पंचाचार है, साथ में व्यवहार विकल्प आदि है। निश्चय बिना व्यवहार नहीं होता। एक नय दूसरे नय की सापेक्षता न हो तो वह मिथ्यानय हो जाता है। अकेला व्यवहार हो और निश्चय न हो तो मिथ्यानय हो जाता है। और पूर्ण निश्चय हो तो वहाँ व्यवहार भले न हो परन्तु निश्चय (नीचे) है तो साथ में व्यवहार होता ही है। विकल्प ऐसा शुभराग प्रशस्त राग होता ही है। सापेक्ष व्यवहार और निश्चय हो गया। समझ में आया? निश्चय से व्यवहार से निरपेक्ष निश्चय है। उसमें व्यवहार से ऐसा विकल्प सापेक्ष आता है। गजब भाई नय का।

अब उपाध्याय कैसे हैं? यह ऐसे अरिहन्त, ऐसे सिद्ध और ऐसे आचार्य। उनकी भक्ति का नाम अभी प्रशस्तराग—शुभराग है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : बोल-बोल करे तो क्या है? परावलम्बी ज्ञान-जानपना है। उसमें क्या है? स्व के बिना यह परावलम्बी ज्ञान वास्तव में मोक्ष के मार्ग में है ही नहीं। समझ में आया?

अब पाँच अस्तिकायों में शुद्धजीवास्तिकाय को निश्चयनय से उपादेय कहते हैं... कहते हैं। देखो! यह उपाध्याय ऐसी प्ररूपणा करते हैं। कि पाँच अस्तिकाय है, काल के अतिरिक्त, उनमें शुद्ध जीवास्तिकाय को ही निश्चयनय से उपादेय कहते हैं। देखो! समझ में आया?

यह उपादेय भगवान जीवास्तिकाय स्व। असंख्य प्रदेशी, अनन्त गुण का धाम

शुद्ध जीवास्तिकाय, वह उपादेय है। ऐसी प्ररूपणा उपाध्याय करते हैं। इससे विरुद्ध करे तो उपाध्याय है नहीं। ऐसी प्ररूपणा करनेवाले उपाध्याय की भक्ति भी शुभराग है। समझ में आया?

मुमुक्षु : अस्तिकाय है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, अस्तिकाय चलता है। हाँ... हाँ। अभी चलता है। आस्रवतत्त्व। **छह द्रव्यों में शुद्धजीवद्रव्य को,...** उपादेय कहते हैं। लो! कहते हैं, देखो! ऐसा उपदेश कहते हैं। **छह द्रव्यों में शुद्धजीवद्रव्य को,...** स्वभाव शुद्ध वह जीवद्रव्य उपादेय और अंगीकार करनेयोग्य है। ऐसा कहनेवाले को उपाध्याय कहते हैं। ऐसे उपाध्याय की भक्ति, वह शुभराग है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसकी यहाँ बात ही कहाँ है? इसीलिए तो यहाँ बात करते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे माने तो उसे मिथ्यात्व होता है। उपाध्याय है नहीं, आचार्य है नहीं। अरिहन्त, सिद्ध, स्वभाव है नहीं। (उसे माने) तो उसे मिथ्यात्व होता है। मिथ्यात्व का भाव आता है। ओहोहो! **छह द्रव्यों में शुद्धजीवद्रव्य को, सात तत्त्वों में शुद्धजीवतत्त्व को...** क्या कहा? उपाध्याय उसे कहते हैं कि सात तत्त्वों में शुद्ध जीवतत्त्व को ही उपादेय कहा जाता है। **नव पदार्थों में शुद्धजीवपदार्थ को...** जो निश्चयनय से, देखो! वस्तु है, हों! सब। **निश्चयनय से उपादेय कहते हैं...** एक बात। तथा **भेदाभेद-रत्नत्रयस्वरूप मोक्षमार्ग की प्ररूपणा करते हैं...** व्यवहार-निश्चयरत्नत्रय की प्ररूपणा करते हैं। भेद और भेद अर्थात् व्यवहार। और अभेद अर्थात् निश्चय। दो हैं न, दो है, स्वरूप मोक्षमार्ग की प्ररूपणा करते हैं। **और स्वयं भाते (-अनुभव करते) हैं,...** भेदाभेदरत्नत्रय स्वयं भाते हैं। **वे उपाध्याय हैं।** कहो, समझ में आया? ऐसे उपाध्याय की भक्ति, वह प्रशस्तराग है।

यहाँ तो पाँच पद कहे हैं, उसकी खबर नहीं और (हम) जैन हैं (ऐसा कहे), हाँ, बस! भगवान की भक्ति करते हैं। णमो अरिहन्ताणं। बस क्रम-क्रम से संवर-निर्जरा

हो जायेगी। सामायिक है न? बैठे थे तो अन्दर क्या कुछ साफ किया था। मैंने सामायिक की, ऐसी उसकी मान्यता ही मिथ्यात्व है। सामायिक है नहीं और उसे सामायिक माना है। शुद्ध जीव स्वभाव की...

मुमुक्षु : उसमें आनन्द आवे।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल का आनन्द आवे वहाँ उसे। **भेदाभेद रत्नत्रय... वह उपाध्याय है।** देखो! पहिचान दी है न? पहिचान-पहिचान।

अब साधु। **निश्चय-चतुर्विध-आराधना द्वारा...** परन्तु साधु प्ररूपणा नहीं करते, वह तो उसका साधन करना है न? साधु को अपना साधन करना, वह तो नहीं आदेश, नहीं उपदेश, इस अपेक्षा से।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह नहीं करते, यह साधु नहीं करते। उपाध्याय-व्यवहाररत्नत्रय में आ गया। व्यवहाररत्नत्रय-निश्चयरत्नत्रय में आराधन करते हैं, उसमें विकल्प आ गया। भेदरत्नत्रय व्यवहार है। निश्चयरत्नत्रय निर्विकल्प है। जगत में प्ररूपणा करते हैं न, उपाध्याय हैं, उपाध्याय। उनके समीप... प्ररूपणा करते हैं। साधु है न साधु। साधु में क्या? साधना करना, बस! उन्हें कोई आदेश करना, उपदेश करना (इत्यादि) की व्याख्या मुख्यरूप से है ही नहीं।

निश्चय-चतुर्विध-आराधना द्वारा... वे अपने ज्ञान-दर्शन और आनन्द के द्वारा, **जो शुद्ध आत्मस्वरूप की साधना करते हैं, वे साधु हैं।** साधुओं में तो प्ररूपणा करना, समझाना, दीक्षा देना वैसा तो है नहीं। इस अपेक्षा से अपने निश्चयस्वरूप का आराधन करते हैं। देखो! उसमें कुछ विकल्प का आराधन करते हैं, यह भी नहीं लिया। और कहते हैं, जगत को समझाते हैं, ऐसा भी साधु में नहीं है। साधु तो अपने आनन्दस्वरूप को साधे, वे साधु। अतीन्द्रिय आनन्द (मय) साधु। ज्ञान-दर्शन चारित्र और तप, निर्विकल्प शुद्ध की सेवना, साधु हैं न, वे सेवना करते हैं। साधना करे, वह साधु। यह **अर्हन्त-सिद्ध-साधुओं के प्रति भक्ति,...** लो! इतना अर्थ हुआ। एक पहली पंक्ति। **अर्हन्त-सिद्ध-साधुओं के प्रति भक्ति,...** इसका नाम प्रशस्तराग है। कहो, समझ में आया?

यह साक्षात् समवसरण में प्रभु विराजते हों तो भी उनकी प्रति की भक्ति, वह शुभराग है। ओहोहो! और आचार्य, उपाध्याय, साधु साक्षात् हो, उनकी भक्ति भी शुभराग है। **धर्म में-व्यवहारचारित्र के अनुष्ठान में—भावनाप्रधान चेष्टा...** शुभराग की व्याख्या करते हैं। यह प्रशस्तराग की व्याख्या करते हैं। व्यवहारचारित्र पंच महाव्रत के परिणाम में, उनके **अनुष्ठान में, आचरण, आचरना, अमल में लाना। भावनाप्रधान चेष्टा...** शुभभाव, हों! **शुभभावप्रधान व्यापार।** (आचार) पंच महाव्रत में, पंच समिति, गुप्ति में, व्यवहार में, व्यापार में बराबर भाव प्रधान चेष्टा। शुभभाव मुख्य... चेष्टा, उसका नाम प्रशस्त राग है, पुण्य बन्ध का कारण है।

और गुरुओं का—आचार्यादि का—रसिकरूप से अनुगमन,... देखो! आचार्य, उपाध्याय, साधु आते हों, जाते हों, उनका **रसिकरूप से अनुगमन करना। अनुसरण, आज्ञांकितपना, अनुकूल वर्तन। [गुरुओं के प्रति रसिकभाव से, प्रेम से (उल्लास से, उत्साह से) आज्ञांकित वर्तना, वह प्रशस्त राग है।]** लो! समझ में आया? कितने शब्द लिये हैं, देखो!

गुरुओं का—आचार्यादि का—रसिकरूप से... अर्थात् प्रेम से, उल्लास से, उत्साह से रुचिपूर्वक, ऐसा। बेगारीरूप से नहीं। बेगार करते हैं न तुम्हारे, हें! जबरदस्ती। हठ कहते हैं। यह तो रसिकरूप से अनुगमन, वह प्रशस्तराग है। लो! इसका नाम भगवान प्रशस्त राग कहते हैं। शुभराग कहते हैं। पुण्यास्रव का कारण कहते हैं। संवर, निर्जरा नहीं। क्यों? अब प्रशस्त की व्याख्या की है, देखो!

क्यों कहा प्रशस्तराग? कि उसका विषय प्रशस्त है। समझ में आया? पंच परमेष्ठी उसका विषय है न, वे प्रशस्त हैं, तो राग को प्रशस्त कहा गया है। अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु। पंच महाव्रत आदि हैं और रसिकरूप से, उत्साहरूप से भक्ति आदि भाव, उसका विषय प्रशस्त है तो राग को प्रशस्त कहा गया है। विषय प्रशस्त है तो राग प्रशस्त। समझ में आया?

मुमुक्षु : कारण प्रशस्त है, इसलिए राग प्रशस्त।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह नहीं। उसका विषय प्रशस्त है। सामने चीज़ प्रशस्त है,

इतना, सामने चीज़ प्रशस्त है तो यहाँ राग को प्रशस्त कहा गया है। इतनी बात है।

मुमुक्षु : कारण प्रशस्त है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ये कारण-बारण की बात नहीं। यहाँ यह बात नहीं। यहाँ तो प्रशस्त विषय है इसलिए, निमित्त ऐसा है न? बस इतना। निमित्त प्रशस्त है तो राग को प्रशस्त कहा गया है, इतनी बात है, बस। इस बात की यहाँ बात नहीं। यहाँ तो राग कहते हैं, उसे प्रशस्त क्यों कहा? उसका विषय प्रशस्त है, इतना। उससे उत्पन्न हुआ है या वह कारण है, उसकी बात यहाँ है ही नहीं।

राग है, उसका विषय प्रशस्त क्यों कहा? इतनी बात है। प्रशस्त क्यों कहा कि सामने विषय प्रशस्त है। बस! निमित्त कहने में आया। देव-गुरु-शास्त्र प्रशस्त है न इसलिए। समझ में आया? इसलिए इसे-राग को प्रशस्त क्यों कहा? यह हमारे एक पण्डितजी कहते थे या नहीं? आज्ञांकित मानना, वह अभी शुभराग है। आज्ञाप्रमाण रहना। व्यवहार से आज्ञांकित। आज्ञा प्रमाण रहना।

मुमुक्षु : आज्ञा प्रमाण अर्थात् राग...

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा नहीं, नहीं, नहीं। आज्ञांकित अर्थात् गुरु की आज्ञा अनुकूलता से चलना, उनकी आज्ञा प्रमाण रहना, वह शुभराग है, ऐसा। शुभराग की यहाँ बात नहीं। यहाँ तो उनकी अनुकूलता में लक्ष्य करके रहना, बस इतनी बात है। विशेष यहाँ बात है नहीं। समझ में आया? यहाँ तो प्रशस्त विषय है न निमित्त। इसलिए यहाँ राग को प्रशस्त कहने में आया है। उससे हुआ है, यह प्रश्न यहाँ नहीं है। बात प्रशस्त की की है। ....यह तो प्रशस्त विषय ही है। इस बात की चर्चा हमारे हो गयी है, अमृतलाल के साथ। विषय अर्थात् निमित्त ही प्रशस्त है। स्त्री, कुटुम्ब, अप्रशस्त निमित्त है। इस कारण यहाँ प्रशस्त राग कहा गया है। उत्पन्न तो स्वयं से हुआ है। अब वह राग किसे होता है? यह बात कहते हैं। स्वयं के कारण से, हों!

यह (प्रशस्त राग) वास्तव में, जो स्थूल-लक्ष्यवाला होने से... अज्ञानी। आहाहा! **अज्ञानी का लक्ष्य (-ध्येय) स्थूल होता है,...** उसे मात्र भक्ति की ही प्रधानता होती है, देखो! अज्ञानी को भक्ति की प्रधानता, शुभभाव, बस। स्मरण में, यादगिरी में, भक्ति में,

पूजा में, अकेला शुभराग तल्लीन। स्थूल लक्ष्यवाला, ऐसा कहा। हों! ध्येय... ध्येय। लक्ष्य अर्थात् ध्येय। स्थूल ध्येय है। राग ध्येय है। पर ध्येय है। उसमें अपना ध्येय है नहीं। **केवल भक्ति की ही प्रधानता होती है।** ऐसे अज्ञानी को भक्ति वास्तव में होती है। अज्ञानी की ऐसी स्थूल भक्ति होती है। समझ में आया?

उच्च भूमिका में (-ऊपर के गुणस्थानों में) स्थिति प्राप्त न की हो... ऊपर की भूमिका में, अब ज्ञानी की बात करते हैं। **उच्च भूमिका में (-ऊपर के गुणस्थानों में) स्थिति प्राप्त न की हो तब, अस्थान का राग रोकने के हेतु...** यह ज्ञानी की बात है। यह सब व्यवहार की बात है। अस्थान का राग, वह तो राग-द्वेष में विकल्प ऐसा आता है कि ऐसा न हो। कोई यहाँ क्रमबद्ध में विरोध करे, ऐसा नहीं। अस्थान का राग रोकने के लिये, कोई कहे कि अस्थान का राग आनेवाला था और रोका किस प्रकार? अरे! भाई! ऐसा नहीं है। यहाँ तो, ऐसा है नहीं। वहाँ तो राग के साथ थोड़ा अशुभराग न हो, ऐसा विकल्प आता है, उसे रोकने के लिये अस्थान अर्थात् राग आया है और रोका है? कथन की पद्धति निमित्त से बात समझाते हैं।

अथवा तीव्र रागज्वर मिटाने के हेतु... तीव्र राग ज्वर, राग ज्वर तीव्र है तो रोकने के लिये है। परन्तु तीव्र राग ज्वर न आवे, ऐसा भाव है तो वहाँ शुभराग कहने में आता है। **कदाचित् ज्ञानी को भी होता है।** ऐसा राग आता है भक्ति का, स्मरण का इत्यादि का भाव ज्ञानी को भी प्रशस्त राग आता है। आये बिना नहीं रहता, उसे भी पुण्यास्रव इतना, लो! ज्ञानी को भी पुण्यास्रव कहा। कोई कहे कि नहीं, ज्ञानी का शुभराग संवर, निर्जरा का कारण है, ऐसा कहते हैं न? कहते हैं अभी। ज्ञानी का अशुभराग भोग में भी निर्जरा होती है तो शुभभाव में क्यों निर्जरा नहीं होगी? अमरचन्दभाई! ऐसा कहते हैं। नहीं। ज्ञानी का अशुभभाव भोग का भाव भी पाप का कारण है। भोग भाव क्या निर्जरा का कारण है? यह तो दृष्टि की शुद्धता की प्रधानता बतलाने के लिये भोग को ज्ञानी की निर्जरा कही है। भोग का भाव निर्जरा है? ज्ञानी के शुभभाव को यहाँ पुण्यास्रव कहा। देखो यहाँ। सम्यग्ज्ञानी के शुभभाव प्रशस्त विषय सामने है, उसका लक्ष्य हुआ तो पुण्यास्रव है, धर्म नहीं। १३६ गाथा (पूरी) हुई। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - १३७

तिसिदं व भुक्खिदं वा दुहिदं दट्ठूण जो दु दुहिदमणो ।
पडिवज्जदि तं किवया तस्सेसा होदि अणुकंपा ।। १३७ ।।

तृषितं बुभुक्षितं वा दुःखितं दृष्ट्वा यस्तु दुःखितमनाः ।
प्रतिपद्यते तं कृपया तस्यैषा भवत्यनकम्पा ।।१३७ ।।

अनुकम्पास्वरूपाख्यानमेतत् ।

कञ्चिदुदन्यादिदुःखप्लुतमवलोक्य करुणया तत्प्रतिचिकीर्षाकुलितचित्तत्वमज्ञानिनोऽनुकम्पा। ज्ञानिनस्त्वधस्तनभूमिकासु विहरमाणस्य जन्मार्णवनिमग्नजगदवलोकनान्मनाग्मनः खेद इति।। १३७ ।।

क्षुधा तृषा से दुःखीजन को व्यथित होता देखकर।
जो दुःख मन में उपजता करुणा कहा उस दुःख को ।।१३७।।

अन्वयार्थ :— [तृषितं] तृषातुर, [बुभुक्षितं] क्षुधातुर, [वा] अथवा [दुःखितं] दुःखी को [दृष्ट्वा] देखकर [यः तु] जो जीव [दुःखितमनाः] मन में दुःख पाता हुआ [तं कृपया प्रतिपद्यते] उसके प्रति करुणा से वर्तता है, [तस्य एषा अनुकम्पा भवति] उसका वह भाव अनुकम्पा है।

टीका :— यह, अनुकम्पा के स्वरूप का कथन है।

किसी तृषादि दुःख से पीड़ित प्राणी को देखकर करुणा के कारण उसका प्रतिकार (-उपाय) करने की इच्छा से चित्त में आकुलता होना, वह अज्ञानी की अनुकम्पा है। ज्ञानी की अनुकम्पा तो, निचली भूमिका में विहरते हुए (-स्वयं निचले गुणस्थानों में वर्तता हो तब), जन्मार्णव में निमग्न जगत के अवलोकन से (अर्थात् संसार सागर में डूबे हुए जगत को देखने से) मन में किंचित् खेद होना वह है ॥१३७॥*

---

* इस गाथा की आचार्यवर श्री जयसेनाचार्यदेवकृत टीका में इस प्रकार विवरण है :- तीव्र तृषा, तीव्र क्षुधा, तीव्र रोग आदि से पीड़ित प्राणी को देखकर अज्ञानी जीव 'किसी भी प्रकार से मैं इसका प्रतिकार करूँ' इस प्रकार व्याकुल होकर अनुकम्पा करता है; ज्ञानी तो स्वात्मभावना को प्राप्त न करता हुआ (अर्थात् निजात्मा के अनुभव की उपलब्धि न होती हो तब), संक्लेश के परित्याग द्वारा (-अशुभभाव को छोड़कर) यथासम्भव प्रतिकार करता है तथा उसे दुःखी देखकर विशेष संवेग और वैराग्य की भावना करता है।

प्रवचन नं. ३५, गाथा-१३७-१३९
दिनांक - ०१-१०-१९६४, भाद्र कृष्ण ११, गुरुवार

पंचास्तिकाय में नौ पदार्थ चलते हैं। नौ पदार्थ की व्याख्या। नौ पदार्थ किसे कहते हैं, उसमें आस्रव पदार्थ की व्याख्या चलती है। पुण्य और पाप, शुभ और अशुभभाव दोनों आस्रव है। उनसे नये आवरण आते हैं, वह बन्धन का कारण है, ऐसा बताते हैं। यह देखो! पहले १३६ में आ गया है।

प्रशस्त राग आया न? पंच परमेष्ठी में प्रशस्त राग, भक्ति आदि, वह पुण्यास्रव है। समझ में आया? अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु सच्चे, उनकी व्याख्या कर गये हैं। उनकी भक्ति, नामस्मरण, पूजा इत्यादि भाव को पुण्यास्रव कहते हैं। संवर नहीं, धर्म नहीं। परम्परा भी नहीं। शुभराग में से परम्परा होता नहीं। अपना स्वभाव शुद्ध, वह संवरमार्ग में आयेगा। शुद्धमार्ग संवर चैतन्यमूर्ति का अन्तर अवलम्बन लेकर जो शुद्ध विकाररहित परिणति पर्याय उत्पन्न हो, वह मोक्ष का मार्ग, वही संवर है, दूसरा कोई मार्ग नहीं है। बीच में ऐसा भाव आता है, तो उसे पुण्यास्रव कहा गया है। कहो, समझ में आया? प्रशस्त राग की व्याख्या हो गयी।

ज्ञानी को भी प्रशस्त राग आता है। अज्ञानी को तो अकेले स्थूल लक्ष्यवाली भगवान की भक्ति करने से हमारा कल्याण हो जायेगा, ऐसा उसका ध्येय स्थूल है। उसे भी राग मन्द हो तो पुण्यास्रव होता है, धर्म नहीं। ज्ञानी को अपने शुद्धस्वभाव में नहीं रह सकता और अशुभराग के वंचनार्थ अथवा निषेधार्थ ऐसा भक्ति का भाव सम्यग्ज्ञानी को भी भगवान की भक्ति, नामस्मरण, जप आदि का भाव आता है, परन्तु है वह पुण्यास्रव। शुभभाव पुण्य का आस्रव करनेवाला है। बन्ध तो करनेवाला है। अब अनुकम्पा की बात चलती है। शुभभाव के तीन बोल। एक प्रशस्तराग, एक अनुकम्पा, एक अकलुषित भाव। तीन शुभभाव है। उससे पुण्यास्रव है, नये पुण्य का आवरण होता है। उसमें एक प्रशस्त राग की व्याख्या हो गयी। अब अनुकम्पा। १३७ (गाथा)।

तिसिदं व भुक्खिदं वा दुहिदं दट्ठूण जो दु दुहिदमणो।
पडिवज्जदि तं किवया तस्सेसा होदि अणुकंपा।।१३७।।

इसकी १३७ की **टीका :— यह, अनुकम्पा के स्वरूप का कथन है।** यह अनुकम्पा भी शुभराग है। समझ में आया? अनुकम्पा भी शुभराग है। धर्म नहीं, संवर नहीं। यह कहते हैं, देखो! १३७ की टीका।

किसी तृषादिदुःख से पीड़ित प्राणी को देखकर.... संस्कृत में है, उसका अक्षरश: नीचे है। कोई **तृषादि,....** किसी को तृषा लगी हो, क्षुधा लगी हो, रोग हो, ऐसे दु:खी प्राणी हों। ऐसे दु:ख से पीड़ित प्राणी, ऐसे **दु:ख से पीड़ित प्राणी को देखकर करुणा के कारण...** करुणा आयी हो। पर प्राणी को करुणा के कारण उसका प्रतिकार (-उपाय) करने की इच्छा से उसकी तृषा, क्षुधा, रोग, पीड़ा इत्यादि दूर करने के प्रतिकार की इच्छा से **चित्त में आकुलता होना...** चित्त में आकुलता होना, वह अज्ञानी की अनुकम्पा है। समझ में आया?

वह अज्ञानी की अनुकम्पा है, अज्ञानी को अनुकम्पा ऐसा शुभभाव आता है। '**मैं इसका प्रतिकार करूँ**' शीघ्र कर दूँ, शीघ्र छोड़ दूँ, ऐसी अज्ञानी की आकुलता होती है। पर का प्रतिकार करने की इच्छा हो परन्तु आत्मा कार्य कर सके, ऐसा तीन काल में है ही नहीं। अज्ञानी को ऐसी आकुलता हो कि मैं एकदम पर का दु:ख दूर कर दूँ, क्षुधा दूर कर दूँ, तृषा दूर कर दूँ। **चित्त में आकुलता होना, वह अज्ञानी की अनुकम्पा है।** मिथ्यादृष्टि का यह जरा शुभभाव है। उसे पुण्यास्रव होता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : बात तो ऐसी है। देखो! कहाँ से आये हो भाई? ग्वालियर से। अच्छा! ...सेठी! ज्ञानी की अनुकम्पा, देखो! सम्यग्दृष्टि की अनुकम्पा कैसी होती है, उसका स्वरूप कहते हैं। अपना स्वरूप आनन्द और ज्ञान है, ऐसा जिसे अन्तरभान हुआ है, ऐसी सम्यग्दृष्टि की अनुकम्पा का क्या स्वरूप है?

निचली भूमिका में विहरते हुए... चौथे, पाँचवें आदि गुणस्थान में विचरते हों **(-स्वयं निचले गुणस्थानों में वर्तता हो तब), जन्मार्णव में निमग्न जगत के अवलोकन से...** देखो! भाषा बदल गयी। अज्ञानी को तो दु:ख की पीड़ा देखकर प्रतिकार करने की आकुलता है और ज्ञानी को **जन्मार्णव में निमग्न जगत के...** जन्मरूपी संसार, चौरासी

के अवतार में डूबते **जगत के अवलोकन से...** अरे! प्राणी चार गति में रुलते हैं— भटकते हैं। **संसार सागर में डूबे हुए...** चार गति में। परिभ्रमण करनेवाले **जीव को देखकर मन में किंचित् खेद होना, वह अनुकम्पा है।** खेद का अर्थ शुभभाव, अनुकम्पा।

मुमुक्षु : वह तो मिटा सके....

पूज्य गुरुदेवश्री : मिटा कौन सकता है? यह तो कहते हैं। पर की पर्याय कौन मिटा सकता है? मटाडी को क्या कहते हैं? कौन मिटा सकता है? पर का आयुष्य हो तो रह सके, आयुष्य न हो तो मर जाये। उसे असाता उदय हो तो प्रतिकूल संयोग मिले, साता के उदय से अनुकूल संयोग मिले। दूसरा कौन मिला सकता है? एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को मिला सकता है और संयोग बना सकता है, ऐसा तीन काल में कभी नहीं होता। बराबर है या नहीं भाई?

कोई परमाणु परद्रव्य है या नहीं? जैसे जगत के कर्ता ईश्वर हैं, ऐसा मानते हैं, वह कोई जैन परद्रव्य का कर्ता माने तो दोनों की दृष्टि एक जैसी है, एक स्थान है। पर का क्या कर सके? परमाणु, पर आत्मा स्वतन्त्र द्रव्य है। उसकी पर्याय का होना उसके कारण से होता है। अज्ञानी प्रतिकार करने में 'मैं करता कर दूँ' बेरियाजी! यह समझने की चीज़ है।

मुमुक्षु : आचार्य तुलसी ऐसा ही कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : तुलसी क्या कर सकते हैं? मिटा सकते हैं। पाप करते हैं। तुलसी तो ऐसा कहते कि... यहाँ तो पुण्य है, पाप में अन्तर है। वे तो कहते हैं कि दूसरे को बचाने का भाव पाप है। ऐसा नहीं है। वह तुलसी है न तेरापन्थी! स्थानकवासी में नहीं? तेरापन्थी। वह ऐसा मानता है न कि दूसरे क्षुधा, तृषावन्त को आहार-पानी देने का भाव पाप है, ऐसा कहता है। पाप नहीं, है पुण्य।

जैन की दूसरी बात है, यह तो कहते हैं कि दूसरी बात है। बेरियाजी! वह तो कहते हैं कि दूसरे को-भूखे को आहार देने का भाव पाप है। ऐसा नहीं है। वह भाव तो पुण्य है। परन्तु अज्ञानी को उसका प्रतिकार कर दूँ, क्षुधा मिटा दूँ, ऐसी क्रिया है, वह मिथ्यादृष्टि में अज्ञान की आकुलता है। समझ में आया? और ज्ञानी को प्रतिकार करने

की इच्छा नहीं। अनुकम्पा है। परन्तु उसका प्रतिकार कर सकूँ, क्षुधा टाल सकूँ, तृषा टालूँ, वह मेरे अधिकार की बात नहीं। ऐसे परद्रव्य की पर्याय मैं नहीं कर सकता। यह अन्तर है। बहुत ही पूर्व-पश्चिम का अन्तर है। स्थानकवासी में तेरापन्थ है न? वह तो ऐसा कहते हैं, क्षुधा-तृषा देखकर, दुःखी देखकर, लक्ष्मी भी देना, वह पाप है। ऐसा नहीं है। है तो पुण्य-शुभभाव, परन्तु मैं यह क्रिया कर सकता हूँ, ऐसी मान्यता अज्ञानी मिथ्यादृष्टि की है। उसकी तो—पर की तो उसे खबर भी नहीं। पर को कर सकूँ, यह तो उसे भी खबर नहीं है, हमें खबर है। उनके सब शास्त्र देखे हैं।

मुमुक्षु : भाषा बदली है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। भाषा अब बदली। पहले ऐसी भाषा नहीं थी। अलौकिक पुण्य है, संसार है। ऐसी भाषा करते थे। हमको खबर है। पहले ऐसी भाषा नहीं थी। स्पष्ट पर की, वह तो कहते हैं, स्पष्ट पर की अनुकम्पा। क्यों? कि वह बचे तो ठीक! ऐसी भावना। आहार-पानी देने की भावना पाप है, ऐसा (वे) कहते हैं। यहाँ ऐसा नहीं है। है तो पुण्य परन्तु पर की क्रिया कर सकता हूँ, ऐसी मान्यता अज्ञानी की है। वह अज्ञान के साथ शुभभाव का पुण्य आता है, बस इतनी बात है। अमरचन्दभाई! अमरचन्दभाई को तो वहाँ कानपुर में फैक्ट्री है। तेरापन्थी... समझ में आया?

इसी प्रकार मैं पर की क्रिया में क्षुधा मिटा दूँ, मिटे कहाँ से? मिटे तो, उसका संयोग मिले और उसे मिटे तो मिटे। तू कहाँ से मिटा सकता है? समझ में आया? ज्ञानी को तो अनुकम्पा। संसार सागर में डूबे हुए प्राणी हैं, ऐसा देखकर जरा खेद, शुभराग आया तो अनुकम्पा पुण्य आया। दृष्टि में उस पुण्य का आदर नहीं है। पर की क्रिया कर सकता हूँ, ऐसा ज्ञानी नहीं मानते। यह अनुकम्पा का भाव आया परन्तु सम्यग्दृष्टि की दृष्टि में उपादेय नहीं है। उपादेय नहीं, अनुकम्पा शुभभाव हेय है। आहाहा!

मुमुक्षु : उसके पुण्य की अनुकम्पा जोरवाली है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अज्ञानी की जोरवाली हुई। अज्ञान के जोरवाली हुई पहली। मैं पर का कर दूँ, पर का मैं कर दूँ। कौन कर सकता है? अज्ञान का जोर करूँ। समझ में आया? बहुत ही अन्तर है। वस्तु-वस्तु में बहुत ही अन्तर है। कहते हैं, ज्ञानी को

अनुकम्पा होती है। किसे? दुःख को देखकर होती है, ऐसा नहीं कहा देखो!

पीड़ित प्राणी को देखकर करुणा के कारण... अज्ञानी को। ज्ञानी को दुःख को देखकर नहीं। क्योंकि पर्यायबुद्धि उसे है ही नहीं। अपने में उसे देखकर वैराग्य आता है। ओहोहो! चौरासी में डूबे हुए प्राणी, उसे शुभभाव आया खेद, उसे प्रशस्त राग कहा जाता है। वह भी पुण्यास्रव है। ज्ञानी को भी वह पुण्यास्रव है। वीतराग न हो तो ऐसा भाव आता है, परन्तु वह धर्म नहीं है। समझ में आया? भारी गड़बड़ करते हैं। **मन में किंचित् खेद होना...** देखा? थोड़ा जरा नीचे (फुटनोट में) स्पष्टीकरण है। नीचे फुटनोट में जयसेनाचार्य की टीका का स्पष्टीकरण है। नोट है, नीचे। २०२ पृष्ठ पर नीचे।

इस गाथा की आचार्यवर श्री जयसेनाचार्यदेव कृत टीका में इस प्रकार विवरण है। तीव्र दुःख, तीव्र क्षुधा, तीव तृषा, तीव्र रोग इत्यादि से पीड़ित प्राणी को देखकर अज्ञानी जीव 'किसी भी प्रकार से मैं इसका प्रतिकार करूँ' मैं ऐसा दे दूँ, मैं ऐसा दान दे दूँ, ऐसा आहार-पानी दे दूँ परन्तु कौन दे सकता है? अज्ञानी की इतनी आकुलता है। समझ में आया? ज्ञानी को प्रतिकार यथासम्भव लक्ष्य आता है, परन्तु वह प्रतिकार की क्रिया का कर्ता नहीं होता। इच्छा-अनुकम्पा आयी, यह कहते हैं, देखो!

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु कौन? शुभराग है। आकुलता है? वह राग ही आकुलता है। सदा व्रत खोले या पूंछड़ा खोले। राग की मन्दता है। परन्तु मैं कर सकता हूँ और दे सकता हूँ और वह दे सकता है, ऐसी मान्यता मिथ्यादृष्टि अज्ञानी की मिथ्यात्व का बड़ा पाप साथ में है। कहो, समझ में आया? कौन कर सकता है? पर का कौन करता है? अपने में वह भाव आता है। कर कौन सकता है? और रोक कौन सकता है? सोगनचन्दजी! भाई क्या है? कौन कर सकता है? तुम्हारे शरीर की एक अँगुली भी नहीं चला सकता। वह तो जड़ है। जड़ की पर्याय जड़ से होती है या वह तुम्हारे से होती है? उसमें उत्पाद-व्यय है या नहीं? जड़ शरीर में उत्पाद-व्यय, तो उत्पाद-व्यय उससे हुए हैं? आत्मा से नहीं हुए तो क्या पर का कर सकता है? जगत को बहुत कठिन बात है।

'किसी भी प्रकार से मैं इसका प्रतिकार करूँ'... अज्ञानी। **इस प्रकार व्याकुल**

होकर अनुकम्पा करता है;... मिथ्याश्रद्धासहित ऐसा शुभभाव अज्ञानी को आता है तो मिथ्यात्व और पुण्य दोनों का आस्रव उसे होता है।

ज्ञानी तो.... सम्यग्दृष्टि तो **स्वात्मभावना को प्राप्त न करता हुआ...** अपने अनुभव में नहीं रह सकता, शुद्ध उपयोग में नहीं रह सकता, धर्मी अपने शुद्ध आनन्द की, ज्ञान की दृष्टि होने पर भी, स्वरूप में नहीं टिक सकता, तब **अर्थात् निजात्मा के अनुभव की उपलब्धि...** अर्थात् प्राप्ति **न होती हो तब), संक्लेश के परित्याग द्वारा...** संक्लेश नहीं, अशुभभाव का त्याग।

यथासम्भव प्रतिकार करता है... कर्ता है, वह व्यवहार से कहा है। समझे? यथासम्भव, ऐसा। यथासम्भव अर्थात् पर की क्रिया ऐसी होने की हो, वैसे होती है। उसे व्यवहार से कर्ता, ऐसा कहने में आया है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं; यथासम्भव अर्थात् उसके योग्य। सामने के योग्य। आहार मिला, पानी मिला, नहीं मिला, औषधि मिली, नहीं मिली - ऐसी यथासम्भव योग्यता वहाँ होती है, ऐसी स्थिति होती है। समझ में आया?

सेवा का भाव हुआ परन्तु वहाँ साधन नहीं हो तो, यथासम्भव जो मिला, वह ऐसे सहज हो जाये तो यथासम्भव। मुनि को तो प्रतिकार उपदेश से होता है। दूसरे प्रकार से नहीं।

उसे दुःखी देखकर... यहाँ तो विशेष बात यह है कि विशेष संवेग और वैराग्य की भावना करता है। बस! वैराग्य! ओहो! ऐसे दुःखी प्राणी जन्मार्णव में भटकते हैं। ऐसा वैराग्य संवेग ज्ञानी करता है। पर की क्रिया तो कर नहीं सकता। यथासम्भव राग आया, यथासम्भव क्रिया बन गयी तो बन गयी। समझ में आया? अनुकम्पा की बात हुई १३७ गाथा में। प्रशस्त राग की बात और अनुकम्पा की बात, दो की बात हुई। एक अकलुषितता। यह पुण्यास्रव की बात चलती है। तीनों पुण्यास्रव हैं। प्रशस्त राग, अनुकम्पा और अकलुषितभाव, ये तीनों पुण्यास्रव हैं। तीनों में कोई धर्म नहीं। संवर-निर्जरा नहीं। संवर-निर्जरा दूसरी चीज़ है।

मुमुक्षु : संवेग और वैराग्य अर्थात् क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : संवेग—मोक्ष की भावना, छूटने की भावना। सम्यक् प्रकार से वेग, मोक्ष की अभिलाषा। वैराग्य—राग से विमुख होना। मोक्ष का वेग और राग से विमुख होना, वैराग्य। ऐसी भावना अन्दर में करता है। अनुकम्पा आ जाती है परन्तु उसकी क्रिया मैं कर दूँ, ऐसी दृष्टि नहीं है। यह तो पंचास्तिकाय है परन्तु प्रवचनसार में भी लिया है। जो प्राणी दुःखी है, उसकी करुणा करूँ और उसकी क्रिया मैं कर दूँ, यह मिथ्या-दर्शनमोह का उदय है, दर्शनमोह मिथ्यात्व। समझ में आया?

उसकी करुणा कर दूँ, भाव आवे। उसकी मैं कर दूँ। कौन करे? ...ज्ञान है। राग करो या ज्ञाता रहे। दूसरा तो कुछ कर नहीं सकता। मैं कर दूँ, दूसरे का कर दूँ, (यह) मिथ्यात्वभाव है, दर्शनमोह है। प्रवचनसार में है। दर्शनमोह के, मिथ्यात्व के लक्षण बतलाये हैं। विपरीत मान्यता। समझ में आया? कितनी गाथा है? ८५। अकेली न? देखो! मिथ्यात्व का लक्षण बतलाया कि पदार्थों की अयथार्थ प्रतिपत्ति द्वारा (अर्थात्) पदार्थ जैसे हैं, वैसे न जानना और विपरीत मानना, वह मिथ्यात्वभाव है। तिर्यंच और मनुष्य प्रेक्षायोग्य होने पर भी, देखो! तिर्यंच और मनुष्य तो ज्ञातारूप से देखनेयोग्य हैं, तथापि उनके प्रति करुणाबुद्धि द्वारा मिथ्यात्व मोह को पहिचानकर, कठिन बात है, यह बात!

यह तो आत्मा का ज्ञेय है। परजीव में दुःख होना। ज्ञान वह ज्ञाता का ज्ञेय है। प्रेक्षायोग्य है। तदुपरान्त मैं उसकी करुणा कर दूँ, उसकी दया पाल कर उसे बचा दूँ। समझ में आया, यह मिथ्यात्वभाव का लक्षण है।

मुमुक्षु : सन्तोष हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : सन्तोष हो या न हो? परन्तु उसकी करुणा करूँ। ऐसा है न? तिर्यंचों, मनुष्यों के प्रति करुणाबुद्धि। अपने से करुणा राग आ गया मध्यस्थ रीति से। यह तो उनकी करुणा करके मैं दुःख मिटा सकता हूँ, ऐसा कर दूँ, ओहोहो! उसे देखकर कंपकंपी हो जाये, तो यह सब मिथ्यात्व का लक्षण है। दुनिया से विरुद्ध है।

मुमुक्षु : ज्ञानी और अज्ञानी की अनुकम्पा में भेद है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भेद है। ज्ञानी की अनुकम्पा अपनी पर्याय में जरा खेद-राग आ जाता है, बस। और अज्ञानी को तो मैं मिटा दूँ, ऐसा कर दूँ, पूरी दुनिया को सुधार दूँ... के स्वर्ग ऊपर से उतार दूँ। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....है या भावना है?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह मान्यता, वह मिथ्यात्व है। मैं पर का ऐसा कर दूँ, ऐसी मिथ्यात्वभावना मिथ्याश्रद्धा है। गजब बात है, भाई! ऐसी बात सुनी भी न हो। जैन परमेश्वर त्रिलोकनाथ देवादिदेव ने एक समय में तीन काल, तीन लोक देखे। उसमें अनन्त पदार्थ स्वयं सिद्ध देखे। कोई पदार्थ किसी का कर सकता है, ऐसा भगवान ने देखा नहीं। भाई! एक पदार्थ दूसरे का कर सकता है? कौन कर सकता है? समझ में आया? मैं पर की क्रिया कर दूँ, ऐसी भावना मिथ्यात्व है। क्रिया तो कर नहीं सकता। क्रिया तो अज्ञानी क्या कर सकेगा? भाव करता है कि ऐसा मैं कर दूँ।

मुमुक्षु : क्रिया मिथ्यात्व की?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्रिया तो पर की है, उसमें कहाँ मिथ्यात्व आया? मैं उसका-पर का कर दूँ, यह भाव मिथ्यात्व है। ओहोहो! क्रिया तो जड़ की होती है। पर की होती हो तो हो। उसमें इसके भाव से कहाँ क्रिया होती है? परन्तु मानता है कि मैं उसका दुःख बराबर मिटा दूँ। ऐसा मैं कर दूँ, ऐसा कर दूँ, मैं जानकार को लाकर उसका दुःख मिटा दूँ। ऐसी पर की क्रिया के करने का भाव, वह मिथ्यात्वभाव है।

मुमुक्षु : रूखी लगन रखने से क्या फायदा?

पूज्य गुरुदेवश्री : रूखी की कहाँ बात है? रूखी किसे कहते हैं? कर सके तो चिकनी है? पर का काम करे तो चिकनी और न करे तो रूखी, (ऐसा नहीं है)। कर सकता ही नहीं, फिर प्रश्न क्या? शुभराग है और साथ में मिथ्यात्व का महान पाप है। पुण्य थोड़ा है और पाप बड़ा है।

मुमुक्षु : पाप और धर्म की स्थिति।

पूज्य गुरुदेवश्री : ... नहीं, धर्म नहीं। धर्म तो वहाँ है ही नहीं। नहीं, नहीं। पुण्य

तो वह भी अधर्म है। शुभराग, वह धर्म नहीं। परन्तु मैं कर सकता हूँ, ऐसी मान्यता मिथ्यात्वरूपी अधर्म है और पुण्य के साथ जरा राग मन्द हो तो वह पुण्य का अधर्म है। बड़ी कठिन बात, जगत ने कभी सुनी नहीं, तत्त्व क्या है?

'पदार्थ की अयथातत्रूप से प्रतिपत्ति' जैसा पदार्थ है, वैसा न मानना और विपरीत मानना, यह उसकी मिथ्यात्व मान्यता है। मैं दूसरे का कर दूँ, ऐसा कर दूँ, वैसा कर दूँ, पूरी दुनिया को सुखी कर दूँ। धूल में भी सुखी नहीं होते। उसे भान नहीं। समझ में आया? इसमें है पंचास्तिकाय में। क्या कहते हैं?

ज्ञानी को परजीव को जन्म-मरण के दु:ख देखकर दया / अनुकम्पा आती है। प्रतिकार करने की वृत्ति हुई, परन्तु प्रतिकार करने की क्रिया अपने से हुई, ऐसा नहीं मानता। होना हो तो हो, शरीर से बाहर से। न हो तो पर में मेरा कोई अधिकार नहीं। अज्ञानी तो पर में अधिकार मानता है कि मैं पर के काम कर सकता ही हूँ, बस। क्यों नहीं कर सकता? इच्छा बल से मैं कर सकता हूँ। ऐसा कहे कि कर्तव्य है, अपना कर्तव्य है। एक व्यक्ति तो ऐसा कहता था। वह चूड़ा का नहीं? ऐई! इच्छाबल से काम कर सकते हैं। बुजुर्ग, पानाचन्द, क्या नाम? कुछ था। अमृतलाल, हाँ! लींबड़ी में कहता था न। इच्छाबल से रोग मिटा सकते हैं। बहुत अच्छी बात।

मुमुक्षु : बाहर में तो...

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल नहीं। पर का कुछ नहीं होता। उसके पास, बाहर की क्रिया उसके पास हुई है। कोई उसकी इच्छा के बल से किसी का रोग मिट जाये... ऐसे शरीर बदल जाये। बिल्कुल मूढ़ है। तेरी इच्छा तेरे पास रही, पर की क्रिया पर में रही। पर की क्रिया कहाँ तेरी इच्छा से होती है? वह तो बदलने की योग्यतावाले की बदलती है। घर बदलता है कौन? उसका पुण्य का योग न हो और पाप का योग हो और बदलने की योग्यता हो, तब देव निमित्त पड़ता है। क्या देव से बदल जाता है? देव किसी का रोग बदल सके, यह तीन काल में नहीं है। अमरचन्दभाई! आहाहा! भारी गड़बड़... गड़बड़! मिथ्यात्वभाव।

यहाँ तो कहते हैं, ज्ञानी को जन्म-मरण देखकर राग आता है, पुण्यास्रव होता है,

जानता है कि यह पुण्यास्रव है। अज्ञानी तो सब मैं कर दूँ, बस कूद पड़ता है। क्या आता है? शरीर कार्यामि कुछ आता है न? कार्यम साधयामी... भले शरीर गिरे परन्तु कार्य को साधूँ। किसका? पर का। मूढ़ है। कहाँ से कर सकता है? मांगीरामजी! क्या है यह? इसमें तो बड़ी गड़बड़ मच गयी... पुराने व्यक्ति हैं।

दो बोल आये। प्रशस्त राग और अनुकम्पा। दोनों पुण्यभाव है। नौ तत्त्व में जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष। उसमें प्रशस्त राग, अनुकम्पा दोनों पुण्यतत्त्व है। संवरतत्त्व नहीं, समझ में आया? निर्जरातत्त्व नहीं, मोक्षतत्त्व नहीं। सात तत्त्व नहीं।

गाथा - १३८

कोधो व जदा माणो माया लोभो व चित्तमासेज्ज ।
जीवस्स कुणदि खोहं कलुसो त्ति य तं बुधा बेंति ।। १३८ ।।

क्रोधो वा यदा मानो माया लोभो वा चित्तमासाद्य ।
जीवस्य करोति क्षोभं कालुष्यमिति च तं बुधा ब्रुवन्ति ।। १३८ ।।

चित्तकलुषत्वस्वरूपाख्यानमेतत् ।

क्रोधमानमायालोभानां तीव्रोदये चित्तस्य क्षोभः कालुष्यम् । तेषामेव मन्दोदये तस्य प्रसादोऽकालुष्यम् । तत् कादाचित्कविशिष्टकषायक्षयोपशमे सत्यज्ञानिनो भवति । कषायोदयानुवृत्तेरसमग्रव्यावर्तितोपयोगस्यावान्तरभूमिकासु कदाचित् ज्ञानिनोऽपि भवतीति ।। १३८ ।।

अभिमान माया लोभ अर क्रोधादि भय परिणाम जो ।
सब कलुषता के भाव ये हैं क्षुभित करते जीव को ।।१३८।।

अन्वयार्थ :— [यदा] जब, [क्रोधः वा] क्रोध, [मानः] मान, [माया] माया [वा] अथवा [लोभः] लोभ [चित्तम् आसाद्य] चित्त का आश्रय पाकर [जीवस्य] जीव को, [क्षोभं करोति] क्षोभ करते हैं, तब [तं] उसे [बुधाः] ज्ञानी [कालुष्यम् इति च ब्रुवन्ति] 'कलुषता' कहते हैं।

टीका :— यह, चित्त की कलुषता के स्वरूप का कथन है।

क्रोध, मान, माया और लोभ के तीव्र उदय से चित्त का क्षोभ, सो कलुषता है। उन्हीं के (-क्रोधादि के ही) मन्द उदय से चित्त की प्रसन्नता, सो अकलुषता है। वह अकलुषता, कदाचित् कषाय का विशिष्ट (-खास प्रकार का) क्षयोपशम होने पर, अज्ञानी को होती है; कषाय के उदय का अनुसरण करनेवाली परिणति में से उपयोग को [१]असमग्ररूप से विमुख किया हो, तब (अर्थात् कषाय के उदय का अनुसरण करनेवाले परिणमन में से उपयोग को पूर्ण विमुख न किया हो तब), मध्यम भूमिकाओं में (-मध्यम गुणस्थानों में), कदाचित् ज्ञानी को भी होती है॥ १३८॥

---

१. असमग्ररूप से = अपूर्णरूप से; अधूरेरूप से; अंशतः।

गाथा - १३८ पर प्रवचन

अब अकलुषिता को बतलाते हैं। अकलुषिता का भाव है शुभभाव। अकलुषिता। १३८ (गाथा)। परन्तु पाठ में चित्त की कलुषिता के स्वरूप का वर्णन करते हैं। बतलानी है अकलुषिता, हों!

कोधो व जदा माणो माया लोभो व चित्तमासेज्ज।
जीवस्स कुणदि खोहं कलुसो त्ति य तं बुधा बेंति।।१३८।।

टीका :— यह, चित्त की कलुषता के स्वरूप का कथन है। बात तो लेनी है अकलुषिता। समझ में आया? देवीलालजी! बात तो शुभरागरूपी अकलुषिता बतलानी है। अकलुषभाव शुभराग है। बस, पहला कलुषितता बतलाकर उसका स्वरूप बतायेंगे।

१३८ की टीका। **क्रोध, मान, माया और लोभ के तीव्र उदय से...** टीका है न? **क्रोध, मान, माया और लोभ के तीव्र उदय से चित्त का क्षोभ सो कलुषता है।** तीव्र शब्द पड़ा है न? उसमें इसमें यह अन्दर टीका में है। तीव्र उदय है। है न! परन्तु उसमें नहीं। तीव्र उदय है। अन्दर तीव्र, पश्चात् मन्द उदय आता है सही न? पश्चात् मन्द उदय आता है न? क्रोध, मान, माया, लोभ के तीव्र उदय से, ऐसा अन्दर बीच में लिखना चाहिए। तीव्र कहो, वह पूरा पड़ा रहा है।

क्रोध, मान, माया, लोभ का अशुभभाव तीव्र है। चित्त का लोभ कलुषिता है, वह पाप है। क्षोभ। यह चित्त का क्षोभ, वह कलुषिता है। यह पाप की बात करते हैं। कहनी है पुण्य की, परन्तु पाप की बात करते हैं।

मुमुक्षु : बहुत लोभ में पाप ही है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत लोभ में क्या है? पाप ही है। तीव्र लोभ। पैसे का तीव्र लोभ। कंजूसाई, यह सब पाप है।

मुमुक्षु : करकसर।

पूज्य गुरुदेवश्री : करकसर दूसरी चीज़ है और यह (लोभ) दूसरी चीज़ है।

करकसर (मितव्ययी) तो बहुत व्यर्थ न जाये, वह भी है तो पाप। वहाँ कहाँ उसमें पुण्य था। परन्तु यह तो कंजूसाई और पैसे रखने की तीव्र गृद्धि, वह पाप है।

मुमुक्षु : परिग्रह का प्रमाण तो कहलाये...

पूज्य गुरुदेवश्री : परिग्रह प्रमाण तो सम्यग्दृष्टि बिना परिग्रह प्रमाण कहाँ से आवे? पहली दृष्टि सुधरे बिना, सम्यग्दर्शन हुए बिना परिग्रह प्रमाण के व्रतभाव कभी तीन काल में भी नहीं आते। परिग्रह में मिथ्यात्व क्रोध, मान, माया, आते हैं न परिग्रह? अभी मिथ्यात्व छूटे बिना बाहर के परिग्रह की मर्यादा कहाँ से करे? वह तो ममता घटाने की बात है, आसक्ति घटाने की बात है। परन्तु पहली दृष्टि, ज्ञानस्वरूप मैं हूँ— ऐसी अनुभवदृष्टि हुए बिना उसकी आसक्ति घटने के प्रयत्न व्यर्थ हैं। आसक्ति घटती नहीं। साधारण करके कहते हैं। द्रव्य क्षयोपशम कहेंगे। समझ में आया?

मुमुक्षु : परिग्रह प्रमाण....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु कौन परिग्रह प्रमाण कहते हैं? वह तो परवस्तु है, यह दोपहर में नहीं चलता। उसके बिना इसे करना क्या? उसके बिना कुछ कर सकता भी नहीं। वह सम्यग्दर्शन करने की अपेक्षा परिग्रह के प्रमाण की कम ममता करना, वह महान मुश्किल है। पहले यह मुश्किल है। फिर वह मुश्किल है। वह तो व्रत है। व्रत का पुरुषार्थ तो पाँचवें गुणस्थान में होता है। छठवें गुणस्थान में होता है। अभी चौथे में आये नहीं, वहाँ पहले से कहाँ से परिमाण आया? समझ में आया? घटा दिया, परन्तु क्या घटाया? मिथ्यात्वभाव है न? दोपहर में चलता है न? मैंने उसका त्याग किया, मिथ्यादृष्टि है। क्या त्याग किया? तुझमें है ही नहीं और त्याग क्या किया? वह चीज़ ही तुझमें नहीं है और मैंने त्याग किया, मैंने घटा दिया, (ऐसा माने तो) मिथ्यात्व भाव की पुष्टि की। बहुत ही कठिन बात है। अलग बात पूरी। दुनिया से अलग बात है।

मुमुक्षु : विलक्षण!

पूज्य गुरुदेवश्री : विलक्षण। वीतराग सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव परमात्मा ने एक समय में तीन काल-तीन लोक जाने, ऐसा मार्ग दुनिया में कोई है ही नहीं। यह चीज़ ही अलग है। कहो, समझ में आया? **उनके....** उनके अर्थात् जो। क्रोध, मान,

माया, लोभ का जो तीव्र उदय है, **उन्हीं के (-क्रोधादि के ही) मन्द उदय से...** मन्दपना, कषाय की मन्दता, **चित्त की प्रसन्नता...** उसमें चित्त का क्षोभ था, वह पाप। और इसमें चित्त की प्रसन्नता, यह पुण्य। शुभभाव, वह धर्म नहीं। **वह अकलुषता है।** देखो, यहाँ! चित्त को अकलुषता करना है। मन्द चित्त में मन्द भाव राग का, उसे अकलुषता मन्द राग। तीव्र राग, वह लोभ, पाप; मन्द राग, वह पुण्य।

वह अकलुषता... अज्ञानी को होती है, पहले ये बात सिद्ध करते हैं। **वह अकलुषता, कदाचित् कषाय का विशिष्ट (-खास प्रकार का) क्षयोपशम होने पर,...** देखो! है तो मिथ्यादृष्टि। परन्तु इतने पुरुषार्थ से राग मन्द किया, उसे यहाँ क्षयोपशम कहने में आता है। वास्तव में तो क्षयोपशम है नहीं। परन्तु राग को मन्द करने का तीव्र क्षोभ पाप का भाव था। मन्द करने के भाव को तीव्र की अपेक्षा से क्षयोपशम कहने में आया है। हाँ, तीव्र राग-द्वेष मन्द महाकलुषित अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यान का तीव्र भाव-कठोर भाव, शुभभाव। हिंसा, झूठ, चोरी, महालोभ, वह तीव्र। मन्द राग - राग की मन्दता, कोमलता, वह मन्द। **अकलुषता, कदाचित् कषाय का विशिष्ट (-खास प्रकार का) क्षयोपशम होने पर,...** देखो! मिथ्यादृष्टि को भी इस जाति का क्षयोपशम गिना है। नियमसार में भी प्रत्याख्यान का अधिकार है। मिथ्यादृष्टि को भी व्यवहार प्रत्याख्यान के क्षयोपशमभाव कहा है। है तो वास्तव में उदयभाव, परन्तु इस अपेक्षा से, उस तीव्र राग की अपेक्षा से मन्द होगा, इस अपेक्षा से क्षयोपशम कहा। अज्ञानी को होता है। क्या? अकलुषिता।

ऐसी चित्त की प्रसन्नता का राग अज्ञानी को भी होती है। मिथ्यादृष्टि है, अकलुषिता में पुण्य बाँधता है। मिथ्यात्वभाव तो निरन्तर चालू है। समझ में आया? अज्ञानी को होती है। कौन? अकलुषिता। कलुषिता छोड़, उसमें मन्द प्रसन्नता अज्ञानी को भी राग मन्द की प्रसन्नता ऐसे कोई पर की दया, भगवान की भक्ति चले तो प्रसन्नता आ जाती है। ओहोहो! आहाहा! ....ऐसा शुभभाव की प्रसन्नता हो। पुण्यबन्ध है, पुण्यबन्ध है। साथ में मिथ्यात्व है। मैंने यह क्रिया की और यह भाव मुझे अच्छा है, धर्म है। ऐसा मानकर भाव हुआ तो मिथ्यात्वसहित पुण्यास्रव होता है। ओहोहो! समझ में आया?

अब जरा ज्ञानी की बात करते हैं। यह अज्ञानी की बात की। अकलुषिता अज्ञानी की कही। ज्ञानी को भी अकलुषिता होती है। **कषाय के उदय का अनुसरण करनेवाली...** कषाय के उदय को अनुसरण करनेवाली, **परिणति में से उपयोग को असमग्ररूप से विमुख किया हो तब...** देखो! भाषा भी अपने पुरुषार्थ से सब लिया है। कषाय के उदय को अनुसरती जो परिणति, परिणति अपनी पर्याय। उदय को अनुसरती, उसमें अपने उपयोग को अंशरूप से विमुख किया हो। अंशरूप से या असमग्ररूप से, ऐसा। देखो, नीचे नोट है। अपूर्णरूप से, अधूरेरूप से। अपनी परिणति उदय से बिल्कुल पूर्ण हटायी नहीं है। अंशरूप से हटायी है। समझ में आया?

इसमें कर्म का होता है, तो मन्द राग होता है या तीव्र राग होता है, ऐसी बात भी नहीं की है। वह तो निमित्त की बात पहले की। अपनी परिणति राग से पूर्णरूप से हटायी नहीं। आंशिक हटायी है तो अंश में राग के अपने शुभभाव में अकलुषिता आती है। **कषाय के उदय का अनुसरण करनेवाली परिणति...** परिणति समझे? पर्याय। पर्याय-अवस्था। उसमें से उपयोग को अपने भाव को अंशरूप से विमुख किया। अंशरूप से विमुख किया और अंशरूप से अभी सन्मुख रहा।

अपने उपयोग को अंशरूप से राग से विमुख किया। अंशरूप से अभी सन्मुख रखा है। इस ओर राग में पुरुषार्थ जाता है, इतनी कमी है। अपने में कमी अपने कारण से है। आहाहा! **पूर्ण विमुख न किया हो...** देखो! **(अर्थात् कषाय के उदय का अनुसरण करनेवाले परिणमन में से उपयोग को पूर्ण विमुख न किया हो तब), मध्यम भूमिकाओं में...** चौथे, पाँचवें, छठवें इत्यादि भाव में, मध्यम गुणस्थानों में, कदाचित् ज्ञानी को भी अकलुषिता आती है। अकलुषिता शुभभाव है। पुण्य-परिणाम है। कहो, समझ में आया? यह मध्यम भूमिका कौन सी? बारहवें गुणस्थान में? यह तो नीचे की बात है। चौथे, पाँचवें, छठवें आदि में अपने परिणाम अभी राग से हटाये हैं। समग्ररूप से हटाये नहीं। राग सन्मुख किया है। धर्मीजीव ने अपना उपयोग स्वभाव शुद्धसन्मुख किया है। पूर्ण सन्मुख किया नहीं और पूर्ण पर से विमुख हुआ नहीं।

अपना शुद्धस्वभाव अविकारी अकषाय पिण्ड उस सन्मुख का उसका झुकाव

पूर्ण हुआ नहीं और राग से पूर्ण विमुख हुआ नहीं। वहाँ पूर्ण सन्मुख हुआ नहीं, यहाँ से पूर्ण विमुख हुआ नहीं। समझ में आया? इतना अकलुषितभाव ज्ञानी को भी शुभभाव तो आता है। अपने पुरुषार्थ की कमी के कारण (आता है)। समझ में आया? एक-एक पदार्थ क्या है, वह समझे बिना उसकी सच्ची श्रद्धा कहाँ से होगी? आत्मा किसे कहते हैं? पुण्यतत्त्व किसे कहते हैं, पाप किसे कहते हैं, आस्रव किसे कहते हैं? संवर-निर्जरा नौ पदार्थ क्या है, उसकी खबर नहीं और धर्म हो जायेगा? नौ पदार्थ की क्या स्थित है, नौ पदार्थ से विपरीत मान्यता तो मिथ्यात्व है। तो अविपरीत उसके पदार्थ का क्या स्वभाव है, यह जाने बिना सम्यग्दर्शन नहीं होता। और सम्यग्दर्शन बिना चारित्र या व्रत, बाहर से नियम लिया... सब घटा दे, मिथ्यात्व बढ़ा दे। समझ में आया?

मुमुक्षु : बढ़ा दे।

पूज्य गुरुदेवश्री : मिथ्यात्व बढ़ावे। पुष्टि हुई। बाहर से त्याग, लाभ किसे? वस्तु में है ही नहीं न, तूने त्याग किसका किया? आया था न? यही आता है। चलेगा न आज अभी? परवस्तु का त्याग पर के अभावस्वभाव तो तेरा स्वभाव है। पर के त्यागरूप तो तेरा स्वभाव है। अब त्याग करना किसका? मैं पर को त्यागूँ, उसकी दृष्टि तो पर मेरा था और मैं पर को छोड़ सकता हूँ, ऐसी मान्यता हुई, वह तो मिथ्यादृष्टि हुई। आहाहा! भारी कठिन! जैन वीतरागमार्ग क्या है! वीतरागमार्ग वह वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। वीतरागमार्ग वह कोई नया नहीं किया है, अपने घर का।

ऐसा वस्तु का स्वरूप, ऐसा भगवान ने जाना, वैसा वाणी में आया। ऐसा वस्तुस्वरूप है। समझ में आया? यह अकलुषित की बात चली। समझ में आया? यह आस्रव का अधिकार चलता है। यह तीन बोल में तो पुण्यास्रव की बात चली। प्रशस्त राग, अनुकम्पा की। अब पाप राग की बात चलती है। पाप आस्रव। अब १३९ (गाथा)। पाप आस्रव। समझ में आया?

मुमुक्षु : नव तत्त्व में मिथ्यात्व कहाँ आता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : नव तत्त्व में मिथ्यात्व तत्त्व नहीं आता? आस्रव और बन्ध में

मिथ्यात्व तत्त्व आता है या नहीं ? कहाँ आवे ? १३९ गाथा, आया। नव तत्त्व में मिथ्यात्व कहाँ आवे ? ऐसा पूछते हैं।

विपरीत मान्यता, ऐसा बन्धभाव, भाव बन्ध और भाव आस्रव में मिथ्यात्व भाव आता है। समझ में आया ? और मिथ्यात्व का नाश होने के पश्चात् भी अव्रत, प्रमाद का भाव भी पाप है और ऐसा भाव कषाय की मन्दता आवे, वह तो पुण्य है। दोनों आस्रव है। बड़ी झंझट चलती है। कि नहीं, शुभराग तो धर्म है। शुभराग से कल्याण होता है। सोनगढ़वाले कहते हैं कि शुभराग से आस्रव-सोनगढ़वाले कहते हैं या भगवान कहते हैं ? कल आया है, हों! वे शुभराग को हेय कहते हैं, शुभराग को बन्ध का कारण कहते हैं। कहते हैं न ?

भाई! भगवान कहते हैं, तीन लोक के नाथ कहते हैं। सुन तो सही! तुझे शुभराग की मिठास है न ? पुण्य की मिठास! आहाहा! बड़ा पुण्य! अब पुण्य होता है, परन्तु बड़ा क्या है ? अच्छा क्या है ? वह तो बन्ध का कारण है। समझ में आया ? देखो! अपने (लिखा है), जिसे पुण्य की रुचि है, उसे जड़ की रुचि है, उसे आत्मा के धर्म की रुचि नहीं। एक दृष्टान्त दिया था। गुजराती। जिसे पुण्य की रुचि है, उसे जड़ की रुचि है। उसे आत्मा की रुचि नहीं। दृष्टान्त छोटा है। देखो! छोटा-छोटा है न लक्षण का। ....परन्तु दिखता नहीं। ....

जिसे पुण्य की रुचि है, उसे जड़ की रुचि है, उसे आत्मा के धर्म की रुचि नहीं है, ऐसा लेना। उस कोने में है, भाई! बहुत छोटे थे। शुभभाव है। वास्तव में भगवान तो उसे अचेतन कहते हैं। देखो! राग है। राग में चैतन्य के प्रकाश की कला का अभाव है। चैतन्यप्रकाश, सूर्य का प्रकाश चैतन्यरूप। राग में चैतन्य का अभाव तो भगवान उसे अचेतन कहते हैं। राग (को) जड़ कहते हैं। कर्ता-कर्म (अधिकार) में जड़ कहते हैं। उस जड़ की जिसे रुचि है, कर्ता-कर्म में आता है। (समयसार की) ७२ गाथा है, अशुचि, विपरीत। कर्ता-कर्म में चैतन्य से अशुचि, चैतन्य शुचि है, राग अशुचि है। चैतन्य चैतन्य है, राग—विपरीत जड़ है। आहाहा! यह प्रशस्त राग अनुकम्पा और यह सब अकलुष शुभराग निश्चय से अचेतन है, चैतन्य के स्वभाव की अपेक्षा से। वरना तो है उसकी पर्याय में। समझ में आया ?

कर्ता-कर्म में है। मुम्बई में बहुत ही स्पष्टीकरण आया था। मुम्बई में आया था। हजारो लोगों में लिया था। देखो! राग को जड़ कहते हैं। जड़ की क्या व्याख्या चली थी? दस, बारह हजार लोगों में। अभी चार महीने पहले। जड़ कहते हैं, उसका अर्थ परमाणु नहीं। परन्तु चैतन्यसूर्य, ज्ञायकसूर्य स्वभाव उस चैतन्य की किरण का राग में अभाव है। राग में चैतन्य के प्रकाश का अभाव है तो अन्धकार है। इस अपेक्षा से उसे जड़ कहा गया है। भाई थे छोटालालभाई—शोभालालभाई! सेठी थे या नहीं? याद नहीं रहता। याद नहीं रहे तो भाई ने कह दिया। समझ में आया?

वहाँ व्याख्यान में ७२ गाथा चली थी। लो! दूसरा देखो! आस्रवों का अशुचिपना, विपरीतता और दुःख का कारण। देखो! यहाँ उसमें है। इसमें नहीं। यह पंचास्तिकाय है। वह तो समयसार में है। आस्रवों का जड़ स्वभावपना होने से वे दूसरे के द्वारा जाननेयोग्य है। पुण्य और पाप दोनों आस्रव हैं। उन्हें जड़स्वभावपना होने से। विपरीत शब्द पड़ा है न? चैतन्यस्वभाव प्रकाशमय है। राग उससे विपरीत भाव है। जड़ है। ऐसा कहा गया है। देखो! आस्रवों का जड़स्वभावपना होने से वे दूसरे के द्वारा जाननेयोग्य है। (क्योंकि जड़ है, वह अपने को और पर को नहीं जानता, उसे दूसरा ही जानता है।) चैतन्य से अन्य स्वभाववाले आस्रव हैं। देखो! यह आस्रव की बात चलती है।

अनुकम्पा, प्रशस्तभक्ति आदि का राग होता है, परन्तु है वह अचेतन है। वह पुण्यबन्ध का कारण है। चैतन्यप्रकाश स्वरूप है, उसमें वह राग नहीं है। क्योंकि वह आस्रवतत्त्व है। आत्मा ज्ञायकतत्त्व है और आस्रव में दो भाग में एक पुण्य और पाप दोनों आस्रवतत्त्व है। शरीर, वाणी अजीवतत्त्व है। नव तत्त्व कैसे सिद्ध करेंगे? अजीव अजीव है। शरीर, कर्म अजीव है। भगवान ज्ञायकमूर्ति चैतन्य सूर्य आत्मतत्त्व है और प्रशस्त राग आदि पुण्यतत्त्व है। अब पापतत्त्व की बात अब करेंगे। पाप और पुण्य दोनों अचेतन है—जड़ है। जड़ का अर्थ रजकण नहीं। पुद्गल नहीं। जड़ का अर्थ चैतन्यप्रकाश का पूर तेज के नूर का अभाव है। आहाहा!

यहाँ तो दूसरी व्याख्या चलती है। यह सच्चा है, लो! ऐसा आस्रव में प्रसन्न हो जाता है कि आहाहा! बहुत अच्छा भाव आया। और उस भाव से मुझे धर्म होगा, मुक्ति

होगी। (ऐसा मानना) मिथ्यात्वभाव है। लोगों को बहुत कड़क लगता है। अनादि से माना है और वर्तमान में ऐसा पोषण मिलता है। जहाँ-तहाँ ऐसा पोषण मिलता है। ऊपर से ऐसा पोषण मिले कि ऐसा है, ऐसा है। चलो भाई! ऐसा होगा चलो। भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा वीतराग परमेश्वर का आत्मधर्म राग और पुण्यरहित स्वभाव की दृष्टि-अनुभव करना, वह है। बाकी जितना प्रशस्त राग आया, वह पुण्य आता है। ज्ञानी को आता है। छोड़े कहाँ से? छोड़े तो शुद्ध उपयोग हो, तब छूट जाता है। दृष्टि में छोड़नेयोग्य है, ऐसा मानता है। दृष्टि में छोड़नेयोग्य है, ऐसा मानता है। छूटता नहीं। छूटे तो जब शुद्ध उपयोग हो जाये, तब छूट जायेगा। परन्तु दृष्टि में से छोड़नेयोग्य है, ऐसा समकिती पहले से मानता है। यदि पहले से न माने तो मिथ्यादृष्टि है।

शुभभाव से धर्म और लाभदायक है, पर की क्रिया तो एक ओर रही। क्यों भीखाभाई! हो जाता है, अरर्र! मुश्किल-मुश्किल से इतना करते हैं, वहाँ कहे पुण्य।

मुमुक्षु : पुण्य हो तो पुण्य ही कहलाये न? इसमें क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ भी उसे और जड़ (कहे) और वापस धर्म नहीं। कलुषित और अकलुषित दोनों की व्याख्या इसमें बतायी। बतानी थी तो अकलुषिता परन्तु कलुषिता की व्याख्या पाठ में है न, इसलिए वह बतायी और उसमें अकलुषिता आचार्य ने निकाली।

गाथा - १३९

चरिया पमादबहुला कालुस्सं लोलदा य विसएसु ।
परपरिदावपवादो पावस्स य आसवं कुणदि ।। १३९ ।।

चर्या प्रमादबहुला कालुष्यं लोलता च विषयेषु ।
परपरितापापवादः पापस्य चास्रवं करोति ।। १३९ ।।

पापस्रवस्वरूपाख्यानमेतत् ।

प्रमादबहुलचर्यापरिणतिः, कालुष्यपरिणतिः, विषयलौल्यपरिणतिः, परपरितापपरिणतिः, परापवादपरिणतिश्चेति पञ्चाशुभा भावा द्रव्यपापास्रवस्य निमित्तमात्रत्वेन कारणभूतत्वात्तदास्रवक्षणादूर्ध्वं भावपापास्रवः । तन्निमित्तोऽशुभकर्मपरिणामो योगद्वारेण प्रविशतां पुद्गलानां द्रव्यपापास्रव इति ।। १३९ ।।

प्रमादयुतचर्या कलुषता, विषयलोलुप परिणति।
परिताप अर अपवाद पर का पाप आस्रव हेतु हैं।।१३९।।

अन्वयार्थ :— [प्रमादबहुला चर्या] बहु प्रमादवाली चर्या, [कालुष्यं] कलुषता, [विषयेषु च लोलता] विषयों के प्रति लोलुपता, [परपरितापापवादः] पर को परिताप करना तथा पर के अपवाद बोलना—वह [पापस्य च आस्रवं करोति] पाप का आस्रव करता है।

टीका :— यह, पापास्रव के स्वरूप का कथन है।

बहु प्रमादवाली चर्यारूप परिणति (-अति प्रमाद से भरे हुए आचरणरूप परिणति), कलुषतारूप परिणति, विषयलोलुपतारूप परिणति, परपरितापरूप परिणति (-पर को दुःख देनेरूप परिणति) और पर के अपवादरूप परिणति—यह पाँच अशुभभाव द्रव्यपापास्रव को निमित्तमात्ररूप से कारणभूत हैं, इसलिए 'द्रव्यपापास्रव' के प्रसंग का [१]अनुसरण करके (-अनुलक्ष करके) वे अशुभभाव भावपापास्रव हैं

---

१. असातावेदनीयादि पुद्गलपरिणामरूप द्रव्यपापस्रव का जो प्रसंग बनता है, उसमें जीव के अशुभभाव निमित्त कारण हैं, इसलिए 'द्रव्यपापास्रव' प्रसंग के पीछे-पीछे उनके निमित्तभूत अशुभभावों को भी 'भावपापास्रव' ऐसा नाम है।

और वे (अशुभभाव) जिनका निमित्त हैं, ऐसे जो योगद्वारा प्रविष्ट होनेवाले पुद्गलों, के अशुभकर्मपरिणाम (-अशुभकर्मरूप परिणाम), वे द्रव्यपापास्त्रव हैं॥१३९॥

गाथा - १३९ पर प्रवचन

अब पाप। १३९ गाथा।

चरिया पमादबहुला कालुस्सं लोलदा य विसएसु।
परपरिदावपवादो पावस्स य आसवं कुणदि।।१३९।।

यह, पापास्त्रव के स्वरूप का कथन है। लो! यह अब पाप की व्याख्या आयी। भाई कहते थे न, यह क्या पाप? **बहु प्रमादवाली चर्यारूप परिणति (-अति प्रमाद से भरे हुए आचरणरूप परिणति),** अर्थात् पर्याय। महाप्रमाद। हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, वासना, तीव्र प्रमाद-तीव्र प्रमाद। वह अशुभभाव पापास्त्रव है। समझ में आया?

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : सो रहा हो। जागता होता है बाहर से। सो रहे तो सो रहा है। अपने निजस्वरूप में सो रहा है। अन्दर में जागृत नहीं है। तीव्र प्रमाद में आता है। ज्ञानी को भी थोड़ा प्रमाद तो है। समझ में आया? बहुत प्रमादवाली चर्या, अति प्रमाद से भरपूर आचरणरूप, चर्या अर्थात् आचरण। विषयादि में तीव्र आसक्ति। **कलुषतारूप परिणति,...** मलिन परिणति। देखो! यहाँ आया। वहाँ कलुषिता की व्याख्या की थी न? **कलुषतारूप परिणति,...** पाप। **विषयलोलुपतारूप परिणति,...** १३९ गाथा की टीका। समझ में आया? बहुत प्रमादवाली पर्याय अर्थात् चर्यारूप आचरण, वह भी पाप। **कलुषतारूप परिणति,...** वह भी पाप। **विषयलोलुपतारूप परिणति,...** पाप। विषय की लोलुपता तीव्र आसक्ति। **परपरितापरूप परिणति (-पर को दुःख देनेरूप परिणति)...** लो! पर को दुःख देनेरूप भाव हो! दुःख दे नहीं सकता। परन्तु पर को दुःख देने का (भाव) परपरितापरूप है न? पर को परिताप करना। दुःख देना। ऐसी परिणति और **पर के अपवादरूप परिणति....** पर की निन्दारूप परिणति। समझ में आया? यह पाँच अशुभभाव पर के अपवादरूप परिणति।

वह अशुभ—पर की निन्दा वास्तविक गुण होने पर भी विपरीत और न होने पर भी अपवाद अपने तीव्र परिणाम में करके करना, वह अशुभभाव **द्रव्यपापास्त्रव को निमित्तमात्ररूप से कारणभूत हैं...** कल आया था। वह पाप परिणाम नये जो द्रव्यपापास्त्रव आते हैं, नये... नये... नये... उसमें निमित्तमात्ररूप से कारणभूत हैं। ऐसे पापपरिणाम, यह सब कहा न? नये कर्म-रजकण जो आते हैं, उसके निमित्तमात्र हैं। **इसलिए 'द्रव्यपापास्त्रव' के प्रसंग का अनुसरण करके...** लो! यह आया। १३२में भी था। द्रव्यपापास्त्रव जो आते हैं, उनका अनुलक्ष करके, प्रसंग करके, यहाँ पाप कहा। बस, इतनी बात है। समझ में आया? कारण-फारण नहीं है। कारण तो अपने परिणाम हुए। आनेवाली चीज़ वह हुई। तो इस कारण से यहाँ नाम पड़ा है, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

परन्तु वह पाप आया, इतना लक्ष्य करके यहाँ पाप कहने में आया। समझ में आया? कारण क्या? द्रव्यपापास्त्रव का करण तो पूर्व का निमित्त है। यह तो मात्र आता है इतना। रजकण आते हैं, बस। समय तो एक ही है। **'द्रव्यपापास्त्रव' के प्रसंग का अनुसरण करके (-अनुलक्ष करके) वे अशुभभाव भावपापास्त्रव हैं...** इस अशुभभाव को पापास्त्रव, वे आते हैं उनका प्रसंग देखकर उसे पाप कहा। नीचे फुटनोट है। **असातावेदनीयादि...** देखो! **पुद्गलपरिणामरूप द्रव्यपापस्त्रव का जो प्रसंग बनता है,...** प्रसंग बना, वह उसमें पर्याय बनी, जड़ में। **उसमें जीव के अशुभभाव निमित्त कारण हैं, इसलिए 'द्रव्यपापास्त्रव' प्रसंग के पीछे-पीछे...** पीछे-पीछे का अर्थ पाठ में है तो लेना तो पड़े न? समझ में आया?

'ऊर्ध्वं' शब्द पड़ा है, पाठ में, संस्कृत में। 'आस्त्रवबादऊर्ध्वं' है न ऊर्ध्व? ऊर्ध्व का अर्थ पीछे। पीछे का अर्थ है तो साथ में। ऊर्ध्व में बड़ा विवाद था। संस्कृत में ऊर्ध्व शब्द पड़ा है। ऊर्ध्व अर्थात् जो पाप आया, उसके पीछे-पीछे अर्थात् उसका अनुसरण करके इस शुभभाव को पाप कहा, बस इतना। पीछे का अर्थ यह है। है तो साथ में, परन्तु यहाँ का लक्ष्य अशुभ परिणाम से पाप आया, उस पाप के आस्त्रव को यहाँ पाप नाम दिया गया। अशुभ को दिया गया।

उसके निमित्तभूत अशुभभावों को भी 'भावपापास्त्रव' ऐसा नाम है। अपने यहाँ

लक्ष्य देने का है। पहले सब ऊर्ध्व में गया है। १३२ में, सबमें ऊर्ध्व है। सब में ऊर्ध्व शब्द पड़ा है। पीछे-पीछे की व्याख्या ही ऊर्ध्व की है। समझ में आया?

और वे (अशुभभाव) जिनका निमित्त है... अशुभभाव जिसका निमित्त है। **ऐसे जो योगद्वारा प्रविष्ट होनेवाले...** निमित्त से कथन तो क्या करे? बात तो ऐसी ही करे न? योग तो निमित्त है। परन्तु योग द्वारा प्रकृति आती है, उसमें निमित्त योग है। **प्रविष्ट होनेवाले पुद्गलों के अशुभकर्मपरिणाम (-अशुभकर्मरूप परिणाम) वे द्रव्यपापास्रव हैं।** लो! भाव यहाँ आया। नये रजकण को द्रव्यपापास्रव कहने में आया। नय रजकण के कर्म की पर्याय को द्रव्यास्रव यहाँ भावास्रव परिणाम स्वभाव। दोनों को पापास्रव कहने में आया। एक जड़ और एक चैतन्य। दोनों बन्ध का कारण हैं। कहो, समझ में आया? यह आस्रव की व्याख्या की। अब थोड़ा पापास्रव का विस्तार करेंगे। गाथा में है बड़ा विस्तार।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - १४०

सण्णाओ य तिलेस्सा इंदियवसदा य अट्टरुद्दाणि ।
णाणं च दुप्पउत्तं मोहो पावप्पदा होंति ।। १४० ।।

संज्ञाश्च त्रिलेश्या इन्द्रियवशता चार्तरौद्रे ।
ज्ञानं च दु:प्रयुक्तं मोह: पापप्रदा भवन्ति ।। १४० ।।

पापस्रवभूतभावप्रपञ्चाख्यानमेतत् ।

तीव्रमोहविपाकप्रभवा आहारभयमैथुनपरिग्रहसञ्ज्ञा:, तीव्रकषायोदयानुरञ्जितयोगप्रवृत्ति-रूपा: कृष्णनीलकापोतलेश्यास्तिस्र:, रागद्वेषोदयप्रकर्षादिन्द्रियाधीनत्वम्, रागद्वेषोद्रेकात्प्रियसंयोगा-प्रियवियोगवेदनामोक्षणणिदानाकाञ्क्षणरूपमार्तम्, कषायक्रूराशयत्वाद्विंसाऽसत्यस्तेयविषय-संरक्षणानन्दरूपं रौद्रम्, नैष्कर्म्यं तु शुभकर्मणश्चान्यत्र दुष्टतया प्रयुक्तं ज्ञानम्, सामान्येन दर्शन-चारित्रमोहनीयोदयोपजनितावविवेकरूपो मोह:, -एष: भावपापास्रव-प्रपञ्चो द्रव्यपापास्रवप्रपञ्चप्रदो भवतीति ।। १४० ।।

-इति आस्रवपदार्थव्याख्यानं समाप्तम् ।

चार संज्ञा तीन लेश्या पाँच इन्द्रियाधीनता।
आर्त-रौद्र कुध्यान अर कुज्ञान है पापप्रदा।।१४०।।

अन्वयार्थ :— [संज्ञा च] (चारों) संज्ञाएँ, [त्रिलेश्या] तीन लेश्याएँ, [इन्द्रियवशता च] इन्द्रियवशता, [आर्तरौद्रे] आर्त-रौद्रध्यान, [दु:प्रयुक्तं ज्ञानं] दु:प्रयुक्त ज्ञान (-दुष्टरूप से अशुभ कार्य में लगा हुआ ज्ञान) [च] और [मोह:] मोह-[पापप्रदा: भवन्ति] यह भाव पापप्रद हैं।

टीका :— यह, पापास्त्रवभूत भावों के विस्तार का कथन है।

तीव्र मोह के विपाक से उत्पन्न होनेवाली आहार-भय-मैथुन-परिग्रहसंज्ञाएँ; तीव्र कषाय के उदय से [१]अनुरंजित योगप्रवृत्तिरूप कृष्ण-नील-कापोत नाम की तीन लेश्याएँ; रागद्वेष के उदय के [२]प्रकर्ष के कारण वर्तता हुआ इन्द्रियाधीनपना; रागद्वेष

---

१. अनुरंजित = रंगी हुई। [कषाय के उदय से अनुरंजित योगप्रवृत्ति वह लेश्या है। वहाँ, कृष्णादि तीन लेश्याएँ तीव्र कषाय के उदय से अनुरंजित योगप्रवृत्तिरूप हैं।]

२. प्रकर्ष= उत्कर्ष; उग्रता।

के [१]उद्रेक के कारण प्रिय के संयोग की, अप्रिय के वियोग की, वेदना से छुटकारा की तथा निदान की इच्छारूप आर्तध्यान; कषाय द्वारा [२]क्रूर ऐसे परिणाम के कारण होनेवाला हिंसानन्द, असत्यानन्द, स्तेयानन्द एवं विषयसंरक्षणानन्दरूप रौद्रध्यान; निष्प्रयोजन (-व्यर्थ) शुभकर्म से अन्यत्र (-अशुभ कार्य में) दुष्टरूप से लगा हुआ ज्ञान; और सामान्यरूप से दर्शनचारित्रमोहनीय के उदय से उत्पन्न अविवेकरूप मोह;— यह, भावपापास्त्रव का विस्तार द्रव्यपापास्त्रव के विस्तार को प्रदान करनेवाला है (अर्थात् उपरोक्त भावपापास्त्रवरूप अनेकविध भाव वैसे-वैसे अनेकविध द्रव्यपापास्त्रव में निमित्तभूत हैं)॥१४०॥

प्रवचन नं. ३६, गाथा-१४०

दिनांक - ०२-१०-१९६४, भाद्र कृष्ण १२, शुक्रवार

पंचास्तिकाय। नौ पदार्थ का विस्तार चलता है। भगवान सर्वज्ञ परमात्मा जिन्हें एक सेकेण्ड के असंख्यभाग में आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप है, उसकी पूर्ण प्राप्ति पर्याय में सर्वज्ञ पद की प्राप्ति हुई। तीन काल, तीन लोक देखने की शक्ति स्वभाव में थी, उसे प्रगट अनुभव करके प्रगट हुआ, उसमें तीन काल, तीन लोक अपने ज्ञान में ज्ञात हुए। उसमें यह पाप, पुण्य, धर्म किसे कहते हैं, वह बात यहाँ चलती है। यहाँ अभी अधिकार पाप का आया है। (गाथा) १४०

सण्णाओ य तिलेस्सा इंदियवसदा य अट्टरुद्दाणि।
णाणं च दुप्पउत्तं मोहो पावप्पदा होंति।।१४०।।

इसकी **टीका :— यह, पापास्त्रवभूत भावों के विस्तार का कथन है।** इसका अर्थ क्या ? यह आत्मा है, आत्मा, उसका स्वभाव तो सच्चिदानन्दस्वरूप है। आत्मपदार्थ यह जो मिट्टी से भिन्न, यह (शरीर) तो मिट्टी है, पुद्गल परमाणु जड़। वाणी भी मिट्टी है। उससे भिन्न तत्त्व जानने-देखनेवाला है। उसका अन्तरस्वभाव सच्चिदानन्द सत्

१. **उद्रेक** = बहुलता; अधिकता।
२. **क्रूर** = निर्दय; कठोर; उग्र।

अर्थात् शाश्वत् ज्ञान और आनन्द उसके स्वभाव में पूरे भरे हैं।

आत्मपदार्थ जिसे आत्मतत्त्व कहते हैं। यह आत्मा का तत्त्व कायम का, उसमें तो ज्ञान-दर्शन आदि अन्तर स्वभाव है। अनादि काल से उसने अपना पता लिया नहीं कि मैं कौन हूँ। अपना स्वभाव और स्वरूप के भान बिना अनादि काल से पुण्य-पाप के भाव होते हैं, वह मेरी चीज़ है। और परवस्तु है, वह मेरी चीज़ है—ऐसे पर को अपना मानकर अपना है, ऐसा मानता है और उसके राग की मन्दता करे शुभराग.... पढ़ता है तो पुण्यभाव है, शुभभाव है; धर्म नहीं। हें ? राग है, विकल्प है; धर्म नहीं। लक्ष्मी से क्या धर्म होता है ? और लक्ष्मी से होवे तो गृहस्थों को ही धर्म होगा और गरीब को रोना पड़ेगा। हमारे पास कुछ नहीं, क्या करें। नहीं, धर्म ऐसी चीज़ नहीं है। धर्म तो अपना स्वभाव सच्चिदानन्द शुद्ध है, उसे पर से भिन्न करके पुण्य-पाप की वासना उठती है, उससे भी मैं भिन्न, ऐसी अन्तर में दृष्टि करना और अन्तर में लीन होना, इसका नाम सर्वज्ञ परमात्मा धर्म कहते हैं। बाकी सब बातें हैं। समझ में आया ? अमरचन्दभाई ! बाकी दुनिया को समझाने से तुम्हारे धर्म हो जायेगा। धूल में भी नहीं। रण में रुदन है। तेरा कोई सुनेगा भी नहीं तेरा रुदन।

यहाँ भगवान परमात्मा त्रिलोकनाथ देवाधिदेव परमेश्वर कहते हैं कि, अरे आत्मा ! तेरे परिणाम में परिग्रहसंज्ञा, वह पाप है। समझ ले, वह पाप है। तेरे स्वरूप की वह चीज़ नहीं है। उसे भूलकर ऐसा भाव उत्पन्न किया है। वह भूल अपने स्वभाव की दृष्टि से टाल सकता है। दूसरा कोई उपाय नहीं। समझ में आया ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पुण्य हो गया, यह अभी राग है। पैसा भी नहीं और ममता घटानेवाला या बढ़ानेवाला मैं नहीं। मैं तो ज्ञाता आनन्द ज्ञानानन्द सच्चिदानन्द शुद्ध ऐसा आत्मा हूँ, ऐसी अन्तर्दृष्टि करने से धर्म होता है। बाकी सब बातें दुनिया करती है। मान ले कि हमने धर्म किया। सब सन्तोष माने, कुछ माने बिना तो मर जाये न ? नहीं तो जीवे किस प्रकार ? कुछ करते हैं। हम कुछ करते हैं। जाओ चौरासी के अवतार में। मरण हुआ, देह छूट गया। जाये फिर देह छूटता है या आत्मा छूटता है ? मर जाता है ? आत्मा तो त्रिकाल शाश्वत् तत्त्व है। जैसा भाव किया (वैसे) परिभ्रमण में जाना पड़े।

इतनी बात की। अब दूसरी बात करते हैं। यह चारों ही पाप परिणाम, ऐसा कहा। यह पाप की व्याख्या चलती है। हों! **तीव्र कषाय के उदय से अनुरंजित योगप्रवृत्तिरूप कृष्ण-नील-कापोत नाम की तीन लेश्याएँ;...** यह तीन पाप है। तीन लेश्या कहते हैं न लेश्या? क्लेश-क्लेश। कहते हैं, जैसे लकड़ी में कागज चिपकाने के लिये बीच में श्लेष—गोंद होता है न? उसी प्रकार आत्मा का शुद्ध, लेश्यारहित स्वभाव है। कृष्ण-नील-कापोत तो पाप लेश्या है। दूसरी पीत-पद्म-शुक्ल पुण्यभाव है। पाप की बात करनी है न? छहों प्रकार की लेश्या का भाव बन्ध का कारण है। तीन लेश्या पाप का कारण बतलाना है। महापरिणाम क्लिष्ट कृष्ण मलिन। उससे थोड़ा मैला, उससे थोड़ा मैला - ऐसे तीन परिणाम लेश्या को पापपरिणाम कहते हैं। समझ में आया?

कषाय के उदय से... कषाय अर्थात् राग-द्वेष के भाव से **अनुरंजित....** रंगे हुए, **योगप्रवृत्ति...** अन्दर कम्पन आत्मा के प्रदेश में कम्पन होता है। जरा सूक्ष्म बात है। नीचे फुटनोट में लिखा है, देखो! **(कषाय के उदय से अनुरंजित योगप्रवृत्ति वह लेश्या है। वहाँ, कृष्णादि तीन लेश्याएँ तीव्र कषाय के उदय से अनुरंजित योगप्रवृत्तिरूप हैं।)** वृक्ष का दृष्टान्त दिया है न? वृक्ष का दृष्टान्त दिया है। कोने में है। लेश्या का दृष्टान्त दिया है, इस लेश्या का। क्या? छह लोग थे, उन्हें आम खाने का भाव हुआ। तो एक वृक्ष था (उसमें) पचास मण आम। एकदम हरे। एक तो कृष्ण लेश्यावाला कहता है, कृष्ण, काली बहुत ही बुरे परिणाम। वह कहता है कि अपने मूल में से ही वृक्ष को तोड़ डालो न। (तो) आम मिलेंगे। समझ में आया? बहुत ही कृष्ण / काले परिणाम, मलिन परिणाम हैं।

दूसरा नील। वह कहता है कि हम छह आदमी हैं और पूरे वृक्ष को काटने की क्या आवश्यकता है? एक ही डाली काट लो न? एक ही डाली में पाँच-पाँच मण आम है। पचास मण है तो दस डालियाँ, एक काटो तो उसके जरा पाप परिणाम मन्द है। है तो पाप।

और तीसरा (कापोत) लेश्यावाला कहता है कि अरे भाई! बड़ी डाली दस मण की काटना और आम निकालना, उसकी अपेक्षा एक छोटी डाली काट लो! दो, तीन-तीन मण निकलेंगे। डाली काटकर लेना। ये तीन परिणाम मलिन कहे जाते हैं। और

चौथे (पीत लेश्या के) परिणाम ऐसे हैं, उसे पुण्य परिणाम कहते हैं। यहाँ चौथे स्थान में है कि चौथेवाले ने ऐसा विचार किया कि भाई! वृक्ष काटने का क्या काम है? छोटे-छोटे गुच्छे तोड़ लो। आम होते हैं न पाँच-पाँच, दस-दस गुच्छे। गुच्छे कहते हैं न? बस इतने तोड़ लो। गुच्छे ले लो। बस, दूसरा क्या काम है? उसके परिणाम जरा ऐसे— पाँचवाँ (पद्मलेश्यावाला) कहता है कि भाई गुच्छे तोड़ने का क्या काम है? पके-पके आम तोड़ लो। ले लो अपने दो मण, बहुत ही है। छठवाँ (शुक्ललेश्या वाला) कहता है कि अपने क्या काम है? देखो हवा निकली है। अभी पके दो मण आम नीचे गिरेंगे। नीचे गिर जायेंगे। अपने तोड़ने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी।

छहों के खाने के भाव में परिणाम में तीव्रता, तीव्र, मन्द, मन्द, मन्द, मन्द, चला। ऐसे प्रत्येक काम करते समय अज्ञानी के परिणाम में छह प्रकार की तीव्रता, मन्दता, मन्दतर, मन्द ऐसे परिणाम आते हैं। समझ में आया? वृक्ष है, कोने में ऊपर, शास्त्र में दृष्टान्त है। लोगों को समझाने के लिये। वृक्ष का है न वृक्ष-पेड़ उस कोने में। सफेद-सफेद लोग उसे काटते हैं। शास्त्र में दृष्टान्त है, हों! पाठ में। तीन लेश्या तो मलिन हैं, कृष्ण, नील और कापोत। क्लेश है। नये आवरण में जैसे चिकनाई कागज चिपकाती है, वैसे आत्मा में ये परिणाम क्लिष्ट हैं। नये पाप आने में क्लेश है। चिकनाई है। यह आत्मा का स्वभाव नहीं है। परन्तु स्वभाव का भान नहीं होने से, और स्वभाव का भान होने के पश्चात् भी जरा अपनी कमजोरी से ऐसे परिणाम आते हैं, तो उन परिणाम को यहाँ पाप कहा गया है। उनसे नये पापास्रव आते हैं। उसमें सुख नहीं है। समझ में आया? यह उसे तीन लेश्या कहा गया है। वह पाप है।

अब तीसरा। **रागद्वेष के उदय के प्रकर्ष के कारण...** यह बड़ा प्रकर्ष लिया है उत्कृष्ट का। उत्कृष्ट-उग्रता। कारण **वर्तता हुआ इन्द्रियाधीनपना;...** देखो! इन्द्रियाधीनपना— पाँचों इन्द्रियों के आधीन हो जाना। भगवान आत्मा अतीन्द्रिय स्वरूप; यह इन्द्रियाँ तो मिट्टी की-जड़ की है। भगवान अरूपी चिदानन्द है। और उसमें भावेन्द्रिय जो खण्ड-खण्ड पर के विषय पर लक्ष्य करती है। यह इन्द्रियातीत आत्मा ज्ञानानन्द प्रभु, उसे आत्मा स्वयं को चूककर। अपने को ऐसा आनन्द ज्ञायकमूर्ति मैं हूँ, ऐसी अपनी सत्ता। महासत्ता महा अस्तित्व को चूककर पाँच इन्द्रियों के आधीन हो जाना, वे परिणाम

पापास्रव हैं। आस्रव अर्थात् उन परिणाम से नये रजकण का आना होता है। आना—आस्रव। आ उपसर्ग है। स्रव—आना। परिणाम पाप हैं, वे भाव पापास्रव हैं। नया आवरण आता है, वह द्रव्य पापास्रव है। थोड़ा सा अभ्यास होवे तो, पण्डितजी! एक ही गाथा में पापास्रव की बहुत ही चर्चा है।

भगवान आत्मा पुण्य-पाप का विकल्प जो राग है, उससे अपना स्वरूप शुद्ध त्रिकाली ज्ञायक आनन्द है। उसमें जो अतीन्द्रिय आनन्द भरा है। अतीन्द्रिय आनन्द स्वरूप अपना स्वभाव उसके स्वभाव का विश्वास रुचि, ज्ञान और लीनता हुए बिना उसे पाँच इन्द्रिय के शब्द, रूप, गन्ध, रस, स्पर्श, उस ओर की गृद्धि के आधीन हो जाना, इन्द्रियातीत आत्मा को भूल जाना, ऐसे भाव को पापभाव कहा जाता है। समझ में आया? अरे भाई! ज्ञानी की व्यायामशाला में कभी आया नहीं। ज्ञानी की व्यायामशाला में कसरत कैसी होती है! डॉक्टर! समझ में आया? भगवान आत्मा ज्ञान की मूर्ति चैतन्य पिण्ड ज्ञायक, ऐसा आनन्दकन्द अपना भाव पड़ा है। जहाँ-जहाँ ज्ञान, वहाँ-वहाँ आनन्द, जहाँ-जहाँ आनन्द, वहाँ-वहाँ ज्ञान, ऐसा पड़ा है।

जैसे (छोटी) पीपर में चौंसठ पहरी चरपराई है। उसके साथ हरा रंग भी है। बाहर में पीपर का रंग काला है। काली दिखती है। मूल स्वभाव काला नहीं है। मूल स्वभाव चरपराई थोड़ी दिखती है, उतना नहीं है। मूल स्वभाव तो ६४ पहरी चरपराई पूरी है। और हरा रंग तो है अन्दर। वैसे भगवान आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द और ज्ञान पूरे भरे हैं। खबर नहीं कहाँ पूरे और कहाँ अधूरे। ऐसे के ऐसे अन्धानुकरण। अन्धा दिखलानेवाला और अन्धा चलनेवाला। क्या चीज़ है, इसकी खबर नहीं। पता नहीं। कोई तो पाप में मजा मानता है और कोई पुण्यक्रिया करता है, उसमें हमें धर्म है, ऐसा मानते हैं। दोनों मिथ्यादृष्टि मूढ़ हैं। ऐसा कहते हैं। राजमलजी! हें?

इस पीपर में से होता है, उसमें सिद्धि है उसका ज्ञान करनेवाला कौन? पूछो, खबर है? पीपर को खबर है कि मुझमें ६४ पहरी चरपराहट भरी है। हरे रंग की उसे खबर है? खबर करनेवाला तो आत्मा है। ज्ञान में खबर पड़ती है कि उसमें ६४ पहरी है और प्रगट होती है। हो तो प्रगट हो। तो ख्याल करनेवाला भी अन्दर में मुझमें परिपूर्ण ज्ञान और आनन्द भरा है। तो मैं अन्तर्दृष्टि करके मेरी पर्याय में, अवस्था में पूर्ण ऐसा

प्रगट कर सकता हूँ। बण्डीजी! यह वकालत, वह दूसरी बात है। क्या कहलाता है तुम्हारे? वह इनकमटैक्स सलाह। कहो, समझ में आया? आहाहा!

इन्द्रियाधीनपना,.... भगवान आत्मा अतीन्द्रिय प्रभु! यह इन्द्रियाँ तो जड़ की-मिट्टी की है। अन्दर देखनेवाला तो इन इन्द्रियों से पार है। और भावेन्द्रिय अर्थात् एक-एक इन्द्रिय का विषय जो एक-एक जानने की योग्यता है। वह तो खण्ड-खण्ड है। अन्दर वस्तु पूर्ण स्वरूप अतीन्द्रिय आनन्द है, उसकी रुचि, दृष्टि किये बिना अनादि काल का अज्ञानी पाँच इन्द्रिय शब्द प्रशंसा आती है न, प्रशंसा जहाँ, अभिनन्दन, प्रसन्न-प्रसन्न (हो जाता है)। महिमा करता है। उसमें सुख है? मजा पड़ता है तो उसके लिये तो हम दृष्टान्त देते हैं। उसमें सुख होता है?

दो रुपये का मजदूर सीखा हुआ, पढ़ा हुआ, पढ़ा हुआ ले लेना। दो पृष्ठ में लेख लिख देना। तुम तो ऐसे हो और तुम ऐसे हो। दो-चार पृष्ठ में। सवेरे से शाम तक सुनाया करे। रात के नौ बजे ऐसा कहे कि अब नहीं (सुनाओ)। क्यों नहीं? उसमें सुख है न? सुख को मर्यादा क्यों? सुख है तो मर्यादा कैसी? नहीं वह अब.... सुख है न उसमें? तेरी कल्पना है। मूढ़ है कल्पना है कि उसमें सुख है। यह और उसकी कल्पना है। दो रुपये का वेतन मजदूर पढ़ा हुआ, पढ़ा ही करे, तेरे गुणगान किया ही करे, सबेरे से शाम। यहाँ क्या कहते हैं? दूसरे महिमा करे तो मजा आता है या नहीं? यह क्या? दूसरे महिमा करे, स्त्री कहे आहाहा! तुम भी क्या होशियार! (वह) फूल कर डेढ़ा हो। गाँव के कोई लोग दो-पाँच इकट्ठे हों। आहाहा! तुम भारी होशियार, हों! क्या है यह दूसरे पर नहीं? उसके पिता के हैं उसके घर के? कहो, समझ में आया? शोभालालभाई!

यहाँ तो बात दूसरी चीज़ है। अन्दर भगवान आत्मा की कीमत केवलज्ञानी की वाणी में पूर्ण आयी नहीं। वाणी में क्या आवे ऐसी चीज़! अलौकिक चीज़! एक स्वाद जैसी चीज़। समझ में आया? घी के स्वाद जैसी चीज़ कोई कह सके? दूसरे पदार्थ के साथ तुलना करके। घी का कैसा स्वाद है? शक्कर। घी गाय का, उसका कैसा स्वाद है? बताओ। दूसरे पदार्थ के साथ तुलना करके बताओ, कि उसका ऐसा स्वाद है। बस, यह तो खाये उसे खबर पड़े। दूसरे पदार्थ के साथ तुलना करके घी ऐसा मीठा। शक्कर जैसा? नहीं, नहीं। दूध जैसा? नहीं, नहीं। केले जैसा? नहीं, नहीं। वह मिठास कोई

अलग जाति की है। जानता होऊँ तो भी कह नहीं सकता। शोभालालभाई! जानने में बराबर आती है या नहीं? नहीं, नहीं कह सकता, इसलिए तुम जान नहीं सकते, ऐसा है? जानने में तो आता है कि स्वाद! ओहो! इसकी लहजत भी कोई परपदार्थ के साथ तुलना करके, मिलान करके बतलाना हो कि ऐसा है....

तालाब में घीकेला होते हैं, तालाब में। घीकेला का स्वाद! वह स्वाद और यह स्वाद कोई चीज़ ही दूसरी है। समझमें आया? इसी प्रकार जब जड़ पदार्थ का भी ख्याल आता है तो कह नहीं सकते, तो यह चैतन्य का स्वाद.... पुण्य-पाप के विकल्प से पार भगवान आनन्द का स्वाद। धर्म होने पर सम्यग्दर्शन में अपने आनन्द का स्वाद ज्ञानी जानता है परन्तु कह नहीं सकता। समझ में आया? खबर नहीं, क्या चीज है, क्या होता है, क्या कर सकता हूँ, इसका फल क्या आयेगा, (इसका) कभी विचार-मनन किया ही नहीं।

कहते हैं कि **इन्द्रियाधीनपना रागद्वेष के उदय के प्रकर्ष के कारण...** हों! उग्ररूप से। वह पापपरिणाम है। **रागद्वेष के उद्रेक के कारण प्रिय के संयोग की,...** आर्तध्यान की बात करते हैं। आर्तध्यान। अपने आनन्द का ध्यान छोड़कर अनादि का इसने आर्त और रौद्रध्यान किया। आर्तध्यान की क्या भाषा है? आर्त—पीड़ा होती है। जैसे तिल घानी में पिल जाते हैं न, उसी प्रकार आर्त-बुरे खोटे परिणाम से आत्मा की शान्ति पिल जाती है। भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दमूर्ति स्वभाव, वह आर्तध्यान के परिणाम से, देखो! **इच्छारूप आर्तध्यान है न...** अन्त में शब्द है चार के बाद, आर्तध्यान। यह आर्त अर्थात् पीड़ा। अन्दर में राग की पीड़ा होती है। राग, क्लेश-पीड़ा। क्या कहते हैं, देखो! **उद्रेक के कारण प्रिय के संयोग की,...** प्रिय का संयोग मिला न। लक्ष्मी, स्त्री, कुटुम्ब, पुत्र, दामाद। प्रिय के संयोग की। समझ में आया?

यह राग। आर्त है-आर्त है। आत्मा की शान्ति को लूटनेवाले ये आर्तपरिणाम हैं। भगवान आत्मा आर्तध्यान, रौद्रध्यान से रहित अपने शुद्ध ज्ञानमूर्ति की दृष्टि और ज्ञान किये बिना ऐसे आर्तध्यान, रौद्रध्यान अन्तर में किया। तो पहले क्या किया? प्रिय के संयोग की भावना। है न? इच्छा। इच्छारूप आर्तध्यान। प्रिय के संयोग की इच्छारूप आर्तध्यान। अन्त में शब्द लेना। और अप्रिय के वियोग को, प्रतिकूल दुश्मन आ जाये,

सर्प आ जाये। ऐई, चला जा, चला जा – ऐसी इच्छा। यह आकुलता, वह भी आर्तध्यान है। प्रिय के संयोग की इच्छा, वह भी आर्तध्यान अर्थात् ध्यान की विपरीतता-कलुषितता है। ऐसे अप्रिय का वियोग हो जाये। अरे! यह पुत्र ऐसा जगा, स्त्री ऐसी जगी, ऐसा मकान चला जाये। जाये... जाये... अरे! यह तो आये हैं, तुझे भी अप्रिय के वियोग करने की इच्छा, वह आर्तध्यान है। अपने स्वभाव में तो अप्रिय-प्रिय का संयोग भी नहीं है। और आर्तध्यान आदि विकल्प जो उठते हैं, वह स्वरूप में तो है नहीं। ऐसी दृष्टि किये बिना ऐसा आर्तध्यान तो अनन्त बार किया, उसके परिणाम में नया पाप का आवरण आया। नये कर्म आये, उसे द्रव्यपापास्रव कहते हैं। भाव हुआ, वह भावपापास्रव। परिणाम को भावपापास्रव कहते हैं।

वेदना से छुटकारा की... आया डॉक्टर का। शरीर में रोग... रोग, शरीर में रोग से छुटकारा ऐसा विचार, ऐसी कलुषितता। ऐ देवानुप्रिया! उसमें तो यही याद आया। इस शरीर को यह हुआ, इस शरीर को यह हुआ, पूरे दिन चौबीस घण्टे रात्रि में निवृत्त तो सोये नहीं। ऐई मोहनभाई! यह तुम्हारे भाई की बात करते हैं। रात्रि में यह काम, यह काम। कहाँ तक लगाना है? कहते हैं कि आर्तध्यान है। लो, सुनो! शरीर की पीड़ा अवस्था की, वह रोग के कारण नहीं है। शरीर की अवस्था / दशा शरीर के अस्तित्व में है। अपने आत्मा के अस्तित्व में उसका स्पर्श ही नहीं। किस प्रकार से पीड़ा होती है? राग करता है, उसकी पीड़ा है। पर की पीड़ा कहाँ है। वह तो जड़ मिट्टी है। उसके अस्तित्व में-रजकण में तो रंग, गन्ध, रस, स्पर्श का अस्तित्व है। वह अस्तित्व / मौजूदगी आत्मा के अस्तित्व में प्रविष्ट नहीं है। राग के कारण पीड़ा हुई। उसके कारण नहीं। इसके अस्तित्व में विकल्प उत्पन्न करता है। अरे! ऐसा, अरे! ऐसा। यह उसके विकार का दु:ख है, शरीर का नहीं। समझ में आया? भैया! प्रेमचन्दजी!

बात तो ऐसी है। निर्णय करना पड़ेगा। इसे स्वतन्त्र और सुखी होना हो तो। न होना हो तो भटकेगा, उसमें क्या? यह तो अनादि काल से भटकता ही है। और यह लोग कहते हैं कि स्वतन्त्रता मिली। धूल में भी नहीं मिली। सुन न! यह सब कहते हैं न राग स्वतन्त्र। धूल में भी स्वतन्त्र नहीं। स्वतन्त्र किसे कहते हैं? भगवान अनन्त गुण का धनी स्वामी, वह विकार मेरा नहीं। पर तो मेरा नहीं। ऐसी स्वतन्त्र स्वभाव की दृष्टि

करना, इसका नाम स्वतन्त्र हुए कहलाते हैं। बाकी सब परतन्त्रता के पोटले हैं। राजा, महाराजा, नेता सब पराधीन... पराधीन। समझ में आया? सुखी है? धूल में भी सुखी नहीं। कौन कहता है? दस-दस हजार का वेतन मिला और बड़ी पदवी मिली। परन्तु क्या हुआ? पदवी किसकी? तेरी पदवी अन्दर आनन्दकन्द ज्ञायक, उस पदवी को चूककर, यह मुझे मिली और मैं इसका स्वामी! विष्टा के ढ़ेर पर कुत्ते को बैठाया हो, ऐसा है। ऐ सेठी! और कुत्ता मानता है कि बहुत विष्टा मिली। वह थोड़ी-थोड़ी खाता था, एकसाथ... क्या है भाई!

तेरी सम्पदा तो तेरे पास है। इससे जहर अधिक। हमने तो विष्टा का दृष्टान्त दिया। उसे प्रेम है राग का, वह राग जहर है। आत्मा के अमृत को लूटकर वह राग होता है। वास्तव में ऐसा नहीं है, उससे विशेष है। समझ में आया? देखो! वहाँ क्या कहते हैं? वेदना में से छुटकारा, वेदना में से छुटकारा। कब मिटे, कब मिटे, कब मिटे? कोई देव आवे और मिटाये? कोई दवा दे और मिटाये? उसके विचार, वह आर्तध्यान है। क्या है? वेदना तो मिटने की होगी तो मिटेगी। तेरी कल्पना से नहीं मिटेगी, दवा से भी नहीं मिटेगी। दवा तो निमित्तमात्र है। मिटेगी तब उसे निमित्त कहा जाता है। दवा से मिटे तो वैद्य, डॉक्टर कैसे छूट जाते हैं? समझ में आया?

वे बड़े डॉक्टर नहीं थे। भाई कौन से? अंसारी डॉक्टर बड़े। बड़े अंसारी डॉक्टर। रेल में जा रहे थे रेल में। रेल में ही पीड़ा हुई। अंसारी बड़े डॉक्टर। अरे! यह पीड़ा इतनी कि देह छूट गयी। क्या तुझे? डॉक्टर की कला उसके पास रही। शरीर में क्या काम करे? यह तो जड़ है। परपदार्थ में अपनी कला क्या काम कर सकती है? बराबर है, भाई? बड़े वकील हैं न। ....समझ में आया? भगवान परमात्मा सर्वज्ञ की वाणी में आया। प्रभु! यह तेरे परिणाम शरीर में वेदना है, उसे दूर करने में चिन्ता में पड़ गया है न, यह तेरा बड़ा आर्तध्यान है। आर्तध्यान है। उसमें पाप लगता है। नया पाप आता है। रोग नहीं मिटता।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह यह तो इसके भाई जाने। अपने को तो आता है ऐसा कुछ? कहो, समझ में आया?

यह कहते हैं, हीरा यदि निकल जाये न दो, पाँच, दस लाख के तो मिटे, परन्तु हीरा के समय यदि वहाँ खड़ा हो, दूसरा आकर कहे अब इसे मार डालूँ, नहीं तो हीरा मैं ले लूँ। नहीं तो तू पहिचानकर मार ऊपर फरियाद करेगा। हाय! हाय! इसकी अपेक्षा तो हीरा न होता तो ठीक। क्या धूल में हीरा ठीक है? हीरा में क्या है? अमेरिका में धूल है। सब ऐसे के ऐसे हैं। सब आत्मा की धूल करके पर में आनन्द माननेवाले सब जगह हैं। दूसरा कौन दूसरा होगा वहाँ? सब चूल्हे में राख है। किसी भी देश में देखो तो। चूल्हे में कहाँ कस्तूरी है? सब देश में अपने आत्मा को भूलकर पर में आनन्द मानता है। सब दुःखी है। सब दुःखी ही है, उसमें देखने का क्या है?

आत्मा अन्दर है, उसे पहिचानता नहीं और परपदार्थ की अनुकूलता में मुझे प्रेम है, बस ठीक है। आर्तध्यान है, पीड़ाध्यान है। आत्मा की शान्ति भावप्राण की पीड़ा होती है। यह कायदा अलग प्रकार का है, भाई! आहाहा! और निदान की इच्छा। निदान, कोई भी क्रिया करे और लाभ मिले। मैं ऐसा करता हूँ तो कोई पुण्य बँधे तो स्वर्ग में से देव आ जाये। मूढ़! सुन तो सही! अब इच्छा से नहीं आते न! आते हैं तो पुण्य से आते हैं। निदान बाँधने की क्रिया करे दया, दान, अपवास उसके फल में स्वर्ग मिले अथवा उसके फल में अनुकूल लक्ष्मी मिले, यह पाप के परिणाम हैं। उनसे नये पाप बँधते हैं। यह आर्तध्यान हुआ।

अब **कषाय द्वारा क्रूर ऐसे परिणाम के कारण होनेवाला हिंसानन्द,...** हिंसा करते-करते आनन्द मानना। बहुत मजा! आहाहा! यह तो बहुत वर्ष की बात है। तुम्हारे पालेज के पास नबीपरा। तुम्हारा गाँव नहीं? भरूच और पालेज के बीच, वहाँ मैं एक बार गया था। यह तो बहुत वर्ष की बात है। ६५-६६ की बात है। संवत् १९६५ की बात। साधु आये थे न? स्थानकवासी साधु। मैं दुकान पर था। वहाँ एक अंग्रेज था। प्रसन्न होता था, हिरण को मारकर आया था। हिरनी को। हिरण को मारकर हिरण कूदे न, यह क्या कहलाता है तुम्हारा? शिकार। हाथ डाला वहाँ कूदा। हिरण मरे न ऐसे। हिरण को मारे न। ..... नबीपुरा नाम रखा है। भरूच और पालेज के बीच। .....बजे वहाँ प्रसन्न होता था तो मारकर। वह ऐसे कूदे न? गिरा आगे जाकर। आहाहा! अरे! मूर्खों के गाँव कहीं अलग होंगे? जैचन्दभाई! मूर्ख के गाँव अलग बसते होंगे? हर गाँव

में ऐसे मूर्ख बसते हैं। वे गाँव में हों। आहाहा! अरे! तुझे स्थिति खबर नहीं, प्राणी को मारने का तेरा भाव। उसमें प्राण चले जायें। ओहोहो! आहाहा!

ऐसे पराक्रम.... ऐसा हिंसानन्द! यह गोंडल में राजकुमार नहीं? सिंह को मारने गया। गोंडल में सब। .... लो! यह दशा! ....हिंसानन्द, कितनों को मारा। तो कहे मैंने सिंह को मारा। अब यह मरने के समय में जा नरक में नीचे। ऐसे परिणाम का फल-भान है या नहीं? प्रतिकूल ऐसे दु:ख देने के ध्यान कहीं है या नहीं? इतनी प्रतिकूलता, जिसके प्राण का संहार, इतनी प्रतिकूलता के स्थान जहाँ हों, वहाँ उपजे, उसे नरक कहते हैं। ऐसे प्रतिकूल ऐसे स्थान वर्तमान में है नहीं। सरकार क्या करे? एक बार फाँसी देगी। इतने प्रतिकूल.... एक नहीं परन्तु पचास, सौ, पाँच सौ मार-फाड़, ऐसी प्रतिकूलता के भाव में वर्तमान में एक बार फाँस की सजा उसका फल प्राप्त नहीं होता। वह मरकर नरक में (जाता है)। नीचे नरक योनि है। नीचे (नरक) योनि है। वहाँ जितनी प्रतिकूलता की, उतनी प्रतिकूलता भोगने के स्थान में जन्म लेना, उसका नाम नरक है। बण्डीजी! लॉजिक से बात चलती है, हों! जरा समझ में-लक्ष्य में लेना। ऐसी बात नहीं परन्तु इसे खबर नहीं कभी विचार किया नहीं।

क्या पाप, क्या पुण्य, क्या जड़, क्या मैं, बस ..... यह भी मैं, यह भी मैं, यह भी मैं, यह भी मैं - ऐसा मानकर चौरासी में अनन्त बार दु:खी हो रहा है। हिंसानन्द, असत्यानन्द—झूठ बोलकर आनन्द। परम्परा चले। एक झूठ बोले तो उसे बचाने के लिये दूसरा, तीसरा, चौथा, पाँचवाँ और बड़े मानधाता हों, जिसने पुस्तक बनायी हो.... पढ़ने को। झूठ ही झूठ हो।

असत्य में आनन्द माने, उसका नाम रौद्रध्यान। उसका नाम रौद्रध्यान। पहले आर्तध्यान था, परिणाम कुछ थोड़े से मन्द। यह बहुत तीव्र पाप। रौद्रध्यान है न? रौद्रध्यान। समझ में आया? असत्यानन्द। स्तेयानन्द, स्तेय अर्थात् चोरी। चोरी करके मजा मानना। राजा सो रहा है तो घर में जाकर चोरी कर आया। समझ में आया? चोरी। स्तेयानन्द—स्तेय अर्थात् चोरी। चोरी करके आनन्द मानना। अभी देखो न? यह काले कर्म। यह सब तुम्हारे क्या कहलाते हैं? काला बाजार, आहाहा! लुटेरे।

करे चोरी और होशियारी माने, देखा किसी को खबर न पड़े। सरकार को खबर

न पड़े, लो! मैंने इतने पैदा किये और सरकार को खबर न पड़े, बहियों के पन्ने बदले, एक पृष्ठ लिखे और एक पृष्ठ खाली। खाली समझते हो न? तुम्हारे इनकमटैक्स में बहुत जाँच करनी पड़ती होगी। तुमको ठग जाये ऐसे बहुत वहाँ होंगे। समझ में आया? ठगे कौन किसको? अपने को ठगता है। समझ में आया?

स्तेयानन्द एवं विषयसंरक्षणानन्द... विषय संरक्षणानन्द **रौद्रध्यान।** रौद्रध्यान महापरिणाम वह विषय का संरक्षण, लक्ष्मी, स्त्री, कुटुम्ब, पूरे पाँच इन्द्रिय के विषय रखे। हमारे शरण होंगे। बारम्बार पाँच इन्द्रियों का संग्रह करना, वह रौद्रध्यान है। बुरे परिणाम हैं। कहो, समझ में आया? मोहनभाई! विषय का संरक्षण अर्थात् पाँच इन्द्रिय के विषयों का संरक्षण। तैयार ऐसे देखो तो, बाजा तैयार, वेश्या तैयार, खाने का तैयार। एक राजा था न? अपने मास्टर नहीं कहते थे? कहाँ गये रतिभाई! कोई कहता था। अपने मास्टर कहते थे। खाने बैठे वहाँ पाँच विषय इकट्ठे हों। वेश्या नाचती हो, फूल बाग में बैठा हो, आहाहा! उत्कृष्ट आहार खाता हो, सुगन्ध भी हो, साथ में पाँच। रतिभाई! है या नहीं? तुम्हारे पिता कहते थे। वे कहते थे कि इसे पाँच विषय एक साथ चाहिए। यह वह मूढ़! अरे! तेरा उपयोग तो एक में लक्ष्य जाता है। राग में। वह बदले वहाँ दूसरे में लक्ष्य जाये। एक साथ पाँच में कहाँ तेरा लक्ष्य जाता था। टुकड़े-टुकड़े नम्बर से हो। यह एकसाथ नहीं होता। एक बार लक्ष्य सुगन्ध के ऊपर है तो रस के ऊपर नहीं और रस के ऊपर है तो गन्ध के ऊपर नहीं और गन्ध के ऊपर है तो स्पर्श के ऊपर नहीं। नम्बर से पाँच इन्द्रियों को भोगता है। महिमा करते थे कि बहुत साधन है।

बाग-बगीचा-वेश्या नाचे, खाये, बाजे बजते हों, एकसाथ खाने का... मूढ़, वह मूढ़! एक साथ आत्मा में आनन्द पड़ा है, ज्ञान शान्तिसागर (आत्मा है), उसे चूककर ऐसा रौद्रध्यान करता है, उसका फल ऐसा पाप बँधता है, इसलिए पाप को पहिचानकर, पर को पर जानकर, पुण्य का उदय भी शुभराग है, उसे पहिचानकर मेरी चीज़ उससे भिन्न है। ऐसा उसका श्रद्धा-ज्ञान करना, यह इसके कहने का प्रयोजन है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

यह प्रवचन ३६ मिनिट का है।

प्रवचन नं. ३७, गाथा-१४० से १४२
दिनांक - ०३-१०-१९६४, भाद्र कृष्ण १३, शनिवार

पंचास्तिकाय, १४० गाथा। आस्रव पदार्थ की व्याख्या चलती है। वर्तमान चलती है तो पापास्रव की बात चलती है। पापास्रव। यह मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय, अशुभयोग, ये सब भाव पापास्रव हैं। इनसे नये पाप आते हैं, वे द्रव्यपापास्रव हैं। उसकी बात चलती है। पहले संज्ञा की बात की।

आत्मा में कर्म के निमित्त के सम्बन्ध से तीव्र जो आहार, भय, मैथुन, परिग्रह की गृद्धि होती है, वह संज्ञा पाप है, वह पाप भावपाप है। उस भावपाप से नये द्रव्यपाप आते हैं। लेश्या। तीव्र कषाय के उदय से रंगी हुई योगप्रवृत्तिरूप है, वह लेश्या है। योग की प्रवृत्ति है कम्पन। उसमें कषाय से रंगे हुए भाव योगप्रवृत्ति में, उसका नाम यहाँ लेश्या कहा गया है। अनुरंजित=रंगी हुई, कौन? लेश्या। कषाय के उदय से क्रोध, मान, माया, लोभ की तीव्र, यहाँ तीव्र की बात है। रंगी हुई योगप्रवृत्ति। आत्मा के प्रदेश कम्पन हैं, उसमें कषाय का रंग चढ़ा हुआ हो, उसका नाम लेश्या कहा जाता है। यहाँ पापलेश्या का कथन है।

तीसरा, पद्म और शुक्ल पुण्यलेश्या का परिणाम है, वह पुण्यास्रव है। यह तो पहले साधारण आ गया। समझ में आया? हें? भले नहीं लिया परन्तु यह आ गया है, शुभभाव। शुभभाव लेश्या आ गयी। तीसरा (पीत), पद्म और शुक्ल यह शुभपरिणाम है। इनसे नये पुण्य का आस्रव आता है। यह नये तीन के कृष्ण, नील और कापोत, यह पापास्रव है। यहाँ, कहो, अमरचन्दभाई! आत्मा का कम्पन होता है न? प्रदेश कम्पन, उसका नाम योग, और उसमें कषाय से रंगी हुई प्रवृत्ति योग, उसे यहाँ लेश्या कहते हैं।

केवली को फिर कषाय नहीं है, परन्तु साथ में योग रहा है, इस कारण उसे भी शुक्ललेश्या कहा गया है। एक समय का आस्रव आता है न, वह तो शुभ आता है। यहाँ अशुभ की बात चलती है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कषाय के तारतम्य मन्द के कारण। कषाय का कल वह दृष्टान्त दिया था न? वृक्ष का। तारतम्य अर्थात् हीनाधिक कषाय के भाव से पाप के तीन परिणाम बने। और मन्द परिणाम शुभ में भी हीनाधिकता तीन प्रकार से शुभभाव बने। परन्तु हैं ये छहों लेश्या आस्रव का कारण है। यह भावास्रव होता है। शुक्ललेश्या हो तो भी भावास्रव है। समझ में आया?

और फिर 'इन्द्रियवशत' इन्द्रिय का आधीनपना, वह भी पापास्रव है। आर्त और रौद्रध्यान दोनों पापास्रव हैं। यहाँ तक आ गया। अब **निष्प्रयोजन...** यहाँ से आया। **(-व्यर्थ) शुभकर्म से अन्यत्र (-अशुभ कार्य में) दुष्टरूप से लगा हुआ ज्ञान;...** ज्ञान में अशुभ परिणाम का जुड़ान बहुत ही, ऐसे विचार कर-करके ऐसे संक्लेश परिणाम ज्ञान में लगाओ, उसे यहाँ दुष्टरूप से जुड़ा हुआ ज्ञान (कहते हैं)। उसका नाम पापास्रव है। ज्ञान दुष्ट परिणाम के विचार में ऐसे बनाना और ऐसे करना और ऐसे करना, इसमें लगा हुआ, वह भी अशुभपरिणाम पापास्रव का कारण द्रव्य पापास्रव और वह स्वयं भाव पापास्रव है। कहो, समझ में आया? अपने ज्ञान की क्षयोपशम दशा, ऐसा पाप का विचार कला और धन्धा और उसमें विचार करने में लगा देना, वह पाप परिणाम है। कहो, पूनमचन्दभाई! क्या होगा यह? पाप परिणाम में बराबर मस्तिष्क का अच्छा काम करे ज्ञान का तो? कहते हैं न, देखो न? **निष्प्रयोजन (-व्यर्थ) शुभकर्म से...** अशुभ ऐसी कल्पना निष्प्रयोजन है।

मुमुक्षु : पैसा कमाना, वह निष्प्रयोजन है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह निष्प्रयोजन है। पैसा कमाना क्या? ऐसी मशीन बने और यह बने ऐसा यहाँ करते हैं न, ऐसे कारखाना डालने में ज्ञान का उपयोग लगाते हैं। ऐसे ज्ञान के उपयोग को अशुभ परिणाम पापास्रव कहा गया है। उससे नये पाप आते हैं।

मुमुक्षु : दान के लिये कमाये तो?

पूज्य गुरुदेवश्री : दान के लिये कमाने का किसने कहा? कुत्ता मारकर गाय को डालना, गाय मारकर कुत्ते को धराना। .... कमाकर, फिर कमाना और फिर दान देना, ऐसा किसने कहा?

मुमुक्षु : ....अशुभ ही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अशुभ ही है। धन्धा शुभ किस दिन था?

मुमुक्षु : कमाये बिना दान कैसे दे?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन कहता है? दान का क्या काम है? यह तो सहज पाप से आया हो, फिर राग मन्द करके दान का भाव हो, पुण्य होता है। दान के लिये कमाऊँ, ऐसा कौन कहता है? समझ में आया? इष्टोपदेश में आता है, अधिकार इष्टोपदेश में। शास्त्र में सब बात है। कोई बात गुप्त नहीं है। इष्टोपदेश में कहा है कि उपदेश किसे कहते हैं? दान के लिये कमाऊँ और फिर दान दूँगा, यह उपदेश इष्ट नहीं है। हाथ बिगाड़कर (गन्दे करके) फिर पानी से धोना है। पहले तो हाथ बिगाड़े और फिर धोना है, उसका क्या अर्थ? कौन कहता है कमाना। कमाने का भाव ही पाप है। दुकान की पेढ़ी पर बैठना और ऐसे-ऐसे (करना), वह सब पाप है।

यह सब दूषित परिणाम हैं। कमाऊँ तो तुम्हारे लिये क्या है? तुम्हारा क्या अधिकार है? राग मन्द है। इससे क्या? पाप किया, उसका क्या? यह इष्टोपदेश में बहुत ही लिया है। कोई ऐसा विचार करे कि पहले बहुत ही कमा लें पाँच, दस, पच्चीस लाख (कमा लें) फिर देंगे। अब है, उसमें थोड़ी तृष्णा घटाये तो पुण्य होगा। कमाने का जितना दुकान में बैठना और उसकी कला में उपयोग लगाना, ऐसा... ऐसा... और ऐसा। ऐसी मजदूरी करता है। ऐसे मजदूर लाना, ऐसा लाना, उस ज्ञान में उपयोग लगा देना, वह अकेला पापभाव है।

मुमुक्षु : लड़कों को जवाबदारी....

पूज्य गुरुदेवश्री : लड़कों को जवाबदारी क्या? वह तो अकेला पाप ही है। लड़का क्या करे, लड़का करे तो लड़के को पाप है। लड़के के लिये बनाने की-कमाने की कला अकेला पाप है। नये कर्म का बन्ध पड़ता है। पापभाव है। कहाँ गये वासुदेवभाई? पैसे से ठीक होता है? समझ में आया? मूल दुकान में बैठने में कला लगा दे। ऐसा करना और ऐसा करना और ऐसा करना और ऐसा करना। और माल में मिश्रण करना, क्या कहलाता है, मिर्ची में बीज डालना, चावल में कणकी मिलाना। महा अशुभपरिणाम, बुरे भाव हैं।

मुमुक्षु : साधारण भाव करे तो?

पूज्य गुरुदेवश्री : साधारण भाव करे तो भी वे पाप के भाव हैं ही। यह तो दुष्ट विशेष कहे न! यह तो तीव्र की बात चलती है। समझ में आया? प्रयोजन अर्थात् यह मुफ्त का ही करता है, ऐसा इसका अर्थ। शुभकर्म को छोड़कर अशुभकार्य में दुष्टरूप से जुड़ी हुई ज्ञान की कला उपयोग। ऐसा ऐसे-ऐसे जोड़े-जोड़े। ऐसी कला और ऐसा करना और ऐसा करना। पचास, लाख में लो तो दो लाख लगाना, दो लाख दूसरे में लगाना, ऐसे लगाना, ऐसे लगाना। यह व्यवस्था करने के पाप भाव की व्यवस्था है।

डाले कौन और ले कौन? उसमें भाव यदि अपना क्षयोपशम का अनुभव हुआ हो तो उसमें लगा देता है। दूसरे किसी को खबर नहीं पड़ती, ऐसा करो, ऐसा लाओ, ऐसा लाओ, ऐसा करो, ऐसा करो। यह सब कला का भाव मात्र अशुभभाव पाप है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : किसे दे? किसने कहा? देने का कहा है किसने? यहाँ तो किसी को देने की बात भी नहीं चलती। यहाँ तो पाप ज्ञान में उपयोग जोड़ना, वह पाप है। इतनी बात चलती है। देने की बात चलती है, कहाँ से आया? अन्दर में से आया, कफ। समझ में आया?

यहाँ तो अभी ज्ञान में विकास कुछ-कुछ थोड़ा सीखा हो न? पाँच-पचास वर्ष तक यह पाप का सब। अनुभव का लाभ फिर दुकान पर बैठकर लकड़ों को दे। उन्हें कला में लगाना, ऐसा करना, ऐसा करना। वह सब अकेला दुष्ट पाप है। नये-नये पाप के पिण्ड बनते हैं।

मुमुक्षु : भटकने के लिये शिक्षा देता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भटकने के लिये शिक्षा देता है। अपने को भटकने के लिये। उसे चार गति में भटकना है। कहाँ जाना है और कहाँ अवतार करेगा, इसका भान नहीं है। इतना पाप। कहो, समझ में आया?

और सामान्यरूप से दर्शन-चारित्रमोहनीय के उदय से उत्पन्न अविवेकरूप मोह... भान बिना का राग हो या मिथ्यात्व हो सब। **यह, भावपापास्त्रव का विस्तार...**

वह भावपाप आस्रव के परिणाम का विस्तार कहा है। **द्रव्यपापास्रव के विस्तार को प्रदान (प्रदान) करनेवाला है...** उसे द्रव्यपाप का दान मिलता है। द्रव्यपाप रजकण पाप के उसके साथ पहुँचते हैं। कहो, समझ में आया? **अर्थात् उपरोक्त भावपापास्रवरूप...** देखो! ऊपर कहे संज्ञा, लेश्या, विषया, चिन्ता, मोह सब। आर्तध्यान, रौद्रध्यान इत्यादि। **अनेकविध भाव वैसे-वैसे अनेकविध द्रव्यपापास्रव में निमित्तभूत हैं।** जैसे-जैसे अनेकविध पापभाव किये, वैसे नये आवरण में अनेकविध में वे निमित्त पड़ते हैं। कहो, समझ में आया?

मुमुक्षु : तब तो जगत में सब व्यवहार रुक जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : जगत में कौन रुकता है? जगत में तेरी अटकनवाला उत्पाद है न। ऐसा यहाँ तो कहते हैं। जगत तो चलता ही है। जगत किससे चलता है? तुझसे चलता है?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु क्या काम करे? दान दे तो न दे। आजीविका होती है, तो उसमें क्या है?.....

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं होते। उसमें तुझे क्या है? पचास रुपये मिले तो पाँच रुपये दान दे। उसमें क्या? परन्तु ऐसे विशेष पाप करके करना, यह भाव है नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : न दे तो कौन इनकार करे। न दे। परन्तु पाप परिणाम करना, वह बात है नहीं। दान न दे तो भले न दे। अपने पास (न हो तो न दे।)

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह भी पाप है। न्याय से करे, वह भी पाप। पाप वह तो तीव्र, मन्द की बात है। वह भी पाप है। न्याय से कमाये परन्तु पाप है न अकेला बस। ऐसे पुत्र के लिये, इज्जत के लिये, खाने के लिये, पीने के लिये कमाता है। मात्र पाप है। कितनों

को तो ऐसा पागलपन हो जाता है कि चौबीस घण्टे धन्धे में लवलीन! चौबीस घण्टे लवलीन! रात्रि में स्वप्न भी ऐसे आवे। ....ऐसा लिया, ...ले, अपना कपाल फाड़ डाले। ...होवे न, सोये हुए हों जगे। कपड़े फाड़े।...

यह पाप की गृद्धि स्वप्न में भी वह परिणाम आवे तो पाप है। स्वप्न में भी वह परिणाम आवे ऐसे... ऐसे... ऐसे... ऐसे... ऐसे... मात्र पाप का बोझा लगता है। समझ में आया? पाप को जानना। पाप वह है, उससे आत्मा भिन्न है। आत्मा का ज्ञान करे तो पापपरिणाम मन्द हुए बिना रहते ही नहीं।

जिसमें पाप नहीं, ऐसा आत्मा अखण्डानन्द ज्ञान-आनन्दकन्द निज सम्पदा से भरपूर ऐसी दृष्टि करे तो अनन्तानुबन्धी का दोष तो टल जाये। मन्द राग हुए बिना रहे नहीं। भले अशुभ हो। तीव्र जो अनन्तानुबन्धी का था, वैसा का वैसा रहता नहीं। ज्ञानी को भी राग तो आता है, पाप भी होता है। तीव्र ऐसा नहीं होता। अपना ज्ञायकभाव शुद्ध स्वभाव की दृष्टि की अधिकता के कारण विकार की तीव्रता के परिणाम उसे नहीं होते। एकत्वबुद्धि से नहीं होते। पुण्य होता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : किसी को लागू नहीं पड़ता। अकेले को पाप लगता है। दस लोगों के लिये कमाता हो तो पाप के दस भाग पड़ते होंगे या नहीं, ऐ वासुदेवभाई! इसे पूछो न, इसका परिवार बड़ा है। सात भाई और छह बहुओं का। छह हैं न, क्या है? बड़ा परिवार है। लो! यह हीरा.... इसलिए दस लड़कों के लिये कमावे तो यह पाप के दस भाग पड़ते होंगे या नहीं?

मुमुक्षु : रुपये के पड़ें।

पूज्य गुरुदेवश्री : रुपये के भाग पड़े, पाप के नहीं। पाप सलंग अकेला इसे। बीस खाये तो कमाने के अकेले के पाप के अकेला एक भागीदार है। बीस भाग नहीं। खिलावे क्या? कौन खिलाता है? खाये तो भी खानेवाले का भाव भिन्न। एक दीपक में से दूसरा दीपक कब होता है। दूसरा भिन्न है।

मुमुक्षु : बच जाये उसमें से?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, नहीं; कहाँ बच गये? वह भी खानेवाले के पिताजी ने अच्छा कमाया तो हमको अच्छा है, अनुमोदन, वह भी पाप उसका है।

मुमुक्षु : अनुमोदन है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अनुमोदन का पाप उसके पास रहा। खाने का भाव पाप है या नहीं? भोगना, भोगना, हमारे पिताजी ने कमाया, बहुत ही अच्छा किया, यह भी पापपरिणाम है। उसका भिन्न पाप, इसका भिन्न पाप। भाग नहीं पड़ते कि उसने इतना किया पन्द्रह के लिये किया तो पाप में पन्द्रह भाग पड़ जाये।

मुमुक्षु : पन्द्रह पाप में से तो बच गये न?

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल नहीं। बचे क्या? धूल में? पन्द्रह भी मानते हैं कि हमारे पिताजी ने कमाया। ठीक किया तो उसका अनुमोदन करनेवाले भी पापी हैं। अशुभभाववाले हैं। कहो, समझ में आया?

मुमुक्षु : .....कमीशन लगता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ कमीशन-बमीशन लगता नहीं। किसी के कारण से हम क्या करें, बीस लोगों के लिये मैं अकेला कमानेवाला हूँ। तो भार थोड़ा उसे भी पड़ेगा, दूसरे को भी पड़ेगा, ऐसा है नहीं।

मुमुक्षु : एक कमाये और सब खाये....

पूज्य गुरुदेवश्री : खाये। एक कमाये और अपने पाप का भोग करे। पाप का भोग करे। उसमें दूसरे में क्या है? जितने प्रकार के अनेकविध पापास्रव परिणाम करता है, उतने प्रमाण में अनेकविध नये कर्म के, देखो! अनेकविध लिखा है न? दोनों। अनेकविध पापास्रव ऐसे अनेकविध द्रव्यपापास्रव। जैसी जैसी दुष्टता आदि। संज्ञा, लेश्या आदि की है, उस प्रमाण में नये पापास्रव होते हैं। किसी का किसी में भाग नहीं पड़ता। कहो, समझ में आया?

लड़का कमाऊ हो और उसने कोई दान का भाव मन्द किया हो तो उसके पिता

को कुछ लाभ मिले, ऐसा जरा भी नहीं है। जरा भी नहीं, उसके पिता को। उसके पिता को कि यह करोड़ कमाये तो ठीक रहा। उसमें पाप का भाव, भाव अपना उसका पाप उसे लगता है और उसे ऐसा हुआ कि दो लाख दिये तो ठीक हुआ, इतने भाव थोड़े किये हों तो वह शुभभाव होता है। अपना शुभ, हों! उसके कारण से नहीं। समझ में आया?

यहाँ तो स्वतन्त्र बात है। किसी के कारण कोई मिश्रण-मिश्रण होता नहीं। लो! आस्रवपदार्थ पूरा हुआ। उसकी पहिचान करायी।

अब संवर पदार्थ। संवर में भी पापसंवर की पहली गाथा है। सर्वथा संवर नहीं।

गाथा - १४१

अथ संवरपदार्थव्याख्यानम् ।

इंदियकसायसण्णा णिग्गहिदा जेहिं सुट्ठु मग्गम्हि ।
जावत्तावत्तेसिं पिहिदं पावासवच्छिद्दं ।। १४१ ।।

इन्द्रियकषायसंज्ञा निगृहीता यैः सुष्ठु मार्गे ।
यावत्तावत्तेषां पिहितं पापास्रवछिद्रम् ।। १४१ ।।

अनन्तरत्वात्पापस्यैव संवराख्यानमेतत् ।

मार्गो हि संवरस्तन्निमित्तमिन्द्रियाणि कषायाः संज्ञाश्च यावतांशेन यावन्तं वा कालं निगृह्यन्ते तावतांशेन तावन्तं वा कालं पापास्रवद्वारं पिधीयते । इन्द्रियकषायसंज्ञाः भावपापास्रवो द्रव्यपापास्रवहेतुः पूर्वमुक्तः । इह तन्निरोधो भावपापसंवरो द्रव्यपापसंवरहेतुरवधारणीय इति ।। १४१ ।।

कषाय-संज्ञा इन्द्रियों का निग्रह करें सन् मार्ग से।
वह मार्ग ही संवर कहा, आस्रव निरोधक भाव से।।१४१।।

अन्वयार्थ :— [यैः] जो, [सुष्ठु मार्गे] भली भाँति मार्ग में रहकर, [इन्द्रियकषायसंज्ञा] इन्द्रियाँ, कषाय और संज्ञाओं का [यावत् निगृहीताः] जितना निग्रह करते हैं, [तावत्] उतना [पापास्त्रवछिद्रम्] पापास्त्रव का छिद्र [तेषाम्] उनको [पिहितम्] बन्ध होता है।

टीका :— पाप के अनन्तर होने से, पाप के ही संवर का यह कथन है। (अर्थात् पाप के कथन के पश्चात् तुरन्त होने से, यहाँ पाप के ही संवर का कथन किया है।)

मार्ग वास्तव में संवर हैं; उसके निमित्त से (-उसके हेतु से) इन्द्रियों, कषायों तथा संज्ञाओं का जितने अंश में अथवा जितने काल निग्रह किया जाता है, उतने अंश में अथवा उतने काल पापास्त्रव द्वारा बन्द होता है।

इन्द्रियों, कषायों और संज्ञाओं—भावपापास्त्रव—को द्रव्यपापास्त्रव का हेतु (-निमित्त) पहले (१४०वीं गाथा में) कहा था; यहाँ (इस गाथा में) उनका निरोध

(-इन्द्रियों, कषायों और संज्ञाओं का निरोध)—भावपापसंवर—द्रव्य-पापसंवर का अवधारना (-समझना)॥१४१॥

गाथा - १४१ पर प्रवचन

इंदियकसायसण्णा णिग्गहिदा जेहिं सुट्ठु मग्गम्हि।
जावत्तावत्तेसिं पिहिदं पावासवच्छिद्दं।।१४१।।

टीका :- जितना काल और जितना भाव। **पाप के अनन्तर होने से,...** पहले पाप की व्याख्या की। उसके पश्चात् आनेवाली यह गाथा। **पाप के ही संवर का यह कथन है।** पाप के रोकने का कथन है। सर्वथा पाप-पुण्य नहीं। अकेला पाप रोकना। अशुभभाव नहीं होना। अशुभभाव न हो, उतना पाप रुकता है। उतना। सर्वथा पापसंवर रोके, वह तो शुभ-अशुभ दोनों रोक दे तो सर्वथा संवर है।

मुमुक्षु : पाप को....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, पापसंवर। पाप को रोके, उतना अशुभभाव का न आना, न होना। अशुभभाव का न होना, वह भी इतना पाप का संवर भाव है। और नये इतने आते नहीं तो पाप का उतना आस्रव रुक गया। **पाप के अनन्तर होने से,...** पाप के ही संवर का यह कथन है। **(अर्थात् पाप के कथन के पश्चात् तुरन्त होने से, यहाँ पाप के ही संवर का कथन किया है।)**

पाप का संवर। सम्यग्दृष्टि की बात है, हों! ज्ञानी को पाप का संवर होता है। अज्ञानी को तो होता ही नहीं।

मुमुक्षु : अज्ञानी को नहीं होता?

पूज्य गुरुदेवश्री : अज्ञानी को कहाँ संवर-फंवर है। मिथ्यात्व का आस्रव आता है। मिथ्यादृष्टि राग में ठीक मानता है। पाप में मजा मानता है। हमें बहुत ही अनुकूल है।

मुमुक्षु : पाप के घटने से अशुभ तो घटता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : संवर नहीं। **मार्ग वास्तव में संवर हैं;...** देखो! भाषा। मार्ग तो

वास्तव में संवर है। मोक्ष का मार्ग तो वास्तव में संवर है। आस्रव तो वास्तव में बन्ध का मार्ग है। यहाँ संवर है। देखो! जितना उसमें मिथ्यात्व और राग-द्वेष रुक जाये और सम्यग्दर्शन में अरागी प्रवृत्ति हो, वही एक संवर मार्ग है। बाकी कोई संवरमार्ग— मोक्षमार्ग है नहीं। कहो, समझ में आया? शुभ में भी यह लोग लगाते हैं। शुभ में भी लोग संवर है, ऐसा लगाते हैं। यहाँ तो मार्ग वास्तव में संवर है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह है न, पाठ में है.... मार्ग आत्मा में शुद्ध चैतन्यस्वरूप पुण्य-पाप के रागरहित अपने स्वभाव का अन्तर पूर्णानन्द को दृष्टि में स्वीकार करके, स्वरूप सन्मुख की सावधानी करके जीतना, लीन होना, वही एक संवर मोक्ष का मार्ग है। समझ में आया?

संवर मार्ग कहा, देखो! मिथ्यात्व और राग का निरोध अर्थात् उत्पत्ति न होना और सम्यग्दर्शन और वीतरागी परिणति की उत्पत्ति होना वही, एक संवरमार्ग है। दूसरा कोई मार्ग है नहीं। कहाँ किसका मार्ग? पूर्ण परमात्मपद प्राप्त करने का मार्ग। पूर्ण मोक्षदशा प्राप्त करने का मार्ग, वह शुभाशुभ विकल्प राग और निमित्त से हटकर स्वभाव पूर्णानन्द की ओर का झुकाव जितने अंश में दृष्टि होकर स्थिरता, उतने अंश मार्ग है। समझ में आया?

जिसे संयोग और निमित्त के ऊपर का जोर है, वह वहाँ से दृष्टि नहीं हटायेगा और जिसे शुभपरिणाम में कोई लाभ की बुद्धि है, वह अपनी पर्याय से बुद्धि नहीं हटावे। जिसे अपने अतिरिक्त पर चीज़ है, वह मेरे कोई भी कार्य में लाभ-मदद करती है, ऐसी दृष्टि है तो संयोग से नहीं हटेगा। और जिसे अपने परिणाम में शुभराग की मन्दता हो, उससे लाभ मानेगा, उसे परिणाम से दृष्टि नहीं हटेगी। उसे कभी संवर नहीं होगा। कहो।

मुमुक्षु : मार्ग कोई लम्बा-संक्षिप्त होता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, किसी को काल थोड़ा लगता है, किसी को काल अधिक लगता है, लम्बा-संक्षिप्त। मार्ग दूसरा नहीं है। मार्ग यही, एक ही। आडा-टेढ़ा नहीं। यह तो तुम्हारे वांका का मार्ग है। ऐसा एक व्यक्ति ने कहा था। यहाँ के सोनगढ़वाले को

पूछा उसको, वह टेढ़े का मार्ग है। नाम न पाड़े परन्तु टेढ़ा का मार्ग में क्या कहना है, यह फिर वह उसे नहीं न, ऐसे का ऐसा चले। टेढ़ा को क्या कहते हैं, उस पगदण्डी का। यह उसका जवाब जल्दी का है या क्या है? उसने जवाब ऐसा दिया।

मुमुक्षु : पगदण्डी अर्थात् जल्दी।

पूज्य गुरुदेवश्री : है तो ऐसा। परन्तु कोई पगदण्डी में घुस भी जाये रास्ते में, ऐसा कोई मिले तो। ऐसा कि किसी ने पूछा कि यह कानजीस्वामी ऐसा मार्ग कहते हैं न? आडा-टेढ़ा रास्ता है। पगदण्डी तो सीधी जाती है। आड़ा रास्ता मिले, मिलने में खड्डे में सीधा चला जाये। उसके कहने का अर्थ दूसरा है, हों! आहाहा! ऐसा की वहाँ चढ़ जाये और यह तो हम जो कहते हैं, वह ठोस मार्ग। धोरी मार्ग। चले जाये बस, पहुँचे, पहुँचे और पहुँचे, ऐसा। अरे भगवान! यह तो एक ही मार्ग है। राग मार्ग कहो, केडी मार्ग कहो। पगदण्डी कहते हैं न? पगदण्डी। पगदण्डी का मार्ग।

यह भगवान आत्मा निमित्त का प्रेम छोड़कर, पुण्य का आग्रह छोड़कर-शुभभाव का। अपने स्वभाव की दृढ़ता में प्रवेश करे, वह एक ही मार्ग है। बस! दूसरा कोई मार्ग तीन काल में नहीं है। समझ में आया? इसलिए कहा कि मार्ग तो वास्तव में संवर है। दया, दान, भक्ति, व्रत, विकल्प, वह संवर नहीं है। वह मार्ग नहीं है। वह पुण्यास्रव है। बन्धमार्ग है। वह मार्ग नहीं। यहाँ मार्ग मोक्ष का कहना है न? समझ में आया?

इसने कुछ विचार किया नहीं और ऐसी की ऐसी जिन्दगी चली जाती है। थोभे। ओहो! ऐसा अवसर! अरबों-करोड़ों रुपये दे तो भी उसकी कीमत (आंकी) नहीं जाती। एक दृष्टान्त इसमें कहीं आया है न! वह टॉल्सटोय के पास गरीब व्यक्ति गया। गरीब (व्यक्ति)। टॉल्सटोय थे न? आहाहा! उनके पास गरीब व्यक्ति गया। (और कहा) मेरे पास कुछ नहीं है, मेरे पास कोई चीज़ भी नहीं है। मुझे किसी से कुछ दिलाओ। अच्छा भाई! एक तुम्हारी आँख दो न तो डॉक्टर दस लाख देगा। अरर्र! आँख देने की? तेरा एक पैर देगा तो उसके तुझे दो लाख देगा। पैर कैसे देना? तेरा एक हाथ देगा तो पाँच लाख देगा। वह कैसे दिया जाये? तू कहता था न कि मेरे पास कुछ नहीं है? इतनी कीमती चीज़ तो तेरे पास है। ऐसा एक टॉल्सटोय हुआ न? हाँ वह। यह कहे मेरे पास तो पाई (एक पैसा) भी नहीं है। हम तो गरीब हैं। मेरे पास तो कुछ ही नहीं है।

किसी से दिलाओ महाराज! तेरे पास कुछ नहीं? एक-एक चीज़ की इतनी कीमत है तो भी तू कहता है कि हमारे पास कुछ भी नहीं है। एक आँख दे आँख। दूसरे को तो काम आयेगी। तुझे क्या है? तेरे पास तो कोई चीज़ है नहीं। आँख दें तो हम अन्धे हो जायेंगे, पैर दें तो लूले हो जायेंगे। परन्तु पैसा मिलता है या नहीं? कीमत मिलती है न कीमत की कीमत हो जाये। अरे! परन्तु कीमत देकर फिर कौन भोगे? तब फिर भाई! तेरे पास नहीं है, ऐसा नहीं है। बहुत ही कीमती चीज़ पड़ी है। समझ में आया? यह पैसे लेने-देने से मिलती नहीं। पैसा देने से मिलती है? एक करोड़, एक आँख मिलती है आँख? चलाते हैं वह तो। पुण्य का उदय हो तो कोई वहाँ चलाते हैं न? कहो, समझ में आया?

कहते हैं कि मार्ग तो वास्तव में संवर है। मार्ग की प्रभावना कहा था न भाई? अन्तिम गाथा में है न? २६६ पृष्ठ। २६६ पृष्ठ है। यह अपने एक बार कहा था। (गाथा १७३ की टीका का दूसरा पैराग्राफ)।

मार्ग अर्थात् परम वैराग्य करने के प्रति ढलती पारमेश्वरी परम आज्ञा। लो! यह मार्ग है न? १७३ गाथा की पहली टीका की लाईन है। १७३ गाथा और पृष्ठ नं. २६६ है। नीचे की दो लाईन। एकदम नीचे की। मार्ग अर्थात् परम वैराग्य करने के प्रति ढलती पारमेश्वरी परम आज्ञा। क्या, देखो! निमित्त और राग से हटकर अपने स्वभाव में आना, वह मार्ग है। है न अमरचन्दभाई? मार्ग भगवान की आज्ञा परम वैराग्य। विकल्प से, निमित्त से, संयोग से, भेद से हटकर अपने स्वभाव में ढलना, इसका नाम मार्ग है। समझ में आया? २२५ (पृष्ठ) में है। यह आ गया है पहले? अब आयेगा नहीं? २२५ (पृष्ठ)।

यह तो **जीवस्वभाव में नियत चारित्ररूप होने के कारण निश्चय से मोक्षमार्ग है।** यह शब्द आता है न? १५४ में आया। अपने चल गयी है। १५४ गाथा। **जीवस्वभाव में नियत चारित्ररूप होने के कारण निश्चय से मोक्षमार्ग है।** देखो! अपने १५४ (गाथा) से चला। कक्षा में। १५४ गाथा। उसकी टीका की लाईन। टीका के बाद। यह मोक्षमार्ग के स्वरूप का कथन है। जीवस्वभाव में नियत चारित्र, वह मोक्षमार्ग है। १५४ गाथा नहीं मिलती? १५४ गाथा की टीका कहाँ आयी? इतने शब्द लेना है।

नियत-निश्चय। अपने ज्ञाता-दृष्टा सच्चिदानन्दस्वरूप में नियत-निश्चय चारित्र, वह मोक्षमार्ग है। उसमें चारित्र आया। दर्शन-ज्ञान तो पहले आ गये? समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : बाहर में क्या है? अन्दर में सब पड़ा है। पूरा भगवान अन्दर में पड़ा है। पूर्णानन्द प्रभु एक समय की पर्याय में भी पूर्ण नहीं आता। तो बाहर में कहाँ से घुस गया? समझ में आया?

ऐसा महान प्रभु! चैतन्य महाप्रभु! उसका जो महान त्रिकाल ज्ञाता-दृष्टा आनन्द आदि स्वभाव, उसमें निश्चय चारित्र। देखो! वह विकल्प व्यवहारचारित्र नहीं, ऐसा निकालने के लिये कहा। व्यवहार पंच महाव्रत विकल्प, वह मोक्षमार्ग नहीं है। ऐसा कहा। वह कौन जाने कहाँ से निकालते हैं यह? समझ में आया?

अकेला स्वचैतन्य प्रभु, उसका आश्रय लेकर जो चारित्र हुआ, वही मोक्षमार्ग है। तन्मयता। जितना ज्ञाता-दृष्टा का स्वीकार आवे, उसमें जितनी लीनता हो जाये, दृष्टिपूर्वक की बात है न? दृष्टि में तो जमा है कि 'चारितं खलु धम्मो' यह आत्मा है। और फिर लीनता हो जाये बस, वही मोक्षमार्ग है। चारित्र मोक्षमार्ग। बस एक ही। और धर्म का कारण सम्यग्दर्शन ज्ञान, यह तो पहले हुआ हो। स्वभाव की प्रतीति और ज्ञान पश्चात् स्वभाव में लीनता, एक ही चारित्र मोक्ष का निश्चयचारित्र एक ही मोक्ष का मार्ग है। ओहोहो! समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ था धूल में, सुख है? अलग-अलग प्रकार के हथियार लगते हैं। लगते हैं अन्दर। चारों ओर। यह अलग-अलग प्रकार का सुख कहते हैं पैसेवाले को। लड़के का सुख, लो! ओहोहो! इनका लड़का बाँधता है न दूसरा कुछ। आहाहा! राजकुमार जैसा है न लड़का। पिता ऐसा रूपवान नहीं है। लड़का रूपवान है। वह ऐसा पुण्य लेकर आया है न! लोग ऐसा कहते थे। पुण्य लेकर आया है। राजकुमार दिखता है अभी से। कहे राज का कुमार। उनके पुत्र का पुत्र छोटा। करोड़पति के घर में आया। पुण्य लेकर आया है न! पुण्य का सोझा। धूल में भी सुख नहीं। व्यर्थ में मानता है। कहो, समझ में आया?

यहाँ तो वजन अपने मार्ग वास्तव में कहो या खरेखर कहो, खरेखर कहो या निश्चय से कहो। समझ में आया? मार्ग वही संवर: 'ही' का वास्तव में अर्थ किया न? 'ही' अर्थ वास्तव किया। वास्तव में ठीक है। खरेखर कहो, वास्तव कहो, यथार्थ कहो। 'मार्गो हि संवर:' इतना शब्द संस्कृत में है। मार्गो हि संवर:। समझ में आया? पहले दो शब्द रखकर। '**अनन्तरत्वात्पापस्यैव संवराख्यानमेतत्।**' पश्चात् मार्गो ही संवर निश्चयात्मा '**ही ही खलु निश्चय यथार्थ वस्तु**' एक भगवान आत्मा पूर्ण ज्ञान, दर्शन, आनन्द, स्वभाव उसमें ही लीनता। दृष्टि की, ज्ञान की और स्थिरता की। बस यही एक संवर। यही एक मार्ग है। बाकी दूसरा मार्ग (है नहीं)। बीच में शुभ रागादि, दया, दान के विकल्प आवे, वे सब पुण्यास्रव हैं, बन्ध का कारण है। संवर नहीं, मोक्ष का मार्ग नहीं। कहो, समझ में आया?

उसके निमित्त से (-उसके लिये) इन्द्रियों, कषायों तथा संज्ञाओं का जितने अंश में... देखो! यहाँ पापास्रव की बात है न? यहाँ सर्वथा पुण्य-पाप से रहित नहीं लिया। बाद में लेंगे। पाँच इन्द्रियों के तीव्र पाप से हटना और कषायों में तीव्र कषाय से हटना और संज्ञाओं में जो तीव्र कषाय है न, उससे हटना। **जितने अंश में अथवा जितने काल...** दो शब्द लिये हैं। यावत्, तावत् जितने अंश में सम्यग्दर्शनपूर्वक, अपनी आत्मा की श्रद्धा-ज्ञानपूर्वक जितने अंश में पापास्रव से हटता है, उतने काल निग्रह किया जाता है। पापपरिणाम को रोकता है। अथवा पापपरिणाम उत्पन्न नहीं होने देता। **उतने अंश में अथवा उतने काल पापास्रवद्वार बन्द होता है।** आहाहा!

शुभभाव हो अन्दर विचार-मनन में अन्तर उठता है तो शुभभाव हो तो उतना पुण्यास्रव है। परन्तु जितने अंश में उस पाप की ओर से परिणाम हट गये हैं, उतने अंश में उतने काल पाप का निरोध, ऐसा संवर कहने में आता है। दृष्टिपूर्वक, हों!

मुमुक्षु : पाप का संवर।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, पाप का रुक जाना हुआ। पाप में, हाँ। शुभपरिणति में उस अशुभ से हटा, इतने पाप घट गये। परन्तु उस दृष्टि से, हों!

मुमुक्षु : मार्गपूर्वक है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु वह तो पहला मार्ग यह मार्ग बिना की बात भी कहाँ है ? वह अन्दर स्वभाव सन्मुख दृष्टि हुई है, उसमें वास्तव में तो उससे रुका, परन्तु वहाँ से पापपरिणाम नहीं किये तो उतना पापास्रव रुक गया। उससे दो सम्बन्ध बताये। दो का सम्बन्ध। समझ में आया ?

यहाँ पापास्रव रुका तो उतना द्रव्यास्रव पाप से नहीं हुआ। समझ में आया ? अज्ञानी की तो बात ही है नहीं। अज्ञानी की दृष्टि में तो पुण्य-पाप के परिणाम पर ही उसकी दृष्टि पड़ी है। उसके पापपरिणाम हटे तो पापास्रव रुक गये, उसे तो वे हैं ही नहीं। उसे तो मिथ्यात्व का आस्रव हमेशा चालू ही है। मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी की प्रकृति कितनी हुई इकतालीस ? मिथ्यादृष्टि को तो हमेशा इकतालीस प्रकृति बँधती है। दया, दान, भक्ति के परिणाम हों तो भी उसे इकतालीस प्रकृति महासंसार की बँधती है। और ज्ञानी युद्ध में हो तो भी इकतालीस प्रकृति का संवर उस समय भी है।

मुमुक्षु : पापास्रव रोकने से इन्द्रिय निग्रह हुआ न।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। निग्रह का अर्थ यह हुआ। अपने अतीन्द्रिय स्वरूप का अनुभव सम्यग्दर्शन हुआ है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, यह नहीं, यह नहीं। यह इन्द्रिय की ओर नहीं। पहली अभी यह बात है। कि आत्मा, आत्मा मार्ग संवर लिया है। दृष्टि में अखण्डानन्द शुद्ध राग का कर्ता मैं नहीं। पर की क्रिया का कर्ता मैं नहीं। ऐसी दृष्टि अनुभव में आयी है। उसे इन्द्रिय की ओर से हटता है तो पापास्रव रोकता है। बस इतना। अज्ञानी को तो हटता ही नहीं। उसे तो शुद्धदृष्टि है ही नहीं न।

अज्ञानी को तो इन्द्रिय से मैं काम लेता हूँ, इन्द्रिय से मैं काम कर सकता हूँ, ऐसी बुद्धि है तो मिथ्यादृष्टि है। उसे तो इन्द्रिय निग्रह है नहीं। इन्द्रिय प्रवृत्ति विस्तार की इन्द्रिय पड़ी है। यह वह बात है। स्वभाव की दृष्टि.... देखो न! मार्ग तो पहले कहा। उसके निमित्त से, उसके हेतु से। ऐसा मार्ग है, दोपहर में कही, वही यह बात है।

मैं करूँ तो किसका त्याग करूँ ? मेरी चीज़ में त्याग है ही नहीं। मैं पर के त्याग

स्वभावी हूँ। ऐसा अनुभवदृष्टि में आया, पश्चात् जितनी इन्द्रियाँ पाप की ओर से हटती हैं। परिणाम हों, परिणाम। इन्द्रियाँ जड़ की यहाँ बात नहीं है। अपने परिणाम में अशुभ परिणाम से हटता है, उत्पन्न नहीं होते, इतने पापास्रव आते नहीं। इतनी बात है। समझ में आया?

मुमुक्षु : इन्द्रिय को कौन करे?

पूज्य गुरुदेवश्री : उन्हें कौन (रोके)? वह तो मिट्टी है। उसे रोके कौन, इन्द्रिय को पोषे कौन? परन्तु भावेन्द्रिय खण्ड-खण्ड में जितने पाप के परिणाम थे, वह स्वभाव की दृष्टि सन्मुख हुई है, मैं किसी का कर्ता-फर्ता नहीं, विकल्प का नहीं। मुझमें पर का त्याग है ही नहीं। अर्थात् कि मैं पर का त्याग करूँ, ऐसा मुझमें है नहीं। मेरा स्वरूप ही राग के त्याग स्वभावी है।

ऐसी अतीन्द्रिय स्वभाव की दृष्टि हुई है। फिर परिणाम में अशुभपरिणाम उत्पन्न नहीं होने देता, उसका नाम पापास्रव रुके, ऐसा कहने में आया है। अज्ञानी पापास्रव को रोके, (ऐसा) तीन काल में (होता) नहीं। वह तो मिथ्यात्व के परिणाम बड़ा पाप तो पड़ा है। मैं इन्द्रिय को रोकूँ, इतना मन्द होऊँ, ऐसी दृष्टि तो मिथ्यात्व है—मैं खा सकता हूँ, मैं छोड़ सकता हूँ। समझ में आया?

यह तो अभी पुण्यपरिणाम करता है तो भी कर्तृत्वबुद्धि है। कर्तृत्वबुद्धि का मिथ्यात्वभाव तो साथ में पड़ा है। वहाँ पापास्रव नहीं रुकते। मिथ्यात्व को रोका नहीं तो दूसरे पाप तो कहाँ से रुकें? यह तो दृष्टि कहाँ? भूमिका में दो बात करते हैं। मार्ग तो अन्दर प्रगटाया है, मैं तो राग और विकल्प से, इन्द्रियों से खाली हूँ। उनसे मैं रहित ही हूँ। मुझे उन्हें छोड़ना है, ऐसा मुझमें है ही नहीं। ऐसी दृष्टि का अनुभव मार्ग में हुआ, तब वह विकल्प अशुभपरिणाम जितना उसने रोका और शुभपरिणाम तो है। वह है तो शुभपरिणाम आस्रव। परन्तु अशुभपरिणाम जितने रुके, उसे उतना पापास्रव रुका, ऐसा व्यवहार से कहने में आया है।

निश्चय से पुण्य-पाप दोनों विकल्परूप है। स्वरूप में स्थिर हो, वह संवर है। सम्यग्दृष्टि को ही होता है। अज्ञानी को नहीं होता। यह भी अज्ञानी को नहीं होता।

पापास्रव परिणाम सम्यग्दृष्टि जीव जब धन्धे-पानी के व्यापार परिणाम से हटकर अपने परिणाम के विचार में है तो शुभपरिणाम है, दृष्टि स्वभाव पर है, परन्तु जितना व्यापार-धन्धा, भोग, विषय, युद्ध इतने परिणाम छूट गये तो उतने नये पाप नहीं आते। इतने पाप का संवर हुआ। समझ में आया? नजर से सूझे ऐसा यह मार्ग है।

ज्ञान की नजर से ख्याल में आवे, ऐसा मार्ग है। नजर तो ज्ञान की है या आँख की है? कहो, समझ में आया? वस्तु तो.... दोपहर में जो कही थी, वही चीज़ है। परन्तु वहाँ जरा चारित्र में न्यूनता है, स्थिरता नहीं, और स्वरूप की तो दृष्टि बराबर अपोहक मैं हूँ। पर का त्याग करूँ, वह मेरी चीज़ में है ही नहीं। इन्द्रिय का निग्रह करूँ, वह भी मेरी (चीज़ में नहीं है।)

इन्द्रिय कौन? जड़ तो पर है। भाव इन्द्रिय में जरा रुकता था, वह जहाँ पापपरिणाम हटकर छूटे, उतना अतीन्द्रिय आनन्द की ओर झुका है और विकल्प शुभ का है, वहाँ अशुभ पाप रुक गये हैं। समझ में आया? क्योंकि पाँचवें गुणस्थान में, चौथे में अभी तो अशुभ पहले घटाता है न? शुभ तो होता है। होता है न दया, दान, भक्ति का शुभभाव।

मुमुक्षु : एक साथ छूट जाये....

पूज्य गुरुदेवश्री : एक साथ छूट जाये तब तो केवलज्ञान हो जाये।

मुमुक्षु : आप तो प्रतिज्ञा करते नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यह समझे बिना प्रतिज्ञा कैसी? यह प्रतिज्ञा चलती है कि प्रतिज्ञा करो कि पुण्य-पाप मेरी चीज़ नहीं है। प्रतिज्ञा करो कि पुण्य-पाप मेरी चीज़ में नहीं है। प्रतिज्ञा करो कि किसी परचीज़ का कर्तृत्व मेरी चीज़ में नहीं है। यह पहली प्रतिज्ञा सम्यग्दर्शन की है। प्रतिज्ञा दूसरा क्या है।

ज्ञानस्वभाव पर की एकत्वबुद्धि से हट जाये, इसका नाम प्रतिज्ञा की। मुझे अब मिथ्यात्व की प्रतिज्ञा है। मिथ्यात्व नहीं आवे। सम्यग्दर्शन, वह मेरी चीज़ है। मैं शुद्ध चैतन्य हूँ। मुझमें राग उत्पन्न हुआ, वह क्रिया भी मेरी नहीं। देह की क्रिया तो मुझमें है नहीं। ऐसी दृष्टि करना, वही यथार्थ प्रतिज्ञा कही जाती है। पहले मिथ्यात्व रुकता है, पश्चात् अव्रत अैर प्रमाद रुकते हैं। मिथ्यात्व रुके बिना अव्रत और प्रमाद कहाँ से

रुकेगा? इसलिए तो यह पहला शब्द लिया है। कोई ऐसा ले लेवे कि ठीक, तब इन्द्रिय का निरोध कर लो।

मुमुक्षु : मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय, (योग)।

पूज्य गुरुदेवश्री : मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय और योग। पहले मिथ्यात्व टले बिना अव्रत का त्याग हो गया? इन्द्रियनिग्रह हो गये? कहाँ से तुझे हो गयी? मानी है। द्रव्येन्द्रिय क्या, भावेन्द्रिय का भी मालिक है। खण्ड-खण्ड ज्ञान का मालिक है, पर्याय का मालिक है। द्रव्य का माालिक तो हुआ ही नहीं। समझ में आया? जिसका स्वामी है। स्वामीपना करे उसे रोके कैसे? उसे तो पुष्टि करता है। समझ में आया?

उड़द की दाल है। रत्नकरण्डश्रावकाचार में कहा न? पानी... पानी ऐसा। तलवार में पानी होता है पानी ऐसा। ऐसा कोई पानी होता है न किसी-किसी तालाब का या ऐसा कि वह पानी पीवे तो तीखी-तीखी तीखी धार, तीखी धार हो! तीखी तो स्वयं के कारण से होती है। तीखी क्या? यह तो दृष्टान्त है। तलवार होती है न वह? भरत चक्रवर्ती की। वज्र का स्तम्भ हो, उसे धर में तो वज्र का स्तम्भ है। हीरे का स्तम्भ। चक्रवर्ती है न? उसके घर में पत्थर और ईंटों के स्तम्भ नहीं होते। हीरा नीलमणि के पाट निकलते हैं तीन-तीन, चार-चार मण की अकेली नीलमणि की पाट इतनी एक रुपये भार की कीमत लाखों रुपये की। तीन-तीन मण, चार-चार मण की पाट निकले। पाट समझते हो? मोटी लम्बी। इतनी मोटी लम्बी। नीलम के स्तम्भ, नीलम की टाईल्स। चक्रवर्ती के घर में नीलम की टाईल्स होती है।

मुमुक्षु : सब यहीं रह जाता है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो सबका यहीं रह जाता है। परन्तु उसे तलवार लगे तो चीर डाले, ऐसी तलवार होती है। हीरा का स्तम्भ, हों! तलवार लगा देता है। जैसे ककड़ी... ककड़ी कहते हैं न, क्या कहते हैं तुम्हारे? जैसे ककड़ी को छुरी छेदती है, वैसे हीरे के स्तम्भ हों, अवरोधक हों और आवश्यकता पड़े तो चीर डालता है।

मुमुक्षु : वह जब..... तो बड़ा लाभ होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : किसी को लाभ है नहीं। लाभ की कहाँ बात है? यह तो उसमें

टीका कितनी है, यह बताने के लिये दृष्टान्त है। लोग काट डाले, ऐसा कहते हैं। ....पड़े उसके सामने (तो काट डाले)। मर्दन-गर्दन काटना, उसमें क्या है? दुश्मन.... विरोध करे तो मार डाले। ....उसका आयुष्य इतना हो तो मरता है। यह तो निमित्त पड़ता है। भाव में जरा सा है। तो उस पाप का रोकना हो तो सम्यग्दृष्टि को पापास्त्रव रुकते हैं। बस इतनी बात है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : .....वहाँ तो मूल मार्ग है न, हेतु से कहा न? पाठ में कहा न? '**तन्निमित्त**' देखो न? '**संवरतन्निमित्तमिन्द्रियाणि**' ऐसा कहा न? यह हेतु। संवर के हेतु से और मोक्षमार्ग के हेतु से। भावआस्त्रव भावपापास्त्रव का रुकना हुआ। तथा कषायों के, अन्दर स्थिर होने के लिये। हाँ, कषायों के। अज्ञानी अकेले अज्ञानी मिथ्यादृष्टि कषाय को अपना मानता है, इन्द्रिय को अपनी मानता है, आदि। वह तो स्वामी है, मालिक है। मालिक है, उसे कैसे छोड़े? यह तो स्वामित्व छोड़कर मार्ग का ख्याल अन्दर दृष्टि का आया है।

उसे **इन्द्रियों, कषायों तथा संज्ञाओं का जितने अंश में अथवा जितने काल निग्रह किया जाता है,...** संवर है न, इसलिए निग्रह शब्द प्रयोग किया है। **उतने अंश में अथवा उतने काल पापास्त्रवद्वार बन्द होता है।** ज्ञानी को इतने परिणाम अशुभ नहीं। सम्यग्दर्शन है, सम्यग्ज्ञान है, शुभविकल्प है तो पुण्यास्त्रव आता है। इतना पापास्त्रव उतने काल रुक गया। कहो, समझ में आया?

समकिती भी युद्ध में होता है, भोग में होता है, व्यापार में होता है। जहाज के व्यापार में। जहाज का बड़ा व्यापारी होता है। अरबों... अरबों... तो जितना काल उस सम्बन्धी अशुभपरिणाम नहीं उसे, उस मार्ग के हेतु उसमें गया, उतना पापास्त्रव नहीं आता।

इन्द्रियों, कषायों और संज्ञाओं—भावपापास्त्रव—को द्रव्यपापास्त्रव का हेतु (-निमित्त) पहले (१४०वीं गाथा में) कहा था;... लो! इन्द्रियाँ, कषायें और संज्ञायें पहले कही थी न? काल आया था। भावपापास्त्रव परिणाम द्रव्यपापास्त्रव का हेतु। नये द्रव्यपाप बँधते हैं, उसमें भावपापास्त्रव निमित्त है। **पहले (१४०वीं गाथा में) कहा था;**

यहाँ (इस गाथा में) उनका निरोध... देखो! तीव्र जो पाप कहा था, उसका निरोध।

(-इन्द्रियों, कषायों और संज्ञाओं का निरोध)... भावपापसंवर, भावपाप रुकना। द्रव्यपापसंवर, द्रव्य पाप आनेवाले नहीं थे, उसे द्रव्यपाप का संवर हुआ, ऐसा कहने में आया। **अवधारना (-समझना)।** ऐसा कहते हैं। देखो! **अवधारणीयम्...** निर्णय करना। जितना अपने स्वभाव का मार्ग प्राप्त किया है, उसमें से जितने पाप घटे, (उसे) पापास्रव संवर कहने में आता है। ऐसा अवधारण करना।

मुमुक्षु : व्यवहार संवर?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, यह निश्चय से इतने तो रुक गये न? दृष्टि है या नहीं? पापास्रव रुक गये हैं। बराबर रुक गये हैं। निश्चय से रुक गये हैं। पुण्यास्रव है। वहाँ अशुभपरिणाम नहीं तो उतने रुक गये हैं या नहीं? २४ घण्टे कहीं ऐसे पाप में वे पड़ते नहीं हैं। अमुक विचार में हो, दो-चार घण्टे स्वाध्याय में हो। देवदर्शन में बैठे हों, भक्ति, स्तवन में हों, ज्ञानी। समझ में आया? इतना उसे वह पापपरिणाम निश्चय से रुकते हैं। है ही नहीं पापपरिणाम उत्पन्न हुए नहीं तो रजकण कहाँ से आवे? वे आनेवाले ही नहीं थे। होवे वह तो व्यवहार से कथन है।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : पापावस्रव नहीं। वह तो विचार में है। अपने विचार की श्रेणी में है। कोई भक्ति-स्तुति में है, तब तो पाप के परिणाम तीव्र हैं ही नहीं। कषाय मन्द है। मन्द है। दृष्टि तो स्वभाव के ऊपर है। मन्द कषाय भी मैं नहीं। मेरी चीज़ तो वह है। मुझे तो करना-धरना है ही नहीं। स्वभाव में वीर्य की जागृति चलती है। उसमें जो तीव्र पापपरिणाम नहीं हुए, इतने पापास्रव रुकते हैं, ऐसा कहने में आया है। बस, इतनी बात! समझ में आया? १४१ (गाथा) हुई।

अब सामान्यरूप से संवर के स्वरूप का कथन। वह तो अकेले पाप का कहा था। अब पुण्यभाव, वह भी आस्रव-बन्ध का कारण है। वह भी ज्ञानी को दोनों रुक जाते हैं, तो ज्ञानी को संवर दोनों का है।

गाथा - १४२

जस्स ण विज्जदि रागो दोसो मोहो व सव्वदव्वेसु ।
णासवदि सुहं असुहं समसुहदुक्खस्स भिक्खुस्स ।। १४२ ।।

यस्य न विद्यते रागो द्वेषो मोहो वा सर्वद्रव्येषु।
नास्रवति शुभमशुभं समसुखदु:खस्य भिक्षो:।।१४२ ।।

सामान्यसंवरस्वरूपाख्यानमेतत् ।

यस्य रागरूपो द्वेषरूपो मोहरूपो वा समग्रपरद्रव्येषु न हि विद्यते भाव: तस्य निर्विकारचैतन्य-वात्समसुखदु:खस्य भिक्षो: शुभमशुभञ्च कर्म नास्रवति, किन्तु संव्रियत एव । तदत्र मोहरागद्वेष-परिणामनिरोधो भावसंवर: । तन्निमित्त: शुभाशुभकर्मपरिणामनिरोधो योगद्वारेण प्रविशतां पुद्गलानां द्रव्यसंवर इति ।। १४२ ।।

जिनको न रहता राग-द्वेष अर मोह सब परद्रव्य में।
आस्रव उन्हें होता नहीं, रहते सदा समभाव में।।१४२।।

अन्वयार्थ :— [यस्य] जिसे [सर्वद्रव्येषु] सर्व द्रव्यों के प्रति [रागः] राग, [द्वेषः] द्वेष [वा] या [मोहः] मोह [न विद्यते] नहीं है, [समसुखदुःखस्य भिक्षोः] उस समसुखदुःख भिक्षु को (-सुख-दुःख के प्रति समभाववाले मुनि को) [शुभम् अशुभम्] शुभ और अशुभकर्म [न आस्रवित] आस्रवित नहीं होते।

टीका :— यह, सामान्यरूप से संवर के स्वरूप का कथन है।

जिसे समग्र परद्रव्यों के प्रति रागरूप, द्वेषरूप या मोहरूप भाव नहीं है, उस भिक्षु को—जो कि निर्विकार चैतन्यपने के कारण [१]समसुखदुःख है उसे—शुभ और अशुभकर्म का आस्त्रव नहीं होता, परन्तु संवर ही होता है। इसलिए यहाँ (ऐसा समझना कि) मोहरागद्वेष परिणाम का निरोध, सो भावसंवर है, और वह (मोहरागद्वेषरूप परिणाम का निरोध) जिसका निमित्त है, ऐसा जो योगद्वारा प्रविष्ट होनवाले पुद्गलों

१. समसुखदुःख = जिसे सुख-दुःख समान हैं ऐसे; इष्टानिष्ट संयोगों में जिसे हर्षशोकादि विषम परिणाम नहीं होते ऐसे। [जिसे रागद्वेषमोह नहीं है, वह मुनि निर्विकारचैतन्यमय है अर्थात् उसका चैतन्य पर्याय में भी विकाररहित है, इसलिए वह समसुखदुःख है।]

के शुभाशुभकर्मपरिणाम का (-शुभाशुभकर्मरूप परिणाम का) निरोध, सो द्रव्यसंवर है ॥१४२॥

गाथा - १४२ पर प्रवचन

सब द्रव्य का आया। अब उसमें तो कितना काल कितने अशुभपरिणाम नहीं हुए। देखो, वहाँ भिक्षु को दिया।

जस्स ण विज्जदि रागो दोसो मोहो व सव्वदव्वेसु।
णासवदि सुहं असुहं समसुहदुक्खस्स भिक्खुस्स।।१४२।।

टीका :— यह, सामान्यरूप से संवर के स्वरूप का कथन है। सामान्य अर्थात् पाप को रोकना या पुण्य का आना, ऐसा कुछ नहीं, परन्तु दोनों का न आना। पुण्य-पाप के दोनों विकल्प हैं, दोनों का न आना। अकेले आत्मा की ओर का संवर, उसकी व्याख्या है।

जिसे समग्र परद्रव्यों के प्रति रागरूप,... देखो! भाषा कैसी ली है, कारण लिया है। परद्रव्य कारण लिया है। कि जितना परद्रव्य के ऊपर लक्ष्य है—देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, दया आदि तो परद्रव्य के ऊपर लक्ष्य है, उतने तो शुभपरिणाम आस्रव है। समझ में आया? अशुभ में तो स्त्री के भोग-विषय युद्ध, उसमें परद्रव्य से हटा था। यह तो सर्व परद्रव्यों के प्रति। स्वद्रव्य के आश्रय से संवर और परद्रव्य के आश्रय में जितना लक्ष्य, उतना आस्रव। यह सिद्ध करने के लिये सब लिया है। समझ में आया?

'सर्वद्रव्येषु' लेने का हेतु, भगवान आत्मा सर्व प्रशस्त या अप्रशस्त परद्रव्य का लक्ष्य छोड़कर अपने लक्ष्य में आत्मा लिया है, उसमें स्थिर हो जाये, वह सामान्य संवर है। उसे पुण्य और पाप दोनों आते नहीं। समझ में आया? अब यहाँ तो अभी सर्व परद्रव्यों में से रोके, उसे कहते हैं। वे कहे नव तत्त्व परद्रव्य है और परद्रव्य की श्रद्धा, वह सम्यग्दर्शन चौथे गुणस्थान की श्रद्धा है। अरे भगवान! कहाँ से कहाँ लाये? कहो! नौ तत्त्व परद्रव्य है, इसलिए उनकी श्रद्धा व्यवहार समकित है। स्वद्रव्य की श्रद्धा-ज्ञान तो तेरहवें में होते हैं, बारहवें में हो, वह निश्चय है। यहाँ तो कहते हैं कि पहले से

जितने परद्रव्य सामान्य सब, उनका लक्ष्य हटकर अपने एक द्रव्य में लक्ष्य-रुचि हो गयी, उसका नाम एक द्रव्याश्रय सम्यग्दर्शन है। समझ में आया?

और पश्चात् चारित्र में सब परद्रव्य। सम्यग्दर्शन हुआ था, तथापि जितना अप्रशस्त द्रव्य के ऊपर लक्ष्य था, स्त्री आदि और प्रशस्त द्रव्य पर भी लक्ष्य था। जितना पर के ऊपर लक्ष्य था, उतना पुण्य-पाप का आस्रव था। देवीलालजी! कहो! स्पष्ट है या नहीं यह? पंचास्तिकाय में सब परद्रव्य लिये। यह मोक्षमार्ग तो अब बतलाना है १५४ में।

पहले संवर तो उसे कहते हैं और वह संवर मोक्षमार्ग है। जितने परद्रव्य के लक्ष्य और आश्रय रहे, उतना आस्रव है। **जिसे समग्र परद्रव्यों के प्रति रागरूप, द्वेषरूप या मोहरूप भाव...** भाव नहीं। तीनों ले लिये। किसी परपदार्थ के प्रति रुचि का अभाव हो गया परन्तु परपदार्थ के प्रति आश्रय का भी अभाव हो गया। किसी के प्रति राग, द्वेष, मोह नहीं। **उस भिक्षु को....** मुनि को—**जो कि निर्विकार चैतन्यपने के कारण...** पर्याय कैसी उत्पन्न हुई है, निर्विकार चैतन्यपने के कारण। समझ में आया? नीचे लिखा है। देखो! समसुख-दुःख है, ऐसा लिखा है न? **जिसे सुख-दुःख समान हैं ऐसे; इष्टानिष्ट संयोगों में जिसे हर्षशोकादि विषम परिणाम नहीं होते ऐसे।** हर्ष-शोक के। सुख-दुःख का अर्थ संयोग है न अनुकूल-प्रतिकूल। उस ओर से समान है। ज्ञेयरूप हो गये हैं। अस्थिरता शुभ-अशुभ कोई नहीं।

जिसे रागद्वेषमोह नहीं है, वह मुनि निर्विकारचैतन्यमय है अर्थात् उसका चैतन्य पर्याय में भी विकाररहित है,... ऐसा बताना है न यहाँ? शुभविकल्प विकार है। परद्रव्य का लक्ष्य था देव-गुरु-शास्त्र आदि की भक्ति, उन सबसे छूटकर चैतन्यपर्याय में विकाररहित है। **इसलिए वह समसुखदुःख है।** अर्थात् संयोग अनुकूल-प्रतिकूल में अकेला ज्ञाता-दृष्टा होकर रहा है। समझ में आया?

उसे—शुभ और अशुभकर्म का आस्रव नहीं होता,... लो! वह शुभ और अशुभ परद्रव्य से सर्वथा हट गया है। स्वद्रव्य में दृष्टिपूर्वक सर्वथा लीन हो गया है। उसे शुभ-अशुभ आस्रव (होता नहीं है)। **परन्तु संवर ही होता है।** लो! उसे तो संवर होता है। वही मोक्ष का मार्ग है। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. ३८, गाथा-१४२
दिनांक - ०४-१०-१९६४, भाद्र कृष्ण १४, रविवार

पदार्थ का विस्तार है। सम्यग्दर्शन, उसका नौ पदार्थ विषय है। उन नौ पदार्थ क स्वरूप कैसा है। भगवान सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ने जैसा नौ पदार्थ का स्वरूप जाना, देखा, वैसा यहाँ कहा गया है। ऐसे नौ पदार्थ की वास्तविक यथार्थ स्वभाव-सन्मुख की श्रद्धा, उसे सम्यग्दर्शन प्रथम धर्म कहते हैं। प्रथम में प्रथम धर्म कहो या सुख कहो। उन नौ पदार्थ में अब संवर की व्याख्या आयी है। १४२ (गाथा)।

जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव इतने अधिकार चल गये। अब संवर का अधिकार चलता है। १४२ फिर से। **यह, सामान्यरूप से संवर के स्वरूप का कथन है।** १४२। सामान्य अर्थात् संक्षेपरूप से संवर अर्थात् आत्मा में पुण्य, पाप आदि जो परिणाम आते थे, होते थे, उनका रुक जाना। अपने आनन्द ज्ञायकस्वरूप चिदानन्द का अवलम्बन लेकर परद्रव्य के ओर की रुचि छोड़कर अपना एक स्वभाव शुद्ध आनन्द ज्ञायक है। ऐसी रुचि करना, वह पहले सम्यग्दर्शनरूपी संवर है। समझ में आया?

संवर कहो, धर्म कहो, सुख कहो, शुद्धपरिणाम कहो, सब एकार्थ है। **यह, सामान्यरूप से (संक्षेप में) संवर के स्वरूप का कथन है।** अर्थात् धर्म के स्वरूप का कथन है। **जिसे...** जीव जीव को **समग्र परद्रव्यों के प्रति...** देखो! क्या कहते हैं यहाँ? वह अपना आत्मा है, वह ज्ञान, दर्शन आदि से भरपूर पदार्थ है। और उसकी जितनी परद्रव्य के प्रति प्रीति होती है और परद्रव्य के प्रति अप्रीति होती है, वह सब भाव आस्रव और विकारभाव है। उस परद्रव्य के ओर की रुचि छोड़कर समग्र आत्मा के अतिरिक्त अनन्त पदार्थ अपने अतिरिक्त अनन्त स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, देव, गुरु, शास्त्र आदि सब परपदार्थ है। यहाँ मोक्ष की बात नहीं है। यहाँ परद्रव्य की बात है। मोक्ष की यहाँ रुचि, वह तो स्वभाव की रुचि है। समझ में आया? उसकी यहाँ बात नहीं है।

यहाँ तो स्वद्रव्य का अवलम्बन करके परद्रव्य का अवलम्बन छूटना, उसका नाम संवर और धर्म है। ओहोहो! कहो बल्लभदासभाई! गजब व्याख्या यह! भगवान

सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ वीतरागदेव जिन्हें एक समय में तीन काल, तीन लोक अपनी पर्याय की पवित्रता में जानने में आये। उन भगवान की वाणी इच्छा बिना निकली, उस वाणी को शास्त्र कहने में आया। उन शास्त्रों में से यह पंचास्तिकाय नाम का एक शास्त्र है। आत्मा को सुख कैसे होता है... सुख कहो, धर्म कहो, संवर कहो, शुद्धदशा कहो या सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की मोक्षमार्ग की दशा कहो, सब एक अर्थ में है। अभ्यासु को, इस संसार के सुख की बात नहीं है।

अपने आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द है। तो सर्वज्ञ को पूर्ण अतीन्द्रिय आनन्द प्रगट हुआ और परमात्मा को अनन्त ज्ञान-दर्शन-वीर्य प्रगट हुए, ऐसे अन्तर आत्मा में से जो प्रगट हुआ, वह अन्दर में था, ऐसा स्वद्रव्य स्वभाव के सन्मुख होकर उसकी रुचि, अनुभव दृष्टि करे, उतनी परद्रव्य के प्रति की उसे रुचि छूट गयी। समझ में आया? सर्व परद्रव्य के प्रति की रुचि छूट गयी। देव-गुरु-शास्त्र की रुचि, वह भी एक राग है। समझ में आया?

एक भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में वस्तु... वस्तु अनन्त गुण का धाम प्रभु! अपना निज स्वभाव, उसका अवलम्बन लेकर **जिसे समग्र परद्रव्यों के प्रति रागरूप, द्वेषरूप या मोहरूप भाव नहीं है,...** पूर्ण संवर की बात की है न? तो पहले मोह से बात करते हैं। सभी परद्रव्य अपने अतिरिक्त अनन्त परपदार्थ, उसमें इष्ट-अनिष्टबुद्धि छोड़कर अपना ज्ञायकस्वभाव चिदानन्द प्रभु की अन्तर में रुचि-दृष्टि होकर सम्यग्दर्शन, ज्ञान का परिणमन होना, इसका नाम प्रथम में प्रथम संवर है। प्रथम धर्म है, प्रथम आनन्ददशा का अनुभव है। उसे प्रथम शुद्धदशा की पर्याय कहते हैं। ओहोहो!

मुमुक्षु : चौथे गुणस्थान की बात है?

पूज्य गुरुदेवश्री : चौथे गुणस्थान की बात चलती है। बल्लभदासभाई! ऐसा चौथा गुणस्थान! जैन में तो देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा मानी भगवान सच्चे। जाओ हो गया समकित। प्रभु! ऐसा नहीं है, भाई! तुझे खबर नहीं। समझ में आया? समझाये छे अर्थात् समझ में आता है? तुम्हारी हिन्दी भाषा में। भगवान आत्मा (अर्थात्) एक सेकेण्ड के असंख्यवें भाग में पूर्णानन्द प्रभु, 'सर्व इदं' मैं सर्वज्ञस्वभाव सम्पन्न हूँ।

ऐसे समस्त परपदार्थ से रुचि, सावधानी अभिप्राय पर से छोड़कर अपना ज्ञायकभाव पूर्णानन्द की ओर का झुकाव होकर सम्यग्दर्शनरूपी पर्याय संवर प्रगट हुई, उसका नाम संवर, धर्म और सुखरूप दशा कहते हैं। आहाहा! जैनदर्शन में तो ऐसे नाम भी कहीं सुनने में नहीं आते। ऐसा करो—भक्ति करो, पूजा करो, व्रत करो और अपवास करो। आहाहा! अरे भगवान! परन्तु तू कौन है? कहाँ से हटना है और कहाँ जाना है? कहाँ से हटना, वह चीज़ क्या है और जिसमें जाना है, वह चीज़ कैसी और किस प्रकार है। जयन्तीभाई!

भगवान सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ देवाधिदेव फरमाते हैं कि अरे, आत्मा! संवर किसे कहते हैं कि **जिसे समग्र परद्रव्यों के प्रति...** पहले अपने मोहरूप भाव नहीं, ऐसा लगाते थे। सुनो! **जिसे समग्र परद्रव्यों के प्रति...** राग-द्वेष बाद में लेंगे। मोहरूप भाव नहीं। समग्र परद्रव्यों के प्रति यह ठीक, यह अठीक—ऐसी रुचि नहीं। अपने ज्ञायकस्वभाव पूर्णानन्द के प्रति जिसकी दृष्टि हुई, उसे अपने द्रव्य के अतिरिक्त समस्त परद्रव्य ज्ञेयरूप हो गये है। समझ में आया? परद्रव्य यह ठीक है, यह अठीक है—ऐसा सम्यग्दृष्टि की दृष्टि में नहीं रहता। जो भिन्न पदार्थ है, उन्हें मेरे साथ कुछ सम्बन्ध है ही नहीं। मेरा द्रव्य एक सेकेण्ड के असंख्यवें भाग में सच्चिदानन्द जैसा परमात्मा का सिद्धस्वभाव है, वह प्रगट है। ऐसा मुझमें स्वभाव शक्ति सत्वरूप पड़ा है पूर्ण प्रभु। ऐसी अपने द्रव्य पर दृष्टि लगाकर सर्व परद्रव्य के प्रति प्रीति, रुचि, मिथ्यात्व की छूट जाना, यह उसका नाम प्रथम सम्यग्दर्शन संवर कहा जाता है। तब से धर्म की शुरुआत होती है। कहो, समझ में आया? यहाँ तो लाखों लोग धर्म-धर्म तो बहुत करते हैं। भाद्र महीना, यह श्रावण गया। आठ-आठ अपवास, कितने ही दस-दस। अरे भगवान! यह उपवास किसे कहते हैं, यह तो आहार-पानी नहीं आया, वह तो जड़ की-अजीव की दशा हुई। तुझमें कदाचित् आहार न करूँ, ऐसा भाव हुआ हो तो भी शुभराग का विकल्प, राग का विकल्प पुण्य हुआ है; धर्म नहीं। आहाहा! धर्मचन्दजी! यह धर्म नहीं। यह धर्मचन्द नहीं।

मुमुक्षु : करमचन्द है। कुछ मददगार तो है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल नहीं। क्या मददगार है? राग मददगार है, अपनी सम्यग्दृष्टि, अरागी दृष्टि को राग मददगार है? उसमें थे न पहले! गले तक घुस गये थे पहले। अब और थोड़ा-थोड़ा बैठता है। समझ में आया?

भगवान सर्वज्ञ परमात्मा ने इन्द्र की उपस्थिति में, गणधर की उपस्थिति में, नरेन्द्र की उपस्थिति में समवसरण में फरमाया। अभी भी परमात्मा महाविदेहक्षेत्र में सीमन्धर प्रभु त्रिलोकनाथ की वाणी द्वारा ऐसी धर्म प्ररूपणा होती है। समझ में आया? तो कहते हैं कि भाई! आहाहा! देखो! यह सर्व द्रव्य आये न ऊपर जरा हमारे अधिक? समझ में आया? एक भगवान अपना स्वद्रव्य। बस, अपने स्वद्रव्य पर अन्तर झुकाव होने से, अपने अतिरिक्त देव-गुरु-शास्त्र, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, शत्रुंजय और सम्मेदशिखर सब परद्रव्य है। समझ में आया?

अपने एक ओर राम और एक और गाँव। एक और अपना निजात्मस्वभाव भगवान राम-आतमराम, जिसमें अनन्त शान्ति, ज्ञान, आनन्द भरपूर है। ऐसे निज आत्मा पर, स्वद्रव्य पर दृष्टि करने से अपने अतिरिक्त अनन्त परद्रव्य त्रिलोकनाथ का समवसरण में भगवान की वाणी, वह भी परद्रव्य है। उस पर जितना लक्ष्य रहता है, उतना विकल्प और आस्रव होता है। उससे लाभ मानता है, तो वह मिथ्यात्वभाव होता है। ओहोहो! समझ में आया?

ऐसा तो अब जैनदर्शन में सुना नहीं था। ऐ, बल्लभदासभाई! भाई! हमने तो कन्दमूल नहीं खाना, रात्रि भोजन नहीं करना, सामायिक-प्रौषध करना, भाई ऐसा हमने सुना और यह फिर कहाँ से नया (निकाला)।

मुमुक्षु : प्रशस्त राग है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रशस्त राग है तो शुभ आस्रव है। वह संवर नहीं, धर्म नहीं। समझ में आया? देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति का प्रेम, वह प्रशस्त शुभराग है। परजीव को न मारना, वह भाव शुभराग है। भगवान की पूजा, शत्रुंजय, सम्मेदशिखर, गिरनार, पूजा का, भक्ति का, यात्रा का भाव शुभराग है। वह आस्रव है, संवर नहीं; इसलिए तो यहाँ परद्रव्य लिया है। समझ में आया?

समग्र परद्रव्यों... है पाठ ? टीका देखो ! यह महा सिद्धान्त है। वीतराग परमात्मा के घर के नहीं। उन्होंने बनाये नहीं। हैं, वैसा जाना है, है वैसा कहा है। किसी द्रव्य की किसी दशा के भगवान कर्ता-फर्ता नहीं हैं। समझ में आया ? भगवान तो सर्वज्ञ परमात्मा पूर्ण एक समय में तीन काल, तीन लोक का ज्ञान हुआ। जैसा है, वैसा हुआ, वैसा कहा, ऐसा है। कहो, फूलचन्दजी !

मुमुक्षु : क्लीयर बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात तो क्लीयर है। बाकी दुनिया ने गड़बड़ कर दी है। आहाहा ! देखो ! शब्द है ? **जिसे...** अर्थात् जिसे अर्थात् ध्रुव आत्मा को **समग्र परद्रव्यों के प्रति...** अपने द्रव्यस्वभाव सिद्ध (रूप) की दृष्टि हुई तो सभी अनन्त पदार्थ के प्रति मोहरूप भाव नहीं। पहले मिथ्यात्व के भाव का नाश किया। यहाँ तो समग्र संवर की बात है न ? पश्चात् राग और द्वेषरूप। मोह का नाश हुआ, पश्चात् भी जितने देव, गुरु, शास्त्र के प्रति, दया के प्रति जितना राग होता था लक्ष्य, वह राग था, शुभराग। वह भी छूटकर स्वभाव सन्मुख स्थिरता हुई, तब दृष्टिपूर्वक वीतरागदशा हुई, उसका नाम सामान्य संक्षेप में संवर, धर्म, सुखरूप दशा, स्वतन्त्र शुद्धदशा भगवान उसे धर्म कहते हैं। कहो, यह कोई गुप्त-बुप्त बात नहीं है। यहाँ तो ढिंढ़ोरा पीटकर बात बाहर निकलती है। अमुलखदासभाई ! है ही ऐसा है। ऐसा इसे निर्णय किये बिना धर्म हो, (ऐसा) तीन काल में (होता) नहीं। समझ में आया ?

यहाँ तो सामान्य ले लिया न ? मोह, मिथ्यात्व और राग-द्वेष सब। पहले तो मिथ्यात्व का नाश होता है। परद्रव्य से बिल्कुल मुझे लाभ होता है, यह दृष्टि छूट जाती है। परद्रव्य देव, गुरु, शास्त्र हो या परवस्तु। उससे लाभ (माने), तब तो दृष्टि पर के ऊपर चली गयी। वह रुचि छूटकर पहले स्वद्रव्य में मुझे लाभ है। अनन्त आनन्द का कन्द मैं पूर्णानन्द प्रभु हूँ। मेरा सिद्ध स्वभाव मुझमें पड़ा है, उसे दृष्टि और स्थिरता करके एनलार्ज करके पर्याय में लाना है। पर्याय में-अवस्था में परमात्मपद लाना है, अन्दर में पड़ा है वह (लाना है)। बाहर कहीं नहीं पड़ा। (जिनेन्द्र) भगवान के पास अपना परमात्मा नहीं है। कहो, समझ में आया ? भगवानभाई ! यह भगवान में भगवानभाई याद आये और। भगवान परन्तु खोजबीन कहाँ करे भगवान ऐसा ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : जाने, ऐसा समझता है, तब तक भी विकल्प है। समझने में जितना लक्ष्य पर के ऊपर जाता है, उतना विकल्प शुभास्रव है। संवर नहीं। यह तो यथार्थ बात की बात है या नहीं? यह समझे। कक्षा में समझे। ठीक आया, कहते हैं। श्रावण महीने में कक्षा चलती है तो तुम्हारे जैसे प्रौढ़ बहुत ही आते हैं। प्रौढ़। परन्तु कक्षा में समझना क्या? कक्षा में समझने में क्या लेना? कि अपना भगवान, अपना स्वरूप मैं पूर्ण शान्त-आनन्द का धाम। समझ में आया? जिसमें ज्ञान, दर्शन, आनन्द की किरण फूटती है, ऐसा धाम मेरा स्वभाव शुद्ध, ऐसी अन्तर्दृष्टि लगाकर पर अनन्त पदार्थ के प्रति लाभ-अलाभ की रुचि छूट जाना, यह उसका नाम सम्यग्दर्शन संवर कहा जाता है। परन्तु अभी सम्यग्दर्शन होने के बाद भी अभी शुभराग देव, गुरु, शास्त्र के प्रति आता है, रुचि नहीं है कि उनसे लाभ है, परन्तु शुभराग आता है। दया, दान का भाव आता है। और कोई प्रतिकूल हो तो उसके प्रति द्वेष (होता है) अपनी अस्थिरता के कारण, उस चीज़ के कारण नहीं। अपनी कमजोरी के कारण; प्रतिकूलता के कारण द्वेष नहीं, अनुकूलता के कारण राग नहीं। क्योंकि रुचि बदल गयी है।

इतना अपना दव्यस्वभाव ज्ञायकमूर्ति है, उसके अतिरिक्त अनन्त परद्रव्य, उनसे लाभ (होता है, वह) लाभ, उनसे नुकसान (होता है, वह) नुकसान, ऐसी दृष्टि पहले छूट गयी। लाभ तो मेरे चैतन्यद्रव्य स्वभाव की अन्तर अनुभव दृष्टि से लाभ है। परद्रव्य से मुझे कुछ लाभ है नहीं, वैसी दृष्टि प्रथम हो, उसका नाम प्रथम सम्यग्दर्शन-संवर कहा जाता है और फिर अभी कमजोरी से अनन्त परद्रव्य के कारण नहीं, परन्तु अपनी कमजोरी से अनुकूल के प्रति राग, अनुकूलता के कारण नहीं। प्रतिकूलता के कारण द्वेष नहीं परन्तु अपनी कमजोरी से राग-द्वेष की जो आसक्ति थी, वह स्वभाव की स्थिरता होकर उस राग-द्वेष से छूट जाना, इसका नाम चारित्ररूपी संवर है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : बात तो ऐसी है। वीतरागमार्ग परमात्मा का मार्ग इन्द्र जिसे मानते हैं, भगवान फरमाते हैं, गणधर जिसे स्वीकार करते हैं। महाविदेहक्षेत्र में मौजूद

है। समझ में आया? यह कोई साधारण मनुष्य का धर्म कल्पना करके मान ले, ऐसी चीज़ नहीं है। माँगीरामजी! ओहोहो! जिसे समग्र परद्रव्य के प्रति रागरूप अर्थात् आसक्तिरूप, द्वेषरूप अरुचिरूप, वह भी चारित्रदोष है और मोहरूप मिथ्यात्वदोष है। पर से लाभ नुकसान माननेवाले। यह दृष्टि छूट गयी और अपने द्रव्य सन्मुख दृष्टि हुई और फिर परद्रव्य के कारण नहीं परन्तु अपनी कमजोरी से राग-द्वेष का आस्रव था, वह अपने स्वभाव के आश्रय से उसे रुक गया, वह इसका नाम भगवान भावसंवर कहते हैं।

भजन में ऐसा मानो, क्या मानो मेरु उठाना हो ऐसा लगे, कभी सुना नहीं। छह काय की दया पालना, भगवान की भक्ति करना, अपवास करना और बहुत पूजा करना, सिद्धचक्र लगा देना और ऐसे करना और वैसे करना। परन्तु कौन करे, सुन तो सही! वह तो परद्रव्य है। तीन काल, तीन लोक में परद्रव्य की पर्याय कौन कर सकता है? ईश्वर कर्ता मानो जगत का तो उसका निषेध करे। नहीं, (ईश्वर) कर्ता नहीं। और सामने (वाला) जगत का कर्ता! दृष्टि, हाथ चलाता है, बोलता है, वह हमसे होता है। एक की एक दृष्टि हुई कर्ता जैसी एक वर्ग का मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? हम जैन हैं, हम ईश्वर को नहीं मानते। बहुत अच्छा! चैतन्य ईश्वर को नहीं मानो। जड़ को मानो न? इस शरीर की क्रिया हम कर सकते हैं तो तुम ईश्वर हुए, जड़ के। समझ में आया?

कर्म से हमारे में विकार होता है। तो कर्म तुम्हारा ईश्वर हुआ। ऐसा है ही नहीं। परद्रव्य से अपने में विकार हो या परद्रव्य अपने को नुकसान, लाभ करे, ऐसी परद्रव्य में ताकत नहीं और अपने में ताकत नहीं। परद्रव्य से मान ले, ऐसी मान्यता सच्ची है ही नहीं। झूठी दृष्टि है। समझ में आया? सब परद्रव्य अपने से भिन्न कर्म हो, देव, गुरु या शास्त्र हो, सम्मेदशिखर या गिरनार, शत्रुंजय हो, सब परद्रव्य है। अपने द्रव्य-वस्तु से वे सब परद्रव्य है। उससे लाभ-अलाभ मानने की दृष्टि छोड़कर अपने द्रव्य से लाभ होगा, ऐसी दृष्टि उसमें जम जाये, उसका नाम सम्यग्दर्शन धर्म पहले में पहली धर्म की शुरुआत वहाँ से होती है। पश्चात् राग-द्वेष का त्याग। सम्यग्दृष्टि होने पर भी अभी आसक्ति का राग-द्वेष होता है। पश्चात् स्वरूप में स्थिरता करके राग-द्वेष की उत्पत्ति न होना, शान्ति और संवर आत्मा के आनन्द की उत्पत्ति होना, इसका नाम चारित्ररूप संवर

है। पहले सम्यग्दर्शनरूपी संवर कहा। पश्चात् चारित्ररूप संवर होता है। चारित्ररूप संवर सम्यग्दर्शन के संवर बिना नहीं होता। समझ में आया?

उस भिक्षु को.... अब यहाँ सच्चे और पूर्ण संवर की बात ली है न? पूर्ण संवर। अर्थात् मोह और राग-द्वेष तीनों जिसे छूट गये, अपने स्वभाव-सन्मुख एकदम उग्र स्थिरता हुई, ऐसे साधु को। अथवा साधु की मुख्यता से बात ली है। समझ में आया?

कि जो निर्विकारचैतन्यपने के कारण, ऐसी अन्तर परिणति निर्मल। सर्व अनन्त परपदार्थ की रुचि छूट गयी, स्वद्रव्य की दृष्टि-रुचि हुई। सर्व परपदार्थ के प्रति निमित्त के प्रसंग में अपनी कमजोरी से राग-द्वेष की आस्रव वृत्ति उठती थी, वह स्वभाव की स्थिरता द्वारा जिसने निर्विकार चैतन्य पर्याय परिणति प्रगट की है। वह तो एक घण्टे सुने तो खबर पड़े लो! कन्दमूल नहीं खाना, आलू नहीं खाना। शकरकन्द में अनन्त जीव है। भगवान ने अनन्त जीव कहे हैं। बात सच्ची है, कौन ना करता है। परन्तु खा कौन सकता है? सुन तो सही! खाने का भाव करना, वह पाप है। समझ में आया?

यह तो किसी ने सुना नहीं और खबर भी नहीं। वह तो सब परपदार्थ है। यहाँ समग्र परद्रव्य लिये। तो क्या आत्मा परद्रव्य खा सकता है? परद्रव्य छोड़ सकता है? परद्रव्य क्या आत्मा में घुस गया है? भगवान आत्मा भिन्न है, परद्रव्य भिन्न है। धरमचन्दजी!

मुमुक्षु : शरीर को स्वस्थ रखता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वस्थ ब्वस्थ। स्वस्थ किसे कहना?

मुमुक्षु : स्वस्थ शरीर में आत्मा रहता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : माननेवाले की बिल्कुल मूढ़ दशा है। वह परद्रव्य है। रोग हो, स्वस्थ हो, उससे आत्मा को कोई लाभ-अलाभ है ही नहीं। ऐई! देवानुप्रिया! जैचन्दभाई के भाई! चिल्लाहट मचाते हैं। शरीर में जरा ऐसे हो वहाँ (चिल्लाहट मचाते हैं)। लक्ष्य करके दुःखी होते हैं। यह लोग मूढ़ हैं, ऐसा मानते हैं कि शरीर स्वस्थ हो तो मन स्वस्थ रहे, परिणाम स्वस्थ हो, मूढ़ है। शरीर स्वस्थ मछलियाँ पानी में बहुत स्वस्थ रहती हैं। उन्हें तो लेप भी नहीं लगता।

अज्ञानियों ने ऐसी मिथ्यात्व की गन्दगी चलायी है (कि) शरीर स्वस्थ रहे तो मन स्फूर्ति रहे। स्फूर्ति रहे! तुझे राग रहे, सुन न अब? साला मूढ! शरीर तो मिट्टी है, धूल है, चमड़ी, हड्डियाँ हैं। अजीव तत्त्व तुझे स्पर्शा भी नहीं। तू भी उसे कभी स्पर्शा नहीं। स्पर्शा ही नहीं। छूते नहीं, समझे? हमारी काठियावाड़ की भाषा में अड़ता भी नहीं (ऐसा कहते हैं)। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को छूता भी नहीं कभी। हाँ, परन्तु ऐसा कहते हैं हो अमरचन्दभाई! यदि शरीर ऐसा हो तो....

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, ऐसा नहीं। यह तो स्वस्थ शरीर की बात है। शरीर नहाया-बहाया तो स्फूर्ति रहे, मन स्फूर्ति रहे, मूढ़ है। तुझे राग की स्फूर्ति है। उसमें अशुभराग हुआ। ऐई! देवीलालजी! दुनिया से सब बात अलग है। वीतराग त्रिलोकनाथ की बात, दुनिया से अलग हो - कुम्हार भी ऐसा कहते हैं कि जीव को नहीं मारना। यह भी भगवान बात करे? सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ। भाई! परद्रव्य शरीर आया। शरीर स्वस्थ हो तो मुझे लाभ (हो) मिथ्यादृष्टि मूढ़ है। और शरीर में ग्लानि हो, रोग हो, विष्टा निकले तो आत्मा क्या धर्म कर सकता है? मूढ़ है।

सातवें नर्क का नारकी रवरव पाँच पासडा है। यह है न नीचे? उसमें सातवें नरक में पाँच पासडा है। एक पासडा में तैंतीस सागर की स्थिति है। रवरव अपरिठाणा, एक समय में शरीर में सोलह रोग, सोलह रोग। श्वास, खाँसी, कफ, ऐसे चारों ओर ज्वर सोलह रोग। कहाँ स्वस्थ शरीर है। कोई क्षण में अस्वस्थ शरीर का लक्ष्य उसे हो तो, ओहो! यह चीज़ है? मैं यह नहीं। मैंने मनुष्यपने में सुना था कि तेरा आत्मा आनन्द पवित्र है। मैंने प्रयोग नहीं किया। मैंने सुना था परन्तु मैं जागृत हुआ नहीं। ऐसी शरीर की अस्वच्छता अकेली विष्टा में पड़ा था शरीर। ऐसे अन्दर गुलांट खाता है। मैं आत्मा आनन्दकन्द हूँ। ऐसा अपरिठाणे नारकी अनन्त काल में सम्यग्दर्शन प्रगट नहीं हुआ, वह प्रगट कर सके। समझ में आया? अमरचन्दभाई! क्या शरीर बाधक है?

मुमुक्षु : सौ टके की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सौ टके की बात है।

मुमुक्षु : बीच का मार्ग थोड़ा....

पूज्य गुरुदेवश्री : बीच का मार्ग है न यह। बीच का यह कि पहली दृष्टि करना, पहले राग-द्वेष नहीं छूटते। यह बीच का मार्ग है। पहले राग-द्वेष आसक्ति नहीं छूटती। परन्तु पहली सम्यग्दृष्टि कर सकता है। यह बीच का मार्ग। और सम्यग्दर्शन होने के बाद वीतरागता हो जाना, वह उत्कृष्ट मार्ग है।

यह पहला मार्ग है। सातवें नरक में अपरिठाणे कितना दुःख है वहाँ? गुलांट खा जाता है अन्दर, विष्टा हो। ओहोहो! और नौवें ग्रैवेयक में इतने साधन हैं तो मिथ्यादृष्टि वहाँ भी रहता है।

और भगवान के समवसरण में मनुष्य जाता है। भगवान के समवसरण में। वहाँ भी मिथ्यादृष्टि रहता है। समवसरण क्या करे? राज का.. कुँवर महान। अपनी अन्तर शुद्ध वस्तु क्या है? पर के साथ मुझे कोई सम्बन्ध भी है नहीं। मैं भिन्न, तू भिन्न। ऐसा अन्तर में परद्रव्य की अनुकूलता, प्रतिकूलता के कारण मुझे लाभ, नुकसान हो, यह मान्यता मिथ्यादृष्टि मूढ़ की है। उसे जैन कहते नहीं।

जैन कोई वाड़ा नहीं है, सम्प्रदाय नहीं है। जैन वस्तु का स्वरूप है। जैन कोई सम्प्रदाय नहीं कि हमारे ऐसा धर्म और तेरा ऐसा धर्म। जैन अर्थात् आत्मा का स्वभाव पूर्ण वीतराग ज्ञानानन्द पड़ा है। वह अज्ञान और राग-द्वेष को स्वभाव के आश्रय से जीतना, उसका नाम जैन कहा जाता है। जैन कोई सम्प्रदाय नहीं है। वस्तु का स्वरूप ऐसा है। समझ में आया? सुना नहीं जैन क्या है? जैन की उपाधि लगा दी। हम जैन हैं, हम जैन हैं। जैन किसे कहते हैं। समझ में आया?

समग्र शरीर अस्वस्थ हो तो उसके घर में रहा। अरे! मन भी थोड़ा अस्वस्थ हो जाये, अस्थिर थोड़े रजकण ऐसे हो जायें, तो वह भी उसके घर में रहा। मेरी चीज़ अखण्ड ज्ञायकमूर्ति। स्वद्रव्य का आश्रय किया (तो) परद्रव्य से इष्ट-अनिष्ट की रुचि छूट गयी। इसका नाम पहले में पहला शुरुआत का सम्यग्दर्शन संवर धर्म है। पश्चात् ज्ञानी को भी राग-द्वेष उत्पन्न होता है। विषय का, भोग का, युद्ध का, व्यापार का ज्ञानी को भी राग होता है। और प्रतिकूल चीज़ के प्रसंग में प्रतिकूल चीज़ के कारण से नहीं

परन्तु स्वयं के कारण से वहाँ द्वेष समकिती को भी होता है। जितने राग-द्वेष रहें, उतना आस्रव है। पश्चात् स्वभाव में स्थिरता करके पुण्य-पाप का आस्रव छूट जाये, वह वीतरागी संवर है। समझ में आया?

मार्ग ही पकड़ा नहीं। उल्टे चले, जाना हो भावनगर और ढसा जाये। भावनगर जाना हो, भावनग। यहाँ ढसा। जा पड़े ऐसे जाये। अपना शुद्ध स्वरूप परमानन्द एक। उस ओर जाना है तो कहे बाहर से यह करो, उससे उसमें जाओगे। ऐसा करो वहाँ विकल्प-राग करो तो अन्दर में जाओगे। धूल में भी नहीं जायेगा। समझ में आया? राग करो, फिर सम्यग्दर्शन होगा। पहले प्रशस्त राग करो। राग से अभी... सम्यग्दर्शन तो अरागी दृष्टि है, वीतरागी दृष्टि है। राग कारण और वीतरागी दृष्टि कार्य (ऐसा) मूढ़ मानता है। भगवान की आज्ञा नहीं समझनेवाले ऐसा मानते हैं।

मुमुक्षु : एकदम छूटता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : दृष्टि एकदम छूटती है। राग-द्वेष फिर क्रम से छूटते हैं। चारित्र में क्रम पड़ता है, श्रद्धा में नहीं। श्रद्धा में एक साथ किसी भी द्रव्य से मुझे लाभ नुकसान नहीं है। मेरे द्रव्य से लाभ एक समय में, एक क्षण में। पश्चात् राग-द्वेष घटना। राग-द्वेष घटना, वह चारित्र है। वह क्रम-क्रम से (होता है)। समझ में आया? राग-द्वेष तो ज्ञानी को रहते हैं। पूर्ण वीतराग कहाँ हो गये हैं। दृष्टि एक साथ। एक साथ धड़ाका।

यह आत्मा पुण्य-पाप का विकल्प उठे, वह आस्रव, परद्रव्य मुझसे भिन्न। मेरी चीज़ राग और आस्रव और पर से भिन्न। वह तो एक दृष्टि में कोई क्रम है ही नहीं। समझ में आया। दृष्टि या तो सम्यक् और या दृष्टि मिथ्यात्व। पश्चात् राग-द्वेष तो ज्ञानी को भी रहते हैं। रहे, वह अलग बात है। परन्तु राग का प्रेम नहीं। राग से लाभ नहीं। ज्ञानी को दया, दान का भाव भी आता है। परन्तु उसे पुण्यास्रव समझता है। हिंसा, भोग का भाव आता है, उसे पाप समझता है। अपना स्वभाव विकार से भिन्न अधिक दृष्टि में रखा है। अपना रक्षण अधिक रखा है। भिन्न होता है तो है। इतना पाप, इतना आस्रव। अभी तो सम्यग्दर्शन हुआ। तीर्थंकर तो सम्यग्दर्शन लेकर आते हैं तीर्थंकर तो। क्षायिक समकिती तो तीन ज्ञान लेकर माता के उदर में आते हैं। छियानवें हजार (रानियाँ) के

साथ विवाह करता है। विवाह। सम्यग्दृष्टि (चक्रवर्ती) छियानवें हजार के साथ विवाह करता है। धरमचन्दजी! सुना है या नहीं? शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ। उसमें क्या है? वह तो राग है तो चारित्रदोष है।

मुमुक्षु : संसार का स्वरूप....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, संसार स्वरूप राग है, दोष है।

मुमुक्षु : विवाह करने का राग!

पूज्य गुरुदेवश्री : विवाह राग है। सम्यग्दर्शन तो अनुभव हुआ। परन्तु वह अस्थिरता (का दोष) चारित्रदोष का राग आया। चारित्रदोष दूसरा, दर्शनदोष दूसरा। दोनों की खबर नहीं। खबर नहीं, कुछ खबर नहीं। सुना नहीं। जैनदर्शन वस्तु क्या है, सुना ही नहीं। विवाह किया....

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : तुमने दरकार की नहीं। सेठ! नहीं, शोभालालभाई! तुमने दरकार की तो क्यों सत्य नहीं मिला? सत् के शोधनेवाले को सत् न मिले, ऐसा नहीं होता। कहो, समझ में आया?

पहले विवाह क्यों करते हैं? कि राग आता है। समझते हैं कि मेरी कमजोरी है। सम्यग्दर्शन निर्मल है। क्षायिक सम्यक्त्व होता है। छियानवें हजार के साथ विवाह करते हैं। लग्न करते हैं क्या? उसमें सुख मानते हैं? बिल्कुल नहीं। वह बात पूरी यह तो अलौकिक बात है। राग आता है, विवाह करते हैं। भरत चक्रवर्ती दूल्हा। हमेशा का दूल्हा। तीन सौ-तीन सौ रानी-कन्या से विवाह करे हमेशा।

यह देह की क्रिया मैं नहीं कर सकता। मुझसे होती नहीं और राग आया है, वह मुझे आनन्ददायक नहीं, दु:खदायक है। ऐसा अन्तर में विवेक-सम्यग्दर्शन में अन्तर में विवेक कायम रहता है, इसका नाम सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन हुआ और तुरन्त ही राग-द्वेष चले जायें, तब तो केवलज्ञान हो जाये। तुरन्त ही सम्यग्दर्शन और केवलज्ञान हो गया। बीच में गुणस्थान रहे नहीं। चौथा, पाँचवाँ, छठवाँ, सातवाँ।

मुमुक्षु : महाराज! इस बात को जरा विस्तार से.....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, कहा न? कि विवाह करना, वह राग है। चारित्र का-अस्थिरता का दोष है।

मुमुक्षु : संसार बढ़ाने की बात है न.....

पूज्य गुरुदेवश्री : बढ़ता नहीं परन्तु तुम्हें अभी खबर नहीं। बढ़ता नहीं परन्तु घटता है। बात सुनने में.... यह तो अलौकिक बात है। बढ़े क्या? विवाह किया ही नहीं। हम तो तुम्हें बताते हैं कि स्त्री का संग है, परन्तु अन्दर में संग है ही नहीं। देरियाजी! यह तो तुम्हारे जैसी भाषा करके कहा। अन्दर में तो क्रम-क्रम से अपने स्वभाव सन्मुख (से) राग घटता जाता है। परन्तु बीच में ऐसा राग (आता है)। एक क्षण में राग-द्वेष छूट जाये तब तो केवलज्ञान हो जाये। फिर गुणस्थान रहे नहीं। चौथा, पाँचवाँ, छठवाँ। श्रावक का, मुनि का गुणस्थान भेद भी नहीं रहे।

मुमुक्षु : संयोग तो है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्दर संयोग का भाग इतना पड़ा है, संयोग भाव के प्रति प्रीति, रुचि छूट गयी है। प्रीति, रुचि छूट गयी है कि पुण्यपरिणाम और पाप में मजा है, सुख है। ऐसी दृष्टि गयी। दृष्टि हुई आनन्द में। परन्तु आसक्ति छूट जाये, तब तो केवलज्ञान हो जाये। वह आसक्ति का दोष है। दर्शन का दोष नहीं। सम्यग्दर्शन में किंचित् (जरा भी) कमी नहीं है। छियानवें हजार स्त्रियों के प्रसंग में भी क्षायिक समकित में किंचित् कमी नहीं है। तीन ज्ञान और क्षायिक समकित है।

और अज्ञानी स्त्री का त्याग करे और बालब्रह्मचारी हो मिथ्यादृष्टि। मैंने देह की क्रिया नहीं की। मैंने इतना त्याग किया। ऐसा पर का अभिमान मिथ्यात्व का पड़ा है। वह मिथ्यादृष्टि महान संसारी है। आहाहा! यह तो कुछ बात! अमरचन्दभाई! मिथ्यात्व का पाप कितना और सम्यक् में धर्म कितना, इसकी कीमत ही नहीं है। विपरीत मान्यता में कसाईखाना सात व्यसन के पाप से अनन्तगुणा पाप है। जो पुण्यपरिणाम होता है, विकल्प, उसमें लाभ मानने की दृष्टि महा मिथ्यात्व है। और पाप के परिणाम होने पर भी लाभबुद्धि नहीं, द्रव्य में लाभबुद्धि है, ज्ञानी को अल्प पाप लगता है। आहाहा!

मुमुक्षु : मर्यादित रह गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : मर्यादित संसार हो गया। अल्प रह गया। अल्प-एक बड़े समुद्र में से एक बूँद रह गया। उस समुद्र में से भाग छियानवें हजार स्त्रियों के साथ विवाह समुद्र में से एक बिन्दु का राग रह गया। अनन्त राग अनन्तानुबन्धी का छूट गया। और अज्ञानी बालब्रह्मचारी पूरी जिन्दगी स्त्री का त्याग करे और परिग्रह भी कम चले। वह परद्रव्य मेरे त्याग-ग्रहण में है तो मैं त्यागी हो गया। और मुझे जरा त्याग का राग आया, वह तो मुझे धर्म हुआ, वह तो मिथ्यादृष्टि का पाप सात व्यसन से अनन्तगुणा है। समझ में आया?

तारणस्वामी तो ऐसी बात में 'निगोदम् गच्छई' ऐसा ही कहते हैं। कितनी गाथा! राग से लाभ मानता है, पुण्य से लाभ मानता है, पुण्यास्रव से लाभ मानता है। हो भले। आत्मा का धर्म मानता है 'निगोदम् गच्छई' निगोद जायेगा। कठिन भाषा है। कठिन भाषा है, हों! तारणस्वामी। समझ में आया?

राग रहता है। परन्तु राग से लाभ मानता है। ज्ञानी को शुभराग भी आता है। दया, दान, भक्ति, पूजा भाव में आवे। वीतराग हो गये हैं? तो न आवे? आता है। परन्तु ज्ञानी जानता है कि वह पुण्यास्रव है। धर्म नहीं। और इस कारण से मुझे धर्म होता है, ऐसा वह मानता नहीं। मैं जितना मेरे स्वभाव का अवलम्बन लेकर स्थिर होता हूँ, उतना मेरा धर्म है। ओहोहो! दुनिया का मापने का गज दूसरा है। समझ में आया?

जो कि निर्विकार चैतन्यपने के कारण समसुखदुःख है... क्या कहते हैं? यहाँ तो उत्कृष्ट बात की न? भिक्षु की। पहले दृष्टि से पृथक् कर दिया, पश्चात् राग-द्वेष भी छूट गये। **उस भिक्षु को....** निर्विकारचैतन्यपरिणामपर्याय उत्पन्न हुई। अन्तर पर्याय में दशा में समसुखदुःख है। अनुकूल, प्रतिकूल का गंज हो तब, सबमें मुझे वीतरागभाव से समता-ज्ञाताभाव है। **उसे—शुभ और अशुभकर्म का आस्रव नहीं होता,...** देखो! ऐसे धर्मात्मा को शुभ और अशुभकर्म के नये परमाणु आस्रव नहीं होते। सम्यग्दर्शन हुआ तो मिथ्यात्व का आस्रव, अनन्तानुबन्धी का आस्रव नहीं रहा। ज्ञानी को भी दूसरे तीन कषाय हैं, उतना आस्रव आता है।

यहाँ तो उत्कृष्ट बात की है। वह भी राग छूटकर मुनि। मुनि किसे कहते हैं? ओहोहो! मुनि परमेश्वर पद। 'णमो लोए सव्व साहूणं' गणधर बारह अंग की रचना करते हैं। गणधर, भगवान के गणधर। सीमन्धर परमात्मा के पास गणधर विराजते हैं। बारह अंग की रचना करते हैं। णमो लोए सव्व साहूणं। पंचम काल के कोई सच्चे भावलिंगी सन्त हों तो मेरा नमस्कार उनके चरण में। वह मुनिपद कैसा है? गणधर का नमस्कार जिसे पहुँचे। समझ में आया? बराबर है या नहीं? णमो लोए में यह नहीं है सब। लोए में यह।

जिसके अन्तर आनन्दकन्द की दृष्टि एक राग का कण उठता है (परन्तु) कर्तव्य नहीं मानते। आता है पंच महाव्रत के परिणाम ज्ञानी को आते हैं, परन्तु राग है, मेरा कर्तव्य नहीं। विकार विकल्प आता है, वह पुण्य है, मेरा धर्म नहीं, मेरा संवर नहीं। यह तो अभी दृष्टि बिना पंच महाव्रत है ही नहीं और हमारे पंच महाव्रत हैं और संवर निर्जरा है। धूल में भी नहीं है। समझ में आया?

मुमुक्षु : वह तो बाहर का त्याग....

पूज्य गुरुदेवश्री : बाहर के त्याग से बैठाते हैं। ऐसा कि वह अन्दर के गज का तो माप है नहीं। बराबर बाहर का माप हो, दूसरा तो माप है नहीं। छियानवें हजार स्त्रियों से विवाह करता है, वह तो सम्यग्दृष्टि है। और एक स्त्री का त्याग कर दे, ब्रह्मचर्य ले तो भी मिथ्यादृष्टि है। अरे! यह तो कहीं!

मुमुक्षु : उसका अभिप्राय क्या है, वह बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वीतरागमार्ग में यह पहली बात सुनने में मिलती है। नहीं तो करो प्रश्न! यह तो सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ के वीतराग परमेश्वर के घर की बात है। कल्पना करके मान रखी है, वह वीतराग के घर की बात नहीं है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु अभी जिसे इन्द्रिय, राग, पुण्य-पाप परिणाम पर (है, उसे) अपने मानता है, तो पर से छुटकारा होकर तो स्वद्रव्य किसे मानेगा? अभी तो उसे

मानता है। यह दया, दान का विकल्प आया, यह ब्रह्मचर्य का विकल्प आया। यह विकल्प आया। यह तो तुझे विकल्प आया राग। वह राग मेरी चीज़ है, ऐसा मानता है। आस्रव मेरी चीज़ है, ऐसा मानता है। और यह देह की क्रिया विषय में नहीं हुई (तो ऐसा मानता है कि) मैंने रोकी है। यह जड़ की क्रिया विषय में-भोग में नहीं हुई (तो कहता है कि) मैंने रोकी। जड़ की पर्याय तू रोक सकता है तो जड़ का तू स्वामी है। राग का और जड़ का स्वामी है। कहाँ से सम्यग्दर्शन आया? धर्म कहाँ से आया वहाँ? कषाय और काया, आता है न प्रवचनसार में? समझ में आया? प्रवचनसार में आता है। एक श्लोक। भारी कठिन! २३६ (गाथा)।

देखो! जिन जीवों को स्व-पर का भेदज्ञान नहीं, उन्हें कदाचित् भले पाँच इन्द्रियों के विषयों का संयोग न दिखता हो। वह संयोग न दिखता हो। देखो! यहाँ हमारे पण्डितजी ने तो सब पहले से लिखा है। जिसे स्व ज्ञायकमूर्ति ज्ञान और राग, यह विकल्प और आस्रव है, बन्ध का कारण है, शरीर इन्द्रिय आदि जड़ और अजीव है, उसका त्याग-ग्रहण मुझमें नहीं है। ऐसा जीव को स्व-पर भेदज्ञान नहीं, उसे कदाचित् पाँच इन्द्रियों के विषयों का संयोग न दिखाई दे। भोग लेता न दिखाई दे। बाह्य त्याग हो, छह जीवनिकाय की द्रव्यहिंसा न दिखती हो, छह जीव का घात करता न दिखे, एकेन्द्रिय जीव का घात करता न दिखे और इस प्रकार संयोग से निवृत्ति दिखती हो, तो भी काया और कषाय हिंसा से एकता माननेवाले; यह विकल्प उठते हैं दया, दान, ब्रह्मचर्य पालन करूँ, वह विकल्प आस्रव है। उसे अन्दर अपना मानता है। मान्यता में अभिप्राय में अपना मानता है। और मैंने काया से क्रिया छोड़ दी और मैंने लिया नहीं, वे दोनों एक माननेवाले उन जीवों को वास्तव में पाँच इन्द्रिय के विषयों की अभिलाषा का निरोध नहीं है। हिंसा का जरा भी आधार नहीं। इस प्रकार परभाव से बिल्कुल निवृत्ति नहीं।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसके अभिप्राय से खबर पड़ती है। वह अभिप्राय बोले उसमें से खबर पड़ती है। शल्य पड़ा है मिथ्यात्व का। मैंने राग से निवृत्ति ली और बहुत ही

छोड़ दिया। क्या छोड़ दिया तूने? कहा नहीं? धन्धा-पानी छोड़ दिया। वह तू छोड़ सकता है? वह तो छूटे हुए ही पड़े हैं, वे कब छोड़े हैं? इस काया से हम काम नहीं करते। काया से तू कर सकता है कि उसे रोक दिया है? तो जड़ का स्वामी हुआ। और ब्रह्मचर्य आदि के परिणाम विकल्प हुआ तो वह पुण्यास्रव हुआ। उसे अपनेरूप माननेवाले को बाह्य से छह काय की हिंसा देखने में नहीं आती, बाहर से पाँच इन्द्रिय के विषय देखने में नहीं आते तो भी मिथ्यादृष्टि अज्ञानी हिंसा के परिणाम अन्दर पड़े हैं। राग को अपना माने, वह मिथ्यात्व के—तीव्र हिंसा के भाव हैं। अमरचन्दभाई! आहाहा!

मुमुक्षु : हिंसा का भाव आना तो ठीक है, विकल्प आना भी ठीक है परन्तु पुरुषार्थ से बदलता है, शुद्ध में बदल जाता है। भाव आया तो अमल में लिया.....

पूज्य गुरुदेवश्री : अमल में नहीं। तुम अभी समझते ही नहीं। देह की क्रिया अमल ली ही नहीं। भाव आया न? देह की क्रिया ली तो अमल में ली। यह बात ही झूठी है। वह अमल में ली ही नहीं। वह तो जड़ की क्रिया होती है।

कहते हैं, यह समझ में आया न? ऐसा कि भाव भले आया परन्तु अमल में कैसे रखा? विवाह किया और भोग लिया। हम तो कहते हैं भोग लिया ही नहीं। भगवान ऐसा कहते हैं। भोग लेते ही नहीं वह तो।

मुमुक्षु : बाल-बच्चे कहाँ से हुए?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, है ही नहीं। बाल-बच्चे हुए ही नहीं। राग आया बस इतना। देरियाजी! यहाँ तो अलक-मलक की बात है। बाल-बच्चे उसे हुए ही नहीं। उसे राग हुआ, वह मुझमें नहीं। हाँ, अभिप्राय में पूरा संसार पलट गया। यह बात रात्रि में भी आयी थी। तुम्हारे मेहमान आये थे न, आज आये हैं न? किसी दिन, यह सुने तो सही, क्या है? आहाहा!

भाई! सर्वज्ञ परमात्मा जैन परमेश्वर ने वस्तु का पूर्ण स्वरूप जाना, उन्होंने क्या कहा और किस प्रकार है, यह खबर बिना धर्म कहाँ से होगा? बाहर से त्याग, यहाँ कहा न? पाठ में है। देखो! स्व-पर के विभाग के अभाव के कारण काया और कषायों के साथ एकता का अध्यवसाय करते ऐसे जीव विषयों की अभिलाषा का निरोध

नहीं। संवर बिल्कुल नहीं। अभिलाषा छूटी न? अभिलाषा अन्दर पड़ी है, काम में करता हूँ, राग मेरा कर्तव्य है। और राग मुझे आया तो शरीर की क्रिया को देखो, मैंने अमल में रखी। मूढ़ है। शरीर की क्रिया को आत्मा कहाँ से अमल में ला सकता है? वह तो होने की हो तो होगी और न होने की हो तो नहीं होगी। वह तो अजीव की पर्याय है। समझ में आया?

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : समझ में आया? अमरचन्दभाई! ऐसा कि राग भाव आना, वहाँ तक दिक्कत नहीं परन्तु भाव करने के पश्चात् अमल में कैसे रखा? यह भोग और दुकान में बैठे और युद्ध में जाये। यह बात ही सत्य नहीं। वह तो युद्ध में जाता ही नहीं। वह तो अपने भाव में विकल्प आया, उसका जानने-देखनेवाला रहता है। क्रिया तो जड़ की होती है, उसे जानता है। बाहर में आया भी नहीं और अमल में रखा भी नहीं। आहाहा! अजर प्याला।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन कर सके? यह वाणी कौन बोल सके? अँगुली कौन चला सके इतनी? वह तो जड़ की पर्याय है। आत्मा चला सकता है? ईश्वर जगत का कर्ता और यह कहे कि पर की क्रिया मैं कर सकूँ। मिथ्यादृष्टि मूढ़ है।

यह अनन्त परमाणु जगत है। एक-एक परमाणु में अनन्त गुण हैं। उसे तुम पर्याय पलट कर सकते हो? आत्मा हथियार ले सकता है? अँगुली ऐसे कर सकता है? मूढ़ है।

मुमुक्षु : अज्ञानी नहीं कर सकता। ज्ञानी तो.....

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञानी, अज्ञानी कोई परद्रव्य की पर्याय नहीं कर सकता। .....भाई! रण चढ़ा रजपूत छुपे नहीं। आता है या नहीं? चंचल नारी का नैन छुपे नहीं, चन्द्र छुपे नहीं बादल छाया, राज छुपे नहीं भभूत लगाया। ऐसा कि रजपूत रण में चढ़े..... करता होगा बनिये की तरह व्याकुल। आत्मा अपनी कसौटी में चढ़ा कि 'मैं ज्ञायक हूँ' देह की क्रिया हो तो हो और न हो तो न हो। मेरे आधीन है ही नहीं। और

मेरी कमजोरी से मुझमें राग आता है, उसे मैं बन्ध का कारण जानता हूँ। ऐसा विवेक जहाँ वर्तता है तो युद्ध में भी वह संवरभाव प्रगट करता है। और अज्ञानी ब्रह्मचर्य पालते-पालते भी मिथ्यात्व का आस्रव का संवर करता है। आस्रव अर्थात्? मिथ्यात्व करता है। समकित का संवर करता है। समकित को आने नहीं देता। सेठी! आहाहा!

यह तो भाई! सर्वज्ञ परमात्मा परमेश्वर का मार्ग है। यह वह कहीं रंक ऐरे-गैरे जैसा है? भिखारी मान ले कि ऐसा है और वैसा है। जैन में है तो जैन की उसे खबर नहीं। वाड़ा की खबर नहीं कि जैन किसे कहते हैं। क्या सिर पर जैन की छाप है? समझे बिना आ गया। जैन हो गया? मांगीरामजी! क्या हुआ? देखो! **शुभ और अशुभकर्म का आस्रव नहीं होता,...** देखो!

सम्यग्दर्शन हो, जहाँ तक शुभाशुभ परिणाम हो (तो) इतना तो आस्रव आता है। परन्तु देह की क्रिया हुई, इसलिए आस्रव आता है? भोग लिया, उसका आस्रव अज्ञानी को बिल्कुल नहीं। वह तो जड़ की पर्याय होनेवाली (थी), वह अजीव की है। अजीव तत्त्व भिन्न मानता है। अपने परिणाम में जितनी कलुषता आयी, उतना आस्रव आता है। इतना ज्ञानी जानता है। परन्तु वह आस्रव क्रिया होती है, तो यह परिणाम हुए, ऐसा नहीं। परिणाम है तो क्रिया होती है, ऐसा नहीं और परिणाम हुए तो मेरे स्वभाव में एकरूप है, ऐसा भी नहीं। आहाहा! समझ में आया?

यह मेहमान आये हैं न। मेहमान नये हैं। कुछ समझे जरा! हें? अहमदाबाद से आये हैं। क्या है? यह वे सोनगढ़वाले क्या कहते हैं? क्या है? सोनगढ़वाले भगवान का मार्ग कहते हैं। समझ में आया? **शुभ और अशुभकर्म का आस्रव नहीं होता, परन्तु संवर ही होता है।** देखो! आहाहा! अभिप्राय का दोष और राग-द्वेष का दोष, दोनों चीज़ ही अलग है। और राग-द्वेष के दोष के कारण समकित न हो तो कभी किसी को समकित होता ही नहीं, क्योंकि राग-द्वेष तो मुनि को भी छठवें गुणस्थान में पंच महाव्रत का राग आता है। आर्तध्यान भी होता है। मुनि भावलिंगी सन्त परमेश्वर स्वीकारे, ऐसे मुनि। ऐसे मुनि तो अभी कोई है नहीं। वह मुनि अन्दर भावलिंगी सन्त अन्तर में है, उसे पुण्यास्रव का विकल्प आता है। वह भी जानते हैं कि बन्ध है। बन्ध का कारण है, मेरी

चीज़ नहीं। परन्तु इतनी कमजोरी न हो तो सर्वज्ञ हो जाये। समझ में आया?

और यह दोष आया तो सम्यग्दर्शन में दोष है तो कभी सम्यग्दर्शन प्रगट होता भी नहीं और रहता भी नहीं। राग के कारण से सम्यग्दर्शन उत्पन्न हो, ऐसा भी नहीं और राग है तो सम्यग्दर्शन में विघ्न आता है, ऐसा नहीं।

मुमुक्षु : तब तो मोक्ष का रास्ता ही बन्द हो जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्योंकि राग है, वह तो ज्ञानी को बारहवें में छूटता है। बारहवीं भूमिका में छूटता है। तो राग-द्वेष हो तब तक सम्यग्दर्शन का दोष लग जाये तो सम्यग्दर्शन उत्पन्न ही नहीं होता। और सम्यग्दर्शन टिकता नहीं। समझ में आया? गजब बातें हैं, भाई! आहाहा!

पहले क्षायिक समकित हुआ हो, क्षयोपशम समकित हो, पश्चात् क्षायिक हुआ हो और भावलिंगी मुनि हुए हों। समझ में आया? फिर उसे खबर पड़े कि अरे! मेरी मुनिपर्याय नहीं, टिकती नहीं। मुझमें पुरुषार्थ की कमी हो गयी है। समझ में आया? तो छठवें गुणस्थान से नीचे उतर जाये, चौथे गुणस्थान में आ जाये। और मुझसे विषय की वृत्ति रुकती नहीं। भान है। विवाह कर लेता है तो भी क्षायिक समकित में जरा भी दोष नहीं। अमरचन्दभाई! इस दुनिया को भान कब है? अक्ल बिना की दुनिया। इसे बाहर से माप करे, वह माप चले? समझ में आया?

बात यह है कि चारित्रपर्याय प्रगट हुई थी परन्तु फिर जाना कि हमारे से चारित्र टिकेगा नहीं, अन्दर स्थिरता है। हों! द्रव्य से नग्न। बाहर से नग्न हो, अट्ठाईस मूलगुण पालता हो चारित्र पर्याय..... हमारा पर्याय का पुरुषार्थ कम हो गया। सप्तम गुणस्थान क्यों नहीं होता? हमारा पुरुषार्थ कम हैं। हमारा भाव है। छूट गया। हम बाहर से टिक सकते हैं तो चलो। और बाहर से भी शुभपरिणाम न हो तो मुनिपना छोड़ दे। अरे! देवीलालजी! दुनिया को कहाँ भान है? दुनिया दुनिया में रह गयी। समझ में आया? कहो, समझ में आया?

शुभ और अशुभकर्म का आस्त्रव नहीं होता, परन्तु संवर ही होता है। इसलिए यहाँ (ऐसा समझना कि) मोहरागद्वेष परिणाम का निरोध, सो भावसंवर है,... मोह-

राग-द्वेष परिणाम का अटकना, वही भावसंवर है। बराबर है! **और वह (मोहरागद्वेषरूप परिणाम का निरोध) जिसका निमित्त है, ऐसा जो योगद्वारा प्रविष्ट होनवाले पुद्गलों के...** नये आनेवाले, आनेवाले थे नहीं, हों! वे तो बात करते हैं। वहाँ आनेवाले थे और रुक गये, ऐसा नहीं। भारी कथन पद्धति! मोह-राग-द्वेषरूप परिणाम का निरोध हुआ अन्दर में। तो जिसका निमित्त है। किसे? आनेवाले थे उसमें निमित्त है। **योगद्वारा प्रविष्ट होनवाले पुद्गलों के शुभाशुभकर्मपरिणाम का (-शुभाशुभकर्मरूप परिणाम का) निरोध सो द्रव्यसंवर है।** वे रजकण नहीं आये, वह द्रव्यसंवर है। यहाँ भाव में मोह-राग-द्वेषपरिणाम नहीं हुए, वह भावसंवर है। भावसंवर हुआ तो वहाँ द्रव्यसंवर रजकण आते नहीं, उसे द्रव्यसंवर (कहते हैं)। जो पर्याय जड़ में ऐसी पर्याय नहीं हुई, चैतन्य में विकारी नहीं हुई। ऐसी एक समय की ऐसी बात की तो भावसंवर आत्मा की पर्याय है, द्रव्यसंवर जड़ की पर्याय है। ऐसी नवतत्त्व में संवर की व्याख्या की। विशेष कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - १४३

जस्स जदा खलु पुण्णं जोगे पावं च णत्थि विरदस्स ।
संवरणं तस्स तदा सुहासुहकदस्स कम्मस्स ।। १४३ ।।

यस्य यदा खलु पुण्यं योगे पापं च नास्ति विरतस्य।
संवरणं तस्य तदा शुभाशुभकृतस्य कर्मण: ।। १४३ ।।

विशेषेणं संवरस्वरूपाख्यानमेतत् ।

यस्य योगिनो विरतस्य सर्वतो निवृत्तस्य योगे वाङ्मन:कायकर्मणि शुभपरिणामरूपं पुण्यशुभपरिणामरूपं पापञ्च यदा न भवति तस्य तदा शुभाशुभभावकृतस्य द्रव्यकर्मण: संवर: स्वकारणाभावात्प्रसिद्ध्यति । तदत्र शुभाशुभपरिणामनिरोधो भावपुण्यपापसंवरो द्रव्यपुण्यपाप-संवरस्य हेतु: प्रधानोऽवधारणीय इति ।। १४३ ।।

-इति संवरपदार्थव्याख्यानं समाप्तम् ।

जिस व्रती के त्रय योग में जब पुण्य एवं पाप ना।
उस व्रती के उस भाव से तब द्रव्य संवर वर्तता।।१४३।।

अन्वयार्थ :— [यस्य] जिसे (-जिस मुनि को), [विरतस्य] विरत वर्तते हुए, [योगे] योग में, [पुण्यं पापं च] पुण्य और पाप, [यदा] जब [खलु] वास्तव में [न अस्ति] नहीं होते, [तदा] तब [तस्य] उसे [शुभाशुभकृतस्य कर्मण:] शुभाशुभभावकृत कर्म का [संवरणम्] संवर होता है।

टीका :— यह, विशेषरूप से संवर के स्वरूप का कथन है।

जिस योगी को, विरत अर्थात् सर्वथा निवृत्त वर्तते हुए, योग में—वचन, मन और कायसम्बन्धी क्रिया में—शुभपरिणामरूप पुण्य और अशुभपरिणामरूप पाप जब नहीं होते, तब उसे शुभाशुभभावकृत द्रव्यकर्म का (-शुभाशुभभाव जिसका निमित्त होता है, ऐसे द्रव्यकर्म का), स्वकारण के अभाव के कारण, संवर होता है। इसलिए यहाँ (इस गाथा में) शुभाशुभपरिणाम का निरोध—भावपुण्यपापसंवर—द्रव्यपुण्य-पापसंवर का [१]प्रधान हेतु अवधारना (-समझना)॥१४३॥

१. प्रधान हेतु = मुख्य निमित्त। [द्रव्य संवर में 'मुख्य निमित्त' जीव के शुभाशुभपरिणाम का निरोध है, योग का निरोध नहीं है। (यहाँ यह ध्यान में रखने योग्य है कि द्रव्यसंवर का उपादानकारण-निश्चयकारण तो पुद्गल स्वयं ही है।)]

इस प्रकार संवरपदार्थ का व्याख्यान समाप्त हुआ।

प्रवचन नं. ३९, गाथा-१४३-१४४,
दिनांक - ०५-१०-१९६४, भाद्र कृष्ण अमावस्या, सोमवार

१४३ गाथा चलती है। नौ पदार्थ की व्याख्या है। नौ में वर्तमान संवर अधिकार चलता है। नौ पदार्थ में जीव और अजीव तो दो द्रव्य है। संयोग और वियोग से उत्पन्न होनेवाली सात प्रकार की पर्याय है। धर्म भी एक पर्याय है। धर्म कोई त्रिकाली गुण या द्रव्य, वह धर्म नहीं। धर्म तो वर्तमान एक शुद्ध निर्मल निर्विकारी पर्याय, उसे संवर और धर्म कहते हैं। वह संवर कहो या धर्म कहो, उसकी व्याख्या चलती है। समझ में आया? (गाथा) १४३

जस्स जदा खलु पुण्णं जोगे पावं च णत्थि विरदस्स।
संवरणं तस्स तदा सुहासुहकदस्स कम्मस्स।।१४३।।

टीका :— यह, विशेषरूप से संवर के स्वरूप का कथन है। कल सामान्य बात १४२ में चली थी। विस्तार से स्पष्टीकरण करने के लिये विशेषरूप से संवर का अधिकार कहने में आता है।

जिस योगी को,... पहला शब्द है। **जिस योगी को,...** अर्थात् आत्मा अखण्ड आनन्द और पूर्ण शुद्ध स्वभाव, उसका जिसे अन्तर में जुड़ान-योग सम्बन्ध हो गया है। दृष्टि में त्रिकाल ज्ञायक आनन्दकन्द पूर्ण आनन्द का धाम, उस पर दृष्टि का जुड़ान हो गया है। उसका नाम सम्यग्दृष्टि योगी कहने में आता है। समझ में आया?

यहाँ तो उससे उपरान्त बात है। **विरत,...** योगी शब्द देकर अब विरत, अपना चैतन्य पूर्ण आनन्द अकेले ज्ञायकस्वभाव से पूर्ण भरा पड़ा है। एक समय की पर्याय का लक्ष्य छोड़कर, संयोग का लक्ष्य छोड़कर और विकल्प आता है, उसका भी लक्ष्य-आश्रय छोड़कर पूर्णानन्द ध्रुवस्वभाव, द्रव्यस्वभाव में पूर्ण परमात्मस्वभाव पड़ा है। उसमें दृष्टि का जुड़ान हो, उसका नाम सम्यग्दर्शन संवर कहते हैं।

पश्चात् **विरत अर्थात् सर्वथा निवृत्त वर्तते हुए,...** अपने परिणाम में शुभ और अशुभ परिणाम जो विकल्प है, उनसे भी निवृत्त हुआ है। समझ में आया? पहले तो १४२ में कह गये हैं। अपने द्रव्य के अतिरिक्त सब अनन्त द्रव्य हैं। उस ओर की रुचि छोड़कर अपने ज्ञायक चैतन्य स्वद्रव्य में दृष्टि, रुचि का अनुभव होना, इसका नाम प्रथम सम्यग्दर्शन, धर्म, संवर, शुद्धता, मोक्ष का मार्ग, उसे कहते हैं। समझ में आया? अभी तो विरत लिया विशेष। परद्रव्य से अकेले भगवान आतमराम में अनन्त गुण का एक स्वरूप द्रव्य, उसमें घुसने से जो निर्विकल्प राग के अवलम्बन बिना स्वभाव के अवलम्बन से निश्चयदृष्टि का सम्यक्त्व होना, उसका नाम सर्व परद्रव्य से रुचि छोड़ दी। और स्वद्रव्य में रुचि की। यह पहले हुआ। पहले हुए बिना परद्रव्य के प्रति आसक्ति का शुभाशुभभाव छूटता नहीं। समझ में आया?

स्वचैतन्यमूर्ति ज्ञायक प्रभु के धाम में अरिहन्त-सिद्ध पद पूर्ण पड़ा है। ऐसा अन्तर एकाग्र होकर जो दृष्टि का लाभ हो, उसका नाम सम्यग्दर्शन, शुद्धता, मोक्ष के मार्ग की शुरुआत हुई, ऐसा कहा जाता है। **जिस योगी को,...** उत्कृष्ट संवर लेना है न? **विरत अर्थात् सर्वथा निवृत्त वर्तते हुए,...** और अनन्त द्रव्य के प्रति इष्ट-अनिष्टबुद्धि का तो नाश हुआ। अपना स्वभाव पूर्ण इष्ट है। उसकी रुचि का अनुभव दृष्टि में हुआ। परन्तु अभी अनन्त परद्रव्यों के प्रति अपनी कमजोरी से आसक्ति का शुभाशुभभाव का अभी नाश हुआ नहीं। उस शुभाशुभभाव से भी विरत होकर।

देखो! **सर्वथा निवृत्त वर्तते हुए,...** अपने परिणाम में शुभाशुभभाव की जो परिणति है, उससे निवृत्त, **निवृत्त वर्तते हुए, योग में...** जो आत्मा के प्रदेश में कम्पन होता है, उसे योगक्रिया कहा जाता है। आत्मा के प्रदेश का कम्पन है, उसे योगक्रिया कहा जाता है।

ऐसे योग में **वचन, मन और कायसम्बन्धी क्रिया में...** अन्तःकम्पन क्रिया में, समझ में आया? जो प्रदेश का कम्पन होता है, जिसमें कायवर्गणा निमित्त है तो उसे कायकम्पन कहते हैं, पर्याय में। वचनवर्गणा निमित्त है तो वचनकम्पन कहते हैं। और मनवर्गणा निमित्त है तो मनयोग की कल्पन क्रिया कहते हैं। ऐसे मन, वचन और काया

के निमित्त में अपने में कम्पनरूप क्रिया, उस क्रिया में शुभपरिणामरूप पुण्य और अशुभपरिणामरूप पाप जब नहीं होते, समझ में आया?

भगवानआत्मा अपनी महिमा में दृष्टि लगा दी और अल्प पर्याय राग और निमित्त की महिमा दृष्टि में से छूट गयी। तब अनन्त परद्रव्यों के प्रति प्रेम और रुचि एकत्वबुद्धि की छूट गयी और अपने द्रव्यस्वभाव में एकत्वबुद्धि हो गयी। परन्तु जहाँ तक अपनी कम्पन क्रिया में अनन्त परद्रव्यों के प्रति इष्ट-अनिष्टबुद्धि न होने पर भी, आसक्ति के परिणाम शुभाशुभक्रिया में उत्पन्न होते हैं, कम्पनक्रिया में। वहाँ तक शुभाशुभपरिणाम का उसे आस्रव आता है। समझ में आया?

वह जब क्रिया में, योग की क्रिया में। यहाँ देह की क्रिया की बात नहीं है। वह तो अजीवतत्त्व, उसका अस्तित्व ही भिन्न है। जिसका अस्तित्व भिन्न है, उसमें क्या होता है, उसकी तो यहाँ बात है ही नहीं। समझ में आया? अपनी कम्पनक्रिया में शुभपरिणामरूप पुण्य, दया, दान, भक्ति, व्रत, तप का शुभविकल्प उस क्रिया में पुण्यपरिणाम उत्पन्न होते थे। उसका जब नहीं होना होता है, तब शुभाशुभपरिणाम का संवर होता है। अथवा शुभाशुभपरिणाम उत्पन्न नहीं होते तो शुद्धपरिणाम उत्पन्न होते हैं। समझ में आया?

यह **शुभपरिणामरूप पुण्य और अशुभपरिणामरूप...** पर्याय में **पाप,....** जो अशुद्ध उपयोगरूप परिणाम थे। **जब नहीं होते,...** जिस काल में वे नहीं होते, उस काल में **तब उसे शुभाशुभभावकृत द्रव्यकर्म का...** शुभ-अशुभभाव का निमित्त पाकर जो नये द्रव्यकर्म रजकण अपनी योग्यता से आनेवाले थे। वे **शुभाशुभभाव जिसका निमित्त होता है ऐसे द्रव्यकर्म का...** नये रजकण के आने में शुभाशुभभाव निमित्त पड़ते हैं। नये रजकण के पुण्य-पाप के रजकण आने में शुभ और अशुभपरिणाम निमित्त पड़ते थे, वे शुभाशुभपरिणाम जब नहीं होते, तब **स्वकारण के अभाव के कारण, संवर होता है।** तो नये द्रव्यकर्म का कारण शुभाशुभपरिणाम, उसके स्वकारण अभाव होने से वह द्रव्यकर्म रजकण नहीं आते, इसका नाम द्रव्यसंवर कहने में आता है। कहो, समझ में आया? बहुत सूक्ष्म।

रजकण आते ही नहीं। आवे फिर बन्ध पड़े न? आते नहीं। संवर है या नहीं?

यहाँ तो निमित्त-निमित्त सम्बन्ध बतलाना है। वहाँ शुभाशुभभाव अपनी क्रिया में थे तो निमित्त पड़ते थे, नये द्रव्य रजकण शुभाशुभ के जो रजकण आते थे, उसे द्रव्यास्रव कहने में आया। और शुभाशुभभाव है वह भावास्रव कहने में (आया)। दोनों पर्याय है। यह एक विकारी पर्याय जीव की और कर्म की विकारी पर्याय आनेवाली आस्रव पर्याय होकर, जड़ की। जब उसके स्वकारण शुभाशुभपरिणाम रुक गये तो जिसमें वह शुभाशुभपरिणाम निमित्त पड़ता था, वह चीज़ आनेवाली है, ऐसा यहाँ नहीं है। परन्तु बताते हैं। वह चीज़ आनेवाली नहीं, आनेवाली नहीं थी। जिसमें शुभाशुभपरिणाम निमित्त पड़ते थे, वह आते हैं तो जब शुभाशुभपरिणाम नहीं है तो आनेवाले ही नहीं। यह उसका नाम द्रव्यसंवर और शुभाशुभपरिणाम रुक गये, उसका नाम भावसंवर। समझ में आया?

पर्याय पर्याय का निमित्त-निमित्त सम्बन्ध क्या है, यह बताते हैं। द्रव्य तो दोनों स्वतन्त्र हैं, पूरे पूर्ण दोनों। जीव और अजीव। उनकी चलती पर्याय। उसमें योग में जब तक पुण्य-पाप थे। दृष्टि अपने ज्ञायक सन्मुख होने पर भी, दृष्टि अपने ज्ञायक सन्मुख होने पर भी कम्पनक्रिया में शुभाशुभपरिणाम थे, तब तो नये रजकण आने में वे परिणाम निमित्त पड़ते थे। बराबर है? सुमेरुमलजी! समझ में आया? जब यहाँ शुभाशुभपरिणाम क्रिया में रुक गये, उत्पन्न नहीं हुए। रुक गये का अर्थ उत्पन्न नहीं हुए, उसका नाम रुक गये। आये थे और रुक गये, ऐसा है नहीं। समझ में आया?

स्वभाव पूर्ण शुद्ध सन्मुख विशेष झुकने से अन्दर कम्पन में मन, वचन की क्रिया शुभाशुभपरिणाम के अनुत्पन्न हुए, उसे यहाँ शुद्ध स्वभाव सन्मुख से शुभाशुभपरिणाम रुके, ऐसा कहने में आता है। इस कारण जो आनेवाली चीज़ थे, वह रुक गयी, उसे द्रव्यसंवर कहते हैं। कहो, समझ में आया?

मुमुक्षु : संवर का अर्थ निष्कम्प हुआ?

पूज्य गुरुदेवश्री : निष्कम्प नहीं। क्रिया का कम्पन तो होता है। उसमें शुभाशुभ -अशुद्ध विकारी परिणाम थे, वे रुक गये, इसका नाम भावसंवर है। क्रिया, परिणाम और उपयोग ये परिणाम क्रिया है, मन, वचन का निमित्त में अपना कम्पन हुआ, वह

क्रिया, उस क्रिया में शुभाशुभपरिणामरूप अशुद्ध उपयोग था, वह स्वभाव सन्मुख झुकने से अशुद्ध का, अशुद्ध की अनुत्पत्ति हुई अथवा उत्पन्न नहीं हुआ, उसे भावसंवर कहने में आया। और उस निमित्त से नये रजकण आनेवाले थे, वे नहीं आये तो द्रव्यसंवर कहने में आया?

कम्पन तो है ही। क्रिया तो केवली को भी है। कम्पन की क्रिया तो वहाँ भी है। वहाँ तो रजकण बहुत ही आते हैं। नीचे की अपेक्षा वहाँ तो बहुत ही रजकण आते हैं। वह चीज़ नहीं। अन्दर जो शुभ-अशुभपरिणाम मलिन आते थे, वही आस्रव थे। वह अभाव हुआ तो संवर हुआ। नये द्रव्यास्रव भी आये नहीं। कहो, देवीलालजी! शुभाशुभभाव जिसका निमित्त होता है। ऐसे द्रव्यकर्म के **स्वकार के अभाव के कारण...** अर्थात् नये कर्म आने में कारण जो शुभाशुभ परिणाम थे, उनका उस स्वकारण के अभाव के कारण **संवर होता है।** कहो, समझ में आया?

ओहोहो! समय-समय की पर्याय द्रव्य कायम रहकर शुद्धाशुद्धपर्याय अपने से अपने में स्वतन्त्ररूप से होती है। दूसरे कर्म तो निमित्तमात्र हैं। समझ में आया? अपने आत्मा में जो आत्मा है, वह तो सच्चिदानन्द ज्ञानानन्द पूर्णानन्दस्वभाव ज्ञान, आनन्द ध्रुवस्वरूप है। पूर्ण परम स्वरूप कहो, पूर्ण परमात्मस्वरूप से भरपूर आत्मा है। एक समय में ज्ञान, आनन्द से परिपूर्ण परिपूर्ण वस्तु स्वभाव है। उसकी अन्तर्दृष्टि लगाने से ऐसे ज्ञायक आनन्द पूर्ण परमात्मा अपना निजस्वरूप, उसमें दृष्टि लगाने से समग्र परद्रव्य की रुचि छूट गयी। उससे मुझे लाभ-अलाभ है, यह दृष्टि छूट गयी। मेरे पूर्ण स्वभाव से जितना एकाग्र हूँ, उतना मुझे लाभ है, ऐसी दृष्टि-रुचि हो गयी। समझ में आया?

और ऐसी दृष्टि होने पर भी जब तक मन, वचन और काया निमित्त और अन्दर कम्पन की क्रिया और उसमें शुभ-अशुभभाव होते थे। शुभ-अशुभ दया, दान, भक्ति, वह शुभपरिणाम है मैल, पुण्यपरिणाम। अशुभ हिंसा, झूठ, चोरी पापपरिणाम दोनों मलिन भाव हैं। उस कम्पनक्रिया में दो थे, तब तक शुभाशुभपरिणाम के भावास्रव थे। मिथ्यात्व का आस्रव नहीं था। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह .....कहते हैं, क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कम्पन तो सदा होता है, वह कहाँ प्रश्न है? ले।

मुमुक्षु : कम्पन बिना।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, नहीं; कम्पन तो आनेवाली क्रिया में निमित्त है, बस। परन्तु उसमें शुभाशुभपरिणाम हैं, वही बन्ध और स्थिति का कारण है। कम्पन तो केवली को बहुत ही होता है। वह तो एक क्रिया का कम्पन है। उसमें क्या है? वह कोई मूल चीज़ नहीं बन्ध का कारण वह मूल चीज़ नहीं। बहुत इस जगत को तत्त्व क्या है, तत्त्व कैसे प्राप्त होता है, यह खबर नहीं। भगवान आत्मा देह से, वाणी से, इस मन से, जड़ से भिन्न। भिन्न परन्तु अपने स्वभाव से अभिन्न है। आत्मा का अपना स्वरूप जो है, वह तो ज्ञान, दर्शन, आनन्द, शान्ति ऐसे स्वभाव से भरपूर पड़ा है, पूरा स्वभाव आत्मा में पड़ा है। अनादि से है। परन्तु उस स्वभाव का प्रेम उसने एक समय भी अनन्त काल में नहीं किया।

यह पर अनन्त पदार्थ के प्रति प्रेम, रुचि और अरुचि (की), इस कारण पर से मुझे लाभ-अलाभ और मुझसे पर में लाभ-अलाभ (होता है), ऐसी दृष्टि को मिथ्याभ्रम दृष्टि कहते हैं। वह दृष्टि जब चिदानन्द में लाभ है, अपने में जितना एकाग्र हूँ, उतना मुझे लाभ। जितना अनएकाग्र रहूँ, रागादि (करूँ), उतना मुझे अलाभ है। कहो, बालचन्दजी! ऐसी जब प्रथम दृष्टि हो, मैं तो सच्चिदानन्द शाश्वत् सत् ज्ञान और आनन्द का एक खजाना हूँ, निधान हूँ।

अनन्त-अनन्त बेहद आनन्द शान्ति निकालने का मुझमें खजाना पड़ा है। ऐसी दृष्टि हुई, तब मिथ्यादृष्टि अर्थात् पर से लाभ, नुकसान अथवा अल्पज्ञ में मैं पूरा था, राग में मुझे लाभ था, पुण्य से मुझे लाभ था, पाप में मजा है। यह सब दृष्टि छूट जाती है। समझ में आया?

ऐसी अन्तर्दृष्टि भगवान आत्मा पूर्णानन्द सच्चिदानन्द की दृष्टि हुई, तब उसे

सम्यग्दर्शन जैसा सत्स्वभाव था, वैसी प्रतीति हुई तो प्रशंसनीय दृष्टि सम्यग्दृष्टि कहा गया है। ऐसा होने पर भी, जब तक अपने कम्पन में शुभ-अशुभपरिणाम के दया, दान, व्रतादि शुभभाव; हिंसा, झूठ, चोरी आदि अशुभभाव दोनों विकल्प है, वासना है। वह वासना वृत्ति जहाँ तक उठती है, वहाँ तक उसे नये आवरण आने का वह कारण है। भ्रमणा छूट गयी, अस्थिरता रह गयी। समझ में आया?

यह अस्थिरता अपनी क्रिया में से छूट गयी, तथापि शुद्धस्वभाव में... यहाँ तो पूर्ण संवर की बात करनी है न! अपना ज्ञायक चिदानन्द प्रभु पूर्णानन्द से भरपूर, उसमें जहाँ लीन हुआ तो जो शुभ और अशुभ जो परिणाम हैं, वे उत्पन्न न हुए। इसका नाम शुद्धभाव द्वारा शुभाशुभ-परिणाम रुके, इसका नाम भावसंवर कहने में आता है। उससे नये आवरण आनेवाले थे, वे नहीं आये, इसका नाम द्रव्यसंवर कहने में आता है। ओहोहो! समझ में आया?

धर्म क्या चीज़ है और धर्म कैसे होता है? बाहर से ऐसे किया और ऐसे किये और धूल किया और यह किया। कौन करता है शरीर आदि पर चीज़ है, उससे तेरा उसमें कुछ प्रयोग भी नहीं है। तेरी सत्ता में तेरा प्रयोग है उल्टा-सुलटा। तो कहते हैं। **इसलिए यहाँ (इस गाथा में) शुभाशुभपरिणाम का निरोध...** देखो! अपने शुद्ध आनन्द में दृष्टि लगाकर, फिर शुद्धता में लीन होना, तब शुभ-अशुभपरिणाम दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम शुभपुण्य हैं और हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, भोग, वासना पाप है। दोनों का निरोध। निरोध का अर्थ? आया था और रुका, यह तो शब्द की कथनी है। अन्तर में स्वभाव शुद्धता में आया तो वह परिणाम उत्पन्न न हुए, उसे शुभाशुभ को रोका है, ऐसा भावसंवर कहने में आया है। ओहोहो! समझ में आया?

भावपुण्यपापसंवर,.... देखो! इसका नाम भावपुण्यपापसंवर है। यह तो महासिद्धान्त है। यह कोई साधारण शब्द और साधारण कोई पुस्तक पढ़ना या वाँचना, यह ऐसी कोई यह चीज़ नहीं है। समझ में आया? भगवान आत्मा एक समय में अपने स्वभाव पर दृष्टि लगाने के उपरान्त, क्रिया में से शुभाशुभपरिणाम का उत्पन्न होना, (वह) स्वभाव की शुद्धता में लीन होने से न हुए, इसका नाम भावपुण्यपाप का आस्रव रुक गया, (उसे) संवर कहते हैं। कहो, समझ में आया?

द्रव्यपुण्य-पापसंवर का प्रधान हेतु... देखो! यह भावपुण्य-पाप की जो विकारी पर्याय थी, वह उत्पन्न न हुई तो **द्रव्यपुण्य-पापसंवर का प्रधान हेतु अवधारना (-समझना)।** लो! समझ में आया? उसमें निमित्त वह भावपुण्य नहीं हुए तो द्रव्य-पुण्य के रजकण भी आने के रुक गये। आने के रुक गये का अर्थ? आनेवाले थे और रुक गये, ऐसा नहीं। आये नहीं, उसे आना रुक गये, ऐसा कहा गया है। कथन पद्धति ऐसी है। ऐसा स्वकाल का अर्थ भाव। भाव न हुआ तो उसके कारण से आये ही नहीं। आनेवाले थे ही नहीं। आहाहा! समझ में आया?

शुभाशुभभाव किये तो रजकणों को आना पड़ो, ऐसा भी नहीं है। उसके योग्य जड़ में होनेवाली पुण्य और पाप की जो परमाणु की पर्याय थी, वह होती थी। और जब यहाँ भावपुण्य-पाप रुक गये तो उन परमाणु में ऐसे द्रव्य में-रजकण में पुण्य और पापपर्याय होनेवाले रजकण भी नहीं थे। समझ में आया? सब स्वतन्त्र है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा वहाँ है ही नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु भी सब, अपना आत्मा द्रव्य से-पर्याय परिणमन करता है। किसी का सम्बन्ध है ही नहीं। अपनी सीमा ही अपने द्रव्य-गुण-पर्याय में पूरी होती है। बस! सब द्रव्य की सीमा, मर्यादा उसके द्रव्य-गुण-पर्याय में सीमा पूरी होती है। दूसरे को कभी स्पर्शा भी नहीं। एक द्रव्य कभी किसी को स्पर्शा ही नहीं तीन काल तीन लोक में। समझ में आया?

अपने मिथ्या अभिप्राय को स्पर्श करता था और शुभाशुभपरिणाम का वेदन करता था। वह छूता था, इसका अर्थ वेदन करता था। वह अपने ज्ञायकभाव आनन्दध्रुव को पकड़कर जो दृष्टि में मिथ्यावेदन था, वह निकल गया। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान का वेदन हुआ। फिर अभी शुभाशुभपरिणाम में इतने मैल का वेदन है। यह आस्रव है। वह भी द्रव्य स्वभाव सन्मुख में लीन होने से रुक गया, उतना वेदन शुद्ध हो गया। समझ में आया? बापू! धर्म कोई दूसरी चीज़ है, ऐसी कोई। सुमेरुमलजी! ऐसी कहीं बाहर से

मिल जाये, (ऐसा है नहीं) बाहर में कोई चीज़ है नहीं, वह चीज़ तो जहाँ है, वहाँ है। बाहर में है नहीं तो बाहर से कहाँ से मिले? जहाँ है, वहाँ वह है। वे कहाँ से मिले?

भगवान आत्मा... यहाँ तो आचार्य (भगवान) को दो बात कहनी थी। शुभाशुभभाव -परिणाम रुक गये, वह भावसंवर, वह जिसमें निमित्त पड़ते थे, ऐसे रजकण भी नहीं आये, उसका नाम द्रव्यसंवर। वह दो द्रव्य की विकारीपर्याय आनेवाली थी, यहाँ विकारी पर्याय होनेवाली थी। रुक गये तो वहाँ निर्मल पर्याय हुई, यहाँ आनेवाली थी नहीं। रजकण ऐसे द्रव्य परिणमने के योग्य थे ही नहीं। उसे द्रव्यसंवर कहा गया है। कहो, समझ में आया? यह तो बात ऐसी है, भाई! धीरज की बात है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु सूक्ष्म है वस्तु। संवर से तो शुरु हुआ है। संवर से तो धर्म शुरु होता है। तो संवर क्या चीज़ है? हाथ में पाँच अँगुली सेवा के प्रत्याख्यान ले। हाथ में आस्रव है? वाणी में आस्रव है? बोल दिया हमारे पाँच हाथ.... अर्थात् क्या परन्तु? क्या आस्रव कहाँ रहते हैं? तुझे क्या क्रिया हुई? उससे कहाँ रुक गया, कहाँ था कोई खबर नहीं। बालचन्दजी! करते हैं या नहीं संवर? पाँच हाथ और.... समकित का संवर हुआ। समकित उत्पन्न नहीं हुआ, मिथ्यात्व उत्पन्न हुआ। अब नीचे (फुटनोट में) जरा वह प्रधान हेतु लिखा है न! द्रव्य-पुण्य-पाप-संवर का प्रधान हेतु कौन? कि वह शुभाशुभपरिणाम। ऐसा लिखा है न? इस ओर २०९ (१९७) पृष्ठ पर। क्या कहा?

शुभाशुभपरिणाम का निरोध... अथवा अपने आत्मा में शुभ और अशुभपरिणाम का अनुत्पन्न होना, इसका नाम निरोध कहने में आया है। **भावपुण्यपापसंवर—द्रव्यपुण्य-पापसंवर का प्रधान हेतु...** कहा। प्रधान हेतु कहा न? प्रधान हेतु कहने का क्या कारण है। यह नीचे अर्थ करते हैं। नहीं तो रजकण जो आनेवाले थे, वे स्वयं से आते हैं और रुके भी स्वयं से हैं। उसमें यह प्रधान हेतु कहा तो यह थे तो आये, ऐसा यहाँ कहने की आवश्यकता नहीं। प्रधान हेतु कहने का क्या कारण है? कि मुख्य निमित्त। देखो!

द्रव्य संवर में 'मुख्य निमित्त' जीव के शुभाशुभपरिणाम का निरोध है,... योग का निरोध नहीं। यह सिद्धान्त सिद्ध करना है। प्रधान हेतु क्यों कहा? है तो निमित्त।

नये रजकण आने के रुक गये और शुभाशुभपरिणाम न हुए, इस कारण से। उसे मुख्य -प्रधान हेतु क्यों कहा? कि योग की क्रिया शुभाशुभपरिणाम आने में निमित्त नहीं थी। वह तो योग की क्रिया तो निमित्तमात्र रजकण आने में थी और उसमें स्थिति और अनुभाग ऐसे जो शुभाशुभपरिणाम से निमित्त थे और आनेवाले थे, ऐसा भावसंवर हुआ, तब द्रव्य परमाणु में ऐसी पर्याय होनेवाली नहीं थी, वह रुक गयी। उसमें मूल कारण तो यह परिणाम हुए। योग नहीं, योग नहीं। योग का कम्पन तो चालू ही है। समझ में आया? देखो!

परिणाम का निरोध, योग का निरोध नहीं। कम्पन रुक नहीं गया। कम्पन तो है। परन्तु शुभाशुभपरिणाम नये आने में निमित्त प्रधानकारण का अर्थ योग करते हैं, वह शुभाशुभभाव ही नये आने में निमित्त थे। वे रुक गये तो नये शुभाशुभपरिणाम निमित्त नहीं हुए। नये परमाणु भी नहीं आये, उसमें प्रधान कारण यह था; योग नहीं। यह बताने के लिये प्रधान कारण कहा। बाकी तो आनेवाले परमाणु तो स्वयं से ही आते हैं। यहाँ शुभाशुभपरिणाम हुए तो आये और शुभाशुभपरिणाम रुक गये तो उसमें रुकना पड़ा, आते थे और रुकना पड़ा, ऐसा है नहीं। समझ में आया?

(यहाँ यह ध्यान में रखने योग्य है कि द्रव्यसंवर का उपादानकारण... यह रजकण नहीं आनेवाले थे, वह उपादानकारण **निश्चयकारण तो पुद्गल स्वयं ही है।)** यह रजकण आनेवाले नहीं थे, वह उनका उपादानकारण है। शुभाशुभपरिणाम रुक गये, इसलिए प्रधानकारण हुआ और इस कारण वे आना रुक गये, ऐसा नहीं है। क्या कहते हैं यह? समझ में आया?

शुभाशुभपरिणाम का मुख्य कारण-प्रधान कारण... मुख्य कारण का अर्थ क्या? मुख्य कारण तो अपने में है उपादान। परन्तु पर में मुख्य कारण कैसे कहा कि योग का निरोध कारण नहीं है। यह शुभाशुभपरिणाम कारण आनेवाले में है। रुकने में वह शुभाशुभपरिणाम रुकने में मुख्य कारण है, यह बताने के लिये प्रधान कारण कहा गया है। समझ में आया?

मुमुक्षु : रुका तो अपने कारण से है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो अपने कारण से रुके हैं। उपादान तो इनका है। परन्तु यहाँ शुभाशुभ को मुख्य कारण-प्रधान कारण कहा तो इसका अर्थ ऐसा नहीं लेना कि इस कारण से आते थे और यह रुके तो रुक गये। प्रधान कारण कहने में क्रिया का निरोध न होने पर भी शुभाशुभ रुके गये तो उसके कारण वे भी रुक गये। स्वयं के कारण से, हों।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त बताना है। योग नहीं। योग का निरोध नहीं हुआ। शुभाशुभपरिणाम का निरोध हुआ है। हो रहे हैं। लोग नहीं कहते? शास्त्र भाषा से क्रिया से कर्म, परिणाम से बन्ध, उपयोग से धर्म। यह तीन बात आती है। क्रिया से कर्म, परिणाम से बन्ध, उपयोग से धर्म। कम्पन है क्रिया, वह कर्म। कर्म आनेवाले में निमित्त, शुभाशुभपरिणाम बन्ध और शुद्ध उपयोग, वह धर्म। समझ में आया? आते हैं न तीन बोल आते हैं। श्रीमद् में आते हैं। क्रिया से कर्म, परिणाम से बन्ध, उपयोग से धर्म। यह उपयोग शुद्ध लेना। नहीं तो वह परिणाम से बन्ध, वे परिणाम अशुद्ध उपयोग है। शुभाशुभपरिणाम, वे अशुद्ध उपयोग है। परन्तु परिणाम से बन्ध, वह शुभाशुभभाव बन्ध का कारण है। क्रिया सम्पन्न कर्म आने का निमित्त है। और शुद्ध उपयोग, वह धर्मस्वरूप है। समझ में आया? यह क्रिया नहीं। देह की क्रिया से कर्म आते हैं, वह नहीं। क्रिया से कर्म, वह क्रिया नहीं। समझ में आया? यह बताया, देखो न?

काय सम्बन्धी क्रिया, ऐसा लिया न? देखो! पाठ में ऐसा है न? '**जस्स जदा खलु पुण्णं जोगे पावं च णत्थि विरदस्स**' यह क्रियानय से दो नय है। ऐसा पाठ में लिया है न? योग का कम्पन अलग और उसमें शुभाशुभभाव हों, वह अलग प्रकार है। समझ में आया? कौन ऐसे विचार करने को निवृत्त है? स्थिति-अनुभाग वही मूल वस्तु है। उसमें निमित्त पड़े, वह यह चीज़ है। १४८ गाथा में आयेगा। उसमें आयेगा। कहो, समझ में आया?

इस प्रकार संवरपदार्थ का व्याख्यान समाप्त हुआ। लो! संवर का १४२ गाथा में चला था, १४३ गाथा में चला। १४१ में भी चला। तीन गाथाओं में पूरा हुआ। १४१ में

चला था मार्ग वास्तव में संवर है। वहाँ से शुरु हुआ। १४० गाथा में आस्रव पूरा हुआ था। द्रव्यसंवर हो या भावसंवर हो। वह आत्मा की शुद्धपर्याय भावसंवर है। द्रव्यसंवर अर्थात् उस पर्याय में रजकण न आये, इसका नाम द्रव्यसंवर कहने में आया है। है तो वह पर्याय। द्रव्य-गुण में वह भावसंवर और द्रव्यसंवर कहने में नहीं आने पर भी पर्याय को कहने में आता है। यह बात यहाँ सिद्ध करनी है।

दोनों स्वतन्त्र, तथापि एक अपनी पर्याय दूसरे में निमित्त पड़ती है। इतना बतलाना है। निमित्त होने पर भी कर्ता नहीं। शुभपरिणाम नये कर्म आवरण में निमित्त पड़ने पर भी शुभपरिणाम उन नये कर्म का कार्य करनेवाला नहीं है। वह कार्य तो उसमें उसके कारण से स्वतन्त्र होता है। अब यह समझे नहीं और फिर बिना भान के धर्म हो जाये, लो!

मुमुक्षु : ओघे अर्थात्?

पूज्य गुरुदेवश्री : ओघे अर्थात् समझे बिना। समझण किये बिना, पहिचाने बिना क्या है?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह संवर परिणाम। कोई कहे भाई अन्दर में संवर परिणाम हुए तो इतनी देह की क्रिया रुक जानी चाहिए। यह तो नहीं परन्तु योग की क्रिया रुकती नहीं, ऐसा कहते हैं। यहाँ तो भाई ऐसा कहते हैं। समझ में आया? अन्तर में दृष्टि और जितनी शुद्धता हुई तो उसमें क्रिया जो कम्पन है, वह नहीं रुकी। तो फिर जड़ की क्रिया रुक जाये, ऐसा है ही नहीं। समझ में आया?

जड़ की क्रिया जड़ के कारण से हो या न हो, वह उसके कारण से नहीं होती। आत्मा के कारण से जड़ की क्रिया नहीं होती। समझ में आया?

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : धर्म कहाँ था। धर्म कहाँ था? किसे धर्म कहना? मन्दिर में- एक प्रश्न किया था। भाई अपने बुजुर्गों में तो ऐसी उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार की बात नहीं थी। तो उन्हें धर्म होता होगा या नहीं? ऐसा एक पत्र में प्रश्न हुआ था।

उसे एक दिन जवाब दिया कि भगवान के दर्शन करना जाते थे तो भगवान की श्रद्धा थी या नहीं ? यह कहे भगवान की श्रद्धा है तो उसे धर्म है। ऐसा कहा था। धूल में भी धर्म नहीं।

ऐसा कि अपने बुजुर्गों को उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, क्रमबद्ध और ऐसी कुछ खबर नहीं थी तो वे धर्म करते थे तो धर्म है या नहीं ? ऐसा पत्र में प्रश्न चला था। अब एक व्यक्ति ने उसका जवाब दिया। भगवान के दर्शन हैं तो भगवान है या नहीं वहाँ। भगवान की मान्यता है या नहीं ? क्या उसमें किसी दूसरे की मान्यता है ? इसलिए धर्म था। ऐसा वे कहते थे।

अरे ! भगवान किसे कहते हैं, भगवान कहाँ रहते हैं और कहे, भगवान यहाँ रहते हैं ? वहाँ भगवान की खबर नहीं और भगवान के निक्षेप और भक्ति करने जाये तो शुभभाव है। समझ में आया ? देवीलालजी ! इस भगवान को जाने बिना दूसरे भगवान के निमित्त के शुभभाव भी कहाँ से आयेगा ? वास्तव में तो। वास्तव में। ऐसा कि जब अपना ज्ञान अपने को पकड़े, तब उस ज्ञान में नय पड़ते हैं, तो नय का विषय निक्षेप होता है। समझ में आया ?

अपना ज्ञान अपने को पकड़कर जब सम्यग्ज्ञान हुआ, सम्यक्श्रुतज्ञान। उस श्रुतज्ञान में दो भाग पड़ गये, निश्चय और व्यवहारनय। तो नय का निक्षेप विषय है। तो जब अपना ज्ञान नहीं हुआ तो नय नहीं और नय के बिना निक्षेप का ज्ञान उसे कहाँ से होगा ? समझ में आया ? यह तो स्थापना निक्षेप है। भावनिक्षेप वहाँ है ? भगवान वहाँ है ? अपना भावभगवान यहाँ है, उसका प्रतिबोध हुआ तो ज्ञान हुआ तो ज्ञान में दो नय पड़ गये। निश्चय और व्यवहार। व्यवहारनय वहाँ आगे निक्षेप का लक्ष्य करके निक्षेप का भाग करता है कि यह स्थापना है, यह नाम है। ज्ञेय के भाग चार करते हैं।

इस ज्ञान के अखण्ड ज्ञायमूर्ति का भान हुआ तो ज्ञान में दो भाग पड़े—निश्चय और व्यवहार। यह फिर ज्ञेय में चार भाग करता है। कि यह नाम है, यह स्थापना है, यह योग्यता है, यह भाव है। समझ में आया ? कहो, बालचन्दजी ! क्या है ? कहाँ से हो ? निक्षेप तो विषय है। विषय, ज्ञान हुए बिना विषय कहाँ से आया ? वह भी पर व्यवहार

विषय हुआ। तो निश्चय विषय हुए बिना अपना निश्चय विषय ज्ञान में हुए बिना ज्ञान में सम्यक्पना आया कहाँ से? और सम्यक्पना आये बिना निश्चय-व्यवहार के दो भंग श्रुतज्ञान का अवयव आया कहाँ से?

व्यवहारनय का जब अवयव पड़ा तो सामने निक्षेप है, उसका लक्ष्य उसे आता है। ज्ञानी को ही वास्तव में निक्षेप का ज्ञान होता है। अज्ञानी को निक्षेप का ज्ञान होता ही नहीं। समझ में आया? भगवान है, प्रतिमा है, भक्ति है। यह सब निक्षेप ज्ञानी को ही लागू पड़ते हैं। अज्ञानी को नहीं। क्या है देवानुप्रिया!

इस प्रकार संवरपदार्थ का व्याख्यान समाप्त हुआ। अब निर्जरा पदार्थ का व्याख्यान है। अब निर्जरा पदार्थ आया।

गाथा - १४४

अथ निर्जरापदार्थव्याख्यानम् ।

संवरजोगेहिं जुदो तवेहिं जो चिट्ठदे बहुविहेहिं ।
कम्माणं णिज्जरणं बहुगाणं कुणदि सो णियदं ।। १४४ ।।

संवरयोगाभ्यां युक्तस्तपोभिर्यश्चेष्टते बहुविधैः।
कर्मणां निर्जरणं बहुकानां करोति स नियतम्।। १४४ ।।

निर्जरास्वरूपाख्यानमेतत् ।

शुभाशुभपरिणामनिरोधः संवरः, शुद्धोपयोगो योगः । ताभ्यां युक्तस्तपोभिरनशनावमौदर्यवृत्तिपरिसंख्यानरसपरित्यागविविक्तशय्यासनकायक्लेशादिभेदाद्बहिरङ्गैः प्रायश्चित्तविनयवैयावृत्यस्वाध्यायव्युत्सर्गध्यानभेदान्तरङ्गैश्च बहुविधैर्यश्चेष्टते स खलु बहूनां कर्मणां निर्जरणं करोति । तदत्र कर्मवीर्यशातनसमर्थो बहिरङ्गान्तरङ्गतपोभिर्बृंहितः शुद्धोपयोगो भावनिर्जरा, तदनुभावनीरसीभूतानामेकदेशसंक्षयः समुपात्तकर्मपुद्गलानां द्रव्यनिर्जरेति ।। १४४ ।।

अब, निर्जरापदार्थ का व्याख्यान है।

शुद्धोपयोगी भावयुत जो वर्तते हैं तपविषै।
वे नियम से निज में रमें बहु कर्म को भी निर्जरें।।१४४।।

अन्वयार्थ :— [संवरयोगाभ्याम् युक्तः] संवर और योग से (शुद्धोपयोग से) युक्त ऐसा, [यः] जो जीव [बहुविधैः तपोभिः चेष्टते] बहुविध तपोंसहित वर्तता है, [सः] वह, [नियतम्] नियम से [बहुकानाम् कर्मणाम्] अनेक कर्मों की [निर्जरणं करोति] निर्जरा करता है।

टीका :— यह, निर्जरा के स्वरूप का कथन है।

संवर अर्थात् शुभाशुभपरिणाम का निरोध, और योग अर्थात् शुद्धोपयोग; उनसे (-संवर और योग से) युक्त ऐसा जो (पुरुष), अनशन, अवमौदर्य, वृत्तिपरिसंख्यान, रसपरित्याग, विविक्तशय्यासन तथा कायक्लेशादि भेदोंवाले बहिरंग तपोंसहित और प्रायश्चित, विनय, वैयावृत्त्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग तथा ध्यान, ऐसे भेदोंवाले अन्तरंग

तपोंसहित—इस प्रकार बहुविध [१]तपोंसहित प्रवर्तता है, वह (पुरुष) वास्तव में बहुत कर्मों की निर्जरा करता है। इसलिए यहाँ (इस गाथा में ऐसा कहा कि), कर्म के वीर्य का (-कर्म की शक्ति का) [२]शातन करने में समर्थ ऐसा जो बहिरंग और अन्तरंग तपों द्वारा [३]वृद्धि को प्राप्त शुद्धोपयोग, सो भावनिर्जरा है और उनके प्रभाव से (-वृद्धि को प्राप्त शुद्धोपयोग के निमित्त से) नीरस हुए ऐसे उपार्जित कर्मपुद्गलों का एकदेश [४]संक्षय, सो द्रव्यनिर्जरा है॥१४४॥

गाथा - १४४ पर प्रवचन

संवरजोगेहिं जुदो तवेहिं जो चिट्ठदे बहुविहेहिं।
कम्माणं णिज्जरणं बहुगाणं कुणदि सो णियदं।।१४४।।

१. जिस जीव को सहजशुद्धस्वरूप के प्रतपनरूप निश्चय-तप हो, उस जीव के, हठरहित वर्तते हुए अनशनादिसम्बन्धी भावों को तप कहा जाता है। उसमें वर्तता हुआ शुद्धिरूप अंश, वह निश्चय-तप है और शुभपनेरूप अंश को व्यवहार-तप कहा जाता है। (मिथ्यादृष्टि को निश्चय-तप नहीं है, इसलिए उसके अनशनादिसम्बन्धी शुभभावों को व्यवहार-तप भी नहीं कहा जाता; क्योंकि जहाँ यथार्थ तप का सद्भाव ही नहीं है, वहाँ उन शुभभावों में आरोप किसका किया जावे ?)

२. शातन करना=पतला करना; हीन करना; क्षीण करना; नष्ट करना।

३. वृद्धि को प्राप्त=बढ़ा हुआ; उग्र हुआ। [संवर और शुद्धोपयोगवाले जीव को जब उग्र शुद्धोपयोग होता है, तब अनेक कर्मों की निर्जरा होती है। शुद्धोपयोग की उग्रता करने की विधि शुद्धात्मद्रव्य के आलम्बन की उग्रता करना ही है। ऐसा करनेवाले को, सहजदशा में हठरहित जो अनशनादि सम्बन्धी भाव वर्तते हैं, उनमें (शुभपनेरूप अंश के साथ) उग्र-शुद्धिरूप अंश होता है, जिससे अनेक कर्मों की निर्जरा होती है।(मिथ्यादृष्टि को तो शुद्धात्मद्रव्य भासित ही नहीं हुआ है; इसलिए उसे संवर नहीं है, शुद्धोपयोग नहीं है, शुद्धोपयोग की वृद्धि की तो बात ही कहाँ रही ? इसलिए उसे, सहज दशा रहित—हठपूर्वक—अनशनादिसम्बन्धी शुभभाव कदाचित् भले हों तथापि, मोक्ष के हेतुभूत निर्जरा बिल्कुल नहीं होती।)]

४. संक्षय= सम्यक् प्रकार से क्षय।

टीका :— यह, निर्जरा के स्वरूप का कथन है। टीका, इसकी टीका। उसका विस्तार। टीका की पहली लाईन। **संवर अर्थात् शुभाशुभपरिणाम का निरोध,...** टीका की पहली लाईन। २१० पृष्ठ हिन्दी। संवर की व्याख्या क्या? शुभाशुभपरिणाम का रुक जाना। अपने में शुभ और अशुभपरिणाम का न होना, इसका नाम संवर है। कहो, समझ में आया? पंच महाव्रत के परिणाम होते हैं, वे भी आस्रव हैं, शुभपरिणाम हैं। उसे संवर, निर्जरा लगा देते हैं। लो! कषाय के कण हैं। दोनों शुभाशुभभाव नौ पदार्थ का निर्णय कराते हैं कि जिसे संवर कहते हैं, वह क्या है? जिसे आस्रव कहते हैं, वह क्या है? ऐसे स्वरूप की दृष्टि में आये बिना नौ पदार्थ का यथार्थ भान जैसा विषय है, जैसा स्वरूप है, वैसा ज्ञान में भासित हुए बिना ज्ञान यथार्थ नहीं होता। समझ में आया?

ज्ञान यथार्थ हुए बिना नौ पदार्थ की सच्ची श्रद्धा उसे नहीं होती। कहीं का कहीं लगा दे, कहीं का कहीं लगा दे। **संवर अर्थात् शुभाशुभपरिणाम का निरोध,...** और योग। **योग अर्थात् शुद्धोपयोग;...** योग की व्याख्या यहाँ शुद्ध उपयोग। **उनसे (-संवर और योग से) युक्त ऐसा जो...** क्या कहा? शुभाशुभपरिणाम का रुकना, वह नास्ति से हुआ और योग-शुद्धोपयोग से युक्त, यह अस्ति हुई। शुभाशुभपरिणाम न हुए, यह नास्ति हुई। हुआ क्या? कि योग हुआ।

अपना स्वभाव शुद्ध सन्मुख के झुकाव से जो शुद्धपरिणति और शुद्धभाव-शुद्धभाव। ऐसा युक्त जो पुरुष। उससे सहित जो कोई पुरुष, देखो! इसमें वजन है। इसके बिना कोई अनशन, ऊनोदरी आदि करे उसे व्यवहार तप भी कहने में नहीं आता। यहाँ निर्जरा की व्याख्या है। जिसे ऐसा भाव नहीं, उसके बारह प्रकार के तप में व्यवहार तप भी कहने में नहीं आता। समझ में आया? जिसे शुभाशुभपरिणाम का निरोध है और शुद्धस्वभाव सन्मुख के अपने उपयोग का व्यापार अन्दर में झुका है, ऐसा जो पुरुष, ऐसा जो पुरुष। अब उसकी बात करते हैं, निमित्त की, व्यवहार की।

अनशन। उसे जो अनशन है, विकल्प आया कि मुझे आहार नहीं करना, इतना विकल्प। अनशन-अशन नहीं। उस विकल्प को निमित्तरूप व्यवहार तप कहते हैं। परन्तु जब उसमें शुभाशुभपरिणाम रुक जाने से शुद्धपरिणाम उत्पन्न हुए, उस भूमिका में

ऐसे निमित्त व्यवहार आये, उसे व्यवहारतप कहते हैं। और अन्दर में शुद्धोपयोग में लीनता हो तो निश्चय तप कहा जाता है। कहो, भीखाभाई! यह भान बिना अनशन-फनशन करे, वह लंघन है, ऐसा कहते हैं। लंघन-लंघन कहते हैं न? लंघन-लंघन कहते हैं न?

पहले यह बोल लिया है। पाठ। क्योंकि मूल पाठ में ऐसा है न? '**संवरजोगिहि जुदोतवेहिं**' भाई! ऐसा शब्द है न? '**तवेहिं जा चिहठे**' फिर। संवर योग युक्त-सहित बारह प्रकार के तप व्यवहाररूप है, परन्तु वहाँ शुद्धोपयोग की वृद्धि के लिये राग घटाने के लिये विकल्प आया और यह भाव नहीं, उसके अनशन, ऊनोदर, व्रत, तप आदि सब झूठ है। निर्जरा का कुछ कारण नहीं है। ओहोहो! समझ में आया? रहित शब्द इसमें पड़ा है न संस्कृत में, क्या है? '**बहिरंग अंतरंग तपोभिबृहितः**' संस्कृत है, संस्कृत में। तपोभिः पश्चात् क्या?

मुमुक्षु : बहुविध तपों सहित प्रवर्तता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, नहीं चौथा। संस्कृत टीका। बाद में '**वीर्यशातन-समर्थो**' पाँच लाईन बाद छठी है न? अन्तिम '**बहिरंग अंतरंग तपोभिबृहितः**' बृंहितः बृंहितः बृं-हितः इतना। अन्त में अलग शब्द किया है, ऐसा। बृं और हितः अलग कर दिया। उसमें अलग किया है।

देखो! क्या कहते हैं? यह बारह प्रकार के तप कहेंगे उसमें अपने स्वरूप में शुभाशुभपरिणाम न होना और शुद्धोपयोग का होना, उस भूमिका में ऐसे बारह प्रकार के तप कहे गये हैं, वे निमित्तमात्र हैं। हेतु तो अन्दर में शुद्धोपयोग में वृद्धि होना, वह बात है। परन्तु उस शुद्धोपयोग की उत्पत्ति नहीं हुई, उसे वृद्धि निमित्त से कहाँ से होती है? समझ में आया?

बारह प्रकार के तप से शुद्धोपयोग की वृद्धि कहने में आयी। इसलिए यह शब्द लिया है। बृंहितः शब्द पड़ा है न? बृंहितः अन्दर शब्द। हाँ यह। परन्तु वृद्धि प्राप्त किसे? जिसे अपने स्वभाव की दृष्टि ज्ञायक ज्ञाता ही हूँ, विकल्प का कार्य मेरा नहीं। मेरा कर्तव्य नहीं कि विकल्प करना। और देह का त्याग या अत्याग, वह मेरी चीज़ में हैं ही

नहीं। वह तो स्वतन्त्र पदार्थ है। मैं ज्ञायक हूँ, ऐसे ज्ञान का बीज दृष्टि में आया कि मैं तो ज्ञान से, पर से अधिक हूँ। ऐसा भान हुआ, उसमें जो शुद्धोपयोग में अन्दर में लीन हुआ, उसके बारह प्रकार के तप शुद्धोपयोग की वृद्धि का निमित्त है—ऐसा कहने में आया है। समझ में आया? नहीं तो मात्र लंघन है। लंघन। कहे भाई अपने इतना इन्द्रियनिग्रह तो किया? आहार पाँच आज खाया, नहीं खाया।

कहते हैं कि भाई! वह चीज़ और उस चीज़ सम्बन्धी उसका विकल्प, उसका तुझे स्वामीत्व रहा और चैतन्य सहज स्वरूप का स्वामीपना नहीं आया। समझ में आया? वह तक तुझे जिसका स्वामीपना है, उसका त्याग करने का भाव कैसे आता है? उसकी तो रक्षा करने का भाव है। समझ में आया? अपने सहज स्वभाव का स्वामीपना दृष्टि में आया, तब विकल्प और देहादि भिन्न है। वह तो छूटनेयोग्य है, ऐसी दृष्टि हुई तब स्वभाव में एकाकार होकर पर का स्वामी नहीं था, इतनी वस्तु जब छूटती जाती है, (तब) आत्मा में स्वामीपने शुद्धस्वभाव प्रगटता जाता है। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो कहे, आज मैंने आहार नहीं किया। आज इतना नहीं खाया (तो) इतना तो मेरा तप है या नहीं? कहाँ से तप आया तेरे? अभी परपदार्थ का स्वामीपना माना है। जिसे स्वामी माने, उसे छोड़ दे? वह छूटता नहीं। दृष्टि में छूटा भी नहीं। (बहुत से ऐसा कहते हैं), आज मेरे आहार छूटा है। क्या छूटा है? आहार का तो तू स्वामी है। जड़ का स्वामी। मैं खाता था और यह मैंने छोड़ दिया। मैं खाता था और मैंने यह छोड़ दिया। ऐसी पर की पकड़बुद्धि तो मिथ्यात्व है। पर का स्वामीपना है। समझ में आया?

यह बताने के लिये यहाँ बारह प्रकार के तप की व्याख्या करते हैं। भाई! जिसका स्व, उसका स्वामी। तेरी चीज़ में तू स्व और स्वामी तू। पूर्णानन्द तेरा स्व और उसका स्वामी तू। ऐसी दृष्टि हुई और शुभाशुभपरिणाम से हटकर शुद्धता में आया, उस समय अनशन-आहार का त्याग हुआ, वह शुद्धोपयोग की वृद्धि में निमित्त कहा गया है। समझ में आया? अन्दर में तो उसका अभावभाव तो दृष्टि में वर्तता है। परवस्तु का त्याग विचार मुझमें है ही नहीं। और उस ओर का विकल्प उठा, वह भी मेरा कर्तव्य है नहीं। मेरे स्वभाव में है नहीं। तो स्वभाव में है नहीं, ऐसी दृष्टि करके जब शुद्ध में एकाकार

हुआ तो विकल्प का और पर का स्वामी नहीं था तो विकल्प घट गया और शुद्धि बढ़ गयी, उसे निर्जरा होती है। कहो, देवीलालजी!

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : शरीर को असर हो या न हो, उसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है, ऐसा यहाँ कहते हैं। शरीर जीर्ण पड़ा तो भी क्या और पुष्ट हुआ तो भी क्या? उसकी वह क्रिया ही नहीं। वह स्वामी था कि मेरा यह है, राग का स्वामी था, तब विकार का स्वामी था, तब चिदानन्दस्वामी का स्वामी नहीं था। समझ में आया? जिसे अपनी मालिकी की चीज़ माने, उसकी वृत्ति करने जाये। यहाँ भी मालिकी की चीज़ माने तो उसकी पुष्टि करने की उसकी इच्छा है। आहार-बाहार छूटा ही नहीं। आहार करने की भावना मिथ्यात्व की पुष्टि हुई। मैं छोड़ा, मैंने आहार छोड़ा तो मुझे लाभ हुआ। समझे? परन्तु आहार को मैंने छोड़ा, ऐसा तो मानता ही है।

ज्ञाता-दृष्टा स्वामी होकर उसके कारण छूट गया और विकल्प आया वह भी शुद्धता में रहकर छूट गया, ऐसा तो भान है नहीं। यह निर्जरा की व्याख्या चलती है। निर्जरा किसे कहना? निर्जरा की खबर नहीं और हो जाये निर्जरा। सोलह अपवास किये, पच्चीस अपवास किये। हो गयी निर्जरा। प्रोषध कहाँ गये तेरे तप! समझ में आया?

मुमुक्षु : लाभ तो किया है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : लाभ पाप मिथ्यात्व का किया है। क्योंकि जिसके स्वामीपने की चीज़ है, उसकी तो खबर नहीं और वहाँ त्याग-ग्रहण में दृष्टि लगा दी। स्वामीपना हुआ। मिथ्यात्व का लाभ हुआ। बराबर है न? समझ में आया? निर्जरा पदार्थ की व्याख्या चलती है। शुभाशुभपरिणाम का रुकना और उपयोगसहित होना, पहले अस्ति सिद्ध किया। ऐसे जीव को अनशन (होता है)। समझ में आया? अनेक कर्मों की निर्जरा करता है, वह तपसहित वर्तता है। ऐसे व्यवहार से वर्तता है तो अन्दर भाव ऐसा है, शुद्ध है। उसे निर्जरा शुद्धत्व के कारण होती है। समझ में आया? देखो, यह सब मैंने इसके लिये किया है, हों! वह टोडरमलजी... यहाँ कहा न अन्तरंग शुद्धि का कारण। उन्होंने लिखा है न? ज्ञानी जो तप और उपवास करता है, वह शुद्धोपयोग की वृद्धि के

लिये करता है। उपवास के लिये उपवास नहीं। यह शब्द सब यहाँ से नौ तत्त्व के यहाँ से लिये हैं। टोडरमल (जी)-मोक्षमार्गप्रकाशक में। सब नौ पदार्थ आदि सब व्याख्या बहुत ही ली है। .....समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : शुद्धि हो तो हो। कर्म तो उसके कारण से निर्जरा होती है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सत्ता का अर्थ क्या? कर्म पड़े हैं, वे उदय में आकर खिर जाते हैं, वह तो उनके कारण से खिरते हैं। इसके कारण से खिरे नहीं हैं।

मुमुक्षु : उनका काल नहीं आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, काल नहीं आया - ऐसा नहीं। काल आया ही है। उदीरणा होकर खिर जाते हैं। उनकी पर्याय का क्रम ही ऐसा है। वह क्रमबद्ध में खिरने की योग्यता का ही उसका काल था। स्वयं के कारण से नहीं। शुद्धि-वृद्धि की, इस कारण से नहीं। और यहाँ शुभराग आया, वह भी उसके कारण से खिर गया। शुद्ध सन्मुख के झुकाव का जोर है, इतना मन्द पड़-पड़कर चला जाता है। निर्जरा के तीन प्रकार हैं। शुद्धोपयोग निर्जरा, अशुद्ध का नाश निर्जरा, दोनों अपने में; और कर्म की निर्जरा, वह जड़ निर्जरा। ऐसे तीन बोल हैं। विशेष कहा जायेगा।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. ४०, गाथा-१४४

दिनांक - ०६-१०-१९६४, आसोज शुक्ल १, मंगलवार

यह पंचास्तिकाय निर्जरा के स्वरूप का कथन चलता है। १४३ गाथा चल गयी। १४४ चलती है। देखो! क्या कहते हैं। आत्मा एक समय में अनन्त-अनन्त एक-एक गुण अनन्त सामर्थ्यवाला ऐसे अनन्त गुण सम्पन्न आत्मपदार्थ है। समझ में आया?

एक आत्मा उसमें एक गुण अनन्त सामर्थ्यवन्त है। क्योंकि गुण जिसका स्वभाव उसका सामर्थ्य अनन्त है। ऐसे अनन्त गुण के सामर्थ्यरूप एक आत्मद्रव्य है। उसमें निर्जरा की पर्याय, शुद्धोपयोग की दशा कैसे होती है और उसे निर्जरा क्यों कहते हैं, यह बात चलती है। समझ में आया?

तो कहते हैं कि **संवर अर्थात् शुभाशुभपरिणाम का निरोध,...** अपना स्वभाव जो परिपूर्ण आनन्द और शुद्धस्वभाव, उस ओर के आश्रय से झुकने से जो परिणाम में शुभाशुभपरिणाम उत्पन्न नहीं होता, उसे रोकना, संवरपूर्वक निर्जरा लेनी है न? संवरपूर्वक निर्जरा लेनी है। अकेली निर्जरा नहीं होती। तो संवरपूर्वक निर्जरा कैसे होती है? जब स्वभाव में दृष्टि आदि की एकाग्रता होने से शुभाशुभपरिणाम की उत्पत्ति न होना, इसका नाम संवर—निरोध हुआ। पुण्य-पाप का निरोध हुआ। स्वभावसन्मुख की उग्रता के प्रयत्न से शुभाशुभपरिणाम का रुकना, निरोध होना, उत्पन्न न होना, उसे प्रथम संवरधर्म की शुरुआत कहते हैं।

अब संवरपूर्वक निर्जरा की व्याख्या चलती है। और योग अर्थात् शुद्धोपयोग से युक्त ऐसा योग। देखो! अब उपयोग शुद्ध हो। संवर तो है। संवरपूर्वक। अपने आत्मा में शुद्धोपयोग का होना। शुभ-अशुभ का रुकना कहा, वह संवर हुआ। अब अपने स्वरूप में शुद्धोपयोग की परिणति विशेष उग्र होना, इसका नाम संवरपूर्वक निर्जरा-शुद्धोपयोग को निर्जरा कहते हैं। समझ में आया?

तो कहते हैं कि उससे युक्त जो आत्मा है, उसे अनशन—आहार का त्याग, ऐसा व्यवहारतप। यह निमित्त की व्याख्या है। अन्त में ऐसा लिया है कि ऐसे बहिरंग और

अन्तरंग तपों द्वारा वृद्धि शुद्धि प्राप्त शुद्धोपयोग, वह भावनिर्जरा है। ऐसा लेंगे। निर्जरा तो शुद्धोपयोगभाव वह निर्जरा है। अशुद्धोपयोग का नाश होना, शुद्धोपयोग का उत्पन्न होना, इनका-दोनों का नाम निर्जरा, परन्तु यहाँ शुद्धोपयोग की निर्जरा कही है। समझ में आया?

दो-पाँच अपवास कर डाले और ऐसा करे, वैसा करे उसका नाम निर्जरा-फिर्जरा है नहीं ऐसा कहते हैं। धरम-बरम है नहीं। धर्म तो आत्मद्रव्य दृष्टि में आने से मिथ्यात्व के परिणाम का रुक जाना और सम्यग्दर्शन के संवरपरिणाम का उत्पन्न होना हुआ, उस पूर्वक शुभाशुभपरिणाम का रुकना और शुद्धोपयोग का उत्पन्न होना, इसका नाम निर्जरा कहा जाता है। आहाहा!

एक-एक पर्याय में विवेक है। एक ही आत्मा है और आत्मा शुद्ध है और ऐसा चले? आत्मा है अनन्त गुण का शुद्धस्वरूप पिण्ड, उसका अनादि से झुकाव परद्रव्य और शुभाशुभपरिणाम की ओर है। वह झुकाव अपने स्वभाव-सन्मुख होने से पहले तो सम्यग्दर्शन संवर (होकर) मिथ्यात्व का रुकना, यह पहले संवरदशा होती है। ऐसे संवरपूर्वक शुभाशुभपरिणाम का रुकना, वह दूसरे प्रकार का संवर है। समझ में आया?

तो कहते हैं कि वह प्राणी शुद्धोपयोगवाला जीव, उससे युक्त है वह, ऐसा कहते हैं न? अनशन। बाहर में आहार का न मिलना, न आना, ऐसा निमित्त। **अवमौदर्य...** थोड़ा सा आहार लेने की वृत्ति। अवमौदर्य पेट खाली रखना। यह तो सब व्यवहार की बात है, हों! यह निर्जरा नहीं है। **वृत्तिपरिसंख्यान।** किंचित् थोड़ा रस अल्प लेना, अमुक घर में जाना, अमुक घर में न जाना, ऐसी वृत्ति का संकोच करना, वह भी बाहर की वृत्ति का निमित्त है। उसमें से अन्तरस्वभाव सन्मुख की निवृत्ति में विशेष उपयोग का जम जाना, इसका नाम भावसंवरपूर्वक निर्जरा कहने में आता है। समझ में आया?

मात्र अनशन-ऊनोदरी की बात नहीं है। देखो! फिर **वृत्तिपरिसंख्यान** पश्चात् **रसपरित्याग।** दूध, खांड, शक्कर खाता नहीं तो उसे निर्जरा होती है, ऐसा नहीं है। रसपरित्याग की वृत्ति हो और उसमें से स्वभावसन्मुख का उपयोग शुद्ध हुआ है। वह तो निमित्तपना। आत्मा के रस में एकाकार होकर पर के रस का लक्ष्य छूट जाना, ऐसा

रसपरित्याग। बाहर व्यवहार से बात की है। परन्तु रसपरित्याग किया, वह निर्जरा और धर्म है, यह नहीं। वह तो परित्यागी ही है। आत्मा में पर चीज़ का रस है ही नहीं। परन्तु उस ओर का विकल्प था, उसे उत्पन्न न होने दिया और स्वभाव-सन्मुख में आत्मद्रव्य सन्मुख शुद्ध उपयोग का झुकाव हुआ, उसका नाम निर्जरा, धर्म की वृद्धि कहते हैं। संवर धर्मरूप उत्पन्न हुआ, निर्जरा धर्म की वृद्धिरूप भाव हुआ। संवर शुद्धिरूप हुआ और निर्जरा शुद्धि की वृद्धिरूप हुई। समझ में आया?

यह तो कहे तपसानिर्जरा। तप करो तो निर्जरा हो जायेगी। अपवास करे, ऐसा करे। ऐसा नहीं। ऐसे युक्तप्राणी हैं, उन्हें ऐसे जो भाव बाह्य में निमित्त पड़ते हैं, परन्तु अपने शुद्धोपयोगभाव में वृद्धि हुई, वह निर्जरा है।

मुमुक्षु : संवरपूर्वक तप है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तप अर्थात् यह तप। अपवास-बपवास तप नहीं।

मुमुक्षु : संवरपूर्वक।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, यह नहीं। संवरपूर्वक शुद्धोपयोग से युक्त पहले लिया। हाँ, वह। संवरपूर्वक शुद्धोपयोग हुआ अन्दर।

मुमुक्षु : बाहर में....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, बाहर बाहर नहीं। यह बाहर में भटकता है, वहाँ से दृष्टि छोड़कर अपने में लीन होता है और अन्तर में शुद्धोपयोग हो, वह निर्जरा। बाहर का त्याग-ब्याग निर्जरा नहीं। उससे निर्जरा होती भी नहीं और धर्म भी होता नहीं। बात में बहुत अन्तर!

यहाँ तो अन्दर में संवरपूर्वक शुद्धोपयोग लगा हुआ है। सम्यग्दर्शन के संवरपूर्वक अन्दर शुद्धोपयोग द्रव्यस्वभाव में लीन हुआ है। उसे बारह प्रकार के तप होते हैं, उन्हें व्यवहार से कहते हैं कि इनके कारण शुद्धोपयोग में वृद्धि हुई। वृद्धि तो स्वयं से हुई। निमित्त से नहीं। समझ में आया? परन्तु विकल्प से जब निवृत्तभाव हुआ (तो) दृष्टि में तो अत्यन्त ज्ञाता-दृष्टा रहा है। ज्ञाता-दृष्टा। मैं विकल्प को करूँ या छोड़ूँ, वह मेरे स्वरूप में है ही नहीं। परन्तु स्वरूप में ठहरने से बाह्य में ऐसा निमित्त होता है

रसपरित्याग आदि निमित्त। उसका लक्ष्य अन्तर में शुद्धोपयोग पर है। उससे शुद्धोपयोग वृद्धि को प्राप्त हुआ, उसे निर्जरा कहा गया है। आहाहा! समझ में आया?

पहले दो बोल लिये न? शुभाशुभपरिणाम का रुकना, वह पहला संवर है। और फिर शुद्धोपयोग की उत्पत्ति। वह निरोध तो नास्ति से कहा। उत्पन्न क्या हुआ है? आत्मद्रव्य की दृष्टि ज्ञायकमय चिदानन्द ज्ञाता-दृष्टा। मेरा कोई कर्तव्य विकल्प का करना या छोड़ना मेरे में है ही नहीं। परवस्तु का ग्रहण करना या छोड़ना, वह तो मुझमें तीन काल में है नहीं। ऐसा चिदानन्द चिद्ब्रह्म में दृष्टिपूर्वक लगनी स्थिरता का उपयोग हो गया, उसे ऐसे बारह प्रकार के तप होते हैं तो उनसे वृद्धि हुआ शुद्धोपयोग जनित युक्त था, वह। था उसमें वृद्धि हुई। जिसे सम्यग्दर्शन नहीं, आत्मा अखण्डानन्द ज्ञान का भान-अनुभव ही नहीं उसे जिसे शुद्धोपयोग की लगन अन्दर उत्पन्न हुई ही नहीं, तो उसे वृद्धि होने का कहाँ से आया?

यहाँ तो शुद्धोपयोग है, उसकी वृद्धि अब कहते हैं। निर्जरा बतायी शुद्धि। वस्तु! कोई रजकण का ग्रहण-त्याग मेरी चीज़ में है ही नहीं। मैंने ग्रहण भी नहीं किया और छोड़ा भी नहीं। मेरी चीज़ तो अकेली ज्ञानपिण्ड चिदानन्द शुद्ध है। ऐसा दृष्टि में अनुभव में आया, पश्चात् शुभाशुभपरिणाम रुके, शुभाशुभ विकल्प रुके। शुद्धोपयोग हुआ, उसमें यह बारह प्रकार के तप होते हैं। उसकी वृद्धि शुद्धोपयोग हुआ उसमें वृद्धि होती है। समझ में आया?

विविक्तशय्यासन। एकान्त में जंगल में रहना, स्त्री-पुरुष के परिचय बिना। अन्तर में तो दृष्टि संवर सम्यग्दर्शनपूर्वक हुई है और शुभाशुभपरिणाम रुककर शुद्धोपयोग हुआ है। उसे ऐसे निमित्त होते हैं। अन्तर में बाहर से हटकर अन्तर में विशेष शुद्धोपयोग की वृद्धि होती है, उसका नाम भावनिर्जरा कहा जाता है। बहुत जवाबदारी! समझ में आया?

कायक्लेश। शरीर में आसन लगाता है ऐसे। मयूरासन और ऐसा पद्म (आसन) लगाता है न, वह सम्यग्दर्शन ज्ञाता के ऊपर दृष्टि हुई है। विकल्प और (पर का) त्याग-ग्रहण मुझमें नहीं। ऐसे शुभाशुभपरिणाम रहित उपयोग हुआ, उसमें ऐसे बारह प्रकार के

तप निमित्तरूप होते हैं, उनसे वृद्धि प्राप्त उपयोग को निर्जरा कहते हैं। कहो, बालचन्दजी! कितने उपवास से निर्जरा होती है? रसपरित्याग से निर्जरा होती है या नहीं। आहा! लोग इन बारह प्रकार को चिपकते हैं। दृष्टि मिथ्या है न? (लोग ऐसा कहे) इतना छोड़ा और उसे निर्जरा हुई, इतना छोड़ा और उसे निर्जरा हुई। समझ में आया? अमरचन्दभाई! गजब बात!

बारह प्रकार के नाम लिये हैं, हों! यह बारह तो विकल्प के भेद हैं। यह संवर— संवर है ही नहीं, निर्जरा भी है नहीं। पर का त्याग ब्याग तो आत्मा में है ही नहीं। यह तो प्रश्न है नहीं। यह तो निमित्त का लक्ष्य करके किससे लक्ष्य छूटा है और किसमें गया है, किससे लक्ष्य छूटा। पर आदि से तो लक्ष्य छूटा, इतनी थोड़ी आसक्ति (घटी) और स्वभाव सन्मुख गया है। उसे निर्जरा होती है। तो किससे लक्ष्य छूटा है, उसका नाम लिया है। आहाहा! समझ में आया?

कायक्लेशादि भेदोंवाले बहिरंग तपोंसहित... बारह तप की बात, बताने को, तप निमित्त। और **अन्तरंग तप।** वह भी अभी विकल्प, हों! वह भी बाह्य है। शुद्धोपयोग अपेक्षा से तो अभी वह भी बाह्य है। प्रायश्चित करना। कोई पाप लगा हो। परन्तु यह पहले तो उपयोगसहित की बात कही न? सम्यक् स्वरूप की दृष्टि का अनुभव हुआ। मैं तो ज्ञान से भरपूर पदार्थ हूँ। मेरे अतिरिक्त मेरी कोई दूसरी क्रिया है ही नहीं। जानने-देखने के अतिरिक्त मेरी कोई (दूसरी) क्रिया है ही नहीं। समझ में आया? सेठी!

कल रात्रि में सेठिया ने एक बोल कहा था, शाम को। वे लोग सब कहते हैं या नहीं? होनेवाला हो, वैसे होता है, तुम्हारे कानजीस्वामी को तो होनेवाला हो वैसा होता है, होनेवाला हो वैसे होता है। तो फिर सबका कार्य करना नहीं। तुम्हारे तुम्हारा भी कार्य करना नहीं। तुम्हारा भी कार्य करना नहीं और दूसरे का भी कार्य करना नहीं तो तुम्हारे होना होगा वैसे होगा तो तुम्हारे आत्मा का कार्य करना, वह भी आया नहीं। पुरुषार्थ नहीं रहा। उसने कहा, भाई! अपने गुण कार्य कर रहे हैं, उसमें कार्य न करना, यह आया कहाँ? कार्य तो कर रहे हैं अनन्त गुण। और ज्ञान ने देखा है। ज्ञान जानता है, प्रत्येक गुण कार्य कर रहे हैं। कार्य करना है, ऐसा ज्ञान ने जाना है, तो पर का कार्य नहीं करना और अपना कार्य तो होता ही है। होता ही है, फिर (बात कहाँ रही?) पर्याय तो

होती है न? पर्याय कहो या कार्य कहो। तुम्हारे कार्य नहीं करना, यह कहाँ रहा? शोभालालभाई! ....वह सब तेरापन्थी में लगावे न? उसे प्रश्न का काम बहुत पड़ता है।

तुम्हारे तो होनेवाला हो वैसे होगा तो कार्य करने का तो रहा ही नहीं। करना तो नहीं-तुम्हारा भी। परन्तु हमारे में कार्य होता है, हो रहा है, गुण कर रहे हैं। फिर कर रहे हैं, उसमें करना कहाँ दूसरा लेना है? ज्ञान जानता है। ज्ञान नहीं जानता? मेरा कार्य भी हो रहा है और उसका भी कार्य हो रहा है। बस! हो गया। ज्ञाता-दृष्टा हुआ। यही पुरुषार्थ है। दूसरा पुरुषार्थ क्या है? समझ में आया? घालमेल करनी है? आगे-पीछे करना है? कहो, समझ में आया? ऐसा यहाँ निर्जरा काल में भी किसी चीज़ को आगे-पीछे छोड़नी-फोड़नी है नहीं। समझ में आया?

अपना उपयोग शुद्धस्वभाव सन्मुख झुका है। जानने-देखने की क्रिया होती है, और सब गुण पर से रहित अपना कार्य करते हैं। ऐसे शुद्धोपयोग को निर्जरा कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? तुम्हारे तो शुद्धोपयोग कारण कि कार्य तो नहीं तो तुम्हारे शुद्धोपयोग भी नहीं। अरे! सुन तो सही! यही चारित्रगुण का कार्य है। समझ में आया?

ज्ञानगुण का कार्य जानना है। श्रद्धागुण का कार्य श्रद्धा करना है। चारित्रगुण का कार्य शुद्धोपयोग-कार्य होता ही है। वह तो एक कार्य है। परन्तु दूसरा कार्य कौन सा है? समझ में आया? यह शुद्धोपयोग ही चारित्रगुण का कार्य है। कार्य है। वह गुण कार्य कर रहा है। स्वभावसन्मुख होकर शुभाशुभ (परिणाम) रुक गये तो शुद्धोपयोग का कार्य हुआ है। होता ही है तो करना क्या दूसरा? समझ में आया?

वही कार्य है। चारित्रगुण का का वही कार्य है। ज्ञानगुण का जानना कार्य है, दर्शनगुण का देखना (कार्य) है, श्रद्धागुण का श्रद्धान है, वीर्यगुण का रचना-पर्याय की रचना होती है, यह कार्य तो होता ही है। प्रत्येक गुण का कार्य होता ही है। कहाँ नहीं होता है? समझ में आया? दृष्टि ज्ञायक के ऊपर न (हो) और मैं करूँ किसी का और मेरी पर्याय करूँ। करूँ; करूँ का अर्थ क्या? कार्य होता है और करूँ का अर्थ क्या हुआ? तो कार्य होता है और करूँ (ऐसे) दो हुए। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं (कि) यह बाह्य के पदार्थ लेते हैं तो लक्ष्य वहाँ से छूटे, इतना

बतलाना है। अन्दर में हम जाते हैं अन्दर में तो शुद्धोपयोग की परिणति हुई बस, उस शुद्धोपयोगसहित तो है। परन्तु उससे शुद्धि की वृद्धि हुई, उसका नाम निर्जरा कहने में आता है। पहले यहाँ लिया है कि संवर और संवरसहित शुद्धोपयोगयुक्त जीव को, ऐसा कहा है। समझ में आया? उसे ऐसा कोई **प्रायश्चित** का विकल्प हो अथवा तो वहाँ से लक्ष्य छूटा है और देव-गुरु आदि का **विनय** करता है। वहाँ से लक्ष्य छूटा है तो विनय निमित्त में कहने में आया है। **वैयावृत्य।** गुरु आदि धर्मात्मा के वैयावृत्य में जो लक्ष्य-विकल्प था, उससे लक्ष्य छूटा है और यहाँ आत्मा में लक्ष्य जमा है। तो आंशिक शुद्धि हुई, ऐसा कहने में आता है। समझ में आया? हें! आहाहा!

स्वाध्याय। स्वाध्याय में जो विकल्प उठता है, वाँचन इत्यादि। उनसे लक्ष्य छूटा है और अन्तर में लक्ष्य जमा है तो उसे निमित्त से वहाँ शुद्धोपयोग की वृद्धि हुई, ऐसा निमित्त से कहने में आया है। गजब बात! समझना ही अभी कठिन! समझ में आया? इस समझ को अमल में लाना। अमल का अर्थ—ज्ञान ने जानने का कार्य किया, वह अमल में लाया, (ऐसा कहने में आता है)। श्रद्धा ने कार्य किया, वह अमल में लाया। चारित्र ने शुद्धोपयोग का कार्य किया, वह अमल में लाया। कोई दूसरा अमल में लाने का है नहीं। सेठी! अमल अर्थात् निर्मल! अपने द्रव्य की दृष्टिपूर्वक अन्तर में शुद्धोपयोग की निर्मलता हो, वह अपने गुण का अमलपना किया। समझ में आया? वह जीव का जीवन है। वह जीव का जीवन है।

स्वाध्याय, व्युत्सर्ग। व्युत्सर्ग कायोत्सर्ग आदि का विकल्प है। वहाँ से लक्ष्य छूटकर, शुभभाव था पहले रोका था-लक्ष्य हुआ था, वहाँ से लक्ष्य छूटकर शुद्धोपयोग में वृद्धि हुई और **ध्यान।** ध्यान मैं करूँ और ऐसा करूँ, ऐसा भी एक विकल्प। जहाँ विकल्प थक जाये, विकल्प रुक जाये। वहाँ विकल्प रुका था, उस विकल्प का लक्ष्य छूटा, इसलिए यहाँ विकल्प से बात की है। निमित्त से बात बताते हैं। समझ में आया?

अन्तर ज्ञानानन्द में स्थिर हो जाये। समझ में आया? ध्यान में-कहा न कि मैं ध्यान करूँ, ऐसा विकल्प। उससे वृद्धि पाया हो, तब तो शुद्धोपयोग है। यहाँ ध्यान अभी बाह्य विकल्प और पर का लक्ष्य (कि) मैं ध्यान करूँ, इस विकल्प को छोड़कर

शुद्धोपयोग हुआ है, यह शुद्धोपयोग तो है। पहले तो कहा। विशेष शुद्धोपयोग की वृद्धि-ध्यान करूँ—ऐसे विकल्प से हटकर स्वभाव में विशेष एकाग्रता हुई, वह शुद्धोपयोग और निर्जरा कहने में आता है। समझ में आया?

यद्यपि ध्यान स्वयं शुद्धोपयोग और निर्जरा है, ऐसा यहाँ नहीं कहते। यहाँ तो कहते हैं कि **ऐसे भेदोंवाले अन्तरंग तपोंसहित—इस प्रकार बहुविध तपोंसहित प्रवर्तता है,...** भेद में। अब नीचे (फुटनोट में) है। देखो! एक है न? अथवा यह लाईन ले लो। **वह (पुरुष) वास्तव में बहुत कर्मों की निर्जरा करता है।** है? अब नीचे (फुटनोट में)।

जिस जीव को सहजशुद्धस्वरूप के प्रतपनरूप निश्चय-तप हो, उस जीव के,... क्या कहते हैं, जिस जीव को सहज ज्ञानानन्द सहज स्वभाव—मैं मेरा स्वरूप स्वतन्त्र सहज है। ऐसे शुद्धस्वरूप के प्रतपन अर्थात् उग्रता से होना, वह निश्चयतप है। उसका नाम निश्चयतप—सच्चा तप है। व्याख्या, तप की व्याख्या भी अलग है। जिस जीव को सहज शुद्ध ज्ञानानन्द प्रभु, पर का तो त्रिकाल अभावस्वभाव है। विकल्प का भी स्वभाव में अभावस्वभाव है। ऐसे सहज शुद्ध स्वरूप के प्रतपन प्र-विशेष उग्रपने ओपित-शोभित होना, ऐसा सुवर्ण उसमें गेरुँ लगने से, गेरुँ, गेरुँ कहते हैं न? सोना शोभता है, ओपित होता है। ऐसा चैतन्यस्वरूप ज्ञान की पूरी डली, ऐसा दृष्टि में लेकर स्थिर हुआ, ऐसे जीव को प्रतपन अर्थात् उग्र शान्ति की वृद्धि हुई, यह उसका नाम सच्चा तप-निश्चयतप कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया?

जिस जीव को... ऐसे जीव के। अकेले बारह व्रत, रसत्याग और यह नहीं। वह तो अभव्य भी अनन्त बार करता है। वह कोई निर्जरा और संवर है ही नहीं। समझ में आया? उस जीव के, हठरहित वर्तता हुआ अनशनादिसम्बन्धी भावों को तप कहा जाता है। निमित्त से तप कहा जाता है। उसमें वर्ता हुआ शुद्धिरूप अंश, वह निश्चय-तप है। उसमें अन्दर स्वभावसन्मुख का झुकाव जो ज्ञानानन्द का, पहले जो मार्ग में दृष्टि में आया था 'यह आत्मा' ऐसा मार्ग में झुककर। मार्ग तो ख्याल में आया था, वस्तु। इस प्रकार पकड़ा था। ऐसा ख्याल में आ गया है। उस मार्ग की ओर विशेष झुकता है। समझ में आया? उसे जो यह शुद्धिरूप अंश है, वह निश्चय-तप और शुभपनेरूप अंश को व्यवहार-तप कहा जाता है। देखो!

यह विकल्प आया न जरा! नरक छोड़ा और यह किया विकल्प। उसे निश्चयसहित तप हो तो उसे व्यवहारतप कहते हैं। क्यों बराबर है? अमरचन्दभाई! अकेला व्यवहार! वह तो निश्चय ऐसा हो तो ऐसे बारह प्रकार के विकल्प को व्यवहार-तप कहते हैं।

निर्विकल्प आनन्द के झरने झरें। दृष्टि के ध्येय में आत्मा लिया है, सब दृष्टि में से छोड़ दिया। परद्रव्य नहीं, पर्याय जितना नहीं, राग नहीं, गुणभेद नहीं। अकेला चैतन्य ज्ञायकभाव पूरा पूर्ण स्वभाव, ऐसी दृष्टि उसमें जम गयी, मार्ग वहाँ से अन्तर में हुआ, ऐसे मार्ग से अन्तर में लीन हुआ। समझ में आया? समझने की चीज़ ही जगत में दुर्लभ हो गयी। अभी क्या चीज़ है? बाहर से माप-बाहर से माप। उसने पुरुषार्थ नहीं किया इसलिए (कठिन है)। समझ में ले तो सुलभ ही है। देखो!

कहते हैं कि मिथ्यादृष्टि को निश्चय-तप नहीं है। जिसकी दृष्टि ही अभी राग-विकल्प उठते हैं। वह क्या चीज़ है? निर्विकल्प क्या चीज़ है? परवस्तु क्या चीज़ है? मैं छोड़-ग्रहण कर सकता हूँ या नहीं, भान ही नहीं। समझ में आया? और पूर्ण ब्रह्मानन्दकन्द नित्यानन्द प्रभु की तो दृष्टि हुई नहीं तो कहाँ से हटकर कहाँ खड़े रहना, कहाँ टिकना, यह तो खबर नहीं। समझ में आया? ज्ञानी को तो बारह प्रकार के तप के विकल्प हैं, वहाँ से हटकर यहाँ स्थिर होना, इसका नाम भान है। समझ में आया?

वस्तु परिपूर्ण एक ही चीज़ है। और मैं ही पूरा परमेश्वर हूँ—ऐसी अनुभवदृष्टि अन्दर पकड़े बिना उसकी राग पर, निमित्त पर, अंश पर और भेद पर तो दृष्टि है। उस मिथ्यादृष्टि को निश्चय-तप तो है ही नहीं। **इसलिए उसके अनशनादिसम्बन्धी शुभभावों को...** उसे जो विकल्प उठता है कि आहार नहीं करना, रस नहीं खाना। समझे? आया न सब ऊनोदर लेना, बहुत ही मन्द राग करना, व्युत्सर्ग अकेले जंगल में रहना आदि। और कायक्लेश से दो-चार घण्टे तक बैठे रहना। और प्रायश्चित, विनय करे, वैयावृत्य करे, स्वाध्याय करे, व्युत्सर्ग करे। इन सब शुभभावों को **व्यवहार-तप भी नहीं कहा जाता;...** उसके शुभभाव को व्यवहार-तप भी नहीं कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

क्योंकि जहाँ यथार्थ तप का सद्भाव ही नहीं है,... अन्तर में स्वभाव की रुचि और अनुभवदृष्टि, जिसने परमात्मा का पूर्ण दृष्टि में स्वीकार किया और उसमें रुकने से

चारित्र होता है। दूसरी कोई चारित्र की क्रिया ही नहीं है। ऐसे निश्चयस्वभाव की दृष्टि और उसमें लीनता हुई ही नहीं, उसे बारह प्रकार के तप व्यवहार-तप भी कहने में नहीं आते। शुभभाव में आरोप किसका किया जाये? जिसे अन्दर शुद्धभाव वस्तु की दृष्टि और वस्तु का अनुभव और वस्तु में स्थिरता हुई ही नहीं, उसके बारह प्रकार के शुभभाव को व्यवहार आरोप भी नहीं दिया जाता। वह व्यवहारतप भी कहने में नहीं आता। निश्चय तो है ही नहीं। परन्तु व्यवहार भी नहीं है। आहाहा! समझ में आया? भगवानजीभाई! अब पड़े होंगे दो-पाँच व्यक्ति कहनेवाले। यह वस्तु ऐसी है। कहो, समझ में आया इसमें?

यहाँ तप की व्याख्या चलती है। उतरे नहीं। सूक्ष्म पड़ता है। ऊपर से सुनते हैं। यह तो विषय अलग प्रकार का न? यह तुम्हारा विषय अलग और यह विषय विषय भी अलग। यह आत्मा है न, आत्मा! वहाँ तप की व्याख्या तो बहुत ही लम्बी है। ऊपर से पहले से कहते हैं। 'तलाई' यह पहले है न पहली लाईन हिन्दी में है। **संवर अर्थात् शुभाशुभपरिणाम का निरोध,...** ऊपर हिन्दी में है। उसी व्याख्या जरा सूक्ष्म है।

क्या कहते हैं? देखो! संवर किसे कहते हैं और संवरपूर्वक शुद्धि की वृद्धि। संवर शुद्धि को कहते हैं और पश्चात् निर्जरा भाषा है, उसे शुद्धि की वृद्धि कहते हैं। तो कहते हैं कि शुद्धि और शुद्धि की वृद्धि किसे होती है? शुद्धि का नाम संवर है और वृद्धि का नाम निर्जरा है। निर्जरा अर्थात् अशुद्ध का टलना। अब वह शुद्धि किसे होती है? कि यह आत्मा एक समय में अखण्डानन्द शुद्धचिदानन्द की मूर्ति पूर्ण आनन्द से आत्मा भरा है। जो आत्मपदार्थ है। जो यह मिट्टी से भिन्न है। शरीर से, वाणी से और अन्दर एक भावक जो कर्म है सूक्ष्म धूल। उससे भिन्न है।

और आत्मा में दया, दान, भक्ति, व्रत, तप का विकल्प / वृत्ति उठती है, वह भी पुण्यपरिणाम है। उससे भी भगवान आत्मा भिन्न है। और हिंसा, क्रोध, मान, माया, लोभ, कमाना इत्यादि रागादि वृत्ति उठती है, वह पाप है। दया, दान, भक्ति, व्रत विकल्प का उठना, वह पुण्य है। दोनों भाव यहाँ शुभाशुभ कहने में आये हैं। पहले शब्द में। **संवर अर्थात् शुभाशुभपरिणाम का निरोध,...** यह व्याख्या है जरा। यह वाचक शब्द है यह

तो। सामने पदार्थ है। उस वाचक का वाच्य क्या है?

कि आत्मा एक समय में शुद्ध चिदानन्द ज्ञानमूर्ति ध्रुवस्वभाव नित्यानन्द प्रभु, उसमें दृष्टि लगाने से प्रथम सम्यग्दर्शन होता है। सच्चे अनुभव की प्रतीति। पश्चात् शुभ और अशुभभाव जो उत्पन्न होता है। दया, दान, व्रत, भक्ति, वह सब धर्म नहीं है। किरीटभाई! यह जरा सूक्ष्म बात है। तुम्हारी बात से अलग है। मैंने वह कहा था वहाँ।

मुमुक्षु : मैं तो बहुत छोटा पड़ूँ।

पूज्य गुरुदेवश्री : अब छोटा किसका? आत्मा छोटा माना जाये? भाई! आत्मा छोटा है ही नहीं। भगवान आत्मा है। छोटी पीपर छोटी परन्तु (सामर्थ्य में) बड़ी है। क्योंकि इतनी छोटी पीपर में चौसठ पहरी सामर्थ्य भरी है। है या नहीं चौसठ पहरी? अब तुम्हारे सौ पैसा हो गया न? सौ पैसा अर्थात् रुपया। अभी तक तो ६४ पैसे थे न? पीपर का इतना दाना हो। छोटी पीपर, इतने में चौसठ पहरी चरपराहट भरी है। अपने हिसाब से तीखाश, हिन्दी के हिसाब से चरपराई। इतनी चौसठ पहरी पड़ी है या नहीं? इतनी छोटी में नहीं? इतने दाने में और एक ही दाने में चौसठ पहरी अर्थात् सोलह आना अर्थात् रुपया अर्थात् परिपूर्ण। ऐसी चरपराई अन्दर पड़ी है तो प्रगट होती है। प्राप्त की प्राप्ति है। न हो उसमें से नहीं आती। अन्दर न पड़ी हो तो पत्थर में से कहाँ से आवे? पत्थर अकेला घिसे तो उसमें न हो तो कहाँ से आवे? पीपर की शक्ति में अन्दर चौसठ पहरी अर्थात् रुपया पूर्ण, चरपराई - तीखा रस पड़ा है। तीखा अर्थात् उनकी भाषा में अपनी चरपराई और हरा रंग। इसी प्रकार भगवान आत्मा छोटा शरीर है, ऐसा नहीं लेना। अन्तर द्रव्य वस्तु। वस्तु सत् सत् आदि-अन्त बिना की, उत्पत्ति और नाश बिना की चीज़, है—आदि बिना है अनादि से। है... है... और भविष्य में है (रूप से) रहेगी। ऐसी सत् चिदानन्द, उसका सत् उसमें ज्ञान और आनन्द भरा है। जैसे पीपर में चरपराई भरी है और हरा रंग भरा है। काला तो कृत्रिम है, अन्दर वास्तविक चीज़ वह है नहीं।

इसी प्रकार आत्मा में सिद्ध और आनन्द अन्दर में पड़े हैं। ज्ञान और आनन्द परिपूर्ण चौसठ पहरी रुपया पूरा। खबर नहीं और किसी दिन सुना भी न हो। समझ में आया? यह बाहर शिक्षा अलग और अन्दर आत्मा की शिक्षा अलग है। कहो, समझ में

आया? यह कहते हैं कि भगवान आत्मा शुभाशुभपरिणाम का निरोध करे अर्थात् शुभ और अशुभराग वासना है, उस ओर से हटकर अपने शुद्ध आनन्द की ओर झुक जाये, तब उसमें शुद्धि की वृद्धि जो हो। पहले शुद्धि ही उत्पन्न होती है, उसे संवर कहते हैं। और उस शुद्धि में विशेष निर्मलता बढ़ती है, उसे धर्मरूपी निर्जरा कहते हैं। यह संवर, निर्जरा वह जैन की अच्छी भाषा के शब्द हैं। उनका वाच्य यह सादी भाषा में कहते हैं, वह है। समझ में आया?

भगवान आत्मा पूर्ण शुद्ध पिण्ड है। वस्तु स्वभाव... वस्तु स्वभाव। पदार्थ है, वह स्वभाव से खाली नहीं होता। वस्तु है, वह स्व-भाव अपने कायमी असली गुण शक्ति से खाली नहीं होता। ऐसा आत्मा एक वस्तु अनन्त-अनन्त शुद्धि ज्ञान, दर्शन, आनन्द से भरपूर पड़ा है। अनादि से अपनी शक्ति की सम्पदा क्या है, उसकी दृष्टि न करके, 'यह शरीर मेरा, धूल मेरी, पैसे मेरे, स्त्री मेरी,'.... और अन्दर में पुण्य और पाप, शुभाशुभ विकल्प उठता है, वह विकार है। इसे भी मेरा ऐसा मानकर त्रिकाल आनन्दकन्द को भूल गया है। समझ में आया?

यह आनन्दकन्द भगवान आत्मा अपना निजस्वरूप, उसमें दृष्टि करके शुभ और अशुभ जो दया, दान, विकल्प वासना है। हिंसा आदि की वासना है, वहाँ से हटकर अपने निजस्वरूप में जम जाना, यह उसका नाम शुद्ध उपयोग; पुण्य-पाप शुभाशुभभाव अशुद्ध, मलिन—दया, दान, भक्ति, व्रत का विकल्प भी पुण्यरूप मलिन अशुद्धभाव। हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, भोग-वासना, काम, क्रोध, ये पापरूप मलिन अशुद्धभाव। दोनों भावों को रोककर अन्तर स्वरूप में लीन होना, यह उसका नाम धर्म कहने में आता है। बाकी सब बातें हैं। समझ में आया? ऐ सेठी! अपने नीचे चलता है। यह नोट तो पूरा हो गया। नोट है न? नीचे (फुट) नोट। वह कोष्ठक पूरा हो गया।

इसलिए यहाँ (इस गाथा में ऐसा कहा कि), कर्म के वीर्य का **(-कर्म की शक्ति का) शातन करने में समर्थ ऐसा जो बहिरंग और अन्तरंग तपों द्वारा वृद्धि को प्राप्त शुद्धोपयोग सो भावनिर्जरा है...** नीचे पंक्ति है। सब शब्द ही ऐसे हैं। वाचक है शब्द। जैसे शक्कर वाचक है, तो शक्कर वाच्य शब्द शक्कर को बताता है। शक्कर शब्द में

शक्कर नहीं है। शक्कर पदार्थ में शक्कर शब्द नहीं है। परन्तु शक्कर शब्द संज्ञा 'यह शक्कर' (ऐसा बताता है)। इसी प्रकार यह शब्द अन्दर कौन सी दशा है, वह दशा बताने में यह संज्ञा शब्द है। समझ में आया?

आत्मा, यह तो शब्द हुआ। आत्मा पदार्थ है, उसमें शब्द नहीं। शब्द बताता है कि 'यह आत्मा' ज्ञानानन्द ध्रुव अखण्ड आनन्द पूर्ण अनादि-अनन्त शाश्वत धाम वस्तु सत्, उसका नाम आत्मा। उस आत्मा में अनादि से परवस्तु मेरी और अपनी चीज़ का आदर और सावधानी कभी अनन्त काल में एक सेकेण्ड भी नहीं की। बाकी बाहर में अनन्त बार करोड़पति हुआ, अरबोंपति हुआ। अनादि है। अनन्त काल में आदि कहाँ थी? पहले आत्मा नहीं था, ऐसा है? दरबार! पहले नहीं था, ऐसा है? कब नहीं था? खबर भी नहीं। कौन विचार करता है? यह खेत और रहावण। ऐसा है न किरीटभाई! यह खेत और रहावण और यह शरीर, यह स्त्री, यह पुत्र। निवृत्त कहाँ होता है परन्तु यह विचार करने को। समझ में आया?

भगवान आत्मा एक समय में परिपूर्ण वस्तु। जैसे पीपर परिपूर्ण शक्ति और हरे-हरे रंग से भरी पड़ी है, ऐसे तो अनन्त गुण हैं शक्तियाँ। ऐसा आत्मा अनन्त (गुण) शक्तिसम्पन्न, उसमें जब आहार के त्याग आदि का विकल्प है, वह धर्म नहीं। परन्तु उस विकल्प की वासना से हटकर अपने स्वभाव में लीनता की शान्ति का वेदन अकषाय, अविकारी, अरागी ऐसे परिणाम, स्वभाव में से प्रगट होकर ऐसे शुद्धभाव का वेदन होना, अनुभव होना, इसका नाम धर्म है। यह धर्म मुक्ति का उपाय है। समझ में आया? गजब बात, भाई!

अभी तो यह लोग बाहर की सेवा करते हैं और यह करते हैं और सब... समाधान मानते हैं, हों! इसकी सेवा करते हैं न! धूल करते हैं न? धूल भी नहीं करता। सुन न अब! सेवा कौन करे। तेरे शरीर की भी सम्हाल नहीं कर सकता न! वह तो जड़ है, वह तो मिट्टी है। मिट्टी है या नहीं? तू तो चैतन्य अरूपी है। अरूपी उसकी रक्षा कर सकता है? रक्षा करे तो कोई अन्दर वृद्धावस्था आने नहीं दे, काले बाल सफेद हो गये। वह तो जड़ की दशा है। जड़ की दशा आत्मा उत्पन्न कर सकता है? या रोक सकता है? जड़

की दशा तेरी है ? तेरी चैतन्य चीज़ भिन्न है।

ऐसे चेतन के भानसहित अपने परिणाम में बहिरंग आदि वह शातन कहा है न! उसका अर्थ किया है जरा। (फुटनोट में) शातन=पतला करना; हीन करना; क्षीण करना। यह हमारे पण्डितजी है न यहाँ, तुम्हारे मास्टर हैं या नहीं हिम्मतभाई! यह उन्होंने यह सब बनाया है। उन्हें बहुत ही दिमाग है, हों! दिखते हैं ऐसे। वे यह हिम्मतभाई हैं। यह उन्होंने संस्कृत में से सब बनाया है। पूरी संस्कृत में से अक्षरशः ऐसी चार पुस्तकें बनायी हैं। संस्कृत तो हजार वर्ष पहले का प्राचीन है। श्लोक (गाथायें) तो दो हजार वर्ष पहले लिखी हुई हैं, परन्तु संस्कृत में से अक्षरशः गुजराती। समझ में आया ? यह तो जैसा पाठ है, वैसा अर्थ है, हों! घर का कुछ है नहीं। अनुवाद है अनुवाद।

तो कहते हैं। भगवान आत्मा अपनी निज सम्पदा की सम्भावना अन्दर में आयी, तब उसकी शुद्धि की वृद्धि जो हुई, इस कारण से जो पूर्व के कर्म जड़ पड़े थे, जड़कर्म-कर्म, उनका शातन हुआ, हीन हुआ, प्रार्ग (शब्द) पड़ा है न, प्रार्ग। जैसा शुभ और अशुभभाव किया हो—दया, दान, व्रत, भक्ति शुभ, उनसे पुण्य बँधता है। जड़ रजकण पुण्य। इस पुण्य के कारण यह धूल आदि मिलती है वह। और धूल अर्थात् यह लक्ष्मी आदि। और हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, भोगवासना, पापवासना की हो तो पाप बँधता है। उस पाप के फल में यह प्रतिकूलता, दरिद्रता आदि आती है।

अतः यह जो शुभ और अशुभभाव है, उन्हें रोककर-रुंधन करके स्वभावसन्मुख शुद्ध में रमण करके जो आत्मा में शुद्धि हुई, वह भाव निर्जरा हुई। निर्जरा—नि-झरना। अशुद्धता की दशा का बदलना और शुद्धता की उत्पत्ति होना और इस निमित्त से पुराने कर्म जड़ जो शुभाशुभपरिणाम से बँधे थे, पूर्व में जो शुभ-अशुभभाव किये और उनसे कर्मबन्धन पड़े थे, उन्हें शुद्धपरिणाम अन्तर द्वारा उस कर्म का रस और शक्ति की अस्ति की स्थिति का हीन होना, घट जाना, उसे बाह्य निर्जरा कहते हैं। कहो, समझ में आया ?

शातन करने में समर्थ... (-कर्म की शक्ति का) शातन करने में समर्थ... ऐई! अमरचन्दभाई! निमित्त से कथन है। यह कर्म अन्दर है जड़ मिट्टी बारीक धूल। जैसे यह स्थूल धूल है, वैसे प्रारब्ध सूक्ष्म मिट्टी है बारीक, उसे कर्म कहो, नसीब कहो। वे कर्म

सूक्ष्म अनन्त रजकण हैं। वे कैसे बँधते हैं कि इसने जैसे पुण्य और पाप, शुभ और अशुभभाव किये हों, तत्प्रमाण वहाँ रजकण के कोठे पड़े हैं। अब जब आत्मा अपने आत्मा की दृष्टि करके शुभ-अशुभपरिणाम को उत्पन्न होने न दे और स्वभाव में स्थिर होता है, तब यह कर्मशक्ति हीन हो जाती है, घट जाती है, बन्धन मन्द पड़ जाते हैं, शिथिल पड़ जाते हैं, ढीले हो जाते हैं। और अन्दर में पूर्ण लीन होने से वे कर्म उस समय टल जाते हैं। ऐसी पूर्ण शुद्धि उत्पन्न होना, इसका नाम मुक्ति। मुक्ति कोई दूसरी चीज़ नहीं है। पूर्ण शुद्धि।

पहले संवर में अल्प शुद्धि स्वभाव के आश्रय से, निर्जरा में विशेष शुद्धि और मुक्ति में पूर्ण शुद्धि। जैसी शक्ति अन्दर पूर्ण है, वैसी प्रगट पूर्ण शुद्ध होना। पूर्ण आनन्द, पूर्ण ज्ञान, पूर्ण दर्शन, पूर्ण वीर्य। ऐसी पूर्ण शुद्धता की प्राप्ति का नाम मुक्ति। वह मुक्ति होने के पश्चात् उसे अवतार नहीं होता। समझ में आया? परन्तु वह मुक्ति और मुक्ति का उपाय क्या (है, वह) कभी इसने सुना भी नहीं। समझ में आया? जिन्दगी ऐसी की ऐसी (चली जाती है)। सेठ! क्या करना? मूढ़रूप से जिन्दगी गँवायी। लो, ऐसा कहते हैं। धीरे-धीरे जाकर कहते हैं। धन्धा-पानी के राग में।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : धन्धा-पानी की क्रिया में नहीं। राग... राग... राग... राग। यह द्वेष और राग... राग और द्वेष... राग और द्वेष। धन्धा-पानी तो परद्रव्य है। उसकी क्रिया होती है तो होती है न हो तो नहीं होती। वह आत्मा के अधिकार की बात नहीं है। अन्दर में संकल्प-विकल्प, संकल्प-विकल्प, राग-द्वेष, पुण्य-पाप, दया-दान, भक्ति, व्रत, तप आदि विकल्प। बस! उसमें जिन्दगी गँवावे।

यहाँ कहते हैं कि भाई! तुझे जन्म-मरण का अन्त लाना हो और भगवान आत्मा जैसा स्वभाव से पवित्र और आनन्द है। वह दशा प्रगट करना हो, जैसे पीपर में चौसठ पहरी है तो चौसठ बाहर आती है, वह पूरी हो गयी। उसी प्रकार भगवान आत्मा में पूर्ण ज्ञान और आनन्द पड़े हैं, उन्हें अन्तर में एकाग्र करके पूर्ण शुद्धि की आनन्द की मुक्ति की दशा प्राप्त करनी हो तो पहले स्वभाव सन्मुख का अनुभव करना पड़ेगा। समझ में आया?

नरसिंह मेहता नहीं कहते ? 'ज्यां लगी आत्मा तत्त्व चिह्नयो नहीं, त्यां लगी साधना सर्व झूठी, शून्य।' भाई ! आता है या नहीं ? शून्य। क्या किया तप अरु तीरथ करवा थकी भक्ति ने.... यह सब थोथा ! शुभराग हो, कोई पुण्य बाँधे और स्वर्ग में जाये और चार गति में भटके। जन्म-मरण का अन्त नहीं। समझ में आया ? भगवान आत्मा एक समय में परिपूर्ण परमात्मा अपने निजस्वरूप सम्पदा को अन्तर में दृष्टि में स्वीकार कर, माहात्म्य करके, कीमत करके और परवस्तु की कीमत दृष्टि में से निकल जाये और पुण्य और पाप के भाव में से कीमत (दृष्टि) हट जाये। (वह कोई) चीज़ नहीं। कीमती चीज़ तो मुझे ध्रुव आनन्द पड़ा है, वह कीमती है। वैसी अन्तर में दृष्टि होना, इसका नाम सम्यग्दर्शन धर्म कहा जाता है।

पश्चात् स्वरूप में शुद्धता की वृद्धि की बात यहाँ तो चलती है। देवीलालजी ! आहाहा ! सामान्य मनुष्य को बेचारे को तो कुछ खबर नहीं होती ! धूलधाणी ऐसी की ऐसी जिन्दगी ! यह क्या वस्तु और वह अन्दर शुद्धि अभी क्या, यह अपने को खबर पड़ती है या नहीं ? क्या आत्मा अन्धा है ? चैतन्यबिम्ब ज्ञायक सूर्य है। अन्दर चमकता चैतन्य सूर्य है। स्वभाव अकेला ज्ञान परिपूर्ण भरा है। ऐसा अन्तर में भान होने से यह बारह प्रकार के तप तो निमित्त से बात की है। उनसे वृद्धि और कर्म का घटना यह **शुद्धोपयोग सो भावनिर्जरा है और उनके प्रभाव से (-वृद्धि को प्राप्त शुद्धोपयोग के निमित्त से) नीरस हुए ऐसे उपार्जित कर्मपुद्गलों का एकदेश संक्षय, सो द्रव्यनिर्जरा है।** लो ! कहो, समझ में आया ? नीचे फुटनोट है। २१० (१९९) पृष्ठ पर। है न एक ? वह वृद्धि का शब्द है न ?

वृद्धि को प्राप्त = बढ़ा हुआ; उग्र हुआ। (संवर और शुद्धोपयोगवाले जीव को..) संवर अर्थात् पहले कहा। जिसे आत्मा के अनुभव की दृष्टि हुई और शुभ और अशुभराग जो वासना है, उससे हटकर अन्तर में लीन होता है, उसे **संवर और शुद्धोपयोग वाले जीव को जब उग्र शुद्धोपयोग होता है,...** अन्तर की शान्ति की उग्रता बढ़ती है, **तब अनेक कर्मों की निर्जरा होती है।** तब पूर्व के कर्म खिर जाते हैं। मात्र अपवास-बपवास का लंघन करे तो कर्म हटते नहीं। समझ में आया ? दो, चार, पाँच, अपवास कर लिये, पच्चीस, पचास, वह लंघण है।

भगवान आत्मा आनन्दमूर्ति की अन्तर अनुभव की दृष्टि हुए बिना यह तेरे लंघन-बंघन तप सब निरर्थक हैं। उसमें आत्मा को कोई लाभ है नहीं। समझ में आया?

तो कहते हैं, **शुद्धोपयोगवाले जीव को जब उग्र शुद्धोपयोग होता है, तब अनेक कर्मों की निर्जरा होती है।** शुद्धोपयोग का अर्थ कि अपना आत्मा पवित्र है, उससे हटकर जितने शुभ-अशुभभाव हुए, वह अशुद्ध उपयोग अशुद्ध व्यापार कहा जाता है। और वहाँ से हटकर अपने स्वभाव में लीनता का आचरण होता है, उसका नाम शुद्धोपयोग व्यापार कहा जाता है। शब्द भी कहीं सुने नहीं। किरीटभाई! आहाहा! अरे! मनुष्य जीवन पाकर मैं कौन हूँ, मैं कितनी कीमतवाली चीज़ हूँ और मैं पर की कीमत आँकता हूँ। मेरी कीमत मुझे आँकने की ताकत है। मैं पूरा परमेश्वर होने के योग्य हूँ। मुझमें पूर्ण आनन्द पूर्णं इदम्, पूर्ण पद मुझमें पड़ा है। ऐसी कीमत की नहीं। पैसे मिले, धूल मिली, स्त्री मिली, इज्जत मिली, कीर्ति। या बड़े अभिनन्दन के पूंछड़े फरफरिया। अभिनन्दन! तुम तो बड़े हो! धूल में भी है नहीं। सुन न अब!

अनादि काल से अपने निजस्वरूप की प्रतीति और कीमत की नहीं। और कीमत किये बिना अकेले कहते हैं, वैसे तप करता है, उसमें कुछ लाभ नहीं होता। शुद्धोपयोग की उग्रता करने की विधि शुद्धात्मद्रव्य के आलम्बन की उग्रता करना, वह है। क्या कहते हैं? ऐसी सब भाषा अनजानी है। जिन्दगी में शुद्धोपयोग भी सुना न हो। आत्मा ज्ञानानन्द शुद्धचैतन्य में लीनता होना, उसका नाम शुद्धोपयोग। उपयोग अर्थात् आत्मा की निर्मल पर्याय। स्वभाव शुद्ध है, उसकी एकाग्रता होना, पुण्य-पाप के परिणाम से हटकर वह शुद्ध व्यापार अन्दर पर्याय में निर्मलता होना, वह शुद्धोपयोग उग्रता करने की विधि है। पहले थोड़ा उपयोग तो है। सम्यग्दर्शनपूर्वक शुद्धोपयोग है। विशेष उग्रता।

तो कहते हैं। ऐसा करना है कि जितने शुद्धात्मपदार्थ में लीनता की उग्रता होती है, उतना शुद्धोपयोग बढ़ता है। बाहर की क्रिया से नहीं। बाहर के क्रियाकाण्ड से, व्रत, नियम, तप, अनशन और ऊनोदरी धूल-धाणी। उससे आत्मा को कुछ लाभ नहीं होता। समझ में आया? तो कहते हैं कि **ऐसा करनेवाले को, सहजदशा में हठरहित जो अनशनादि सम्बन्धी भाव वर्तते हैं,...** आत्मा का शुद्धस्वभाव, उसकी अन्तर्दृष्टि और एकाग्रता के जितने परिणाम उत्पन्न हुए, उसका नाम शुद्धभाव धर्म और निर्जरा कहते हैं।

उस भूमिका में जितने **हठरहित शुभभाव आया। अनशनादि सम्बन्धी भाव वर्तते हैं, उनमें (शुभपनेरूप अंश के साथ) उग्र-शुद्धिरूप अंश होता है,...** अनशन रसत्याग आदि का विकल्प है, वह शुभ है। अन्दर में स्वभाव सन्मुख की उग्रता है शुद्धता बढ़ी है, उसके साथ जो शुभ आया, उसे शुभव्यवहार कहा जाता है। **जिससे अनेक कर्मों की निर्जरा होती है।** उन पुण्य-पाप के परिणामरहित अन्दर में जितनी शुद्धता प्रगट होती है, उतनी अशुद्धता टलती है, कर्म की निर्जरा अर्थात् कर्म खिर जाते हैं। **मिथ्यादृष्टि को तो शुद्धात्मद्रव्य भासित ही नहीं हुआ है;...** जिसकी दृष्टि में आत्मा क्या चीज़ है, वह तो दृष्टि में आया ही नहीं। मिथ्या अर्थात् झूठी, मिथ्या अर्थात् असत्दृष्टि। वह तो यह देखता है, धूल मिली और यह मिला और शरीर है न, यह वाणी और यह तो सब मिट्टी है। और बहुत तो अन्दर में पुण्य-पाप का विकल्प उठता है राग। उसके ऊपर उसकी दृष्टि है। मैंने यह किया और मैंने यह किया और मैंने यह किया। उस **मिथ्यादृष्टि को तो शुद्धात्मद्रव्य भासित ही नहीं हुआ है;...** अन्तर शुद्धात्मा कौन है, वह भासित ही नहीं हुआ। **इसलिए उसे संवर नहीं है,...** उसे कोई मिथ्यात्व या शुभाशुभपरिणाम रुकते नहीं। **शुद्धोपयोग नहीं है, शुद्धोपयोग की वृद्धि की तो बात ही कहाँ रही ?** पहले शुद्धोपयोग है ही नहीं तो वृद्धि कहाँ रही ? ऐसा कहते हैं। जरा सूक्ष्म बात है। **इसलिए उसे, सहजदशारहित—हठपूर्वक—अनशनादिसम्बन्धी शुभभाव कदाचित् भले हों, तथापि मोक्ष के हेतुभूत निर्जरा बिल्कुल नहीं होती।)**

आत्मा का अनुभव और सम्यग्दर्शन के भान बिना जितने तपादि करे, उसमें आत्मा को कुछ लाभ (नहीं होता)। शुभभाव हो कोई पुण्य बँध जाये, स्वर्गादि-धूलादि मिले, चार गति में भटके। जन्म-मरण का अन्त नहीं आता। जन्म-मरण का अन्त आने की चीज़ अन्तरस्वभाव में जन्म नहीं, मरण नहीं, राग नहीं, ऐसी चीज़ का अवलम्बन करके शुद्धोपयोग की रमणता करना, इसका नाम धर्म और निर्जरा कहने में आता है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - १४५

जो संवरेण जुतो अप्पट्ठपसाधगो हि अप्पाणं ।
मुणिऊण झादि णियदं णाणं सो संधुणोदि कम्मरयं।। १४५ ।।

यः संवरेण युक्तः आत्मार्थप्रसाधको ह्यात्मानम् ।
ज्ञात्वा ध्यायति नियतं ज्ञानं स संधुनोति कर्मरजः।। १४५।।

मुख्यनिर्जराकारणोपन्यासोऽयम् ।

यो हि संवरेण शुभाशुभपरिणामपरमनिरोधेन युक्तः परिज्ञातवस्तुस्वरूपः परप्रयोजनेभ्यो व्यावृत्तबुद्धिः केवलं स्वप्रयोजनसाधनोद्यतमनां आत्मानं स्वोपलम्भेनोपलभ्य गुणगुणिनोर्वस्तुत्वेनाभेदात्तदेव ज्ञानं स्वं स्वेनाविचलितमनास्सञ्चेतयते स खलु नितान्तनिस्सस्नेहः प्रहीणस्नेहाभ्यङ्गपरिष्वङ्गशुद्धस्फटिकस्तम्भवत् पूर्वोपात्तं कर्मरजः संधुनोति । एतेन निर्जरामुख्यत्वे हेतुत्वं ध्यानस्य द्योतितमिति ।। १४५ ।।

आत्मानुभव युत आचरण से ध्यान आत्मा का धरें।
वे तत्त्वविद संवर सहित हो कर्म रज को निर्जरें।।१४५।।

अन्वयार्थ :— [संवेरण युक्तः] संवर से युक्त ऐसा, [यः] जो जीव, [आत्मार्थ प्रसाधकः हि] वास्तव में आत्मार्थ का प्रसाधक (स्वप्रयोजन का प्रकृष्ट साधक) वर्तता हुआ, [आत्मानम् ज्ञात्वा] आत्मा को जानकर (-अनुभव करके), [ज्ञानं नियतं ध्यायति] ज्ञान को निश्चलरूप से ध्याता है। [सः] वह [कर्मरजः] कर्मरज को [संधुनोति] खिरा देता है।

टीका :— यह, निर्जरा के मुख्य कारण का कथन है।

संवर से अर्थात् शुभाशुभपरिणाम के परम निरोध से युक्त ऐसा जो जीव, वस्तुस्वरूप को (हेय-उपादेय तत्त्व को) बराबर जानता हुआ परप्रयोजन से जिसकी बुद्धि [१]व्यावृत्त हुई और केवल स्वप्रयोजन साधने में जिसका [२]मन [३]उद्यत हुआ है ऐसा

---

१. व्यावृत्त होना = निवर्तना; निवृत्त होना; विमुख होना।
२. मन = मति; बुद्धि; भाव; परिणाम।
३. उद्यत होना = तत्पर होना; लगना; उद्यमवन्त होना; मुड़ना; ढ़लना।

वर्तता हुआ, आत्मा को स्वोपलब्धि से उपलब्ध करके (-अपने स्वानुभव द्वारा अनुभव करके), गुण-गुणी का वस्तुरूप से अभेद होने के कारण उसी [१]ज्ञान को—स्व को—स्व द्वारा अविचलपरिणतिवाला होकर संचेतता है, वह जीव वास्तव में अत्यन्त [२]निःस्नेह वर्तता हुआ—जिसको [३]स्नेह के लेप का संग प्रक्षीण हुआ है, ऐसे शुद्ध स्फटिक के स्तम्भ की भाँति—पूर्वोपार्जित कर्मरज को खिरा देती है।

इससे (-इस गाथा से) ऐसा दर्शाया कि निर्जरा का मुख्य हेतु [४]ध्यान है ॥१४५॥

प्रवचन नं. ४१, गाथा-१४५

दिनांक - ०७-१०-१९६४, आसोज शुक्ल २, बुधवार

यह पंचास्तिकाय नौ पदार्थ का स्पष्टीकरण है। इस जगत में नौ पदार्थ हैं। जीव और जड़-अजीव परमाणु दो द्रव्य हैं। इनके अतिरिक्त चार द्रव्य अलग अरूपी हैं। जीव और पुद्गल के सम्बन्ध संग और वियोग से एक-एक द्रव्य में सात-सात पर्याय होती है। समझ में आया?

यह उसका नाम नौ पदार्थ है। जीव और पुद्गल दो द्रव्य हैं, वस्तु। और दोनों के सम्बन्ध के संयोग और वियोग से उसमें सात प्रकार की पर्याय होती है। आत्मा में पुण्य, पाप, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष, ये सात पर्याय (और) सात पर्याय जड़ में होती है। यह बात चलती है। निर्जरा अधिकार में आया है। पुण्य-पाप का अधिकार गया, आस्रव का गया, संवर का भी अधिकार हुआ, अब निर्जरा का अधिकार है। नौ पदार्थ जैसे हैं, वैसा उनके अनुभव में प्रतीति में आये बिना उसे सम्यग्दर्शन नहीं होता।

---

१. गुणी और गुण में वस्तु-अपेक्षा से अभेद है, इसलिए आत्मा कहो या ज्ञान कहो—दोनों एक ही हैं। ऊपर जिसका 'आत्मा' शब्द से कथन किया था, उसी का यहाँ 'ज्ञान' शब्द से कथन किया है। उस ज्ञान में—निजात्मा में—निजात्मा द्वारा निश्चल परिणति करके उसका संचेतन—संवेदन—अनुभवन करना, सो ध्यान है।

२. निःस्नेह =स्नेह रहित; मोहरागद्वेष रहित।

३. स्नेह= तेल; चिकना पदार्थ; स्निग्धता; चिकनापन।

४. यह ध्यान शुद्धभावरूप है।

धर्म की पहली सीढ़ी-प्रथम सीढ़ी। सोपान कहते हैं न? आत्मा में प्रथम नौ तत्त्व भिन्न-भिन्न क्या है और एक-एक पर्याय का क्या-क्या स्वरूप है और दो द्रव्य का क्या स्वरूप है। ऐसा यथार्थ अन्तर में अनुभव से प्रतीति हुए बिना उसे सम्यग्दर्शन होता नहीं। और सम्यग्दर्शन के बिना वह कुछ भी क्रिया करे—त्याग, वैराग्य, तप, संयम, व्रत, वे सब निरर्थक—चार गति में भटकानेवाले हैं।

मुमुक्षु : सार्थक।

पूज्य गुरुदेवश्री : सार्थक कहाँ है? धूल में भी सार्थक नहीं। अभी सम्यक् क्या चीज़ है, क्या आत्मा है, क्या कर सकता है, क्या जड़ है। भगवान ने छह द्रव्य देखे हैं। षट्द्रव्य, उन षट्द्रव्य का विस्तार नौ पदार्थ हैं। तो षट्द्रव्य क्या है, नौ पदार्थ कैसे हैं, कैसे होते हैं, उसमें हेय-उपादेय कौन है, उसकी खबर बिना सम्यग्दर्शन होता नहीं और सम्यग्दर्शन बिना बाह्य के व्रत, तप, क्रियाकाण्ड, अपवास, वह सब निरर्थक—संसार में भटकने के लिये परिभ्रमण कराते हैं। समझ में आया?

तो यहाँ नौ पदार्थ है न ऊपर? नौ पदार्थपूर्वक मोक्षमार्गप्रपंचवर्णन। मोक्षमार्ग (अर्थात्) प्रपंच का विस्तार। तो नौ पदार्थ में निर्जरा किसे कहते हैं? १४५ गाथा है।

जो संवरेण जुतो अप्पट्ठपसाधगो हि अप्पाणं।
मुणिऊण झादि णियदं णाणं सो संधुणोदि कम्मरयं।।१४५।।

टीका :— यह, निर्जरा के मुख्य कारण का कथन है। जरा सूक्ष्म बात है। अनन्त काल से इसने इस बात को सुना नहीं। अनन्त बार जैन दिगम्बर साधु हुआ। नग्न दिगम्बर, हों! अनन्त बार। और पंच महाव्रत और अट्ठाईस मूलगुण का विकल्प-राग भी अनन्त बार लिया, पालन किया, परन्तु आत्मा क्या चीज़ है, उसमें क्या है, वह क्या कर सकता है और क्या नहीं कर सकता?—ऐसी स्वतन्त्रता की स्वभाव की दृष्टि इसने अनन्त काल में एक सेकेण्ड भी नहीं की। समझ में आया?

यह सम्यग्दृष्टि बिना नौ तत्त्व की यथार्थता इसे प्रतीति में नहीं आती और इस प्रतीति के भान बिना जो कुछ किया जाता है—अनन्त बार नौवें ग्रैवेयक, 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रैवेयक उपजायो, पै (निज) आतम ज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' अपने

छहढाला में आता है या नहीं? छहढाला सुनी है? डालचन्दजी! उसमें यह श्लोक आता है। मुनिव्रत धार, दिगम्बर हजारों रानियों का त्याग, करोड़ों-अरबों रुपये की एक महीने की आमदनी के राज्य का त्याग और नग्न मुनि (होकर) जंगल में रहे। छह-छह महीने के अपवास और दो-दो महीने के जार की तरह सल्लेखना। दो महीने—साठ दिन ऐसा का ऐसा पैर हिलावे नहीं, अँगुलियाँ, ऐसा संथारा। प्रत्येक जीव ने ऐसा अनन्त काल में अनन्त बार किया है। समझ में आया?

परन्तु सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है और सम्यग्दृष्टि क्या मानता है और उसका अनुभव क्या है, उसका उसने अनन्त काल में एक समय भी पता लिया नहीं। समझ में आया? तो कहते हैं कि निर्जरा किसे कहते हैं। नौ तत्त्व हैं न—जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष। निर्जरा किसे कहते हैं? निर्जरा क्या कोई द्रव्य है? गुण है? पर्याय है? क्या है? डालचन्दजी! खबर नहीं! जगत में तीन चीज़ें हैं न? द्रव्य है वस्तु; गुण है उसकी शक्ति; पर्याय है उसकी अवस्था। तो निर्जरा क्या चीज़ है? पहले कह दिया न! कि निर्जरा आस्रव, पुण्य, पाप, संवर, बन्ध और मोक्ष—यह सब पर्याय है, गुण नहीं, द्रव्य नहीं। किसे खबर क्या द्रव्य और क्या गुण!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह धर्म क्या? तो किसकी बात चलती है? निर्जरा, वह धर्म है। अपनी पर्याय में क्या होता है और द्रव्य कैसा है और पर से भिन्न किस प्रकार है? (उसके) भान बिना पर्याय में धर्म किस प्रकार हो जाये? अनन्त पदार्थ में जब तक पराश्रय बुद्धि है, अर्थात् मैं परद्रव्य की अवस्था को कर सकता हूँ और पर अनन्त पदार्थ से मुझमें कुछ भी लाभ या नुकसान होता है, ऐसी पराश्रयबुद्धि में द्रव्य की स्वतन्त्रता की उसे खबर नहीं। उसे धर्म नहीं होता। कहो, समझ में आया?

और आत्मा की पर्याय में भी दया, दान, व्रत, भक्ति, तप, जप का विकल्प, वृत्ति उठती है, वह आस्रवतत्त्व है, पुण्यतत्त्व है। उस पुण्यतत्त्व का भी पराश्रयभाव जब तक न छूटे, तब तक स्वद्रव्य का आश्रय तत्त्व का नहीं लिया तो उसे सम्यग्दर्शन नहीं होता। समझ में आया? पुण्य परिणाम और पापभाव दो विकल्प शुभाशुभभाव, वह तो विकार है। वह कर्म के संग से उत्पन्न हुआ उपाधि भाव है। कर्म से हुआ नहीं। समझ में

आया? जो ऐसा माने कि मुझमें पुण्य, पाप का भाव होता है, वह कर्म के आश्रय से होता है, समझ में आया? तो वह पराश्रयबुद्धि मूढ़ मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया?

जैन में विकार तो कर्म से होता है, नहीं? जैन है और कहे कि बस, अपने तो कर्म से होता है। विकार बिकार... कर्म है न? मूढ़ की मान्यता है। अज्ञानी की मान्यता है। कि कर्म से आत्मा में विकार होता है। क्योंकि यहाँ तो नौ तत्त्व की बात है। कर्म तो अजीवतत्त्व है। और पुण्य-पाप तो आस्रवतत्त्व है। दोनों भिन्न तत्त्व है। तो भिन्न तत्त्व से आत्मा में आस्रव होता है, ऐसी पराश्रयबुद्धि है, उसकी तो दृष्टि स्वद्रव्य पर आती नहीं। सूक्ष्म बात है, हों! डालचन्दजी! तुम्हारे उस व्यापार धन्धे जैसी बात यहाँ नहीं है। वहाँ तो चले। हें? अक्ल कुछ काम न करे। अक्ल क्या धूल काम करे वहाँ? वहाँ कमाने में अक्ल कुछ काम न करे। बराबर। क्यों? नथुलालजी! अक्ल कितनी काम करे संसार में। होशियारी काम करती है या नहीं?

यह कहते हैं तेरी होशियारी पर्याय में क्षयोपशम पर्याय है। वह पर्याय परद्रव्य की पर्याय में क्या काम करे? परद्रव्य और तेरी पर्याय भिन्न है, उसकी तो तुझे खबर नहीं। हें?

मुमुक्षु : सलाह दे।

पूज्य गुरुदेवश्री : सलाह दे। कौन सलाह दे? भाषा जड़ की पर्याय, विकल्प आस्रव पर्याय और कौन सलाह दे किसे? समझ में आया? सेठी!

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या वहाँ जाकर दूसरा हो जाता है?

मुमुक्षु : दूसरा नियम वहाँ लागू करता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरा नियम वहाँ लागू पड़ता है। घर में जाये तो कौन घर में जाये? कहाँ जाये? आत्मा तो अपने द्रव्य-गुण-पर्याय में है। अपने अस्तित्व में तीनों काल है। पर के क्षेत्र में जाये तो पर के भाव में द्रव्य में जाये। क्या आत्मा अपना अस्तित्व छोड़ देता है? और पर का अस्तित्व अपने अस्तित्व में ला सकता है? जाये कहा? सेठी! तो कहते हैं कि अनन्त काल में यह बात उसे अन्तर में भाव से रुचि नहीं।

बाकी तो बहुत सब किया। समझ में आया? सब किया अर्थात् शुभभाव ऐसे किये कि शरीर का खण्ड-खण्ड करे (तो) क्रोध न करे। क्षमा, क्षमा, क्षमा। ऐसी क्रिया भी अनन्त बार हुई, उसमें क्या आया? और शुभ है तो पुण्यबन्ध विकल्प हुआ। और उसमें मुझे लाभ हुआ, (तो) साथ में मिथ्यात्व का लाभ हुआ। मिथ्यादृष्टि को मिथ्यात्व का लाभ हुआ। समझ में आया? भाई! अध्यात्म की बात ऐसी है कि इसने कभी क्या है, ऐसा स्पर्श किया नहीं। समझ में आया?

तो कहते हैं कि निर्जरा एक आत्मा की शुद्धपर्याय है। शुद्धपर्याय है। द्रव्य नहीं, गुण नहीं। पर के कारण पर्याय नहीं। यह पर्याय, वह धर्म है। आहाहा! कौन जाने यह कैसी होगी पर्याय! कुछ खबर ही नहीं होती!

मुमुक्षु : भगवान तो जानते हैं न!

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान तो जानते हैं। यह तो कहते हैं कि, सुन तो सही! हम कहते हैं, ऐसी तेरी दृष्टि तो कर! और अन्यत्र से दृष्टि हटा ले। समझ में आया? सुनो तुम, यह करेगा।

निर्जरा के मुख्य कारण का कथन है। निर्जरा आत्मा की, आत्मा अनन्त गुण सम्पन्न स्वरूप है। समझ में आया? अनन्त अनन्त गुण का पिण्ड आत्मा है। एक-एक आत्मा। समझ में आया? सेठी! यह अनन्त गुण की एक समय में अनन्त पर्यायरूपी कार्य द्रव्य में अपने से होता है। उस पर्याय में कोई पुण्य परिणाम है, कोई पाप (परिणाम) है। धर्म का भान होने के पश्चात् कोई संवर है, कोई निर्जरा हो, कोई बन्ध हो। ऐसी पर्याय द्रव्य में वर्तमान दशा में ऐसी पर्याय ज्ञानी को भी होती है। समझ में आया?

अज्ञानी को तो भान नहीं (कि) क्या विकल्प उठता है, क्या चीज़ है। दया, दान और विकार कर्म से हुआ है या मुझसे हुआ है या मैंने पर्याय विकल्प किया तो कर्म आये या कर्म उसके कारण से स्वतन्त्र आये? ऐसी स्वतन्त्रता की तो जिसे खबर नहीं, उसे तो आत्मा में से संवररूपी सम्यग्दर्शन दशा प्रगट होती नहीं। समझ में आया?

यहाँ तो भगवान आत्मा एक समय में जो अनन्त गुण की राशिरूप पिण्ड एक वस्तु है। ऐसी अन्तर में दृष्टि करने से पराश्रयबुद्धि छूट गयी। मुझसे पर में कोई कार्य

होता है या दूसरे से दूसरे में कुछ होता है, ऐसी दृष्टि छूट गयी हो और दूसरी, अपने में पुण्य और पाप के विकल्प उठते हैं शुभाशुभभाव। दया, दान, ब्रह्मचर्य विकल्प आदि के आश्रय से दृष्टि छूट गयी हो।

अपना (आत्मा) शुद्ध चैतन्यमूर्ति एक समय में है। उसका दृष्टि में आश्रय लेकर सम्यग्दर्शनरूपी संवर पर्याय प्रगट हुई हो, उसे यह निर्जरा की पर्याय कैसी होती है, यह बात करते हैं। आहाहा! डालचन्दजी! क्या कहते हैं, देखो! निर्जरा कहो या धर्म-संवर कहो। धर्म की शुद्धि उत्पन्न हुई, उसका नाम संवर। निर्जरा-शुद्धि की वृद्धि का नाम निर्जरा। दोनों आत्मा की निर्मल पर्याय है। समझ में आया? यह निर्मल पर्याय कोई शरीर की क्रिया से या पर के कारण से उत्पन्न नहीं होती और निर्मल पर्याय, निर्मल पर्याय हुई, उसके आश्रय से नयी-नयी पर्याय उत्पन्न नहीं होती। समझ में आया?

धर्मी को-सम्यग्दृष्टि को सम्यग्दर्शन हुआ। मैं शुद्ध द्रव्य हूँ—ऐसी दृष्टि (हुई है)। संयोग से मेरा कार्य है या संयोग में मेरा कार्य है, ऐसी दृष्टि उठ गयी है। और पुण्य-पाप के विकल्प मेरा कर्तव्य है, ऐसी दृष्टि उठी गयी और ज्ञानादि, दर्शन आदि एक समय की वर्तमान क्षयोपशम पर्याय है, उतना मैं हूँ, यह दृष्टि उठ गयी। मैं अनन्त गुण का एक राशि पिण्ड हूँ, ऐसी दृष्टि हुई। समझ में आया? तब संवर—सम्यग्दर्शनरूपी संवर उत्पन्न होता है। समझ में आया?

पश्चात् उसे जो शुभाशुभपरिणाम हैं, वे जितने प्रमाण में स्वभाव के आश्रय से रुकते हैं, यह उतनी अन्दर में शुद्धि की वृद्धि होकर आत्मा की पर्याय में निर्जरा होती है। भगवान! तू क्या कहता है, यह अभी खबर नहीं। छह द्रव्य कहे छह द्रव्य, नवतत्त्व, पंचास्तिकाय, ऐसा शब्द आता है या नहीं? छह द्रव्य क्या? छह द्रव्य के गुण क्या? छह द्रव्य की पर्याय किसमें है! भगवान जाने। छह द्रव्य हैं। लो!

मुमुक्षु : यह व्याख्यान प्राथमिक श्रोता के लिये है?

पूज्य गुरुदेवश्री : प्राथमिक श्रोता के लिये प्रथम धर्म प्रगट कैसे हो, इसलिए प्राथमिक श्रोता के लिये यह कथन है। हमारा दलाल है न, दलाल, यह ऊँचे दर्जे की बात नहीं न, ऐसा कहे। यहाँ तो अभी सम्यग्दर्शन जिसे प्राप्त करना हो तो उसकी

नवतत्त्व की श्रद्धा कैसी होती है, उसे सुनाते हैं। समझ में आया? नौ तत्त्व, नौ तत्त्व की बात करे। नौ तत्त्व है, छह द्रव्य है, पंचास्तिकाय है। शब्द आवे। उसकी श्रद्धा। परन्तु उसकी श्रद्धा का अर्थ क्या? आता है न शब्द में तो सब आता है तारणस्वामी में। छह द्रव्य, नौ तत्त्व, पंचास्तिकाय। छह द्रव्य क्या? एक-एक द्रव्य में गुण कितने? उसकी पर्याय क्या? और पर्याय पर से भिन्न क्या? सब पृथक्-पृथक् है। किसी का आश्रय या किसी का अवलम्बन है नहीं। ऐसे नौ तत्त्व में नौ तत्त्व भिन्न-भिन्न हैं। यह छह द्रव्य के भेद नौ हैं। समझ में आया? यह एक निर्जरा सम्यग्दृष्टि को शुद्धि में अपनी पर्याय में संवर की शुद्धि उत्पन्न हुई है, उसमें वृद्धि उत्पन्न होती है, वह कैसे और उसका क्या स्वरूप है, यह बताते हैं। कहो, समझ में आया? देखो! पश्चात्।

संवर से अर्थात् शुभाशुभपरिणाम के परम निरोध से युक्त ऐसा जो जीव,... अब सम्यग्दृष्टि जीव अपने द्रव्यस्वभाव की अनुभवदृष्टि क्या है, मैं पर का तीन काल-तीन लोक में दया करनेवाला, हिंसा करनेवाला, झूठ बोलनेवाला मैं नहीं। समझ में आया? और कर्म में मैं नहीं और मुझमें कर्म है नहीं। और कर्म से मुझमें विकार नहीं। विकार है तो मुझे लाभ है, ऐसा नहीं। शुभ, दया, दान, व्रत, भक्ति का विकल्प विकार राग। ऐसा जब राग से और कर्म से हटकर, एक समय की पर्याय का भी, एक समय की पर्याय जो है विकार, उसका भी आश्रय अवलम्बन छोड़कर ज्ञायक त्रिकाल अनन्त गुण की राशि का आश्रय करके सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ हो, उसे फिर शुभ और अशुभ की आसक्ति रही हो—सम्यग्दृष्टि को भी अभी शुभ-अशुभ परिणाम होते हैं। सम्यग्दृष्टि को भी रौद्रध्यान, आर्तध्यान का भाव होता है। सेठी!

यह शुभाशुभपरिणाम रुकने से (और) अपने स्वभाव सन्मुख में लीन होने से शुभाशुभ रुके, उत्पन्न नहीं हुए, यह उसका नाम संवर कहा जाता है। गजब व्याख्या, भाई कठिन! कहो, समझ में आया? यह कहते हैं, देखो! **संवर से अर्थात् शुभाशुभपरिणाम के...** यह भाई! उसमें क्या है? परिणाम के हैं न नीचे। **परम निरोध से....** परम निरोध क्यों कहा? पहला सम्यग्दर्शन में शुभाशुभ पुण्य-पाप के भाव मुझमें है ही नहीं और मुझे लाभदायक है नहीं। ऐसा निरोध दृष्टि में से तो किया है। समझ में आया?

परन्तु पश्चात् शुभाशुभपरिणाम उग्ररूप से चैतन्य के अवलम्बन में लीन होकर

पूर्णानन्द अनन्त गुण की राशि, यह शुभाशुभ परिणाम उत्पन्न होते नहीं, उसे शुभाशुभपरिणाम का निरोध किया, ऐसा कहने में आता है। अशुभपरिणाम उत्पन्न हुए और रोकता है, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

'**जो**' शब्द पड़ा है न? शास्त्र की भाषा ही कठिन है। यह तो अकेला रहस्य है। ऐसा कहा कि शुभाशुभपरिणाम का परम निरोध-रुकने से। रुकने से अर्थात् उत्पन्न हुए थे और रुके? समझ में आया? सम्यग्दर्शन में अपने स्वरूप और अनुभव की प्रतीति में अभी शुभाशुभपरिणाम रुके नहीं थे। शुभाशुभपरिणाम की रुचि छूटकर स्वभाव की दृष्टि हुई थी, परन्तु शुभाशुभ परिणाम रुके या उत्पन्न नहीं होते, ऐसा नहीं। ज्ञानी को शुभाशुभपरिणाम सम्यग्दृष्टि को दया, दान, भक्ति, पूजा के, भगवान के नामस्मरण, सब शुभभाव है। ऐसा होता है। और सम्यग्दृष्टि को हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, भोग-वासना आर्तध्यान, रौद्रध्यान, व्यापार के, धन्धे के भाव होते हैं। वे अशुभ हैं। परन्तु यह सम्यग्दर्शन होने के बाद वे शुभ-अशुभपरिणाम, स्वभाव का अवलम्बन लेकर उत्पन्न नहीं होते, उसे रोकते हैं—ऐसा कहने में आया है। समझ में आया?

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : ख्याल है, जानता है कि हुआ है। परिणति में शुद्ध भी परिणति है, थोड़ी अशुद्ध भी परिणति है। दोनों हैं। क्या कहा? सेठी! समझ में आया? कि सम्यग्दृष्टि को गृहस्थाश्रम में रहे हों, छियानवें हजार स्त्री हो। समझ में आया? बड़ा चक्रवर्ती का राज्य हो। सम्यग्दर्शन हुआ तो राज्य-बाज्य छूट जाता है, (ऐसी नहीं है)। राज्य छूटा ही पड़ा है, अन्दर कहाँ घुस गया है। उस ओर की जरा आसक्ति का भाव है, अपने पुरुषार्थ की कमजोरी से, तो सम्यग्दर्शन के भान काल में ऐसे अशुभभाव, शुभभाव ज्ञानी को होते हैं, तथापि उन्हें हेय जानता है। अन्तर में आनन्दमूर्ति मेरा स्वभाव, उसे उपादेय मानकर दृष्टि का समभाव द्रव्य के ऊपर है। और शुभाशुभभाव होने पर भी, बन्ध का कारण मानने पर भी, सम्यग्दर्शन में बिल्कुल दोष नहीं है। समझ में आया?

क्षायिक समकित हो और छियानवें हजार (रानियों के साथ) तीर्थंकर विवाह करे, क्षायिक समकित होने के बाद विवाह करे। डालचन्दजी! हाँ, नहीं क्या? सुना नहीं

न? तम्बाकू के व्यापार में लवलीन है न अभी तो। हाँ, सुना नहीं। तीर्थंकर चक्रवर्ती होते हैं। तीन ज्ञान और क्षायिक समकित लेकर आते हैं। पश्चात् छियानवें हजार (स्त्रियों) के साथ विवाह करते हैं। शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ ने किया। ऐ सेठ! सुना नहीं। बात सुनी नहीं। करते हैं। ऐसा राग है। ऐसा राग न हो, तब तो केवलज्ञान हो जाये। तो मुनिपना हो जाये। राग है। क्या कहा? समझ में आया?

क्षायिक सम्यग्दर्शन, श्रेणिक राजा लो न? श्रेणिक राजा का सुना है? हजारों रानियाँ थीं। तो उसमें क्या है? भोग की-विषय की वासना भी थी। वह चारित्रदोष है। सम्यग्दर्शन में बिल्कुल किंचित् दोष नहीं। ऐ सेठ! और कोई राग मन्द करके वह चीज़ छूट गयी हो तो सम्यग्दर्शन है, ऐसा नहीं है। यह चीज़ दूसरी, वह चीज़ दूसरी। दोनों चीज़ अलग है। समझ में आया? ज्ञानचन्दजी!

शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ सुना है या नहीं? तीनों चक्रवर्ती थे। उन्हें छियानवें हजार स्त्रियाँ थीं। तो क्या विवाह करके जन्मे थे? जन्मे तब तो तीन ज्ञान, क्षायिक समकित लेकर जन्मे थे। तीन ज्ञान और क्षायिक समकित लेकर जन्मे थे। पश्चात् छियानवें हजार (स्त्रियों) के साथ विवाह किया। वे मानते हैं कि ये क्रिया मेरी नहीं। यह तो संयोग होता है तो आनेवाले थे तो आये हैं। मेरी अस्तित्व में नहीं। और मेरे अस्तित्व में जरा आसक्ति आयी है, वह चारित्र का दोष है। मेरे स्वरूप में वह दोष नहीं है। अभी थोड़ा समझना पड़ेगा। बराबर है।

मुमुक्षु : इसे जाननेमात्र से दोष से मुक्त हो जाता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : चारित्र के दोष से मुक्त नहीं होता।

मुमुक्षु : ऐसा जान लेना कि मेरा दोष नहीं....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, ऐसा नहीं। अन्तर आत्मा में ज्ञान हुआ। आत्मा के सन्मुख में ज्ञान हुआ (कि) वह दोष मेरे स्वभाव में नहीं। पर्याय में दोष है, उतना चारित्र का दोष है, मेरा नहीं। सम्यग्दर्शन में दोष नहीं।

मुमुक्षु : साथ में नहीं रह सकते?

पूज्य गुरुदेवश्री : साथ में रहते हैं न! कहा न! आंशिक चारित्र है और आंशिक

अचारित्र है। यह बात कल सेठ ने पूछी थी। शुद्ध परिणति भी थोड़ी है और साथ में अशुद्ध परिणति भी ज्ञानी को है, चौथे गुणस्थान में। पाँचवें में, छठवें में। यहाँ तो अपने अधिक यहाँ लेना है। अभी तो शुभाशुभपरिणाम रोकने की बात है न? ज्ञानी को पंचम गुणस्थान में तो शुभाशुभपरिणाम अभी रुके नहीं। उत्पन्न है। समझ में आया? तथापि उन अनन्त द्रव्यों के संयोग में मेरा अस्तित्व नहीं है, ऐसा अन्दर में भान है।

यह तो भान भी कहाँ है? अभी तो खबर भी नहीं कि मैं क्या हूँ। और यह संयोग है, उस संयोग से अन्दर में त्याग का माप नहीं है। संयोग तो पूर्व के पुण्य के कारण से ज्ञानी को बहुत ही होते हैं, ढ़ेर-गंज। तथापि उस सम्यग्दर्शन में बिल्कुल दोष नहीं है। भाग पड़ते नहीं तो... संयोग दोष क्या है? और उस ओर की अपनी कमजोरी से जरा शुभाशुभपरिणाम आते हैं, उसकी भी अन्दर में आनन्द की उपादेयबुद्धि में उसे हेयबुद्धि वर्तती है। तो एक समय में शुद्ध सम्यग्दर्शन की भी परिणति है और उन पुण्य-पाप के भोग की वृत्ति की पर्याय साथ में है। एक समय में दो भाग है। तथापि उसके सम्यग्दर्शन में किंचित् दोष नहीं है। समझ में आया?

और वह राग सम्यग्दर्शन में दोष करावे तो कभी सम्यग्दर्शन होता ही नहीं। कभी सम्यग्दर्शन रहता ही नहीं। होता ही नहीं, रहता भी नहीं, वृद्धि भी नहीं होती। बहुत सूक्ष्म बात है। अभी लोगों को बाहर के माप पर माप है। सेठी! यह चीज़ है। तो क्या करने के लिये यहाँ समझाते हैं! संयोग के ढ़ेर हों समकिती को। कितने संयोग? लोगों तो ऐसा माने कि अरर्र! यह? हीरा का थाल, मणि की कटोरी और छियानवें हजार स्त्रियाँ ऐसे परोसे। कितनी उत्कृष्ट चीज़! एक-एक ग्रास की करोड़ों रुपये की कीमत! रसोईया उसका एक-एक बड़ा रसोईया। भावनगर के दरबार का दीवान हो, ऐसा तो उसका रसोईया बारह महीने की राह देखे। बारह महीने तक रसोई की सम्हाल करे। ....बड़ा अमलदार हो। वह अमलदार बारह महीने तक एक दिन का रसोईया का हुक्म करे। रसोईया को हुक्म करे। आज महाराजा साहेब के लिये यह रसोई बनाना। डालचन्दजी! तीन सौ साठ दिन एक अमलदार। वह बड़ा करोड़पति और बड़ा अरबपति अमलदार हो वह। चक्रवर्ती के लिये एक दिन के भोजन के लिये तीन सौ साठ दिन तजबीज करे।

यह बारह महीने में एक बार रसोईया को हुक्म करे कि आज महाराजा साहेब के लिये मैंने बारह महीने तजबीज की, तत् (प्रमाण) बनाना। ऐसे तीन सौ साठ तो अमलदार रसोईया, रसोईया नहीं। देखरेख रखनेवाले, स्पष्ट है। लोगों को भान नहीं पुण्य क्या है, पाप क्या है, पुण्य-पाप का फल क्या है, आत्मा क्या है, यह खबर नहीं इसलिए.... समझ में आया?

चक्रवर्ती भगवान के घर में ऐसा होता था। इसी प्रकार श्रेणिक राजा क्षायिक समकिती थे। हजारों रानियों के वृन्द में पड़े थे। (तो) क्या है? भोग की वृत्ति भी थी, आस्रव तत्त्व। आस्रव न हो तो वीतराग हो जाये। और आस्रव है तो सम्यग्दर्शन में दोष है? बिल्कुल नहीं। इतना संयोग है तो सम्यग्दर्शन में बाधा है? बिल्कुल नहीं। यह तो नौ तत्त्व की भी खबर नहीं। बाहर में तो संयोग में अजीवतत्त्व हुए, उसमें आत्मा कहाँ आया? और अपनी पर्याय में जरा पुण्य-पाप के शुभाशुभपरिणाम आये, उसमें आत्मा कहाँ आया? आत्मा तो भिन्न है, उसका अन्दर में भान है।

बात तो बहुत ही सूक्ष्म है। जगत को मिली भी नहीं। बाहर में सब माना। मिथ्याभाव, मिथ्याश्रद्धा, संयोग कुछ घटे तो हम त्यागी हैं, ऐसा अज्ञानी मानता है। वह तो अजीव का संयोग कम हुआ। उसमें जीव की पर्याय में क्या हुआ, यह तुझे खबर है? समझ में आया? जीव की पर्याय में तो जहाँ अन्दर में यह संयोग घटे, संयोग घटाये तो मेरा राग घटा, ऐसी मान्यता है, वहाँ मिथ्यात्व है। क्योंकि आत्मा त्रिकाली ज्ञानानन्दस्वभाव है, ऐसी तो दृष्टि हुई नहीं। सहारा घटा नहीं और मेरे दोष घट गये। कहाँ से घटे? धूल में से। सेठिया! कठिन बात है। यह अजर प्याला है। झेलना कठिन! ऐ राजमलजी! अजर प्याला पीयो मतवाला, चिह्नि अध्यात्म भाषा। तारणस्वामी तो ऐसा ही कहते हैं कि ऐसी मान्यता करता है, वह निगोद में जायेगा। तेरा त्याग वैराग्य सब शून्य पड़कर निगोद जायेगा। जाये निगोदम् गच्छई, है या नहीं? बहुत ही कड़क भाषा है। बहुत गाथाओं में बहुत ही कहा है। निगोदम् गच्छई। तत्त्व की खबर नहीं। आस्रव पर्याय किससे होती है। अजीव का संयोग मन्द, तीव्र, उससे होती है। तेरा जीवद्रव्य कैसा है? तुझे कुछ नौ में क्या विवेक है (इसकी भी) खबर है? समझ में आया? डालचन्दजी!

उल्टी खतौनी होगी। अपनी और अपनी दृष्टि प्रमाण वह दूसरे की खतौनी करेगा।

समझ में आया? ऐसे मिथ्यात्वभाव से तो निगोद में जायेगा। सेठी! आहाहा! चक्रवर्ती को छियानवें हजार स्त्रियाँ और आठ वर्ष में पंचम गुणस्थान आ जाता है। पश्चात् छियानवें हजार स्त्रियों के साथ विवाह करता है। क्षायिक समकिती है। बराबर सुनना, हों! पिताजी ने यहाँ मकान बनाया है तो तुम्हें सुनने के लिये यहाँ लाये हैं। उनका भाव ऐसा है कि कोई परिवार आदि से रहे, सुने, समझे। समझ में आया? नथुलालजी! यह कभी सुना भी नहीं होगा। भगवान त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ वीतराग परमेश्वर ऐसा फरमाते हैं कि तेरे अजीव के संयोग के ऊपर से त्याग-अत्याग का माप है नहीं। और आत्मा में पुण्य-पाप के परिणाम हैं, उनसे धर्म-अधर्म का माप नहीं है। समझ में आया? नौ तत्त्व भिन्न है। यह तो अजीवतत्त्व है बाहर संयोग बाहर हुए, उसमें आत्मा के अस्तित्व में क्या घुस गया? कि उसे दोष लगे। समझ में आया? और उसमें जरा पुण्य-पाप के परिणाम हुए, वस्तु दृष्टि में तो सम्यक् में मैं ज्ञानानन्द हूँ, ऐसी दृष्टि अनुभव में आ गयी है। उसमें-द्रव्य में पुण्य-पाप के परिणाम घुस नहीं गये।

सम्यक् में किसे दोष लगे? आता है, वह आत्मा की पर्याय में आता है। भाव में आता है, वह अपने दोष से आता है। कर्म से नहीं। वह दोष से आता है, उसकी दृष्टि छूटकर द्रव्य पर-स्वभाव पर दृष्टि करे, तब सम्यग्दर्शन होता है। दोष है, परन्तु दोष से दृष्टि छूटकर निर्दोष चैतन्य पर दृष्टि की। दोष तो है। दोष न हो, तब तो वीतराग हो जाये। समझ में आया? दोष की दृष्टि छूट गयी। और निर्दोष चैतन्य पर दृष्टि हुई। दोष रहा अशुभ-शुभाशुभभाव। नौ तत्त्व किस प्रकार रहेंगे? आत्मा का ज्ञान हुआ तो आस्रवतत्त्व उड़ गया और बन्ध उड़ गया? हो गया मोक्ष? ऐसा है नहीं। सेठी! इसलिए तो यहाँ पहले कहते हैं। ज्ञानी को संवर सम्यग्दर्शन की दशा में संवर हुआ, शुद्धपरिणति हुई। साथ में शुभाशुभभाव अशुद्धपरिणति है। बहुत सूक्ष्म बात!

आत्मा में चारित्र नाम का गुण है द्रव्य के आधार से। उस चारित्रगुण का आधार द्रव्य की दृष्टि होने पर अपनी पर्याय में चारित्रगुण की शुद्धपर्याय का अंश प्रगट हुआ। उसी पर्याय में एक पर्याय में दो भाग रहे। थोड़ा अशुद्ध है और थोड़ा शुद्ध है। चारित्रगुण की पर्याय में। अभी पर्याय कौन (है, उसकी तो खबर नहीं)! समझ में आया?

त्रिकाल द्रव्य वस्तु अखण्डानन्द की दृष्टि होने पर चारित्र की पर्याय में आंशिक

शुद्धि हुई। सम्यग्दर्शन पूर्ण शुद्ध हुआ। ज्ञान भी स्वज्ञेय को जानकर ज्ञान की अपनी पर्याय शुद्ध हुई। साथ में चारित्रगुण की शुद्ध पर्याय के साथ उसी पर्याय में दो भाग हैं। थोड़ी शुद्धि है, थोड़ी अशुद्धि है। पुण्य-पाप, आर्तध्यान-रौद्रध्यान समकिती को होते हैं, इतनी अशुद्धि है। और जितनी द्रव्य के आश्रय से पर्याय शुद्ध हुई, उतनी शुद्ध है। शुद्ध है, उसे संवर-निर्जरा कहते हैं। अशुद्ध है, उसे पुण्य-पाप, आस्रव-बन्ध कहते हैं। सेठी! कितना आया, कितना फरमाना!

यहाँ नौ पदार्थ की बात चलती है या नहीं? तो सम्यग्दृष्टि को नौ पदार्थ ख्याल में कैसे है? चौथे गुणस्थान में, हों! ऐसा कि अभी तक हम मानते थे। कुछ ऐसा समझने की दरकार नहीं थी और मानते थे धर्म! यह दखल खड़ी की, ऐसा कहते हैं। हमारे दलाल हैं। मानते थे कि हम सब धर्म करते हैं न, उसमें यह दखल खड़ी की। नहीं, यह तेरी दृष्टि विपरीत है। समझ में आया? हम पर की दया पाल सकते हैं, पर की हिंसा कर सकते हैं, हम भाषा बोल सकते हैं। तो अजीवतत्त्व भिन्न नहीं रहा। नौ तत्त्व में अजीवतत्त्व है। तो अजीव की पर्याय अजीव से है तो तेरी श्रद्धा में (तो यह) आया नहीं।

नौ तत्त्व है न तो अजीवतत्त्व भिन्न है। यह वाणी, यह सब अजीवतत्त्व है। अजीवतत्त्व है। यह संयोग आवे, वह लक्ष्मी, धूल, यह लड्डू, दाल, यह मकान धूल यह सब अजीवतत्त्व है। वह अजीवतत्त्व अपनी पर्याय से वहाँ परिणम रहा है। तेरे कारण से आया नहीं और वह तेरी चीज़ है नहीं। अपनी मान्यता में माने परन्तु माने तो कहीं हो जाता है?

और आत्मा की पर्याय में शुभ और अशुभभाव होते हैं। शुभ पुण्य है। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, नाम, स्मरण, जाप, यह सब शुभराग है, विकल्प है। पुण्य विकार मैल है और हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, यह पाप। एक पुण्यतत्त्व और एक पाप। दोनों मिलकर आस्रवतत्त्व। और इतना आत्मा अन्तर में शुद्धस्वभाव का आश्रय लेकर मैं बिल्कुल विकल्प का कर्ता नहीं। पुण्य, दया, दान का मैं कर्ता नहीं। मैं तो ज्ञानानन्दस्वरूप हूँ, ऐसी दृष्टि हुई, तब राग आया सही। तो राग के साथ स्वभाव के आश्रय से जितना संवर हुआ, उसके साथ उतने अशुद्धभाव का आस्रव भी रहा है। अशुद्धभाव न हो, तब तो केवल (ज्ञान) हो जाये और अशुद्धभाव अपनी दृष्टि के विषय और अपना कर्तव्य

माने, तब तो मिथ्यादृष्टि हो जाये। आहाहा! देवीलालजी!

मुमुक्षु : संवर.....

पूज्य गुरुदेवश्री : सब आता है न, देखो! अभी आयेगा कोष्ठक में। **संवर से अर्थात् शुभाशुभपरिणाम के परम निरोध से युक्त ऐसा...** युक्त अर्थात् सहित ऐसे। यह तो अमृत सिद्धान्त है, उसमें एक-एक शब्द में गम्भीरता पड़ी है। ऐसे का ऐसे पढ़ ले तो ऐसा नहीं है। संवर से शुभाशुभपरिणाम, शुभपरिणाम दया, दान, नाम स्मरण, भक्ति इत्यादि शुभ। हिंसा, झूठ, चोरी, भोग, वासना अशुभ। यह समकिती को सम्यग्दर्शन (रूप) संवर तो है। क्योंकि वह पर के संयोग में अपना अस्तित्व स्वीकार नहीं करता और संयोग में दशा होती है, वह मुझसे होती है, ऐसा नहीं मानता। और अपनी पर्याय कर्म से विकार से होती है, ऐसा नहीं मानता।

जिसे अपनी पर्याय में पराश्रितबुद्धि है कि पर से विकार है, उसे स्वाश्रितबुद्धि नहीं होती। समझ में आया? (बहुत से ऐसा मानते हैं कि) हमारे पुण्य और पाप के भाव क्या करे! कर्म के आश्रय से होते हैं। कर्म ऐसा उदय में आवे तो करना पड़ते हैं। मूढ़ है! समझ में आया? जिसके विकार के परिणाम में पराश्रितबुद्धि है तो उससे मुझे विकार होता है। संयोग ऐसे मिले तो मुझे विकार हुआ, (ऐसा मानता है)। संयोग तो पर तत्त्व है, अजीव है। कर्म अजीवतत्त्व है। उससे आस्रवतत्त्व हो तो नौ तत्त्व भिन्न रहे नहीं। समझ में आया?

अजीव का आश्रय छोड़कर पुण्य-पाप के परिणाम भी पर से नहीं होते। ऐसी (पर से होता है, ऐसी) दृष्टि छोड़कर, पर से नहीं होते। मेरी कमजोरी से (होते हैं)। परन्तु वह मुझमें नहीं। मैं ज्ञायक चिदानन्द हूँ। ऐसी दृष्टि हुई तो जितने पुण्य और पाप अभी बाकी रहे उतना आस्रव है। वह तो समझा जा सके, ऐसा है, हों! डालचन्दजी! बुद्धिवाले, परन्तु संसार में काम करते हैं तो उसका नाम नहीं। जानते हैं, हों! हम क्यों जानने के काम न करे। समझ में आया? अभी तो यहाँ अटका! शुभाशुभपरिणाम में रुक गया।

परम निरोध से युक्त... युक्त अर्थात् सहित, **ऐसा जीव....** अब उस जीव की

व्याख्या करते हैं। **वस्तुस्वरूप को (हेय-उपादेय तत्त्व को) बराबर जानता हुआ...** देखो! अब भाषा आयी। संस्कृत टीका में है। '**मुख्य निर्जराकारणोपन्यासोऽयम्। यो हि संवरेण शुभाशुभपरिणाम परमनिरोधेन युक्तः परिज्ञातवस्तुस्वरूपः**' संस्कृत टीका है। क्या है ज्ञानी? ऊपर संस्कृत लिया। वस्तुस्वरूप को, अर्थात् ज्ञायकस्वभाव परम पवित्र को उपादेयरूप से जानता है। और अजीव आदि को ज्ञेयरूप से हेय जानता है और दया, दान का विकल्प भक्ति, पूजा, व्रत का विकल्प उठता है, उसे हेय जानता है और अपना त्रिकाल शुद्ध स्वभाव को उपादेय जानकर जितनी निर्मल संवर, निर्जरा, मोक्ष की पर्याय उत्पन्न होती है, उस संवर को उपादेय मानता है, निर्जरा को हितकर मानता है, मोक्ष को परमहित मानता है और पुण्यपरिणाम, पापपरिणाम को हेयरूप स्वीकार करता है। समझ में आया?

देखो! क्या शब्द पड़ा है? वस्तुस्वरूप को हेय-उपादेय... संस्कृत में है। जयसेनाचार्य में है भाई! यह शब्द भाई ने इतना डाला न कि स्वरूप को जान, परन्तु जयसेनाचार्य की टीका में है। संस्कृत टीका में इस गाथा में ही है। '**अप्पदपसाहगो हि**' पहली पंक्ति में है। उसका संस्कृत किया है। '**आत्मार्थप्रसाधकः (हि) स्फुटं हेयोपादेयतत्वं विज्ञाय परप्रयोजनेभ्यो व्यावृत्य**' यह संस्कृत में है। समझ में आया?

सम्यग्दृष्टि जीव को संवरपूर्वक निर्जरा होती है, उसका अर्थ यह। बाकी सम्यक्संवर अर्थात् सम्यग्दर्शन नहीं और लाख, करोड़ अपवास करे, मर जाये शरीर सूखकर। किंचित् भी निर्जरा नहीं होती। अकेला मिथ्यात्व के साथ पाप का बन्ध (होता है)। राग मन्द हो तो पुण्य का बन्ध होता है। समझ में आया?

तो **शुभाशुभपरिणाम के परम निरोध से युक्त ऐसा जो जीव, वस्तुस्वरूप को (हेय-उपादेय तत्त्व को) बराबर जानता हुआ...** '**मुणिउण**' है न '**मुणिउण**' पाठ में है। ज्ञानी जीव अपने आत्मा को ज्ञानस्वरूप ही जानता हुआ जानने की क्रिया के अतिरिक्त मेरी कोई क्रिया मुझमें है ही नहीं। रागादि की क्रिया होती है, वह मलिन है, वास्तव में तो वह मुझे मेरे ज्ञान का ज्ञेय है। समझ में आया?

बराबर जानता हुआ... अर्थात् नौ तत्त्व की जो द्रव्य-द्रव्य है, पर्याय है, मलिन

है, निर्मल है, उन्हें ऐसा बराबर जानता हुआ, समझ में आया? **परप्रयोजन से जिसकी बुद्धि व्यावृत्त हुई...** परप्रयोजनों का अर्थ-शुभाशुभ विकल्प का प्रयोजन जिसे छूट गया है। पर का तो कर्ता-हर्ता नहीं। अज्ञानी भी कर नहीं सकता, परन्तु परप्रयोजन शुभाशुभ परिणाम का प्रयोजन जिसकी बुद्धि में आकर व्यावृत्त हो गया है। नीचे (फुटनोट में) व्यावृत्त है न? निर्वतना; निवृत्त होना; विमुख होना। शुभ-अशुभपरिणाम में भी मेरा प्रयोजन क्या है? सम्यग्दृष्टि है। शुभाशुभभाव है। यहाँ तो विशेष निर्जरा कहनी है न? शुभाशुभपरिणाम में मेरा प्रयोजन क्या है? शुभभाव आया, दया, दान, भक्ति, व्रत, तप, स्मरण, विकल्प, उसमें प्रयोजन क्या है? वह तो पुण्यबन्ध का कारण है। समझ में आया?

यहाँ तो सम्यग्दर्शन के बाद की बात है। उत्कृष्ट संवर, निर्जरा की बात है। हाँ, ऐसी बात है। समझ में आया? **परप्रयोजन,....** परप्रयोजन शब्द से (आशय) विकल्प, शुभ-अशुभ विकल्प जो उत्पन्न होता है, उससे भी मुझे क्या प्रयोजन है? **बुद्धि व्यावृत्त हुई...** अपनी ज्ञानदशा उग्ररूप से स्वभाव का अवलम्बन लेकर इन शुभाशुभपरिणाम से बुद्धि व्यावृत्त-निवृत्त हुई है। दूसरे का प्रयोजन करते थे न, इसलिए ऐसा नहीं। दूसरा तो कर सकते ही नहीं। कहो, समझ में आया?

यह देश सेवा की, कुटुम्ब सेवा की, जाति की सेवा की। तीन काल, तीन लोक में कर नहीं सकता। किसकी सेवा करे? तेरे अस्तित्व में नहीं, वहाँ तेरा अस्तित्व कहाँ जाता है पर में कि पर का तू कर दे?

मुमुक्षु : आप तो.....

पूज्य गुरुदेवश्री : (हम) नहीं करते। हम तो हमारे में हैं। वाणी, वाणी में है। जरा कठिन बात है। लोगों को नौ तत्त्व क्या है, उसकी खबर नहीं। नव कहे तो नवरूप होना चाहिए न? नव में एक करके खीचड़ा कर डाले तो एक भी न रहे। तो सब नाश हो जाये। समझ में आया? **परप्रयोजन से जिसकी बुद्धि व्यावृत्त हुई है...** पहले सम्यग्दर्शन तो है, हों! परन्तु **युक्त ऐसा,....** ऐसा पहले कहा है न भाई? यह तो लीनता निर्जरा की बात है। स्वभाव का भान है। ज्ञायक हूँ और लीन होने के लिये तैयार हुआ है। और

शुभाशुभपरिणाम से रहित तो संवर हुआ है। अब, उसकी-निर्जरा की बात करते हैं। आहाहा!

परप्रयोजनों से जिसकी बुद्धि, ज्ञान की पर्याय उन शुभाशुभपरिणाम से भी हट गयी है। दृष्टि तो पहली रुचि से हट गयी थी। अब यहाँ चारित्र की बात है। दृष्टि में तो सम्यक् हुआ तो पुण्य-पाप की रुचि हट गयी थी। परन्तु पुण्य-पाप रहे थे। तो अब उग्ररूप से पुरुषार्थ करके शुभाशुभपरिणाम से भी व्यावृत्त, बुद्धि को व्यावृत्त करके स्वरूप की दृष्टि हुई है, ऐसे स्वरूप में स्थिर होता है। पहली दृष्टि हुई है, उसकी बात है, हों! अज्ञानी को तो ऐसा कभी होता ही नहीं।

केवल स्वप्रयोजन साधने में जिसका मन उद्यत हुआ है... अकेला आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप में मति, बुद्धि, भाव, परिणाम उद्यत हुआ है। तत्पर हुआ, लगना, उद्यमवन्त होना। पुरुषार्थ ज्ञानानन्द अनन्त गुण के पिण्ड में जिसकी बुद्धि लीन होने के लिये तत्पर हो गयी है। ओहोहो! निमित्त से दूर होकर, निमित्त मुझमें है नहीं, यह दूसरी बात परन्तु निमित्त पर लक्ष्य करता था तो आसक्ति का थोड़ा शुभाशुभपरिणाम में। उससे बुद्धि दूर करके स्वभाव में मन उद्यत करके अन्तर ज्ञानानन्द में... सम्यग्दर्शन तो है। विशेष अन्दर स्थिरता करके। **ऐसा वर्तता हुआ,...** देखो! ऐसा वर्तता हुआ।

ऐसा नहीं कहते कि कर्म कुछ मार्ग बतावे तो ऐसा वर्तता है। ऐसा है नहीं। हमारे कर्म पड़े हैं न? कर्म बहुत ही चिकने पड़े हैं न? थोड़े से कुछ घटे तो हमारा (कल्याण हो) मूढ़ है। वह तो अजीवतत्त्व है। अजीव से तुझमें कुछ हुआ और अजीव में तुझसे कुछ हुआ, ऐसा तो है नहीं। तो कहते हैं कि **उद्यत हुआ है, ऐसा वर्तता हुआ,...** अपने पुरुषार्थ से अपने में वर्तता हुआ। कर्म ने मार्ग दिया और कर्म थोड़े घटे तो हमारे उद्यम हुआ, ऐसा है नहीं।

अपने कारण से उद्यम हुआ। दृष्टि तो थी.... आनन्द में, ज्ञायक में थी। उसके पश्चात् संवर भी हुआ। उसकी अंश में निर्जरा की बात करते हैं। ओहोहो! समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कठिन कब था। अभी तक भान नहीं किया। जेचन्दभाई! अभी

तक मुंडाया है दूसरा सब। कठिन लगता है। अभी तक दरकार कब की भाई! कभी दरकार की ही नहीं। ऐसी की ऐसी जिन्दगी निरर्थक गँवायी। जेचन्दभाई! कहाँ गये? ये बैठे! वहाँ अन्त में।

ओहो! कहाँ नौ तत्त्व नौ रूप क्या हैं? पुण्य क्या है। खोज की नहीं, तो उसे कठिन लगता है। अंक किसी दिन सीखा नहीं और पहला ऐकड़ा जाये तो उसका हाथ भी ऐसे चले नहीं। अभ्यास नहीं किया कभी। जो करने का है, वह किया नहीं। व्यर्थ के (काम) करके मर गया। समझ में आया? व्यापार धन्धे के परिणाम किये। क्या किया था तुमने? व्यापार किया था? कौन कहता है व्यापार किया था? व्यापार के राग के परिणाम किये थे।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : किसकी बात करते हैं यह? यह बात तो आती है। हो। तो क्या है सुधारनेवाला तैयार नहीं है? उसकी बात तो चलती है। नौ (तत्त्व) को बराबर नौ रूप पहिचानो कि जिससे नौ (तत्त्व) का विवेक करके अपने में एकाग्रता हो। यह बात तो मोक्षमार्ग की चलती है। अन्धाधुन्धी।

मुमुक्षु : यही व्यापार करने का है?

पूज्य गुरुदेवश्री : यही व्यापार करने का है। दूसरा क्या है धूल में? पाँच पचास लाख मिले तो किसे मिले? इसके पास है? इसके पास ममता है। ममता की मालिकी है। उसकी मालिकी कहाँ है? धूल में? मालिकी हो तो साथ में आनी चाहिए। कहाँ साथ में लाये हैं? अपनी पर्याय में क्या आया? यह मेरा है, ऐसी ममता आयी। चीज़ नहीं आयी। चीज़ तो चीज़ में रही। बराबर?

अपने अस्तित्व में आना चाहिए न? अपनी अस्ति-अस्ति अर्थात् सत्ता। तो अपनी सत्ता तो द्रव्य, गुण, पर्याय तीनों में है। तो लक्ष्मी क्या इसकी पर्याय में आ जाती है? ऐ सेठ! धूल में भी है नहीं। ऐसा वर्तता हुआ, इस पर वजन था। अपने मन को अपने स्वरूप में पुरुषार्थ करके। ऐसी निर्जरा होती है, उसका ज्ञान तो पहले करे! ऐसे अपवास कर दिये और निर्जरा हो गयी! समझ में आया? ऐसा-वैसा है नहीं। ऐ

प्रेमचन्दजी! क्या है देखो! यहाँ। कड़क बात है। हमारे देरियाजी कहते हैं कि भाषा कड़क है। कड़क क्या? समझ में आवे, नहीं इसलिए कड़क लगती है।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह समयसार में ऐसा शब्द है, हों! समयसार में शब्द है। यहाँ कहते हैं मूढ़ है। वह समयसार में बहुत शब्द पड़ा है। '**अण्णाणी मूढ़ा**' ऐसा शब्द है। कुन्दकुन्दाचार्य (कहते हैं), पर को जिला सकता हूँ, पर को आहार दे सकता हूँ। मूढ़ है, अज्ञानी! ऐसा पाठ है। समयसार में, हों! ऐसा पाठ है। कुन्दकुन्दाचार्य। समझ में आया? बन्ध अधिकार में, देखो!

जो मज्जदि हिंसामि य हिंसिज्जामि य परेहि सत्तेहिं।
सो मूढो अण्णाणी णाणी एतो दु विवरीदो॥२४७॥

दो शब्द लगाये हैं। २४७ गाथा है। यह तो हमारे देरियाजी पूछे तो शब्द तो देना पड़े न? देखो! २४७ गाथा। '**जो मज्जदि जीवेही**' जो कोई मानता है कि मैं पर को जिला सकता हूँ और पर से मुझमें जीवन होता है। मैं जिला सकता हूँ। '**जो मज्जदि हिंसामि य हिंसिज्जामि य परेहि सत्तेहिं, सो मूढो अण्णाणी**' दो शब्द लगाये हैं। सेठिया! '**मूढो अण्णाणी**' वह तो '**ध्रुव अण्णाणी**' पाठ में टीका में से आया है। ध्रुव अज्ञानी है। अज्ञानी है निश्चित अज्ञानी है। ध्रुव अज्ञानी है, निश्चित अज्ञानी है। मूढ है, उसे खबर नहीं। क्या तुझसे एक रजकण भी चलता है? पलक भी तुझसे चलती है? तुझसे अँगुली चलती है? वह तो जड़ की पर्याय जड़ में से होती है। जड़ के कारण होती है। तुझसे होती है? तू अजीव का मालिक हो गया, स्वामी (हो गया)। तेरा स्वामी चला गया? फिर विशेष बात कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. ४२, गाथा-१४५-१४६
दिनांक - ०८-१०-१९६४, आसोज शुक्ल ३, गुरुवार

यह पंचास्तिकाय नौ पदार्थ का विस्तार चलता है। उसमें १४५ गाथा चलती है। देखो! क्या कहते हैं? निर्जरा की व्याख्या। नौ पदार्थ है, नौ पदार्थ। उसमें जड़ अजीव पुद्गल और जीव चैतन्य दो द्रव्य और सात तो उनकी पर्याय है। उसका ज्ञान करना पड़ेगा। जिसे हित करना है, उसे ज्ञान करना पड़ेगा कि यह क्या चीज़ है। हित न करना हो तो अनादि काल से अज्ञान में मानता आया है। अनादि से उलट-पुलट (मानता आया है)।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : जरा भी नहीं। उलट-पुलट अर्थात्? यह आस्रव को धर्म माना और धर्म नहीं, वहाँ धर्म माने, ऐसा उलट-पुलट। उलट-पुलट का थोड़ा सुलट हो, ऐसा नहीं है। उलटा और सुलटा और सुलटा को उलटा (माने)। चैतन्य को जड़ और जड़ को चैतन्य (माने) ऐसा। समझ में आया?

तो कहते हैं। पहले से देखो! **संवर से अर्थात् शुभाशुभपरिणाम के परम निरोध से युक्त ऐसा जो जीव,...** गाथा १४५। पहले तो उसके बोध में ऐसा होना चाहिए कि शरीरादि जड़ की पर्याय जड़ से स्वतन्त्र होती है। मुझसे नहीं। अब यह कठिन पड़े तो फिर अब अन्दर अभी संवर तो कहीं रह गया। समझ में आया? वीतरागमार्ग तो दुनिया से अत्यन्त पृथक् है। समझ में आया? यह तो सर्वज्ञ से जाना हुआ, सर्वज्ञ ने कहा हुआ धर्म है। यह कोई कल्पित है और अपनी कल्पना से (बनाया है), ऐसी चीज़ नहीं है। समझ में आया?

तो कहते हैं, **संवर से अर्थात् शुभाशुभपरिणाम के परम निरोध से युक्त ऐसा जो जीव,...** क्या कहा इसमें? इतने शब्द में क्या कहा? कि जिसे निर्जरा-शुद्धता प्रगट होती है, वह यह जड़ शरीर, वाणी, मन, परपदार्थ की पर्याय होती है, वह मेरा कार्य है—ऐसा दृष्टि में से तो छूट गया। समझ में आया? और आत्मा में पुण्य और पाप के भाव जो होते

हैं, उनसे भी दृष्टि छूट गयी कि वह मेरी चीज़ है, उससे मुझे लाभ है, ऐसी तो दृष्टि पहले छूटनी चाहिए। दृष्टि छूटे बिना ज्ञायक चैतन्य अनन्त ज्ञानगुण का पिण्ड प्रभु, उसकी दृष्टि उसे नहीं होती। समझ में आया?

यह दृष्टि शुद्धि बिना धर्म (नहीं होता धर्म) का मूल तो दृष्टि है। यह है न? 'दंसण मूलो धम्मो' धर्म का मूल तो दर्शन है। तो दर्शन की शुद्धि की-दृष्टि की शुद्धि की खबर नहीं, उसे धर्म कहाँ से होगा? परन्तु मूल चीज़ की खबर नहीं। दृष्टि की शुद्धि, वह पूरे धर्म का मूल है। पश्चात् धर्म प्रगट होता है। तो पहले कहते हैं कि यह शरीर, वाणी, मन आदि अजीव है, उनकी जो क्षण-क्षण में पर्याय होती है, वह मेरे कारण से है ही नहीं, परन्तु निमित्त का अर्थ ही यह हुआ। यह बात तो दोपहर में चली न। एक निमित्त होता है, तथापि वह अपनी पर्याय प्रमाण जड़ परिणम रहा है। आत्मा के कारण नहीं। इस प्रकार जड़ की पर्याय को भी अपने से भिन्न मानने में न आवे इसे तो पुण्य और पाप के भाव अपने स्वभाव से भिन्न हैं, इसकी मान्यता सच्ची हो नहीं सकती। समझ में आया?

यह तो पृथक् द्रव्य है। शरीर, वाणी, मन, यह तो अनन्त पृथक् पदार्थ हैं। उनकी भी पर्याय होती है, वह मुझसे होती है, ऐसा मानता है, वह तो पराश्रितबुद्धि हुई। उसकी पर्याय उसके कारण से होती है। तुझमें तेरा विकल्प होता है, शुभाशुभ विकल्प हों, परन्तु उससे जड़ की क्रिया रुक जाये या बने, ऐसा (तेरा) अधिकार जड़ में नहीं है। बहुत सूक्ष्म बात है। यहाँ तो अभी आगे लेते हैं।

पहले जिसे अजीवतत्त्व, नौ तत्त्व है या नहीं? तो अजीवतत्त्व की पर्याय की दृष्टि छूट गयी और पश्चात् पुण्य और पाप के भाव आस्रव हैं, उनकी दृष्टि छूट गयी, यह नास्ति से कहा। दृष्टि कहाँ स्थिर हुई। जीव ज्ञायक चैतन्य ज्ञानगुण अनन्त-अनन्त स्वभाव का पिण्ड है। ऐसी दृष्टि वहाँ स्थिर हुई तो उसका नाम सम्यग्दर्शन कहते हैं, वह धर्म की मूलभूत दृष्टि है। ऐ सेठी!

मुमुक्षु : कुछ सरल कहो।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सरल है, दूसरा सरल क्या है? खोटी रीति से हो, वह सरल होता है?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या?

मुमुक्षु : समाज को लेकर चले।

पूज्य गुरुदेवश्री : समाज को कौन लेकर चले? एक द्रव्य दूसरे द्रव्य के कारण कभी चलता ही नहीं। समाज में भी भिन्न-भिन्न आत्मा है या नहीं? और परमाणु भिन्न-भिन्न तत्त्व है। कहो, सेठी! क्या करना? समाज को साथ लेकर चलना? वह तो फँसा रहे। समझ में आया?

यहाँ तो यह बात तो कहीं रह गयी। यहाँ तो कहते हैं कि पहले उसकी दृष्टि में एक आत्मा अनन्त-अनन्त अनन्त गुण का एक समूह स्वरूप चैतन्य, वह जड़ की क्रिया से हटकर कार्य नहीं करता उसमें। और पुण्य-पाप के परिणाम होते हैं, वे मलिन अंश हैं। मेरे त्रिकाल ज्ञानानन्द स्वभाव में वे नहीं हैं। ऐसी अन्तर्दृष्टि हो तब उसका नाम धर्म का मूल दृष्टि विशुद्ध, दृष्टि शुद्ध, दर्शनविशुद्धि कहते हैं। कहो, समझ में आया?

तो कहते हैं **शुभाशुभपरिणाम के परम निरोध से...** दृष्टि में से पहले तो शुभ और अशुभभाव, दया, दान, व्रत, तप, भक्ति का भाव, वह मेरे स्वभाव में लाभदायक नहीं। ऐसी वहाँ से दृष्टि हटाकर अपने शुद्धस्वरूप पर दृष्टि की है। पश्चात् **शुभाशुभपरिणाम के निरोध से...** यह तो उत्कृष्ट बात चलती है न? पश्चात् शुभाशुभ -परिणाम का रुकना। अर्थात् स्वभाव सन्मुख का उग्र आश्रय करना। बात भी अनजानी। दृष्टि की खबर नहीं और इसे धर्म करना है। दृष्टि स्वभाव पर रखे तो दृष्टि निकले। श्रद्धागुण में से दृष्टि निकलती है।

आत्मा में अन्दर श्रद्धागुण है। उसमें से दृष्टि पर्याय निकलती है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : पकड़ में नहीं आता। आप कहते हो परन्तु पकड़ में नहीं आता।

पूज्य गुरुदेवश्री : पकड़ में नहीं आता परन्तु (इसे पकड़ना तो पड़ेगा न?) यह न पकड़ में आये तो दूसरा क्या करना? समझ में आया? पश्चात् **वस्तुस्वरूप को**

(हेय-उपादेय तत्त्व को) बराबर जानता हुआ... देखो! हेय-उपादेय है न? कल तो बहुत समझाया था। अजीव की पर्याय अजीव से वाणी, शरीर आदि जो होती है, वह उसके कालक्रम में पर्याय होती है—ऐसा जानता है; और पुण्य-पाप के परिणाम हेय जानता है। त्रिकाली द्रव्य अनन्त गुण का पिण्ड उपादेय जानता है और उसमें से शुद्धि की पर्याय संवर-सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ, वह संवर। शुद्ध एक समय की पर्याय जानता है और उसमें शुद्धि की वृद्धि हो स्वभाव के आश्रय से, शुभाशुभपरिणाम से हटकर, उसका नाम निर्जरा कहा जाता है। समझ में आया?

और जितना आत्मस्वभाव शुभ और अशुभ राग में रुके, उसका नाम भावबन्ध कहने में आता है और जितने परिणाम आत्मा के आश्रय से पूर्ण शुद्ध निर्मल हो जायें, उसका नाम मोक्षपर्याय कहते हैं। अब यह इतना भी ज्ञान न करे और उसे सम्यग्दर्शन हो, (ऐसा नहीं होता)।

मुमुक्षु : इस काल में तो मोक्ष नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मोक्ष ही है। मोक्ष नहीं है, ऐसा कौन कहता है? द्रव्य की दृष्टि हुई, वह मोक्ष ही है। द्रव्य मुक्तस्वरूप ही है। समझ में आया? पर्याय में केवलज्ञान पर्याय भले न हो परन्तु द्रव्य तो मुक्तस्वरूप ही है। राग से, भावबन्ध से, जड़बन्ध से आत्मा अत्यन्त मुक्त ही है। ऐसी अन्तर्दृष्टि होने पर मुक्त ही है, ऐसा पर्याय में भी मुक्त जैसा है, वैसा माना है। मुक्तएव आता है न? समयसार में-कलश १९८ में (आता है)। स हि मुक्त एव। मुक्त है, सुन तो सही!

भिन्न पदार्थ भासित हुआ जड़ जड़ में रहा, पुण्य-पाप, पुण्य-पाप में रहे। मेरे स्वभाव में तो अत्यन्त शुद्धता और आनन्द और नित्यानन्द प्रभु है। ऐसी धर्म की उत्पत्ति का कारण पहले सम्यग्दर्शन हुआ। धर्म तो चारित्र है। उसका कारण है धर्म सम्यग्दर्शन। कहो, समझ में आया? अब यह समझ में न आवे और धर्म हो जाये, (ऐसा नहीं होता)। सेठ! यह महिलायें न समझे तो क्या करना? समझना पड़ेगा। समझे बिना लाख अपवास करे न, ऐसे बाहर के ब्रह्मचर्य पाले न, दया पाले और दान करे, उसमें कुछ राग की मन्दता हो तो पुण्य होगा। धर्म-बर्म है नहीं।

मुमुक्षु : चर्चा करते-करते....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में.... चर्चा करते-करते जहर खाते-खाते अमृत होता है? राग तो जहर है।

मुमुक्षु : चर्चा करते-करते नजदीक तो आवे न?

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल नजदीक आवे नहीं। कौन कहता है नजदीक आवे। वह तो राग है। राग करते-करते अराग नजदीक आता है? समझ में आया? इसलिए तो यहाँ कहते हैं। बराबर वस्तु-स्वरूप को हेय-उपादेय जानना। पुण्य-पाप के विकल्प होते हैं। होओ! परन्तु वे हेय हैं। जाननेयोग्य हैं।

भगवान ज्ञायकमूर्ति अनन्त गुण का पिण्ड, हेय-उपादेय ऐसी पहले समझ की, पश्चात् दृष्टि अन्तर में करना, वह सम्यग्दर्शन धर्म है। समझ में आया? **परप्रयोजन से जिसकी बुद्धि व्यावृत्त हुई...** लो! परप्रयोजन से शुभाशुभ परिणाम का प्रयोजन छूट गया है। परप्रयोजन कहो। बुद्धि व्यावृत्त हुई। पुण्य-पाप के परिणाम से अपनी बुद्धि दूर हुई। **और केवल स्वप्रयोजन साधने में जिसका मन उद्यत हुआ है...** यह तो उत्कृष्ट ऊँची निर्जरा की बात करते हैं न? समझ में आया? और मात्र स्वप्रयोजन साधने में जिसका मन, मेरा चैतन्य ज्ञानस्वरूप, उसमें अपना प्रयोजन अपना कार्य उसके आश्रय से सिद्ध होता है। पुण्य-पाप के विकल्प के आश्रय से अपने धर्म का कार्य सिद्ध नहीं होता। और जड़ के आश्रय से तो नहीं होता। समझ में आया? ओहो! यह चीज़ ही ऐसी है, ऐसा सत्पना है। ऐसा न जाने और उसे धर्म हो जाये, (ऐसा नहीं होता), धर्म अर्थात् सम्यग्दर्शन (हो जाए) और जन्म-मरण का अन्त आवे, ऐसा कभी नहीं बनता।

जिसका मन अपना स्वप्रयोजन साधने में वर्तता हुआ, ज्ञानानन्द स्वभाव में पहले समझण तो करे! अजीव क्या है? पुण्य-पाप क्या है? समझ में आया? **ऐसा वर्तता हुआ, आत्मा को स्वोपलब्धि से उपलब्ध करके...** यहाँ तक तो कल आया था। कल सवेरे आया था। अब यह तो शब्दार्थ नया है। यहाँ तक तो कल सवेरे आया था। तत्त्व का अभ्यास नहीं और बाहर की प्रवृत्ति आदि एक तो मानो संसार की प्रवृत्ति के कारण

निवृत्ति नहीं। और निवृत्ति हो तो तत्त्व क्या है, उसकी प्रवृत्ति का विचार करना कि क्या निवृत्ति, उसकी खबर नहीं।

आत्मा को देखा! पर की क्रिया तो है, उससे दृष्टि छूट गयी कि मेरा कार्य नहीं, पुण्य-पाप परिणाम से दृष्टि छूट गयी कि यह मेरा स्वरूप नहीं। पश्चात् पुण्य-पाप के परिणाम से हटकर अपने चैतन्यस्वभाव के स्वप्रयोजन में जितना एकाकार होता है, वह आत्मा के स्वोपलब्धि से उपलब्ध करता है। देखो! **आत्मा (-अपने स्वानुभव द्वारा अनुभव करके),...** स्वोपलब्धि अर्थात् अनुभव को प्राप्त करके। वस्तु पूरी शान्ति और वीतरागस्वभाव से आत्मा भरपूर है। वह पुण्य-पाप से हटकर, जड़ से हटकर स्वभाव का अवलम्बन लेकर अपना प्रयोजन स्वअनुभव आत्मा का किया, उस अनुभव से अनुभव की प्राप्ति। **स्वानुभव द्वारा अनुभव करके...** विकल्प द्वारा नहीं।

क्या कहते हैं? जरा! गुण गुणी के भेद का विकल्प उसमें उठता है। मैं अनन्त गुण का पिण्ड हूँ, यह गुण आधेय है और वस्तु आधार है—ऐसा जो भेद का विकल्प है, उस द्वारा नहीं। **आत्मा को स्वोपलब्धि से उपलब्ध करके...** यह उसकी विधि है। यह विधि समझ में न आवे तो प्रयोग में कहाँ से रखे? आत्मा अनन्त गुण का पुंज प्रभु! उसमें पुण्य-पाप भी नहीं, शरीर की क्रिया भी नहीं। ऐसी (उनकी) दृष्टि छोड़कर अपने स्वभाव की दृष्टि हुई, पश्चात् शुभाशुभ परिणाम से हटकर स्वरूप में एकाग्रता का इस अनुभव द्वारा आत्मा का अनुभव करके; विकल्प द्वारा नहीं। पुण्य-पाप द्वारा तो नहीं परन्तु गुण-गुणी के भेद द्वारा भी अनुभव नहीं होता। समझ में आया?

इस विधि की खबर नहीं। हम हलुवे का दृष्टान्त देते हैं न? शीरा, शीरा को क्या कहते हैं? हलुवा कहते हैं न? यह हलुवा। हलुवा बनाते हैं तो उसमें पहले घी में आटा सेंकते हैं न? आटा तो घी में सेंकते हैं। फिर गुड़ और शक्कर का पानी डाले न! कोई होशियार महिला निकली कि सासुजी! हम तो हलुवा बहुत सस्ता कर देते हैं। क्या है कि यह आटा घी पी जाता है। तो क्या करना है? गुड़ का और शक्कर का पानी बाद में डालते हैं न, तो पहले ही गुड़ और शक्कर के पानी में आटा सेंके, फिर घी डालेंगे। क्या है धरमचन्दजी! समाज में क्या होता है उसमें?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहते हैं कि तेरा (आत्मा) अन्दर आनन्दकन्द है, ऐसी दृष्टि पहले करो, वह विधि है। पहले ऐसा का ऐसा व्रत और क्रिया और दया, दान करे—गुड़ का पानी आटा में पहले डाले और फिर घी डाले तो हलुवा नहीं होगा, पोटीश होगी। पोटीश भी नहीं होगी। पोटीश में तो हल्का-फुल्का घी होता है। ऐसा कहते हैं न भाई! हमारे काठियावाड़ में जातुं-वळतुं घी ऐसा कहते हैं। जातुं-वळतुं अर्थात् क्या? ऊपर-ऊपरी। समझ पड़ी या नहीं? तुम्हारी हिन्दी भाषा में कुछ कहते होंगे? थोड़े ऊपर पोटीश करते हैं न थोड़ा! गेहूँ की। हमारे काठियावाड़ में जातुं-वळतुं कहते हैं, ऐसा थोड़ा-थोड़ा। उसमें तो अकेला आटा गुड़ के पानी में सेंकने से और फिर घी डालने से तो पोटीश भी नहीं होगी तो हलुवा तो कहाँ से होगा? सब पानी में जायेगा। डालचन्दजी! बराबर है? हलुवा की विधि बिना हलुवा बनाये तो? नहीं होगा। चिकना होकर चिपक जायेगा। पोटीश भी नहीं होगी। फोड़ा के ऊपर बाँधने की।

हलुवा को भी यदि विधि बिना करे तो नहीं तो आत्मा में आत्मा के धर्म की विधि क्या है, यह समझे बिना किये जाये। आत्मा की दृष्टि-शुद्धि क्या है, वह हमें खबर नहीं। हमारे तो करो व्रत और तप, दान, पूजा, भक्ति और यात्रा। सब बिना एक के शून्य हैं। समझ में आया? ऐसे हलुवा नहीं होता। हलुवे की विधि से हलुवा होता है। महँगा पड़े। भाई! हमारे तो महँगा पड़ता है। महँगा कहते हैं न? महँगा पड़ता है। भाई! आटा घी पी जाये, पश्चात् घी तो पचे नहीं। थोड़े शक्कर के पानी में सेंकने से फिर थोड़ा घी डाले। थोड़ा डालने से पोटीश जैसा भी नहीं होगा? शीरा-हलुवा कैसे होगा?

उसी प्रकार भगवान कहते हैं कि दर्शन, ज्ञान, चारित्र यह मोक्ष का मार्ग है। उसमें पहले दर्शनशुद्धि बिना तेरा ज्ञान और व्रत, तप और चारित्र कभी तीन काल में नहीं होगा। समझ में आया? यह भी खबर नहीं। हमारे तो बस करना है, हमें समझण कुछ नहीं, परन्तु बस अपवास करो, सामायिक करो, प्रौषध करो, नमो... नमो... नमो। तीन दिन नहीं खाये, आठ दिन नहीं खाये, अपवास किये। यह दस दिन दशलक्षण के

अपवास किये। क्या किया ? क्या किया ? वह तो जड़ की क्रिया है। आहार, पानी आने का नहीं था तो नहीं आया। उसमें तूने क्या किया ? तुझमें कोई राग की मन्दता हुई हो तो पुण्य है। और उसमें तेरी दृष्टि वहाँ पड़ी है तो मिथ्यात्वभाव है। देवीलालजी!

मुमुक्षु : कोई अपवास करे तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन करता है ? करता है कौन ? उपवास तो आत्मा स्वभाव में उप अर्थात् समीप में बसना, उसका नाम उपवास है। उपवास। बाकी यह तो अपवास है। भान बिना!

यह तो यहाँ कहते हैं कि पहले हेय-उपादेय तत्त्व क्या है। ज्ञेय-ज्ञायक क्या है ? हेय-उपादेय क्या है, ज्ञेय-ज्ञायक क्या है। ऐसी समझण आये बिना तुझे आत्मा की दृष्टि नहीं होती। और आत्मा की दृष्टि बिना स्वरूप में स्थिरता नहीं होती तो निर्जरा और संवर नहीं होते। समझ में आया ? ऐ सेठ! कठिन बात है। क्या करना ? पहले समझण करके ज्ञान का सुधार करना और ज्ञान का सुधार करके पश्चात् अन्तर्मुख दृष्टि करके आत्मा की पहिचान करना। यह पहला धर्म है। समझ में आया ? बाकी तो चलता है। पूरी दुनिया चलती है वैसे। यह तो अनादि काल से चलता है। केवली के समय में भी कोई संसार का अन्त आया नहीं। अनन्त काल संसार रहेगा। आस्रव और बन्ध तत्त्व का किसी दिन नाश नहीं होगा। सब अनादि से चला आता है।

कहते हैं, **आत्मा को स्वोपलब्धि से उपलब्ध करके...** यह भाषा ली है। क्यों ? यह कहते हैं, देखो! **गुण-गुणी का वस्तुरूप से अभेद होने के कारण...** समझ में आया ? शरीरादि क्रिया मेरी है तो दृष्टि में से छूट गयी, वह तो होने की हो तो होती है। पुण्यपरिणाम भी उत्पन्न होता है तो शुभभाव भी आस्रव है, बन्ध का कारण है। और उससे हटकर अपने स्वभाव सन्मुख में यह भगवान आत्मा गुणी है और ज्ञान, आनन्द उसके गुण हैं, ऐसा भेद भी इस विकल्प में से छूट जाना चाहिए।

गुण-गुणी का वस्तुरूप से अभेद होने के कारण... दोनों भिन्न नहीं है। वही गुण और वही गुणी, गुणी के आधार में रहनेवाला गुण और गुणी आधेय, गुणी के आधार से रहते हैं। ऐसा अभेद होने से, **उसी ज्ञान को—स्व को...** ज्ञान कहो या आत्मा

कहो। **ज्ञान को—स्व को—स्व द्वारा...** देखो! अपने स्व को स्व के द्वारा, ज्ञान को ज्ञान द्वारा, आत्मा को आत्मा द्वारा। आहाहा! देखो! समझ में आया?

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सम्यग्दर्शन, यह किसकी लगायी है? यह बबूल को बांथ में जकड़कर बबूल छूटता नहीं, ऐसा कहे तो क्या करना भाई! बावळ समझते हो? बावळ-वृक्ष, वृक्ष। बांथ में भरे और फिर कहे कि वृक्ष छूटता नहीं। तो क्या करना? क्या करना क्या? हाथ छोड़ देना।

मुमुक्षु : वृक्ष को उखाड़ डाले तो?

पूज्य गुरुदेवश्री : वृक्ष को उखाड़ेगा तो साथ में स्वयं भी गिरेगा। वृक्ष और आदमी दोनों गिरेंगे। कदाचित् वृक्ष ऐसे गिरेगा तो सिर के ऊपर वृक्ष पड़ेगा। बावळ समझते हो न? बबूल। वृक्ष, कांटेवाला होता है। अरे! बबूल ने मुझे पकड़ रखा है। हाथ छोड़ दे। किसी ने तुझे पकड़ा नहीं। समझ में आया? जेचन्दभाई! पकड़ रखा है अन्दर ऐसे, मेरा प्रकाश और मेरा शरीर और मेरी धूल! ऐई! जेचन्दभाई! इस ममता को पकड़ रखा है, बापू! यह ममता, भाई! तूने की है, बापू! किसी ने की नहीं। परन्तु खबर नहीं होती। यह मेरा और यह तेरा। भाई!

प्रभु! तू तो महा वीतरागस्वभाव तुझमें है। परन्तु भूलकर यह मेरे और यह.... यह ममता तो तूने की है। किसी ने पकड़कर करायी नहीं है। दृष्टान्त दिया था न बन्दर का। बन्दर होता है न, तो बोर थे इतने-इतने। बोर कहते हैं न? बेर। इतने-इतने काशी के बोर पचास, सौ। घड़े में, घड़े में। तो घड़े का मुख छोटा था। अन्दर हाथ तो डाला परन्तु हाथ बोर पकड़े थे तो हाथ बाहर निकले ही नहीं। (उसे ऐसा हुआ कि) किसी ने हाथ पकड़ रखा है। तूने पकड़ा है बोर को। किसी ने पकड़ा नहीं। सुन न! हाथ में से छोड़ दे न! हाथ तो अन्दर चला गया। अरे! किसी ने पकड़ा है। अन्दर में भूत है। जेचन्दभाई!

मुमुक्षु : वह यह दुःख कैसे मिटे?

पूज्य गुरुदेवश्री : ले, यह किसकी बात चलती है? यह किसकी बात चलती है

भाई! वह यह ममता मिटे तो दु:ख मिटे। इसके बिना दु:ख मिटे, ऐसा है नहीं। शरीर की बात नहीं, हों! शरीर में दु:ख है नहीं। ममता का दु:ख है। अन्तर में आत्मा के आनन्द का आश्रय करके दु:ख मिटता है। दूसरा कोई उपाय तीन काल, तीन लोक में है नहीं। यह तो उसे अभी शरीर का दु:ख मिटाना है। शरीर की पर्याय... जेचन्दभाई! शरीर की पर्याय को, बापू! यह दु:ख नहीं है। यहाँ तो पहले कहा न कि वह तो जड़ की पर्याय है। जड़ की पर्याय में दु:ख कहाँ से आया? दु:ख कहाँ होता है, जहाँ आनन्द होता है, वहाँ दु:ख होता है।

आत्मा में आनन्द है, उसकी उल्टी दशा में दु:ख है। जड़ में कहाँ आनन्द है कि उसमें दु:ख हो? बराबर है, देवीलालजी! यह दु:ख? इस रोग में दु:ख? शरीर में रोग हो तो वह तो मिट्टी की अवस्था है। यह मुझे होती है, ऐसा अजीव को अपना मानना, ऐसी मान्यता का दु:ख है। ओहोहो! दु:ख तो अपनी पर्याय में, आनन्द की उल्टी अवस्था में होता है न? पर में आनन्द है? उसमें दु:ख है? आनन्द तेरा स्वरूप सच्चिदानन्द प्रभु अनाकुल शान्तरस से आत्मा भरा है। भगवान केवलज्ञानी अनन्त शान्तरस से उत्पन्न हुई वह पर्याय कहाँ से आयी? वह अन्तर में से आयी है। ऐसा पूर्ण भरा है, उसकी दृष्टि किये बिना यह मेरी चीज़ और मैं इसका। यह पुण्य-पाप मेरी चीज़ और मैं इनका, ऐसी (उल्टी) मान्यता का नाम भगवान दु:ख कहते हैं।

वह दु:ख मिटाने का उपाय आनन्द का आश्रय लेने से दु:ख मिटता है। दूसरा कोई उपाय नहीं है। आहाहा! अरे! आनन्द क्या? अभी तो निर्णय करने का भी ठिकाना नहीं। समझ में आया? यहाँ तो नौ तत्त्व की बात चलती है न! कल से चला आता है। जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर चले। अब निर्जरा का अधिकार चलता है। जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर छह तत्त्व तो चले। अब सातवाँ अधिकार चलता है। पहले से है। परन्तु ध्यान कहाँ रखते हैं! वह-वह प्रकाश अन्दर याद आता है, उल्टा प्रकाश। यह चैतन्य प्रकाश नहीं।

मुमुक्षु : शरीर में तकलीफ हो तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : इस शरीर में तकलीफ? क्या बात की? सुनते हैं कहाँ यह?

शरीर में तकलीफ है ही नहीं। वह तो इसकी पर्याय है। उसमें तकलीफ कहाँ से आयी? उस पर दृष्टि रखने से, वह अस्तित्व भिन्न है। मुझमें हुआ? मुझमें हुआ, इस मान्यता का दु:ख है। आहाहा! अस्तित्व जिसकी सत्ता ही भिन्न है, उसमें दु:ख कहाँ आया? ऐसा हुआ और अमुक (हुआ), वह तो जड़ की पर्याय है। कभी नौ तत्त्व क्या भिन्न है, इसका अभी विवेक-श्रद्धा ही नहीं की। सम्यग्दर्शन तो बाद में। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं **गुण-गुणी का वस्तुरूप से अभेद होने के कारण...** ज्ञान को कहो या आत्मा कहो, दोनों एक ही बात है। **ज्ञान को—स्व को—स्व द्वारा...** चैतन्य प्रभु अपना आत्मा, वह ज्ञान स्वरूप कहा, वहाँ गुण-गुणी.... भिन्न है और उस चीज़ को ही आत्मा कहा, ज्ञान कहा। वह अपने ज्ञान को अथवा आत्मा को। स्व द्वारा। अपने ज्ञान-आनन्द की दृष्टि करने से, उसके द्वारा, **अविचल....** देखो! विकल्प नहीं, शरीर नहीं। यहाँ हो तथापि ऐसा होता है। आहाहा! खबर नहीं कि क्या करता है! अभी उसके **स्व को—स्व द्वारा...** समझ में आया? **अविचलपरिणतिवाला होकर संचेतता है,...** लो! सम्यग्दर्शन उपरान्त की यहाँ बात है। समझ में आया?

सम्यग्दर्शन तो अपने स्वरूप की पुण्य-पाप से भिन्न, देह की क्रिया से भिन्न एक समय की अवस्था जितनी भी वर्तमान प्रगट अवस्था है, उतना भी मैं नहीं। पूर्ण शुद्ध द्रव्यस्वभाव पर दृष्टि रखने से राग और स्वभाव की एकताबुद्धि का नाश होना, उसका नाम प्रथम सम्यग्दर्शन कहते हैं। पहले में पहली चीज़ यह है। यह उसकी पहले समझण करना कि यथार्थ क्या है? उसका नाम पहले भास कहने में आता है। पश्चात् स्वरूप में स्थिरता करने से भगवान वीतराग विज्ञान घन में शुभाशुभ विकल्प से भी हटकर अन्तर में स्थिरता करने से **अविचलपरिणतिवाला...** परिणति अर्थात् पर्याय। स्वरूप में इतना लीन हो कि जो पर्याय में विचलित न हो, फिरे नहीं। संचेतता अर्थात् आत्मा को ऐसा अनुभव करता है। कहो, समझ में आया?

पहले विधि समझे, फिर विधि का प्रयोग करे। विधि समझे बिना.... माल लेने जाते हैं तो, शाक-भाजी लेने जाते हैं तो उसे पहले से ऐसा कहते हैं कि पाँच रुपये हैं, मुझे सब्जी दे। शाक कहते हैं न? सब्जी दो, पाँच रुपये की सब्जी दो। कौन सी सब्जी?

मुझे खबर नहीं। यह पचास प्रकार की सब्जियाँ हैं। कौन सी सब्जी? मुझे खबर नहीं। हमारे पिताजी ने पाँच रुपये दिये हैं कि सब्जी ले आओ। परन्तु किसकी सब्जी? वह मूर्ख कहे। ....ले। सबमें से निकालकर यह लौकी मुझे चाहिए। उनचास चीज़ नहीं, मुझे लौकी चाहिए। रास्ता अवसर हो तो दूसरी चीज़ में मुझे करेला चाहिए। इसी प्रकार पर से भिन्न करके लक्ष्य करके बोलता है तो साता मिलती है। तो इस जगत में मैं कौन हूँ? राग, वह भी एक पुण्यास्रव है, धर्म नहीं।

यहाँ तो गुण मैं और यह गुणी, ऐसा भी नहीं। यह तो ज्ञान वह आत्मा। आत्मा वह ज्ञान। बस ऐसा। मूल तो दो की बात करते हैं। पुण्य-पाप का विकल्प है, वह आत्मा नहीं। परन्तु ज्ञान वह आत्मा और आत्मा, वही ज्ञान। दोनों एक ही चीज़ है, ऐसा कहना है। उसमें अपना अनुभव ज्ञान द्वारा, **अविचलपरिणतिवाला...** अन्तर्मुख में विकल्प से छूटकर, छूटकर यह तो नास्ति से कहना है परन्तु अन्तर में आया तो विकल्प से हट गया ही है। अन्तर में अविचलित अवस्था द्वारा, अविचलित परिणति द्वारा संचेतता है। अपने आत्मा को अन्तर अनुभवता है। उस अनुभव की दशा को निर्जरा कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया?

किसी को यह बात बड़ी एल.एल.बी. की लगे। एल.एल.बी की नहीं, अभी यह तो एकड़ा के शून्य की बात है। धर्म की बात भी अभी सुनी नहीं और ऐसा कर दे, गृहस्थ व्यक्ति हो पाँच, पचास हजार, लाख, दो लाख खर्च कर डाले, (उसे सब) धर्म धुरन्धर का खिताब दे। सेठ! 'समाजभूषण' तुम्हारे पिताजी को पद दिया है या नहीं? वह तो बाहर में तो ऐसा ही दे न? उसमें क्या है? 'आत्मभूषण' है, यहाँ तो यह कहते हैं।

मुमुक्षु : समाजभूषण में सुख है?

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी सुख नहीं। समाजभूषण वहाँ मरता है तो क्या कहलाता है? गिरवी छोड़कर जाना पड़ता है? गिरवी रखो हमारी इज्जत को। सेठ! बाहर की बात क्या है! धूल में, यह पाँच, पचास लाख मिले, करोड़, पाँच करोड़ मिले न। धूल के सेठ हैं। यह तो सब धूल के सेठ।

यहाँ तो दूसरी बात है कि पुण्य परिणाम आते हैं, उनका भी सेठ हो तो मिथ्यादृष्टि

है। परिणाम, हो! मन्द कषाय के, पुण्य के, दया के, वह मेरा स्वरूप और उनका स्वामी हो तो मिथ्यादृष्टि सेठ है। मिथ्यात्व का सेठ है। नटुलालजी! बहुत कड़क बात है, हों! सागर में आये थे न? दूध लेकर आये थे। दूध लेकर आये थे न? समझ में आया? ओहो! पहले समझना चाहिए। पहले इसे स्वाध्याय, सत्समागम से बराबर समझना चाहिए। सम्यग्ज्ञान करना चाहिए।

सम्यग्ज्ञान होने के पश्चात् स्वरूप-सन्मुख का प्रयोग अन्तर्मुख की दृष्टि करना, वह पहले में पहली दृष्टि शुद्धि, वह धर्म है। समझ में आया? यह तो बाद की बात चलती है। पश्चात् स्वरूप में लीनता करने में अपने स्वभाव का अनुभव उग्र हो, पुण्य-पाप से हटकर, वह **वह जीव वास्तव में अत्यन्त निःस्नेह वर्तता हुआ...** देखो! वह जीव वास्तव में, यथार्थरूप से **अत्यन्त निःस्नेह वर्तता हुआ...** देखो! है न? (नीचे फुटनोट में) निःस्नेह=स्नेहरहित; मोह-राग-द्वेषरहित। विकल्प की चिकनाई का भाव भी नहीं रहा। थोड़ा, उसे गिनते नहीं। इतना राग टलकर अन्दर स्वभाव सन्मुख एकाकार हुआ है, अत्यन्त निःस्नेह वर्तता हुआ, ओहोहो! स्निग्धता भी नहीं जरा। यह दया, दान का विकल्प भी चिकनाई है। उससे हटकर द्रव्यस्वभाव सन्मुख झुकना और विशेष उग्रता से पुरुषार्थ से लीन होना।

जिसको स्नेह के लेप का संग प्रक्षीण हुआ है,... देखो! दृष्टान्त दिया। **ऐसे शुद्ध स्फटिक के स्तम्भ की भाँति...** अन्दर चैतन्य शुद्ध स्फटिक स्तम्भ है। देह देवालय में, जैसे स्फटिक में चिकनाई निकले, (उसी प्रकार) शुद्ध स्फटिक स्तम्भ स्थिर दिखाई दे, वैसा आत्मा शुद्ध स्फटिक के स्तम्भ की भाँति, **जिसको स्नेह के लेप का संग प्रक्षीण हुआ है, ऐसे शुद्ध स्फटिक के स्तम्भ की भाँति...** उसी प्रकार आत्मा। राग के विकल्प की चिकनाई छूट जाना। स्फटिक जैसे शुद्ध है, वैसे आत्मा शुद्ध स्फटिक देह प्रमाण भिन्न अपने अनुभव में आना, इसका नाम वीतरागता और इसका नाम निर्जरा कहते हैं। ओहोहो!

आचार्य किसे कहते हैं? यह पंचम काल के आचार्य, जिन्हें अभी नौ सौ वर्ष हुए हैं। प्राणी को कहते हैं या चौथे काल के जीव को कहते हैं? पंचम काल के प्राणी

को कहते हैं। अमृतचन्द्राचार्य नौ सौ वर्ष पहले तो हुए हैं। कुन्दकुन्दाचार्य दो हजार वर्ष पहले हुए हैं। श्लोक के कर्ता। अरे! प्राणियों! ऐसा करो। तो कर सकता है, उसे कहते हैं या नहीं कर सकता, उसे कहते हैं? हाँ, कर सकता है। परन्तु कभी किया नहीं, इसलिए खबर नहीं पड़ती। कर सकता है। करो आत्मा! तुम इतनी समझण करो। प्रभु! तेरी प्रभुता में तो पुण्य-पाप भी नहीं है, तेरी प्रभुता में जड़ता, शरीर की पर्याय बिल्कुल नहीं है। ऐसी समझण करो और समझण करके अपने स्वरूप की दृष्टि करो। मेरा ज्ञान सच्चिदानन्द ज्ञाता-दृष्टा है। और पश्चात् शुभाशुभपरिणाम की आसक्ति ज्ञानी को उत्पन्न होती है तो उससे हटकर स्वभाव में लीन हो। तो जितनी लीनता और अविचल परिणति हुई, उतनी शुद्धि हुई। उसे निर्जरा कहते हैं। कहो, समझ में आया? कहो, ज्ञानचन्दजी! आहाहा!

अब शरीर का खोखा बाहर पड़ा रहा और आत्मा अन्दर भिन्न स्फटिक रत्न जैसा। कुछ सम्बन्ध नहीं होता पर के साथ। यह ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्ध भी वास्तव में सम्बन्ध है नहीं। हें? भगवान ज्ञायकमूर्ति प्रभु! वह तो ज्ञेय पर। यह ज्ञेय और ज्ञायक, यह भी व्यवहारसम्बन्ध है, परमार्थसम्बन्ध नहीं। आहाहा! ऐसे चैतन्य को अन्तर्दृष्टि करके, स्वभाव की अनुभवदृष्टि करके, पश्चात् पुण्य-पाप के परिणाम भी ज्ञानी को होते हैं। सम्यग्दृष्टि है, गृहस्थाश्रम में है, राजपाट के परिणाम हों परन्तु उन परिणाम से हटकर जितनी स्वरूप में स्थिरता करता है। भरत चक्रवर्ती जैसे छियानवें हजार स्त्रियाँ थीं परन्तु जब निवृत्त होते थे, अन्दर ध्यान में आ जाते थे। छह खण्ड का राज्य हो, विकल्प उठता था, हुकम करे—ऐसा करो और वैसा करो। हो जायेगा सब। वे तो क्षायिक समकिती थे।

राजा को ऐसा हो तो लड़ाई करने का भी कहे। समझ में आया? वाणी तो वाणी की क्रिया है परन्तु अन्दर राग आवे तो समझता है कि यह दोष है। मेरे चारित्र का दोष है। मैं स्वरूप में स्थिर नहीं रह सकता। समझ में आया?

यह बात कहते हैं कि जब वे भी अन्दर ध्यान में आते हैं, तो विकल्प को छोड़कर स्वरूप में इतनी लीनता करते हैं, उतनी निर्जरा होती है। परन्तु अपने चैतन्य का क्या

माहात्म्य और कैसी चीज़ है, यह माहात्म्य! धूल का, पैसे का, इज्जत का, कीर्ति का। शरीर रूपवान। शरीर मिट्टी, उसका माहात्म्य! और अन्दर पाप के परिणाम तो कहते हैं कि हम करते हैं। कोई न करे ऐसा व्यापार हम करते हैं, कोई न करे ऐसा हम करते हैं। क्या करता है? पाप के परिणाम! और या तो करे पुण्य के परिणाम। देखो! भाई! हम कितना धर्म करते हैं। पाँच लाख की पूँजी, एक लाख छोड़ दिये। लो! समझ में आया?

मुमुक्षु : सौ की पूँजी हो और पाँच हजार दे दे.....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ है? इसके पास हो उसमें से दे कि, पाँच हजार हो तो पाँच हजार दे देवे। तो भी राग जितना मन्द पड़े, उतना पुण्य है। वह दे सकने की क्रिया उसकी है क्या? समझ में आया? यहाँ तो कहते हैं कि अन्तर स्वभाव चैतन्यधीठ अकेला स्फटिक रत्न का जैसा पत्थर हो, वैसे चैतन्य स्फटिक रत्न के-चैतन्य स्फटिक रत्नस्वरूप अत्यन्त देह से, कर्म से निराले की दृष्टि करके फिर यहाँ ध्यान की बात करते हैं। शुभाशुभ परिणाम छोड़कर अचलित परिणाम करना, वह स्नेह रहित स्फटिक रत्न जैसे शोभता है, उसी प्रकार रागरहित भगवान अपनी पर्याय में शोभता है। यह उसका नाम निर्जरा कहते हैं। समझ में आया?

जिसको स्नेह के लेप का संग प्रक्षीण हुआ है, ऐसे शुद्ध स्फटिक के स्तम्भ की भाँति—पूर्वोपार्जित कर्मरज को खिरा देती है। लो! अन्दर आत्मा में जितना लीन हुआ, उतने कर्म के रजकण खिर जाते हैं। कर्म खिराता नहीं कि लाओ कर्म को खिरा डालूँ। उसके कारण से खिरते हैं। समझ में आया? अपने साथ कोई बात करने आता है। और बात करने की इच्छा न बतावे और अपने में ही रहे तो वह चला जाता है। गद्दी पर सेठिया बैठा हो और बात करने आवे, तब मुझे अभी इच्छा नहीं। बात करने की इच्छा न दे और मुँह ऐसा कर दे तो वह उठकर चला जायेगा।

उसी प्रकार अपने स्वभावसन्मुख करके कर्म के उदय के सन्मुख न हो तो कर्म खिर जाते हैं। ओहोहो! गजब बात भाई! समझ में आया? उसकी पहले समझण, सच्चा ज्ञान बराबर करना चाहिए। विपरीत ज्ञान का नाश करके ऐसा ज्ञान करना चाहिए। उस ज्ञान में फिर रुचि जम जाये, पश्चात् स्वभाव पर दृष्टि हो, माहात्म्य अन्तर में निर्विकल्प—

राग बिना की दृष्टि होती है, तो उसका नाम पहला सम्यग्दर्शन कहते हैं। हो, राजपाट हो। सब हो। सम्यग्दृष्टि उसमें रहता है अपने स्वभाव में। जरा शुभाशुभभाव आवे, उतना आस्रव है। वह भी घटाकर स्वभाव में जितना काल लीन हो, उतने पूर्व के कर्म के रजकण छूट जाते हैं। निर्जरा हो जाती है। समझ में आया? इतनी अशुद्धता उत्पन्न नहीं होती। इतनी स्वभाव सन्मुख शुद्धता उत्पन्न होती है। दस लक्षण पर्व देखो तो ऐई धमाधम करते हों लोग। सिद्धचक्र और क्या कहलाता है? अमुक चक्र और अमुक चक्र। सोलह कारण भावना और सुगन्ध दशमी न। ज्ञानचन्दजी! बारह महीने का सब पानी फेर दे। बारह महीने का ऐसा। पाप का। बारह महीने का पाप लगा हो तो छोड़ देते हैं न! ऐसा कहते हैं? परन्तु पाप कहाँ लगा है, यह खबर तो नहीं। पाप कहाँ (लगा) है? समझ में आया? और वह पाप कहाँ है और वह पाप कहाँ से निकल जाता है। आहाहा! १४५ गाथा हुई। **इससे (-इस गाथा से) ऐसा दर्शाया कि निर्जरा का मुख्य हेतु ध्यान है।** लो! समझ में आया? इसमें यह दिखलाया है। १४५ में।

गाथा - १४६

जस्स ण विज्जदि रागो दोसो मोहो व जोगपरिकम्मो ।
तस्स सुहासुडहणो झाणमओ जायते अगणी ।। १४६ ।।

यस्य न विद्यते रागो द्वेषो मोहो वा योगपरिकर्म ।
तस्य शुभाशुभदहनो ध्यानमयो जायते अग्निः ।। १४६ ।।

ध्यानस्वरूपाभिधानमेतत् ।

शुद्धस्वरूपेऽविचलितचैतन्यवृत्तिर्हि ध्यानम् । अथास्यात्मलाभविधिरभिधीयते । यदा खलु योगी दर्शनचारित्रमोहनीयविपाकं पुद्गलकर्मत्वात् कर्मसु संहृत्य, तदनुवृत्तेः व्यावृत्योपयोगम-मुह्यन्तमरज्यन्तमद्विषन्तं चात्यन्तशुद्ध एवात्मनि निष्कम्पं निवेशयति, तदास्य निष्क्रियचैतन्यरूप-स्वरूपविश्रान्तस्य वाङ्मनःकायानभावयतः स्वकर्मस्वव्यापारयतः सकलशुभाशुभकर्मेन्धन-दहनसमर्थत्वात् अग्निकल्पं परमपुरुषार्थसिद्ध्युपायभूतं ध्यानं जायते इति । तथा चोक्तम्-*''अज्ज वि तिरयणसुद्धा अप्पा झाएवि लहइ इंदत्तं । लोयंतियदेवत्तं तत्थ वुआ णिव्वुदिं जंति'' ।। ''अंतो णत्थि सुईणं कालो थोओ वयं च दुम्मेहा । तण्णवरि सिक्खियव्वं जं जरमरणं खयं कुणइ''।।१४६।।

नहिं राग-द्वेष-विमोह अरु नहिं योग सेवन है जिसे ।
प्रगटी शुभाशुभ दहन को, निज ध्यानमय अग्नि उसे ।।१४६।।

अन्वयार्थ :— [यस्य] जिसे, [मोहः रागः द्वेषः] मोह और रागद्वेष, [न विद्यते] नहीं हैं, [वा] तथा, [योगपरिकर्म] योगों का सेवन नहीं है (अर्थात् मन-वचन-काया के प्रति उपेक्षा है), [तस्य] उसे [शुभाशुभदहनः] शुभाशुभ को जलानेवाली [ध्यानमयः अग्निः] ध्यानमय अग्नि [जायते] प्रगट होती है।

टीका :— यह, ध्यान के स्वरूप का कथन है।

शुद्ध स्वरूप में अविचलित चैतन्यपरिणति, सो यथार्थ ध्यान है। वह ध्यान प्रगट होने की विधि अब कही जाती है; जब वास्तव में योगी, दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय का विपाक पुद्गलकर्म होने से उस विपाक को (अपने से भिन्न ऐसे अचेतन) कर्मों में समेटकर, तदनुसार परिणति से उपयोग को व्यावृत्त करके (-उस विपाक के अनुरूप परिणमन में से उपयोग का निवर्तन करके), मोही, रागी और द्वेषी

न होनेवाले ऐसे उस उपयोग को अत्यन्त शुद्ध आत्मा में ही निष्कम्परूप से लीन करता है, तब उस योगी को—जो कि अपने निष्क्रिय चैतन्यरूप स्वरूप में विश्रान्त है, वचन-मन-काया को नहीं [१]भाता और स्वकर्मों में [२]व्यापार नहीं करता उसे—सकल शुभाशुभकर्मरूप ईंधन को जलाने में समर्थ होने से अग्निसमान ऐसा, [३]परमपुरुषार्थसिद्धि के उपायभूत ध्यान प्रगट होता है।

फिर कहा है कि :—

*"अज्ज वि तिरयणसुद्धा अप्पा झाएवि लहइ इंदतं।
लोयंतियदेवत्तं तत्थ चुआ णिव्वृर्दि जंति॥"
"अंतो णत्थि सुईणं कालो थोओ वयं च दुम्मेहा।
तण्णवरि सिक्खियव्वं जं जरमरणं खयं कुणइ॥"

[अर्थ :— इस समय भी त्रिरत्नशुद्ध जीव (-इस काल भी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप तीन रत्नों से शुद्ध ऐसे मुनि) आत्मा का ध्यान करके इन्द्रपना तथा लौकान्तिक-देवपना प्राप्त करते हैं और वहाँ से चयकर (मनुष्यभव प्राप्त करके) निर्वाण को प्राप्त करते हैं।

श्रुतियों का अन्त नहीं है (-शास्त्रों का पार नहीं है), काल अल्प है और हम [४]दुर्मेध हैं; इसलिए वही मात्र सीखनेयोग्य है कि जो जरा-मरण का क्षय करे।]

---

१. भाना=चिन्तवन करना; ध्याना; अनुभवन करना।

२. व्यापार = प्रवृत्ति।[स्वरूपविश्रान्त योगी को अपने पूर्वोपार्जित कर्मों में प्रवर्तन नहीं है, क्योंकि वह मोहनीयकर्म के विपाक को अपने से भिन्न-अचेतन-जानता है तथा उस कर्मविपाक के अनुरूप परिणमन से उसने उपयोग को विमुख किया है।]

३. पुरुषार्थ = पुरुष का अर्थ; पुरुष का प्रयोजन; आत्मा का प्रयोजन; आत्मप्रयोजन। [परमपुरुषार्थ अर्थात् आत्मा का परम प्रयोजन मोक्ष है और वह मोक्ष ध्यान से सधता है, इसलिए परमपुरुषार्थ की (-मोक्ष की) सिद्धि का उपाय ध्यान है।]

* इन दो उद्धृत गाथाओं में से पहली गाथा श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवप्रणीत, मोक्षप्राभृत की है।

४. दुर्मेध=अल्पबुद्धिवाले; मन्दबुद्धि; ठोट।

भावार्थ :— निर्विकार निष्क्रिय चैतन्यचमत्कार में निश्चल परिणति, वह [१]ध्यान है। यह ध्यान मोक्ष के उपायरूप है।

जिस प्रकार थोड़ी-सी भी अग्नि बहुत-से घास और काष्ठ की राशि को अल्प काल में जला देती है, उसी प्रकार मिथ्यात्व-कषायादि विभाव के परित्यागस्वरूप महा पवन से प्रज्वलित हुई और अपूर्व-अद्भुत-परम-आह्लादात्मक सुखस्वरूप घृत से सिंची हुई निश्चल-आत्मसंवेदनरूप ध्यानाग्नि मूलोत्तरप्रकृति-भेदवाले कर्मरूपी ईंधन की राशि को क्षणमात्र में जला देती है।

इस पंचम काल में भी यथाशक्ति ध्यान हो सकता है। इस काल में जो विच्छेद है, सो शुक्लध्यान का है, धर्मध्यान का नहीं। आज भी यहाँ से जीव धर्मध्यान करके देव का भव और फिर मनुष्य का भव पाकर मोक्ष प्राप्त करते हैं और बहुश्रुतधर ही ध्यान कर सकते हैं, ऐसा भी नहीं है; सारभूत अल्प श्रुत से भी ध्यान हो सकता है। इसलिए मोक्षार्थियों को शुद्धात्मा का प्रतिपादक, संवर-निर्जरा का करनेवाला तथा जरामरण का हरनेवाला सारभूत उपदेश ग्रहण करके ध्यान करनेयोग्य है।

[यहाँ वह लक्ष में रखनेयोग्य है कि उपरोक्त ध्यान का मूल सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन के बिना ध्यान नहीं होता, क्योंकि निर्विकार निष्क्रिय चैतन्यचमत्कार की (शुद्धात्मा की) सम्यक् प्रतीति बिना उसमें निश्चल परिणति कहाँ से हो सकती है ? इसलिए मोक्ष के उपायभूत ध्यान करने की इच्छा रखनेवाले जीव को प्रथम तो जिनोक्त द्रव्यगुणपर्यायरूप वस्तुस्वरूप की यथार्थ समझपूर्वक निर्विकार निष्क्रिय चैतन्यचमत्कार की सम्यक् प्रतीति का सर्व प्रकार से उद्यम करनेयोग्य है; उसके पश्चात् ही उस चैतन्यचमत्कार में विशेष लीनता का यथार्थ उद्यम हो सकता है]॥१४६॥

इस प्रकार निर्जरा पदार्थ का व्याख्यान समाप्त हुआ।

---

१. मुनि को जो शुद्धात्मस्वरूप का निश्चल उग्र आलम्बन वर्तता है, उसे यहाँ मुख्यतः 'ध्यान' कहा है। (शुद्धात्मावलम्बन की उग्रता को मुख्य न करें तो, अविरत सम्यग्दृष्टि को भी 'जघन्य ध्यान' कहने में विरोध नहीं है, क्योंकि उसे भी शुद्धात्मस्वरूप का जघन्य आलम्बन तो होता है।)

गाथा - १४६ पर प्रवचन

ध्यान। देखो! आहाहा! अन्तर ज्ञातास्वभाव की महिमा अन्तर में आने के पश्चात् उसके पीछे अन्दर बारम्बार लग जाना, लीन होना वह ध्यान है। परन्तु पहले सम्यग्दर्शन बिना ध्यान नहीं होता। उस स्वरूप में सम्यग्दृष्टि गृहस्थाश्रम में भी ध्यान कर लेता है। समझ में आया? तो कहते हैं कि इस गाथा में क्या कहा? कि निर्जरा का मुख्य हेतु तो ध्यान ही कहा है। आहाहा! समझ में आया?

तब कहते हैं कि मुख्य हेतु कहा तो गौण हेतु कौन है। वह तो निमित्त बाहर का माहात्म्य करते थे न तो निमित्त कहने में आया है। विकल्प उठा वह। निर्जरा का मुख्य हेतु यही (ध्यान) है।

ध्यान का स्वरूप। सम्यग्दृष्टि ध्यान कर सकता है। मिथ्यादृष्टि आर्तध्यान और रौद्रध्यान कर सकता है। कर सकता है। नहीं, किसलिये कहें? कर सकता है। समझ में आया? जिसे जड़ की पर्याय की कर्ताबुद्धि है। पुण्य परिणाम का प्रेम है, पाप परिणाम में मजा मानता है। ध्यान करता है आर्तध्यान और रौद्रध्यान। आत्मा की शान्ति के प्राण घाणी में जैसे तिल पिल जाते हैं, वैसे अपनी शान्ति पिल जाये, ऐसा ध्यान करता है। समझ में नहीं आया?

यह घाणी में तिल पिलते हैं। वैसे आत्मा ज्ञानानन्दमूर्ति है। राग में एकाग्र होता है, तो आत्मा की शान्ति लुट जाती है। अज्ञानी का ऐसा ध्यान है। ज्ञानी का ध्यान अपने ज्ञायक की ओर एकाग्रता करना वह है। पहले ज्ञायक है, ऐसी दृष्टि तो हुई है। गृहस्थाश्रम में चौथे गुणस्थानवाला हो, पाँचवेंवाला हो, छठवें गुणस्थानवाला मुनि हो, गुणस्थान में स्थिरता प्रगट हुई है, उस स्थिरता में अन्तर में ध्यान करके चौथे गुणस्थान, पाँचवें गुणस्थान में भी जितने अंश में शुद्धोपयोग हो जाये अभेद, उतने अंश में विशेष निर्जरा होती है, अशुद्धता टलती है।

१४६। ध्यान का स्वरूप हो सकता है, उसकी बात करते हैं या नहीं हो सकता, उसकी बात करते हैं? श्लोक में कहेंगे। उसमें श्लोक आयेगा। हाँ, हो सके वह श्लोक

अन्दर आयेगा। पहले दृष्टि की खबर नहीं और ध्यान है, उसकी प्रसिद्धि नहीं आती। आहाहा!

अनुभवप्रकाश में दीपचन्दजी कहते हैं। वे गृहस्थाश्रम में समकिती ज्ञानी थे। स्त्री, कुटुम्ब, परिवार सब (थे)। बहुत ग्रन्थ बनाये हैं। अनुभवप्रकाश, आत्मावलोकन, चिद्विलास, बहुत ही अच्छे बनाये हैं। एक बार.... कहते हैं कि अरे भाई! हमें समय नहीं मिलता। अरे भाई! क्या समय नहीं मिलता? तेरे पास कोई चक्रवर्ती का राज तो नहीं। चक्रवर्ती को छियानवें करोड़ सैनिक थे, छियानवें करोड़ गाँव थे। तेरे पास छियानवें करोड़ पैसा भी नहीं। कंकड़ भी छियानवें करोड़ नहीं। .....

अनुभवप्रकाश में लिखा है। आत्मा में एकाग्र होना हो तो तुझे रोकता कौन है? क्या परचीज़ रोकती है? बिल्कुल नहीं रोकती। ऐसा अनुभवप्रकाश में लिखा है, हों! छियानवें करोड़ तो सैनिक थे। छियानवें हजार गाँव थे, बहत्तर हजार नगर थे, अड़तालीस हजार पाटण थे और सोलह हजार देव सेवा करते थे। तो भी ध्यान का समय उन्हें मिलता था। उन्हें ध्यान का समय मिलता था। (और यह कहे) हमें समय नहीं मिलता। तेरे पास कितने नळिया है? नळिया समझते हो? क्या कहते हैं उसे? खपरा, खपरा। तेरे घर में छियानवें करोड़ खपरा भी नहीं। और तुझे निवृत्ति नहीं मिलती? और निवृत्त हो तो गप्प में चढ़ जाता है। निवृत्ति मिले तो गप्प मारने चढ़ जाता है। ऐसा है और ऐसा है और ऐसा। ऐसा पेपर में आया है और ऐसा अमुक है, और ऐसा है न। जर्मन में ऐसा होता है और अंग्रेजी में ऐसा है और तेरे घर में क्या होता है? ऐसे परिणाम करने के लिये तुझे समय नहीं मिलता! तेरा अपराध है और तू कहता है कि क्या करें? हमारे पंचम काल है। यह पुत्र-पुत्री लड़के बहुत ही बढ़ गये। हम पचास लोग हैं। हमारे कितना करना है। क्या करना?

मुमुक्षु : चिन्ता तो होती है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : चिन्ता हो परन्तु धूल में चिन्ता करने से फेरफार हो जायेगा? चिन्ता करने से पर में फेरफार हो जायेगा? समझ में आया? उसमें लिखा है। तुझे धर्म की रुचि नहीं इसलिए तू ऐसे बहाने करता है। ऐसा कहा है। रुचि नहीं। जिसकी रुचि

जाने और जिसकी आवश्यकता जाने, उसमें पुरुषार्थ किये बिना रहे, ऐसा नहीं होता। जिसकी आवश्यकता जाने, उसमें पुरुषार्थ किये बिना नहीं रहता। तुझे आवश्यकता आत्मा की है और वह कैसे प्राप्त हो और कैसे दृष्टि हो, इसकी खबर नहीं। तुझे तेरी आवश्यकता तेरी कीमत में आयी नहीं। आवश्यकता बिना तेरा पुरुषार्थ कहाँ से होगा? समझ में आया?

१४६ में ध्यान का स्वरूप कहा है।

जस्स ण विज्जदि रागो दोसो मोहो व जोगपरिकम्मो।
तस्स सुहासुडहणो झाणमओ जायते अगणी।।१४६।।

ओहोहो! आचार्यदेव ने जगत के जीवों पर करुणा करके जंगल में ताड़पत्र पर यह शास्त्र लिखा है। जंगल में रहकर ताड़पत्र पर, हों! यह गाथा २००० वर्ष पहले और टीका ९०० वर्ष पहले (हुई है)। दोनों नग्न दिगम्बर मुनि जंगल में बसनेवाले। आहाहा! जगत की करुणा! अरे! आत्मा! तुझे करने का अवसर है न, भाई! और यह करने का काल है और उसमें नहीं करता तो प्रभु! तू कब करेगा? खो जायेगा, हों! चौरासी के अवतार में कहाँ जायेगा? वर्तमान में कोई तुझे मदद करनेवाला है नहीं, भविष्य में भी कोई है नहीं। १४६ (गाथा)।

यह ध्यान के स्वरूप का कथन है। **शुद्ध स्वरूप में अविचलित चैतन्यपरिणति, सो यथार्थ ध्यान है।** देखो! ध्यान की व्याख्या। **अविचलित...** शुद्ध स्वरूप भगवान आत्मा। पहले प्रतीति में लिया है कि मुझमें किसी का कोई सम्बन्ध नहीं है। ऐसा शुद्ध भगवान आत्मा ज्ञानरस और आनन्दरस से भरपूर अकेला अतीन्द्रिय आनन्द का भण्डार आत्मा है। लो! भण्डार आया। इसके मामा हैं न, वे सौभाग्यचन्दजी के। हीरा, माणिक और पन्ना भरा हुए हैं। सब धूल भरी हुई है। है न सौभाग्यचन्दजी के मामा सरदारशहरवाले।

यहाँ तो यह भरे हैं, कहते हैं। उसकी ममता हो तो वहाँ बिच्छु और सर्प हो। समझ में आया? यह भगवान, यह देखने न मिले ऐसा यहाँ है। यह भण्डार उसका कहाँ है। वह तो जड़ का है। जड़ की पर्याय है। आहाहा! देखो! एक पर्याय... एक पंक्ति में

वह उल्लासपूर्वक वीर्य से निर्णय तो करे! उल्लासपूर्वक वीर्य से। ओहो! मेरी चैतन्य चीज़ ही अत्यन्त विकल्प, राग से, पुण्य, दया, दान से भिन्न है। जड़ की क्रिया तो कहीं रह गयी। उसके कारण से हो या न हो!

ऐसे **शुद्ध स्वरूप में अविचलित चैतन्यपरिणति...** पर्याय ली। देखो! अविचलित, चलित नहीं ऐसी चैतन्य की पर्याय, वह यथार्थ ध्यान है। उसका नाम ध्यान है। मैं ध्यान को ऐसे करूँ और ऐसे करूँ और ऐसे करूँ, ऐसा है नहीं। विशेष बात करेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. ४३, गाथा-१४६
दिनांक - ०९-१०-१९६४, आसोज शुक्ल ४, शुक्रवार

यह पंचास्तिकाय नवपदार्थ अधिकार में निर्जरा अर्थात् धर्म की वृद्धि का अधिकार चलता है। तो धर्म की वृद्धि का अधिकार और धर्म पहले हुआ है। समझ में आया? धर्म-सम्यग्दर्शन पहले हुआ है। उसे यहाँ ध्यान की क्रिया निर्जरा का कारण है, ऐसा बताते हैं। आगे कथन में आयेगा।

सबसे पहले तो सम्यग्दर्शन प्रगट करना चाहिए। यह अर्थ में आयेगा। इसके पश्चात यह ध्यान की व्याख्या क्या है और कैसे होता है, यह बताना है। तो पहले द्रव्य, गुण, पर्याय प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक परमाणु का स्वतन्त्र है। समझ में आया? अपना द्रव्य वस्तु उसके गुण और उसकी पर्याय अन्दर होती है अवस्था, वह स्वयं से स्वतन्त्र है। और परद्रव्य के द्रव्य, गुण, पर्याय यह शरीरादि की होती है, वह उससे स्वतन्त्र है। आत्मा उसे नहीं करता और आत्मा उसे रोकता भी नहीं। ऐसे सब द्रव्य, गुण, पर्याय की यथार्थ दृष्टि करके शुद्ध चैतन्यपरिणति वह पर्याय, गुण, द्रव्य का भान करके अपने चैतन्य त्रिकाली ज्ञायकभाव अत्यन्त शुद्ध है, ऐसी अन्तर में दृष्टि करना, उसका नाम प्रथम सम्यग्दर्शन है। समझ में आया? कहो, सेठ!

यह सम्यग्दर्शन पश्चात् निर्जरा कैसी होती है, यह व्याख्या अब चलती है। सेठिया! यहाँ अपने हिम्मतभाई ने लेखन किया है, नीचे। उस ओर पढ़ना हो तो पहले पढ़ो। २१४। नीचे पैराग्राफ है, अन्तिम। २१४, अन्तिम पैराग्राफ है न? अन्तिम तीन लाईन।

यहाँ वह लक्ष में रखनेयोग्य है... है? **कि उपरोक्त....** उपर्युक्त **ध्यान का मूल सम्यग्दर्शन है।** व्याख्या ध्यान की चलेगी। परन्तु उसका मूल सम्यग्दर्शन है। **सम्यग्दर्शन के बिना ध्यान नहीं होता, क्योंकि निर्विकार निष्क्रिय चैतन्यचमत्कार की (शुद्धात्मा की) सम्यक् प्रतीति बिना...** भगवान आत्मा देहादि की क्रिया तो कर नहीं सकता। राग, दया, दान का विकल्प भी वास्तव में उसका कर्तव्य नहीं है। वह तो निर्विकार निष्क्रिय

चैतन्यचमत्कार वस्तु आत्मा है। उसकी सम्यक् प्रतीति बिना उसमें निश्चयपरिणति कहाँ से हो सकती है? यह निश्चयपरिणति उसका नाम ध्यान। सेठी! है? है, हं... अच्छा! समझ में आया? जगत को यह कठिन पड़ता है।

यह लोग कहे, देह की क्रिया नहीं कर सकता, ऐसा नहीं कर सकता, यह तो... ओहोहो! सत्य तो ऐसा ही है। समझ में आया? तारणस्वामी तो कहते हैं कि जो जनरंजन के लिये कथा करेगा, वह मूढ़ निगोद में जायेगा। ऐसा कहते हैं। सुना है या नहीं? जनरंजन लोगों को ठीक पड़े। ऐसा कहना और सभा को प्रसन्न करना कि आहा! यह बड़ी-बड़ी बात है। यह तो जनरंजन कलरंजन आता है न? बहुत शब्द आता है। कलरंजन, शरीररंजन। जन दुनिया। दुनिया को क्या साथ लेना है? दुनिया तो तुझसे पर वस्तु है। वह प्रसन्न कहाँ से होगी? वह तो अनादि से अज्ञानी है। तो उसे तत्त्व की दृष्टि सुनी तो नहीं जाती। तो क्या सारी दुनिया को रंजन कराना है? समझ में आया? कि जिसमें दुनिया प्रसन्न हो, खुश हो, वाह! वाह! वह तो अज्ञानी मिथ्यादृष्टि जनरंजन करने के लिये टाईम लिया है? ऐसा उसमें लिखा है। जनरंजन, मनरंजन! जाये निगोद में। चार गति तो (है परन्तु) निगोद अनन्त काल में दो इन्द्रिय नहीं होगा, ऐसे निगोद में जायेगा। ऐसी कड़क भाषा है। राजमलजी!

यहाँ कहते हैं। पहले सम्यग्दर्शन बिना यह ध्यान की क्रिया नहीं होती तो इसे पहले सम्यग्दर्शन समझना चाहिए।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : किसका? उल्टा। उल्टा ध्यान हो सकता है। आर्तध्यान और रौद्रध्यान, ऐसा तो कल कहा था। यहाँ तो धर्मध्यान। बात जगत से अत्यन्त निराली है। जगत को साथ लेकर यह बात नहीं चलेगी। समझ में आया? सेठी! जिसे अपने धर्म का कर्तव्य करना है, वह दुनिया को छोड़कर अपना लक्ष्य अपने में करना चाहिए। पर का लक्ष्य छोड़ देना चाहिए। मैं पर का नहीं कर सकता। किसी का (नहीं)। वाणी नहीं कर सकता, देह की क्रिया नहीं कर सकता। यह क्रिया होगी, होगी, होनेवाली है वह होगी। ऐसे जड़ के-पर के कार्य मेरे नहीं हैं। ऐसा निर्णय करने में अपना लक्ष्य करे तो

उसमें अनन्तानुबन्धी कषाय का नाश हो जायेगा। क्रिया हो, वह उसके कारण से। कषाय कोमल हो जायेगी। कषाय मन्द हो जायेगी। समझ में आया?

परन्तु मैं कर सकता हूँ और पर का कार्य मेरे अधिकार में है ऐसा करो, ऐसा करो, ऐसा करो, यह तो मिथ्यादृष्टि अनन्तानुबन्धी के कषाय को पोषता है। तो कहते हैं कि यह पहले दृष्टि छोड़ देना चाहिए। यह ध्यान तो उससे भी कठिन है, निर्जरा तो। देखो! **उसमें निश्चल परिणति कहाँ से हो सकती है?** सम्यक् चैतन्य ज्ञायकमूर्ति है। उसमें पर का कार्य तो क्या? राग का कर्तृत्व भी अपने स्वभाव में नहीं है। ऐसी दृष्टि हुए बिना उसमें निष्क्रियध्यान कभी नहीं हो सकता।

इसलिए मोक्ष के उपायभूत ध्यान करने की इच्छा रखनेवाले जीव को प्रथम तो जिनोक्त... जिनोक्त, हों! सर्वज्ञ ने कहा। अज्ञानी कल्पना करके कहे, वह नहीं। जिनागम- सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव परमात्मा सौ इन्द्रों के पूज्य परमात्मा महाविदेहक्षेत्र में विराजते हैं। अनन्त तीर्थंकर हो गये। उन्होंने जो द्रव्य, गुण, पर्याय कहये, उन्हें जानना चाहिए। अज्ञानी अपनी कल्पना से कहता है, उसे छोड़ दे। समझ में आया?

मुमुक्षु : छह काय के जीव जानना या द्रव्य-गुण-पर्याय जानना?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह द्रव्य, गुण, पर्याय-छह काय के जीव, जीव हैं, उनकी वर्तमान पर्याय मरण-जीवन आदि पर्याय पलटे, वह उसकी पर्याय है। हमारा उसके जीवन-मरण पर कोई अधिकार नहीं है। ऐसे **जिनोक्त,....** भाषा ऐसी है। भगवान परमात्मा परमेश्वर वीतरागदेव ने जो द्रव्य, गुण, पर्यायरूप वस्तुस्वरूप की, ऐसी वस्तु है। यथार्थ समझपूर्वक, यथार्थ समझपूर्वक पहले उसका यथार्थ ज्ञान करना चाहिए। **निर्विकार निष्क्रिय चैतन्यचमत्कार की...** निर्विकार ज्ञायकमूर्ति आत्मा! कोई पर का तो तीन काल में करता नहीं। परन्तु राग का भी मेरा कर्तव्य नहीं। ऐसे निष्क्रिय चैतन्य चमत्कार की सम्यक् प्रतीति का, सर्व प्रकार से, सर्व प्रकार से उद्यम करनेयोग्य है। पहले यह करनेयोग्य है। गृहस्थाश्रम में हो, त्यागी में हो, परन्तु यह निर्णय किये बिना उसे धर्म की शुरुआत नहीं होती। समझ में आया?

तत्पश्चात् ही उस **चैतन्यचमत्कार में विशेष लीनता का यथार्थ उद्यम हो सकता**

है। अभी समझण में भी उल्टी मेहनत चलती है। समझ में आया? आहाहा! आठ-आठ वर्ष की बालिका ऐसे समझकर सम्यग्दर्शन प्राप्त करती है। समझ में आया? आत्मा है न? मस्तिष्क स्पष्ट हो न.... मस्तिष्क अर्थात् क्या? यह जड़ मस्तिष्क! यह तो मिट्टी है। अपनी ज्ञान की नजर में स्पष्टता, स्पष्टता, चुस्तता होना। ज्ञान की नजर में अन्दर ज्ञान की ज्ञान की नजरें, ज्ञान की वर्तमान नजर-पर्याय में स्पष्टता, शुद्धता दृष्टि की आनी चाहिए। पर मेरा कार्य नहीं। पूरी दुनिया हो (तो भी) ओहो! (वह) उसके कारण से होता है। मेरा किंचित् कार्य नहीं। समझ में आया?

मुझमें रागादि होते हैं, वह भी पुण्य-पाप का तत्त्व है। वह भी मेरा कार्य नहीं। अजीव का नहीं। पुण्य-पाप के विकल्पों में भी मेरा कार्य नहीं। मैं तो चैतन्यचमत्कार मात्र वस्तु हूँ। ऐसी प्रथम में प्रथम सर्व प्रकार से प्रयत्न करके, उद्यम करके सम्यक् प्रतीति प्रगट करना चाहिए। बराबर है? नत्थुलालजी! यह करना है, हों! व्यापार-ब्यापार करने की यहाँ इनकार करते हैं। बाहर का तो कर सकता नहीं। परिणाम कर सकता है। भाव कर सकता है। पुण्य-पाप का शुभाशुभभाव। परन्तु उसे निर्णय करना चाहिए कि शुभाशुभपरिणाम भी विकार है। मेरी चीज़ उससे भिन्न है। बाहर से तो भिन्न है परन्तु पुण्य-पाप के राग से भी मेरी चीज़ भिन्न है।

ऐसा चैतन्यचमत्कार ज्ञायक परमात्मा अपना निज स्वरूप है। आठ वर्ष की बालिका भी ऐसा सम्यग्दर्शन प्रगट कर सकती है। न करे तो अनादि काल से ग्यारह अंग पढ़ गया और इतना क्रियाकाण्ड किया, शरीर के खण्ड-खण्ड करे तो भी क्रोध न करे, उसमें क्या है? उसमें आत्मा का शुद्ध कार्य है ही नहीं। तो पहले **सर्व प्रकार से उद्यम करनेयोग्य है;...** सम्यग्दर्शन प्रगट करने का पहला प्रयत्न है। समझ में आया? यह बात चलती है। उसमें भी ध्यान कैसा हो, यह बात चलती है।

सम्यग्दृष्टि को ध्यान जो मोक्ष का कारण है। सम्यग्दृष्टि को जो ध्यान मोक्ष का कारण है। **वह ध्यान प्रगट होने की विधि अब कही जाती है;...** है? सुमेरुमलजी! है या नहीं? आहाहा! अरे! प्रभु तुझे तेरा सत् का कार्य करना है या नहीं? सत् का, हों! उल्टा तो अनादि से मान्यता में करता है। आहाहा! सूझ पड़ती नहीं। सूझ पड़ती नहीं।

अन्दर नजर न मिले क्या चीज़ है। और उस चीज़ में क्या होता है और मुझसे पर में क्या होता है और पर का कार्य पर से कैसे होता है। ऐसी नजर यदि पर से भिन्न काम न करे, उसे पुण्य-पाप से भिन्न मेरी चीज़ है, ऐसी नजर काम नहीं करे। और पुण्य-पाप से भिन्न है, ऐसी दृष्टि न हो, तब तक उसका ध्यान नहीं हो सकता। पर्याय, पर्याय का विवेक कहते हैं। पहले सम्यग्दर्शनरूपी पर्याय राग से पृथक् और पूर्ण स्वभाव से एकत्व। पुण्य-पाप के विकल्प से पृथक् पूर्ण स्वभाव से एकत्व ऐसी प्रतीति, वह प्रथम सम्यग्दर्शन है। समझ में आया? पहले में पहला कर्तव्य करने योग्य हो तो यह है।

मुमुक्षु : कुछ दिया जा सके ऐसा है....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह दिया जा सकता है न। यह नहीं। यह समझ करे, वह आत्मा को दे सकता है। ख्याल है। दोपहर में बाकी रहे हैं न चार बोल बाकी हैं। कर्ता, कर्म दो आये हैं और करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण चार (बोल) बाकी हैं षट्कारक के। दे सकता है, अपनी पर्याय अपने को दान दे सकता है। पर को नहीं दे सकता तीन काल, तीन लोक में। सेठ! सेठिया पैसा नहीं दे, ऐसा कहोगे तो। कौन देता है? वह तो रजकण है, जड़ है, जानेवाली चीज़ जायेगी, आनेवाली चीज़ आयेगी, उसमें तेरे अधिकार की बात है नहीं।

मुमुक्षु : अपने कारण से क्षेत्रान्तर होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्षेत्रान्तर होता है। लक्ष्मी जाती है तो उसके कारण से जाती है। सेठ का दान का भाव हुआ, इसलिए जाती है?

मुमुक्षु : निमित्त बन जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त का अर्थ, उसका उत्पाद होकर चली जाती है तो निमित्त कहने में आता है। परन्तु मेरे कारण वहाँ गयी (ऐसा माने) तो निमित्त नहीं हुआ (स्वयं) कर्ता हुआ। भाई! बराबर है? आहाहा! अरेरे! यह मनुष्यदेह अनन्त काल में मुश्किल-मुश्किल से मिला, उसमें सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ वीतराग परमेश्वर नौ तत्त्व कहते हैं। नव की व्याख्या चलती है न? नव तत्त्व नौ में हैं। एक-दूसरे में खीचड़ा नहीं होता। इकट्ठे नहीं हो जाते।

जड़, जड़ में है। आत्मा आत्मा में है, राग राग में है, निर्मल पर्याय पर्याय में है, गुण शक्तिरूप है, वस्तु शक्तिवान है। समझ में आया? ऐसी बात सर्वज्ञ परमेश्वर वीतराग के अतिरिक्त तीन काल, तीन लोक में कहीं नहीं होती। समझ में आया? छह द्रव्य, नौ तत्त्व, पंचास्तिकाय है कहीं दूसरे स्थान में? यह चीज़ ऐसी है। ऐसा भगवान ने जाना और ऐसा कहने में आया? देखो! कल आया था न? इसका रस उत्पन्न होता है। यह देखो न माहात्म्य बताते हैं या नहीं? किसका रस उत्पन्न होता है? धूल का रस जो छोड़े.... यह राग का रस है, उसे भी छोड़ देना। पुण्य-पाप का विकल्प है, वह मैल है। उसका भी प्रेम और रस छोड़कर ज्ञायकमूर्ति प्रभु है, उसका रस ले। उसकी दृष्टि कर तो तुझे सम्यक् सत्यता का आदर होगा। नहीं तो असत्य का आदर है अनादि से। आहाहा! समझ में आया?

शुद्ध स्वरूप में अविचलित चैतन्यपरिणति, सो यथार्थ ध्यान है। यह पहली लाईन है। कल आयी थी। **वह ध्यान प्रगट होने की विधि अब कही जाती है;...** यह विधि अब बताते हैं। ध्यान कैसे प्रगट (हो) किसे, किस प्रकार से होता है। सम्यग्दृष्टि को भी ध्यान आत्मा में स्व अवलम्बन-एकाग्रता कैसे होती है, पर से कैसे हटता है, ऐसी बात बताते हैं।

जब वास्तव में योगी, योगी अर्थात् आत्मा के स्वभाव में जुड़ान करनेवाला। जुड़ान कहते हैं, क्या कहते हैं? जुड़ान। आत्मा चैतन्य चमत्कार ज्ञायक द्रव्यस्वभाव में जिसकी बुद्धि का जुड़ान हुआ है, उसे योगी कहते हैं। सम्यग्दृष्टि भी योगी है। चारित्रवन्त विशेष योगी है। समझ में आया? अनादि काल से देहादि क्रिया और विकल्पादि दया, दान का भाव, उसमें जो दृष्टि हुई थी, वह अज्ञान का योग है, मिथ्यात्व का योग सम्बन्ध है।

वह योग छोड़कर अपना ज्ञायकभाव चैतन्य पूर्ण द्रव्यस्वभाव पूर्ण का स्वीकार; निमित्त का मुझमें अभाव, राग का मुझमें अभाव, अपूर्ण वर्तमान प्रगट पर्याय जितना मैं नहीं। मैं पूर्ण ज्ञायक हूँ, शुद्ध चैतन्यचमत्कार ऐसा पूर्ण का-स्वभाव का स्वीकार। ऐसी दृष्टि को सम्यग्दर्शन कहते हैं। उस सम्यग्दृष्टि को ध्यान कैसे होता है—वह योगी है। अपने में जुड़ान करके... जुड़ान समझते हो? सम्बन्ध। जितना सम्बन्ध पर के साथ

अभी समकितदृष्टि को रहा है। अपनी दृष्टि हुई, सम्यक्भान हुआ, तथापि ज्ञानी को भी अपनी कमजोरी के कारण थोड़े पुण्य-पाप के सम्बन्ध का जुड़ान होता है।

अब उससे हटकर अपना ध्यान करना है, उसकी बात चलती है। समझ में आया? संसार की बात एक उसकी माँ लापसी बतावे तो कैसे करना, उसमें बाई कितना ध्यान दे! यह लापसी; लापसी कहते हैं न? देखो! गेहूँ को ऐसे-ऐसे करना, करते-करते हिलाते रहना, ऐसे गठ्ठ न हो जाये, नहीं तो (गठ्ठ में से) सूखा आटा निकलेगा। कोई ऐसे कड़क रिश्तेदार आ जाये और लापसी-ऐ यह क्या? अन्दर आटा है। गठ्ठ बन जाये न, लापसी बराबर नहीं (हिलावे) ऐसा करे तो गठ्ठ बन जाये और गठ्ठ में कच्चा आटा रह जाये। ऊपर से सेका हुआ दिखे और अन्दर से ऐसा। परन्तु ध्यान रखो कि मेरी माँ कैसे बनाती है।

उसी प्रकार भगवान कहते हैं कि हम कहते हैं, उसमें तुझे ध्यान रखना चाहिए। आत्मा के ध्यान की लापसी कैसे बनती है। सेठी! वहाँ तो न आवे तो उसको सासू उलहाना दे, तेरी माँ ने ऐसा सिखाया है? ऐसा कुछ भान नहीं? करते हैं या नहीं? सेठ! गृहस्थ की लड़की हो तो करे वह सासू हो वह। यह कहीं सब काम करनेवाले लोग होते हैं? ऐसा सीखकर आयी है?

यहाँ भगवान कहते हैं कि तेरी चीज़ कहाँ है और तुझे कहाँ से हटना है, यह तुझे खबर नहीं? तुझे क्या काम करना है? तू क्या सीखकर आया है यहाँ? ज्ञानचन्दजी! तो कहते हैं कि पहले आत्मा सम्यक् प्रतीति में लेना चाहिए कि मैं यह तीन काल, तीन लोक में यह शरीरादि चलता है, उसकी क्रिया होती है, वह मेरी नहीं। मैं रोक नहीं सकता और मैं बनाता नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : कब?

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी। और कब क्या? यह शरीर, वाणी, मन की क्रिया अभी चलती है तो चलो और रुकती है तो रुको, मेरे अधिकार की बात है नहीं। वह जड़ की पर्याय है। फिर पुण्य-पाप का विकल्प उठता है, वह भी मेरी चीज़ में कृत्रिम उपाधि है। अकृत्रिम चिदानन्द पूर्णानन्द यह भिन्न है। ऐसी दृष्टि करने के पश्चात् सम्यग्दर्शन

हुआ, फिर उसे मोक्ष का कारण ध्यान कैसे उत्पन्न होता है, उसकी बात करते हैं।

जब वास्तव में योगी,... धर्मी, दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय का विपाक... लो! अन्दर आत्मा पर दर्शनमोहनीय के जड़ के रजकण पड़े हैं। जिसे समझना है न, उसे ऐसा होता ही है कि मेरे पास दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय का विपाक। दर्शन अर्थात् मिथ्यात्वमोहनीय के परमाणु जड़ और चारित्रमोहनीय के अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यान आदि रजकण की पर्याय को चारित्रमोह कहते हैं। जड़ की दशा।

वह **विपाक पुद्गलकर्म होने से...** देखो! क्या कहते हैं? मुझे अब पर से लक्ष्य छोड़ना है। और अपने में जो लक्ष्य किया था कि आत्मा ज्ञायकमूर्ति है, उसमें विशेष लीन होना है। तो उसे दर्शनमोह और चारित्रमोह यह दो कर्म अन्दर है, उसका विपाक पुद्गलकर्म होने से वह जड़ है, अजीव है। **उस विपाक को (अपने से भिन्न ऐसे अचेतन) कर्मों में समेटकर,...** इसका क्या अर्थ कहते हैं। जरा! आत्मा वर्तमान पर्याय में अपना ध्यान करने में जब प्रयत्नवान होता है, तो पहले दृष्टि में तो आत्मा है कि ज्ञायकमूर्ति है। परन्तु फिर विशेष लीनता होती है, तब अन्दर जो कर्म है, उसका पाक जड़ में आता है।

वह जड़ की पर्याय जड़ में रख दे। इसका अर्थ कि विपाक का लक्ष्य छोड़ दे। हें? लक्ष्य को हटा दे। उस लक्ष्य को हटा दे, इसका अर्थ कि कर्म का पाक जड़ में आया, उसमें रख दिया। अपना लक्ष्य वहाँ से छोड़ दिया। समझ में आया? यह समझे बिना ध्यान करते हैं, (ऐसा कहे) मूढ़ हो जायेगा। अभी द्रव्य, गुण, पर्याय क्या है? वस्तु कैसी है (उसके ख्याल बिना) ध्यान क्या करे? बावळ जैसा हो जायेगा। बावळ समझे? बबूल। काँटे जैसा। अज्ञान का काँटा मिथ्यात्व का काँटा तो अन्दर पड़ा है।

ऐसी दृष्टि होने के पश्चात् अपने स्वरूप की पूर्ण स्थिरता है नहीं, ऐसा सम्यग्दृष्टि को ख्याल है। तो अपने में एकाकार होने के कारण कर्म का जो पाक आया, उसे कर्म में रख दिया। रख दिया का अर्थ, उसका लक्ष्य छोड़ दिया।

मुमुक्षु : दर्शनमोहनीय अब वहाँ है?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह दर्शनमोहनीय क्षयोपशम समकित है, उसे है तो सही न?

थोड़ा है न थोड़ा। बराबर है। हमारे ख्याल में था। तुम्हारी.... क्षयोपशम समकित है न? दर्शनमोह के रजकण उदय में आते हैं तो उनके विपाक से लक्ष्य छोड़ दे। समझ में आया? क्योंकि अपने में लक्ष्य जमाना है। दृष्टि हुई है, मानता है कि मैं ज्ञाता हूँ, शुद्ध हूँ। मेरी कोई चीज़ जगत में दूसरी है ही नहीं। परन्तु स्वरूप में अस्थिरता है। चारित्र का दोष ज्ञानी को भी है। समझ में आया? चौथे गुणस्थान में उसके प्रमाण में आर्तध्यान, रौद्रध्यान का भाव होता है। भोग का भाव, युद्ध का भाव ऐसा होता है। वह चारित्र का दोष है। सम्यग्दर्शन में दोष नहीं। पंचम गुणस्थान में स्वरूप का बहुत लक्ष्य किया है, तो उसमें बारह व्रत का विकल्प आता है, आर्तध्यान होता है, रौद्रध्यान भी होता है। पंचम गुणस्थान के श्रावक सच्चे भानवाले, हों! और व्यापार धन्धा अरबों का भाव होते हैं, भाव। उस भाव का अन्दर में विवेक भी है कि यह मेरी चीज़ में नहीं, यह तो विकार है। इसलिए विकार बहुत मन्द हो गया है। मेरे स्वभाव में नहीं, ऐसी दृष्टि होने से विकार बहुत ही मन्द हो गया है। समझ में आया?

और मुनि होकर छठवें गुणस्थान में नग्न दिगम्बर हो और अपने स्वरूप में तीन कषाय का अभाव हो, उसके भी थोड़े ध्यान की विधि कहेंगे। सबकी ध्यान की विधि है। उसे भी अभी जरा चारित्रमोहनीय का उदय, दर्शनमोहनीय का उदय अन्दर है। क्योंकि यदि न हो तो पर में लक्ष्य जितनी अस्थिरता है, उतना निमित्त अन्दर है या नहीं? यदि अस्थिरता न हो, तब तो केवलज्ञान हो जाए। सम्यग्दर्शन हुआ तो तुरन्त ही केवलज्ञान हो जाये। तो अपने में जो राग-द्वेष की अस्थिरता है, उसका अन्दर उदय भी विपाक उसका लक्ष्य करने की चीज़ है। समझ में आया?

मुमुक्षु : दर्शनमोह....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न पहले? चौथा कहा अब। छठवें में चारित्रमोह-समकित मोहनीय का उदय है न जरा? उसमें दर्शनमोहनीय का उदय है। क्षायिक नहीं न! यह तो पहले कहा। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं कि **उस विपाक को (अपने से भिन्न ऐसे अचेतन) कर्मों में समेटकर,...** क्यों? कि कर्म कैसे हैं? कि पुद्गलकर्म हैं। मेरी चीज़ में है नहीं। मेरी चीज़ में तो अब

आनन्द का पाक होनेवाला है। समझ में आया? कर्मों के पाक की ओर से लक्ष्य (छोड़कर) उसे कैसे ख्याल आया? परन्तु उसे ख्याल है कि मेरे स्वरूप में मैं पूर्ण स्थिर नहीं तो (उसका) कारण क्या? कि मेरी परिणति परलक्ष्य में जाती है। सम्यग्दृष्टि की भी परलक्ष्य से, हों! पर से नहीं। पर से नहीं होती परन्तु परलक्ष्य में जाती है। इतना मैं मेरे लक्ष्य से च्युत होता हूँ। दृष्टि से (च्युत) नहीं। दृष्टि सम्यक्, सच्चा सम्यग्दृष्टि है।

मुमुक्षु :....

पूज्य गुरुदेवश्री : भाव है। चारित्र में दोष है या नहीं? चौथे, पाँचवें, छठवें में।

मुमुक्षु : राग....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह भी राग है। राग है तो लक्ष्य पर के ऊपर है, ऐसा निर्णय किया है बस, इतना।

मुमुक्षु :....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह नहीं। राग जाने, पश्चात् बात है। अभी तो है, उसकी सिद्धि करते हैं। यह लक्ष्य हटावे तो कैसे हटाता है पहले उसका लक्ष्य पर के ऊपर है। इतनी सिद्धि करते हैं। समझ में आया?

आत्मा ज्ञायक चैतन्यमूर्ति शुद्ध ध्रुव परमात्मा को जैसा देखा, वैसा प्रतीति में आया है। पश्चात् मुझमें अभी अस्थिरता है। सम्यग्दृष्टि जानता है कि राग आता है। पुण्य-पाप के, पाप के भाव, विषय के भाव, राग के भाव आते हैं। तो अस्थिरता है तो उसका लक्ष्य दूसरी चीज़ है। इस कारण मुझमें मेरे कारण से राग-द्वेष की अस्थिरता है। उसका लक्ष्य पर है। तो वह विपाक जो है, वह जड़ है। उससे है, ऐसा पहले निर्णय किया।

यह तो पहले निर्णय किया है। कर्म निमित्त है। मेरा लक्ष्य जाता है। इतनी मेरी अशुद्धपरिणति मुझसे उत्पन्न हुई है। मेरे द्रव्यस्वभाव में नहीं। पहले ऐसा निर्णय किया है। फिर अब यह लक्ष्य छोड़ता है। यह तो **समेट कर...** (ऐसा) आया न। समेट कर, ऐसा क्यों कहा? कि उसके लक्ष्य में था कि मुझमें यह राग-द्वेष है, इतना पर में लक्ष्य है। तो परचीज़ कर्म का विपाक है। उस विपाक को विपाक में रख दिया। अपना लक्ष्य वहाँ से हटा दिया।

अब कहते हैं देखो! **तदनुसार परिणति से उपयोग को व्यावृत्त करके...** अब देखो! यह शब्द अब आया। विपाक से लक्ष्य छूटा। उसका अर्थ यह हुआ कि विपाक के अनुसार-तद्नुसार परिणति जो विकार की थी, उस उपयोग को व्यावृत्त करके, उपयोग को वहाँ से हटा लिया। यह तो विधि कहते हैं या नहीं? आहाहा! समझ में आया? यहाँ तो पहले यह सिद्ध किया कि ज्ञानी हुआ, सम्यग्दृष्टि हुआ, क्षायिक सम्यग्दृष्टि। भरत चक्रवर्ती क्षायिक समकिती, छियानवें हजार स्त्रियों में रहा। श्रेणिक राजा (भी) क्षायिक समकिती। हजारों रानी, राज्य बड़ा, हों। परन्तु यह क्रिया मेरी नहीं। मैं लाया नहीं और मैं उसमें हूँ नहीं। और मेरे में अस्थिरता आती है, वह मेरे स्वभाव में है नहीं। परन्तु अस्थिरता है, उसका लक्ष्य एक विपाक कर्म है अन्दर में।

अब जब आत्मा ध्यान करता है, तब अन्दर में क्या करता है कि उसमें विपाक विपाक में डाल दिया। इसका अर्थ यह कि उसका लक्ष्य था, उसे छोड़ दिया। तो लक्ष्य छोड़ दिया का अर्थ क्या हुआ कि **तदनुसार परिणति...** जो विपाक के लक्ष्य से अपने में राग-द्वेष की परिणति होती थी, वैसे उपयोग को व्यावृत्त करके, ऐसा उपयोग हटा किया। समझ में आया? आहाहा!

यह तो आत्मा की लक्ष्मी—पैसा कैसे पैदा होते हैं, उसकी बात है। नथुलालजी! आत्मा की लक्ष्मी, हों! यह धूल की नहीं। प्रेमचन्दजी! क्या पैदा होता है? तुम्हारे पैसा पैदा होते हैं? पैसा कहाँ तुम्हारे पास आया है? पैसा तो वहाँ ग्वालियर में रह गया। ममता रही है। ज्ञान करता है, लक्ष्य करता है कि वह है।

यहाँ कहते हैं। बहुत सरस बात की है। आहाहा! और सब सिद्ध करते जाते हैं कि अपनी दृष्टि अपने चैतन्य पर पहले सम्यक् हुई है और पुण्य-पाप के भाव भी मुझमें हैं और लक्ष्य करने की चीज़ भी अन्दर कर्म है। इतने की प्रतीति सब है। अजीव की प्रतीति है। विपाक, मुझमें पुण्य-पाप अस्थिरता होती है। अशुद्ध उपयोग की प्रतीति है कि है। और मेरा स्वभाव भिन्न है, ऐसी भी दृष्टि हुई है, ऐसी भी प्रतीति हो गयी है। समझ में आया? अब उसे दशा में कैसे हटता है उपयोग। अपने परिणाम जो अस्थिर हैं राग-द्वेष; विपाक जो कर्म (का) लक्ष्य करने से थे (उसका) ख्याल तो था कि मुझमें

अशुद्ध परिणति राग-द्वेष है, तो वह अपने लक्ष्य से उत्पन्न नहीं होती। कमजोरी से परलक्ष्य से उत्पन्न होती है। तो परलक्ष्य उसमें रख दिया। विपाक विपाक में। वह अजीव मुझमें नहीं। तो उसका लक्ष्य करने की जो चीज़ थी, वह पर में डाल दी तो उससे लक्ष्य छूट गया।

तो लक्ष्य छूटने से क्या हुआ? **तदनुसार परिणति...** कर्म के लक्ष्य अनुसार जो राग-द्वेष, पुण्य-पाप का उपयोग था, ज्ञानी को, हों! उस **उपयोग को व्यावृत्त करके...** समझ में आया? व्यावृत्त—हटा करके। हटा करके का अर्थ समझाना किस प्रकार? यह लक्ष्य छोड़ा तो अपने ज्ञायकभाव में लक्ष्य किया तो लक्ष्य के अनुसार जो पुण्य-पाप के परिणाम थे, वे रुक गये। उन्हें व्यावृत्त करके, ऐसा कहने में आया। आहाहा! समझ में आया? अपना निज व्यापार कैसे करना, इसकी बात चलती है। निज का कार्य कैसे करना, इसकी बात चलती है। आहाहा! लक्ष्य छोड़। तेरी दृष्टि का जिसमें लक्ष्य हुआ है, उसमें अब स्थिरता का लक्ष्य कर तो पर का लक्ष्य छूट जायेगा। लक्ष्य छोड़ना, ऐसा व्यवहार से कहा है।

अपने में स्थिर होता है, तब पुण्य-पाप के परिणाम कर्म के लक्ष्य अनुसार होते थे, वह व्यावृत्त हो गया। छूट गये—छूट गये का अर्थ यह कि उत्पन्न नहीं हुए। आहाहा! यह बात साधारण जनता को भान नहीं होता।

मुमुक्षु : यह तो खास चीज़ है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो खास चीज़ है। हमारे सेठी ऐसा कहते हैं। लो! यह तो खास चीज़ है। जो चीज़ अपना कार्य करने में सफलता प्राप्त हो, वह यह विधि है। आहाहा! विधि की खबर नहीं, वस्तु की खबर नहीं, द्रव्य-गुण-पर्याय की खबर नहीं और धर्म करना है। अनादि काल से इसने ऐसा काल गँवाया है। चौरासी के अवतार करते-करते करके निगोद.... निगोद.... निगोद। समझ में आया?

कहते हैं **तद्नुसार...** तद्नुसार क्या? कर्म का विपाक विपाक में डाल दिया था। इसका अर्थ यह कि तद्नुसार अपनी कमजोरी से पुण्य-पाप के परिणाम उपयोग जो था, **उस विपाक के अनुरूप...** विपाक था, उसके अनुरूप। विपाक तो निमित्त है। यहाँ तो

नैमित्तिक **अनुरूप परिणमन में से उपयोग का निवर्तन करके...** यह व्यवहार से बात की है। परन्तु इसका अर्थ (यह कि) ज्ञायकस्वभाव पूर्ण स्वभाव की दृष्टि हुई है, उस ओर की अपनी स्थिरता जमायी तो लक्ष्य पर से छूटा और तद्नुसार व्याप्त परिणाम थे, उनसे निवृत्त हो गया, ऐसा कहने में आया। समझ में आया? यह क्रिया ध्यान और निर्जरा का कारण और यह क्रिया मोक्ष का कारण है। बाकी धूल की -देह की क्रिया और अन्दर दया, दान का कोमल भाव न, हें?

मुमुक्षु : ध्यान करनेवाले गिरनार में बहुत देखे हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह योगी धूल के भी योगी नहीं। वस्तु के भान बिना योगी किसे कहना? द्रव्य, गुण, पर्याय क्या है, वह तो उसे खबर भी नहीं। द्रव्य किसे कहते हैं, गुण किसे कहते हैं, पर्याय का काल कितना है। एक समय में पर्याय कितनी है, काल कितना है, यह तो खबर भी नहीं। किसका ध्यान करे? योगी कैसा? भोगी है, अज्ञान का। समझ में आया? आहाहा!

यह तो गृहस्थाश्रम में भी रहने पर भी सम्यग्दृष्टि ध्यान करता है, उसकी विधि है। आहाहा! अरे! यह तो बात, भाई! जिसे भूख लगी हो न, उसमें ऐसे मक्खन के क्या कहे तुम्हारे? जामुन। इस सेठ के घर में नहीं थे? हाँ, वे। दाँत भी न हो और ऐसे चबा जाये, ...समझे? बीस वर्ष का जवान हो और भूख लगी हो ऐसी बराबर! और उसमें जहाँ यह मावा के जामुन आवे! चबाना न पड़े। बहुत प्यास लगी हो, ऐसी प्यास कि गला सूखता हो, उसमें मौसम्बी का पानी और उसमें बर्फ डाले।

मुमुक्षु :....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु कहाँ से जिज्ञासा कैसी उसकी तृप्ति होती है, यह बात करते हैं। बस। जिज्ञासा उसमें कहाँ लगी है, यह बात है। ऐसे आत्मा की जिज्ञासा लगाना चाहिए।

अरे रे! अनादि काल की मेरी भूख मिटाने का रास्ता यह है। प्यास मिटाने का रास्ता यह है। समाज को गले लगा दिया। समाज का थोड़ा काम हो न? धूल में भी नहीं होगा। वह तो उसकी पर्याय से होगा तो करेगा। तुझसे क्या होगा? घर यह। अनन्त गुण

का समाज यह आत्मा। आत्मा को कौन सा समाज था? पर के साथ तो कोई सम्बन्ध है नहीं। आगे आयेगा। उसमें आयेगा दोपहर में। दोपहर में है न?

यह परमाणु साथ में है, उसके साथ कुछ सम्बन्ध है नहीं। कुछ सम्बन्ध है नहीं। उसकी पर्याय के काल में पर्याय चली कर्तृत्व के काल में। परमाणु कर्ता है। वह पर्याय कार्य है। परमाणु का कार्य है। परमाणु में भी कर्ता नाम का गुण है। उस कर्ता गुण की पर्याय का उत्पाद परमाणु में स्वयं से होता है। आत्मा से बिल्कुल किंचित् नहीं होता। ऐसा तो पहले अनुभव में दृष्टि सम्यक् ऊपर की है। समझ में आया? आठ वर्ष की बालिका समकिती हो, जब ध्यान करने लगे वह भी....

मुमुक्षु : राजकुँवरी की बात करते हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : राज चक्रवर्ती की पुत्री। गरीब की पुत्री तो हो, उसमें क्या विशिष्टता है? परन्तु यह तो चक्रवर्ती की पुत्री है महा। वह भी ध्यान कर सकती है। सम्यग्दर्शन पा सकती है न! गरीब को तो क्या? गरीब किसे कहना? बाहर के अल्प साधन हों तो गरीब और विशेष साधन हों तो धनिक। यह साधन आत्मा में है ही नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : क्योंकि चक्रवर्ती की पुत्री हो वह तो सब कर सके।

पूज्य गुरुदेवश्री : कर सके। साधन बहुत होते हैं न इसलिए ऐसा। हाँ किया था न। जेठाभाई आये थे। जेठाभाई नहीं थे पहले? मन्दिरमार्गी थे खेड़ावाले। पहला व्याख्यान सुना तो उन्हें ऐसा लगा—ऐसा लगा कि यह क्या कहते हैं? यह कहीं जैनधर्म की तो इसमें कुछ बात ही नहीं आती। एक जेठाभाई खेड़ा के, करते... करते... करते... करते... करते... करते... सुनते... सुनते... सुनते... अब तो ऐसी लग गयी है। उनके साधु को उन्होंने सैकड़ों प्रश्न किये सैकड़ों, हों! कोई जवाब देता है? कुछ मिला नहीं। मेरा तत्त्व तो यह है। एक खेड़ावाला पगड़ी बाँधकर आते हैं न? जेठालाल! ऑडीटर थे। कहाँ हैं अभी? मुम्बई। अब तो पक्की (श्रद्धा)। सब क्रिया करते, हों! गर्म पानी पीवे और एक बार खाये और ऐसी सब क्रिया बहुत करते थे। बहुत... बहुत...

अब क्रिया कैसी तेरी? जड़ की क्रिया यहाँ कहाँ है। जड़ में जड़ की पर्याय

होती है, उसमें तूने क्या किया? गर्म पानी पीये, वह पानी तो जड़ की-पर की पर्याय है। विकल्प उठता है, वह भी राग है। अपने स्वभाव में नहीं, ऐसी दृष्टि किये बिना कभी सत्य का स्वीकार नहीं आता, असत्य का नाश नहीं होता। सत्य तो यह है। समझ में आया? परमज्ञायक सत् परमात्मा अपना निज आनन्दकन्द ज्ञायक, उसका—सत् का आदर, वही पहले सत् का आदर है। समझ में आया? आहाहा! अन्तर में जब तक माहात्म्य न आवे, तब तक वह चीज़ क्या है, उसकी महत्ता नहीं लगती। बाहर की-बाहर की-बाहर की (महिमा)।

यहाँ तो कहते हैं सम्यग्दृष्टि बालक, समझ में आया? जब सविकल्प में से निर्विकल्प ध्यान करता है, वह उपाय है। तरीका का अर्थ क्या? उपाय। समझ में आया? यह उपाय है, भगवान! हें? विधि कही। देखो! होने की विधि कहने में आती है। ओहो! **उस विपाक के अनुरूप...** कौन सा विपाक? उस कर्म का। वह निमित्त। वह अनुकूल है। मेरे पुण्य-पाप की अस्थिरता में कर्म का विपाक अनुकूल है। और अनुकूल को निमित्त कहते हैं। और उसके अनुसार अपना लक्ष्य करके जितनी परिणति है, उसे अनुरूप कहते हैं। अपने स्वभाव के अनुरूप न हुआ। सम्यग्दृष्टि को भी अपने स्वभाव की दृष्टि हुई, ज्ञान हुआ, संसार कम हो गया, अल्प संसार रह गया। परन्तु ज्ञानी को जितना पुण्य-पाप का भाव होता है, वह स्वभाव के अनुरूप नहीं। इतने परिणाम निमित्त के अनुरूप हैं। कर्म का पाक है, वह निमित्त। निमित्त का अर्थ अनुकूल-अनुकूल और यह परिणाम हुए, वह अनुरूप। निमित्त के अनुरूप पुण्य, पाप, दया, दान, काम, क्रोध, विकार परिणाम हुए। मेरे स्वभाव के अनुरूप नहीं, ऐसा ज्ञानी जानता है। समझ में आया?

परिणाम हुए, हों! करना-फरना यह बात यहाँ है नहीं पर की। **उस विपाक के अनुरूप...** अनुरूप क्यों कहा?—कि मेरे अस्थिरता के परिणाम उसे अनुकूल तो कर्म का विपाक जड़ है, वह निमित्त अनुकूल है। वह पुण्य-पाप के परिणाम को मेरा स्वभाव अनुकूल नहीं। (क्यों)—कि स्वभाव के आश्रय से कभी विकार उत्पन्न नहीं होता। समझ में आया? ओहो! निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध सिद्ध किया। मैं ज्ञान चैतन्य ज्ञायक हूँ। मेरी क्रिया दूसरी नहीं। ऐसा भान होने पर भी अपनी पर्याय में कमजोरी से

कर्म के पाक के अनुकूल निमित्त और अपनी परिणति विकार की अनुरूप निमित्त के अनुरूप है। ऐसी नैमित्तिक पर्याय और कर्म का विकार निमित्त, ऐसे दो सम्बन्ध थे, वे अब ज्ञानी सम्बन्ध को तोड़ते हैं और स्वभाव के साथ जोड़ते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ऐसा ज्ञान-दर्शनरूप महात्मा उसे नजर से न देखे!

पूज्य गुरुदेवश्री : नजर से देखे क्या धूल हो? महात्मा तो स्वयं अन्दर है, उसे देखे तो होता है। शक्कर का स्वाद कोई खाता हो, उसे देखने से उसे स्वाद आवे?

मुमुक्षु : मन तो हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : मन हो, वह अलग बात! स्वाद नहीं आता। शक्कर कोई खाता हो तो दूसरा उसे देखे तो उसे शक्कर का स्वाद आवे? मैं ज्ञायक पूर्ण हूँ। मेरी पर्याय में निर्मलता भी उत्पन्न हुई है। संवर, निर्जरा। मलिन पर्याय भी अभी आस्रव, पुण्य-पाप की है, उस परिणाम में लक्ष्यवान चीज़ें कर्म का पाक भी है, अजीव भी है। इतना-इतना सिद्ध करने के पश्चात् उसे नौ तत्त्व में से आत्मा निराला करके प्रतीति की है।

जिसे कर्म भी नहीं, पाप क्या, विकार क्या, निर्मल क्या, पर्याय क्या, स्वभाव क्या। मोड़ना, इसका अर्थ यह कि अपने में लगाना है। उसे पर से विमुख हुआ ऐसा कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया? मोड़ना होना यह नास्ति से कथन है। कथन की पद्धति को समझाना तो पड़े न? विधि बतलानी है न?

मुमुक्षु : इसमें तो मस्तिष्क चक्कर खाये ऐसा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : चक्कर खाये तब अन्दर प्रविष्ट होता है, ऐसा है। भान कब किया है। भाई! बापू! ऐसा का ऐसा हैरान होकर मर गया है। कुछ किया नहीं, कुछ हलका होकर, जीवन समाप्त हो जाए। समझ में आया? कहीं कोई कोर्ट की सीढ़ियाँ चढ़ा नहीं और रिपोर्ट किसके पास लिखाना.... सेठी! कोर्ट में कभी चढ़ा नहीं और नये-नये कृषिकार है। मेरे प्रार्थनापत्र देना है। कौन लिखेगा? कौन लेगा? चाय-पानी कितना, खबर नहीं। उलझन-उलझन। और कोई कहे कि देखो यह व्यक्ति बैठा है, उसके पास रिपोर्ट लिखाओ। आठ आना, बारह आना, अभी तो अधिक लेते होंगे।

पहले तो आठ आना, बारह आना थे। तुझे लिखना न आवे, ऐसा कोर्ट में लिखना चाहिए। बहुत नाम होते हैं न! अन्नदाता! भाषा होगी कोई उसकी। हमारे वह गायकवाड़ सरकार को दे न? गायकवाड़ सरकार को दे। शमशेर बहादुर।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यर्थ जाये।

हमारे वहाँ वड़ोदरा नजदीक है न, पालेज से। पालेज से अठारह कोस है। शमशेर बहादुर। अमुक-अमुक। ऐसा हो तो वह रिपोर्ट पड़े। नहीं तो पढ़े भी नहीं। रिपोर्ट कहलाये न? क्या कहलाये? कायदेसर! वह किसान बेचारा कृषिकार, भान भी न हो। कौन कैसे लिख देता है। उसे पान-पट्टी देनी पड़ती है। खबर भी नहीं। पाँच रुपये देना या आठ आने देना। रिपोर्ट और वापस सरकार के पास रिपोर्ट।

यहाँ अभी रिपोर्ट किसके पास लिखाना और किसके पास सुनाना, यह भी खबर नहीं। समझ में आया? कैसी चीज़ यथार्थ भगवान आत्मा के पास दलील हो जाये। ऐसी दलील कैसे कौन सुनाता है, किससे सुनना और क्या सुनना, इसकी खबर नहीं। और भगवान आत्मा के पास जाना है और धर्म करना है। पहले तो कांप उठता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अब घर का क्या? एक हो तो है न? यहाँ तो अन्तर के घर की करनी है। यह तो दृष्टान्त था। सबको आत्मा का करना है। जिसे करना हो उसकी बात है। उसमें तो अब लौकिक की बात है। यह तो अभी दृष्टान्त दिया। सिद्धान्त! आहाहा!

आठ वर्ष की कन्या भी, ओहो! मैं तो परम परमात्मस्वरूप वर्तमान में हूँ। वर्तमान मेरी पर्याय में अन्दर शक्ति में परमात्मा न हो तो परमात्मा बाहर कहाँ से आयेगा? समझ में आया? निमित्त में मैं नहीं, संयोग में नहीं, राग में नहीं, अल्पज्ञ में नहीं। वर्तमान अल्पज्ञ पर्याय में मैं नहीं। मेरा स्वरूप अकेला चिद्घन ऐसा पूर्ण स्वभाव का जहाँ स्वीकार हुआ वहाँ सब दृष्टि उड़ गयी। ऐसे स्वभाव की दृष्टि हुई उसमें अब लीनता की मोक्ष की क्रिया कैसे विशेष करना, उसकी बात चलती है।

कोई कहे कि भाई ऐसे दान और कितनी तपस्या और कितने व्रत करना? क्या

व्रत, तप करे? वह तो सब विकल्प है। यह करना, उसकी बात चलती है। समझ में आया? यह तप, उसका नाम सच्चा व्रत। ज्ञायक चैतन्य में लक्ष्य बाँधकर दृष्टि हुई है, और जितनी पुण्य-पाप के विकल्प की राग की अस्थिरता थी, वह पर का विपाक है, ऐसा लक्ष्य में था। लक्ष्य हटा लिया और स्वरूप में स्थिरता हुई, वही व्रत और वही तप, वही निर्जरा, वही ध्यान, वही मोक्ष का उपाय। बाकी सब (थोथा है)। न्यालचन्दजी! सागर में यह बात है? ....करते हो! ना नहीं किया।

वीतराग की बात वीतराग में होती है, दूसरे में होती नहीं। ओहोहो! एक गाथा में कितनी बात! अमृतचन्द्राचार्य! महामुनि! छठवें गुणस्थान में झूलते थे। वाणी निकल गयी वाणी के कारण। हम कर्ता नहीं हों, प्रभु! यह वाणी हमने बनायी नहीं। ऐसी वाणी निकल गयी! हम कर्ता नहीं तो हमारे से कैसे निकल जाये। जो विकल्प आया है, वह भी हमारा पुण्यास्रव है। उससे भी हटकर अन्दर कैसा प्रयत्न करना, यह बात करते हैं। समझ में आया?

पश्चात्, **उस विपाक के अनुरूप...** यह अनुरूप की व्याख्या है, हों! अनुरूप क्यों कहा? कि कर्म के विपाक को अनुकूल कहा। अनुकूल कहो या निमित्त कहो। और निमित्त के अनुरूप विकार। कोई स्वभाव के अनुरूप विकार है? विकार कहीं आत्मा के स्वभाव के अनुकूल नहीं होता। विकार अनुरूप और स्वभाव अनुकूल, ऐसा नहीं है। क्या कहा? पुण्य-पाप के विकार अनुरूप और स्वभाव अनुकूल, ऐसा नहीं है। विकार अनुरूप और कर्म का पाक—विपाक अनुकूल दो का सम्बन्ध है, तो अभी स्वरूप में भान था कि यह सम्बन्ध मुझमें नहीं है। अब अस्थिरता का था तो पर का लक्ष्य हटाकर अन्तर में एकाकार होता है, तब उपयोग जो पुण्य-पाप का था, वह रुक गया। स्वरूप में जम गया। यह उसका नाम ध्यान और उसका नाम निर्जरा है। उसे कर्म का क्षय होता है। बाकी सब करके मर जाये, लंघन करके, अपवास करके, (सब निरर्थक है)। समझ में आया? रण में चिल्लाहट कोई सुने नहीं। ध्यान की और निर्जरा की यह विधि है। गुप्त दूसरी कहाँ यहाँ गुप्त है। ऐसा कि यह गुप्त बात दूसरी कोई होगी, खानगी—गुप्त कहने की। गुप्त हो या प्रगट हो, यही बात है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ध्यान में कोई जानकारी हुई, उसमें कुछ गुप्त....

पूज्य गुरुदेवश्री : गुप्त-बुप्त यह है। गुप्त भी यह और प्रगट में भी यह। देखो, कहा न। **विधि अब कही जाती है;...** ध्यान प्रगट करने की विधि। देखो! प्रगट करने की विधि कही जाती है। उसमें कोई गुप्त-बुप्त है नहीं। कैसा ध्यान करना, ओम... ओम... ओम... ओम... अरे! ओम... ओम... कर न (तो भी) क्या है? ओम... ओम... ओम... ओम... णमो... णमो... णमो... णमो... णमो... णमो अरिहंताणं, ये तो सब विकल्प है। यह तो राग है।

मोही, रागी और द्वेषी नहीं होनेवाले, देखो! और उपयोग जब पर से हटा तब **मोही, रागी और द्वेषी न होनेवाले ऐसे...** उस उपयोग को ऐसे आत्मा के शुद्ध परिणाम को **अत्यन्त शुद्ध आत्मा में ही...** अत्यन्त त्रिकाल शुद्ध आत्मा में ही, देखो! ऐसे उपयोग को, वहाँ वर्तमान पर्याय है। अत्यन्त शुद्ध आत्मा में ही, यह द्रव्य आया। अत्यन्त शुद्ध आत्मा में, यह वस्तु आयी और उपयोग को हटाकर यहाँ (द्रव्य सन्मुख) लाये, वह पर्याय आयी। शुद्ध पर्याय जो निर्जरा का कारण है। वह धर्मध्यान है। ओहोहो!

अब धर्मध्यान कैसे करते हैं। देखो! बाहर में पूजा, भक्ति और सामायिक, व्रत किये और धर्मध्यान हो गया। समझ में आया? इस मार्ग का मुख दूसरा है। गुफा में किस मुख से जाना, वह मुख ही दूसरा है। भगवान आत्मा अन्दर भगवानस्वरूप, उसके मुख में कहाँ से जाना और कहाँ से निकलना, यह मार्ग ही दूसरा है। समझ में आया? ओहोहो! आचार्य जगत के निकट प्रसिद्ध करते हैं। कुछ गुप्त नहीं रखा, भाई! यह जगत को ठीक पड़ेगा या नहीं? 'लोग चिल्लाते रहते हैं' लोक को क्या भान है। समझ में आया?

जिसे आत्मा का कल्याण करना हो, उसकी विधि और रीति यह है। सेठी! एक रतनचन्दजी थे। वे भाई ऐसा कहते थे। सिद्ध की अपेक्षा यह सिद्ध। लोग चिल्लाते हैं। लोग तो चिल्लायेंगे ही। अज्ञानी जहाँ-तहाँ। उसे यह बात नहीं बैठती। चिल्लाहट मचाते हैं। वह चिल्लाहट ही किया करेंगे। पुकार... पुकार...! अरे! ऐसा नहीं रे नहीं! अरे! ऐसा नहीं रे! यह तो लोक तो चिल्लाहट ही करेगा। अज्ञानी रोयेगा ही।

मुमुक्षु : बड़ बड़ बड़ बड़ किया करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : किया ही करे। यह तो अज्ञानी का स्वभाव है। जिसे सत्य की रुचि नहीं और सत्य क्या है, यह खबर नहीं, वह तो बड़-बड़ किया ही करे। ऐसा नहीं और ऐसा होना चाहिए और ऐसा होता है न। क्या होना, तुझे खबर नहीं न। समझ में आया? ज्ञानचन्दजी! आहाहा! यह बैंक का ताला कैसे खोलना, उसकी बात करते हैं। 'मास्टर की' है। पहले तो खोल दिया है। रागादि मैं नहीं, पर की क्रिया आदि मैं नहीं, ऐसा मेरा स्वभाव है। परन्तु विशेष खोलकर अन्दर ज्ञानी को शान्ति का निधान... निधान... निधान निकालना है, तो अपना उपयोग पर से हटाकर अपने में जम जाना।

यह **अत्यन्त शुद्ध आत्मा में ही...** यह द्रव्य आया। उस उपयोग को, वह वर्तमान निर्मल पर्याय आयी। निष्कम्परूप से लीन करता है। उपयोग के अन्दर कम्पन न हो, हटे नहीं, वैसे लीन करता है। लो! यह उसका नाम ध्यान है। उसे कर्म क्षय होते हैं। समझ में आया?। समय हो गया। थोड़ा बाकी है, हों! एकदम नहीं लिया जाता। समझ में आया? (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. ४४, गाथा-१४६
दिनांक - १०-१०-१९६४, आसोज शुक्ल ५, शनिवार

.....पहले नौ पदार्थ क्या है, यह समझे बिना कभी सम्यग्दर्शन-धर्म नहीं होता। समझ में आया? तो सम्यग्दर्शन में नौ तत्त्व भिन्न-भिन्न उनके नौ विषय हैं। भिन्न-भिन्न का अर्थ—नौ के लक्षण भिन्न-भिन्न हैं। फिर अपने स्वरूप पर दृष्टि करने से नौ का यथार्थ भान उसमें होता है। जिसे नौ तत्त्व क्या? (उसकी) दृष्टि और ख्याल नहीं, उसे कभी सम्यग्दर्शन नहीं होता। सम्यग्दर्शन बिना त्याग, वैराग्य, व्रत आदि कभी नहीं होते।

कहते हैं, नौ पदार्थ में निर्जरातत्त्व किसे कहते हैं, यह बात चलती है। निर्जरा पदार्थ। थोड़ी सूक्ष्म बात है। ध्यान का विषय है न यह तो। ध्यान का विषय लिया है। कहाँ तक आया। देखो! **तब उस योगी को...** गाथा फिर से लेते हैं। क्योंकि पूरी मिलाने के लिये। फिर से, तुम्हरे फिर से? होशियार लोगों को।

मुमुक्षु : होशियार लोगों को पक्का करना नहीं होता?

पूज्य गुरुदेवश्री : देखो! फिर से। यह ध्यान के स्वरूप का कथन है। है गाथा के नीचे?

यह ध्यान सम्यग्दृष्टि को होता है। यह फिर विशेष लिखेंगे। पहले आ गया है। अपना स्वरूप, जड़ रजकण, शरीर, वाणी, मन इन परपदार्थ का कार्य कभी भी नहीं कर सकता। क्योंकि वे अजीवतत्त्व हैं। यह हाथ हिलना, वह भी आत्मा का कार्य नहीं है। और आत्मा नहीं कर सकता।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : दुखे तब क्या? सदाय। द्रव्य अलग है। यह तो अजीव है। शरीर, वाणी अजीव है। वह अजीव की पर्याय अजीव से होती है, मुझसे नहीं—ऐसा पहले अजीव के कार्य से दृष्टि हट जाये। पश्चात् पुण्य और पाप, दया-दान, व्रत-भक्ति आदि शुभभाव और अशुभभाव, वह भी मेरा कर्तव्य नहीं है। वह भी विकार है। उस तत्त्व से मेरा ज्ञायकतत्त्व भिन्न है।

अजीवतत्त्व भिन्न है और पुण्य-पाप, दया-दान, भक्ति, व्रत, तप के जितने विकल्प उठते हैं, वे सब राग हैं। उनसे मेरा ज्ञायकतत्त्व भिन्न है। और उस ज्ञायकतत्त्व का आश्रय लेकर अन्तर में जो शुद्ध संवर प्रगट होता है, वह धर्म की पहली सीढ़ी कहने में आती है। समझ में आया?

चिदानन्द अनन्त गुण का धाम भगवान! अनन्त गुण का धाम ऐसा द्रव्य, एक द्रव्य अपना, उस पर नजर करके, अन्तर्दृष्टि करके और स्वभाव में एकत्व होने पर और राग विकल्प से विभक्त होकर। समझ में आया? शुभ दया, दान, व्रत, भक्ति, तप के सब विकल्प, वे राग हैं। उनसे विभक्त होकर और ज्ञानानन्दस्वभाव पूर्णानन्द में एकत्व होकर जो दृष्टि उत्पन्न हो, उसका नाम सम्यग्दर्शन कहा जाता है। कहो, समझ में आया?

यह सम्यग्दर्शन उत्पन्न हुआ, तब संवरदशा उत्पन्न हुई। मिथ्यात्व और राग की उत्पत्ति का अभाव और स्वभाव की दृष्टि और एकाग्रता अनन्तानुबन्धी का अभाव होने पर स्वरूप के आचरण की उत्पत्ति, वह संवर हुआ। उस संवरपूर्वक निर्जरा किसे होती है, यह बात चलती है। ओहोहो! आये लगते हैं कहाँ बैठेंगे? यहाँ बैठेंगे कहाँ? वहाँ जगह कर दो। अब यह बीच में डोलते हैं देखो! उन्हें पहले से आना था न या.... क्योंकि उतरते हैं कहा? उतारने का बन्ध किया है न?

इस आत्मा को पहले धर्म कैसे होता है, कि यह आत्मा अनन्त आत्माओं से भिन्न और अनन्त परमाणु अजीवतत्त्व से भी भिन्न है। पर आत्मा और पर अजीव का कार्य अर्थात् अवस्था कभी भी आत्मा तीन काल में अज्ञानभाव से भी नहीं कर सकता। समझ में आया? डालचन्दजी! अब ज्ञानी जब अपने में ज्ञान होता है, तब तो जड़ का कार्य होता है या नहीं होता, वह उसके कारण से है। मेरे कारण से कभी हाथ भी नहीं चलते। यह देखो! देखा है या नहीं? इच्छा से और ज्ञान से शरीर का कार्य नहीं होता। इस शरीर की पर्याय होनेवाली है, वह उससे होती है। ऐसा पहले जड़ से अपनी दृष्टि हटाकर अपने आत्मा में एक समय में अनन्त गुण है। अनन्त गुण है। अनन्त-अनन्त गुण है। कल कहा था, समझ में आया?

एक आत्मा में अनन्तानन्त गुण हैं। एक-एक गुण में अनन्त-अनन्त शक्ति है।

एक-एक गुण की त्रिकाल अनन्त पर्याय है। ऐसे अनन्त गुणस्वरूप एक आत्मा की अन्तर एकरूप दृष्टि करने से, स्वभाव की एकता करने से और दया, दान, व्रतादि का विकल्प राग है, उसका लक्ष्य छोड़कर पृथक् करने से, अपने में एकत्वबुद्धि चैतन्य में हो, अनन्त गुण की राशि एक आत्मा, उसमें एकत्वबुद्धि हो, राग से पृथक् हो, शरीर से तो पृथक् है ही। तो मेरे शरीर का कार्य भी मेरा नहीं, पुण्य-पाप के विकल्प का कार्य भी मेरा नहीं और मेरे स्वभाव सन्मुख की दृष्टि होने से मेरा कार्य जानना-देखना आनन्द होना, वह मेरा कार्य है। समझ में आया? ऐसी सम्यग्दृष्टि चौथे गुणस्थान में उत्पन्न होती है। समझ में आया?

अभी श्रावक होने से पहले, हों! श्रावक, वह यह वाड़ा के श्रावक नहीं। नटुलालजी! श्रावक वाड़ा के अर्थात् समझे? यह सम्प्रदाय के को श्रावक कहते हैं। वे नहीं। कुल। कुल के श्रावक वाड़ा में रहे। कुल के श्रावक नहीं। समझ में आया? आत्मा का जो भान, सर्वज्ञ परमात्मा कहते हैं, ऐसा अन्तर में वीतराग परमात्मा, ऐसा कहते हैं, हों! दूसरा कोई कहे, वह वस्तु तीन काल में है ही नहीं। ऐसी अन्तर में दृष्टि सम्यग्दर्शन द्रव्य, गुण, पर्याय का भान-बोध होकर। परद्रव्य, परगुण, परपर्याय मुझसे भिन्न है, मेरे में विकार की पर्याय भी भिन्न है। वर्तमान निर्विकार पर्याय जितना भी मैं नहीं और मैं एक ज्ञानगुण आदि का लक्ष्य पृथक् करूँ तो भी अन्तर्मुखदृष्टि नहीं होती। समझ में आया?

सर्वथा अन्तर्मुखदृष्टि तो कब होती है?—कि पर्याय का लक्ष्य नहीं, गुणभेद का लक्ष्य नहीं, राग का नहीं, निमित्त का नहीं। एक स्वरूप सच्चिदानन्द ध्रुव सर्वज्ञ ने कहा, ऐसा आत्मा अन्तर्दृष्टि में आने से जो एकत्वबुद्धि में सम्यग्दर्शन हो, वह प्रथम में प्रथम धर्म और संवर कहने में आता है। नटुलालजी!

कुल के श्रावक नहीं। यह सब कुल के श्रावक हो गये न? ऐसा कुछ सम्यग्दर्शन होने के पश्चात् स्वरूप में एकाग्रता का ध्यान होता है। पंचम गुणस्थान में, चौथे गुणस्थान में, छठवें गुणस्थान में ध्यान होता है। यह ध्यान निर्जरा का कारण है। अशुद्धि का नाश करता है। कर्म का अभाव होता है और आत्मा में शुद्धि की वृद्धि होती है। उस ध्यान का लक्षण चलता है। कहो, समझ में आया?

फिर से, देखो! **शुद्ध स्वरूप में अविचलित चैतन्यपरिणति, सो यथार्थ ध्यान है।** है पहली लाईन? नटुलालजी! कहाँ है? हाँ, यह है। बराबर है। शुद्ध स्वरूप में... बहियों में कितना ध्यान रखते हैं कि कहाँ नामा है! खबर है या नहीं? शुद्धस्वरूप में अपना शुद्ध चैतन्य अनन्त गुण का पिण्ड, उसमें **स्वरूप में अविचलित...** चलित न होना। अन्दर वस्तुस्वरूप जो सम्यग्दर्शन में भान में आया है, ऐसी चीज़ में चलित नहीं होना; स्थिर हो जाना। ऐसी चैतन्य परिणति। ऐसी आत्मा की परिणति अर्थात् पर्याय, यह शुद्ध चैतन्य की परिणति। चेतनद्रव्य, अनन्त गुण। चैतन्यगुण ज्ञान-दर्शन आदि और उसकी परिणति, वह पर्याय। समझ में आया?

चेतन पूर्ण एक द्रव्य उसमें चैतन्य ज्ञान-दर्शन आदि अनन्त गुण और उस ओर के झुकाव से जो चैतन्य की परिणति अविचलित अवस्था होती है, यह उसका नाम उस पर्याय का नाम यथार्थ ध्यान है। डालचन्दजी! पर्याय समझे? अवस्था। द्रव्य ध्यान नहीं, गुण ध्यान नहीं। द्रव्य और गुण त्रिकाली ज्ञायकस्वरूप है। उस ओर के एकाकार झुकाव से यहाँ सम्यग्दर्शनपूर्वक की बात है। सम्यग्दर्शन बिना ध्यान-ब्यान होता नहीं। अज्ञानी को अभी वस्तु की भी खबर नहीं, क्या चीज़ है, कैसे उत्पन्न होती है, कहाँ से हटना, नौ तत्त्व की खबर नहीं, उसे तो ध्यान होता नहीं। सम्यग्दर्श होता नहीं तो उसे ध्यान होता नहीं।

सम्यग्दृष्टि को अविरत सम्यग्दृष्टि से पंचम, छठे गुणस्थान आदि में ध्यान किस प्रकार का होता है कि चैतन्यपरिणति वह यथार्थ ध्यान। परिणति अर्थात् अवस्था। निर्मल दशा। समझ में आया? चैतन्य त्रिकाली वस्तु उसके चैतन्य ज्ञान, दर्शन त्रिकाली गुण, उसके साथ अविनाभावी अनन्त शक्तियाँ, उसमें एकाकार होने से चैतन्य की परिणति निर्मलदशा, पुण्य और पाप के विकल्प से रहित ऐसी परिणति पर्याय उत्पन्न होती है। चौथे गुणस्थान में, पाँचवें गुणस्थान में, छठवें गुणस्थान में, समझ में आया? या सातवें में। वह यथार्थ ध्यान है। समझ में आया?

ओम... ओम... ओम... करे, वह ध्यान नहीं। वह तो सब विकल्प है। णमो अरिहंताणं, णमो अरिहंताणं, णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं। यह सब राग है, पुण्य है,

आस्त्रव है; ध्यान नहीं और धर्म नहीं। समझ में आया? ऐसी परिणति ध्यान, **वह ध्यान प्रगट होने की विधि अब कही जाती है;...** अर्थात् आत्मा में शुद्धि की वृद्धि ऐसी निर्जरा कैसे हो, ऐसे ध्यान की विधि कहने में आती है। **जब वास्तव में योगी,...** योगी अर्थात् धर्मी सम्यग्दृष्टि, सम्यग्दृष्टि को यहाँ योगी कहने में आता है। अज्ञानी और पीर के बाबा बाबा यह सब जंगल में नग्न होकर रहते हैं, वे योगी नहीं। समझ में आया? जिसकी दृष्टि अभी आत्मा अखण्ड आनन्द पूर्ण कौन, पर्याय क्या, गुण क्या, विकार क्या, संयोगी चीज़ का अस्तित्व क्या? नौ के अस्तित्व का भी अभी जिसे स्वीकार नहीं, उसे सम्यग्दृष्टि स्वभाव सन्मुख झुकाव होता नहीं। समझ में आया?

यहाँ योगी सम्यग्दृष्टि से लेना है। गृहस्थाश्रम में भी सम्यग्दर्शन प्राप्त हो, उसे भी योगी कहते हैं। आगे बढ़कर पंचम गुणस्थान में श्रावक हुआ, उसे भी योगी कहा जाता है। मुनि हुआ, वह तो अलौकिक दशा छठे गुणस्थान में वनवासी जंगल में रहनेवाले। सर्वज्ञ की वस्तु की आज्ञा प्रमाण आत्मा का अनुभव करके, निर्मलदशा अरागी, विकारी पर्यायरहित उत्पन्न होना, उसका नाम ध्यान और ध्यानी अथवा योगी कहने में आता है। कहो, समझ में आया? बहुत ही सूक्ष्म बात, भाई! मूल तत्त्व की वस्तु का अभ्यास नहीं होता, फिर उसे धर्म करना। **दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय का विपाक पुद्गलकर्म होने से...** अब देखो!

कर्म जड़ है। वह अजीवतत्त्व है, (ऐसा) ज्ञानी के लक्ष्य में है। सम्यग्दृष्टि को लक्ष्य में है कि पुद्गल कर्म एक है, उसका पाक होता है, वह अजीव है। वह अजीव पुद्गलकर्म होने से, दर्शनमोह एक कर्म है और चारित्रमोह एक कर्म है। उस अजीवतत्त्व में उसकी श्रद्धा में यह आ गया है। सम्यग्दृष्टि को यह कर्म अभी मुझमें बाकी है। क्योंकि वह अभी वीतराग परमात्मा नहीं हुआ। तो उसका अजीवतत्त्व का संयोग और कर्म का पाक, वह अजीव है, ऐसी ज्ञानी को लक्ष्य में अजीव की प्रतीति है।

ऐसा पुद्गलकर्म का पाक वह अजीव, पुद्गल, जड़ होने से, **उस विपाक को (अपने से भिन्न ऐसे अचेतन) कर्मों में समेटकर,...** जरा सूक्ष्म बात है। अपना स्वरूप तो सम्यग्दर्शन में अपना भाव आनन्द और शुद्ध आ गया है। अब सम्यग्दृष्टि को भी जो

शुभ और अशुभभाव है, उसमें कर्म का विपाक लक्ष्य में था और उसका अनुसरण करके शुभाशुभपरिणाम ज्ञानी को भी सम्यग्दृष्टि को भी होता था। शुभ और अशुभ। उन कर्मों को समेटकर उसमें डाल दिया। डाल दिया का अर्थ कर्म का विपाक अजीव में है। मेरी लक्ष्य करने की चीज़ थे। मुझमें नहीं।

शुभ और अशुभभाव जो मुझमें होता है, सम्यग्दृष्टि जानता है कि मुझमें पापभाव होता है। आर्तध्यान होता है, रौद्रध्यान होता है। समझ में आया? हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, भोग, वासना ज्ञानी को भी होती है। सम्यग्दर्शन का भान है। तो कहते हैं कि मेरी इस पर्याय में जो होता है, उसका लक्ष्य क्या? कर्म का विपाक उसका लक्ष्य है।

अजीव है, उसकी दृष्टि में भी उस विपाक को उसमें डाल दिया। अर्थात् उस ओर का झुकाव छोड़ दिया। हें? उस ओर का झुकाव छोड़ दिया। है न? कर्मों में समेटकर, उस विपाक को विपाक में रखा। अर्थात् सम्यग्दृष्टि कर्म के विपाक में जो लक्ष्य करता था, तब अपनी पर्याय में पुण्य-पाप का जो कर्म का अनुसरण करके अपनी पर्याय में कमजोरी थी, अब उसकी निर्जरा यहाँ करनी है।

इस विपाक का लक्ष्य छोड़कर विपाक को विपाक में रखा। उसका अर्थ विपाक का लक्ष्य छोड़ा। समझ में आया? समेटकर अर्थात् विपाक उसमें रखा। उसका अर्थ यह कि उससे लक्ष्य छोड़ दिया। समझ में आया? अपने में सम्बन्ध करता था। शुभ-अशुभपरिणाम होने पर विपाक का सम्बन्ध करता था, वह लक्ष्य छोड़ा और विपाक को विपाक में रखा, ऐसा कहने में आया है। भारी सूक्ष्म बात, भाई! समझ में आया?

तदनुसार परिणति से उपयोग को व्यावृत्त करके... अब दूसरी बात ली है। यह तो लक्ष्य छोड़ा तो उसका अनुसरण करके जो उस विपाक का अनुसारण करके, समकिती को अपने में शुभ और अशुभराग होता था। पुण्य-पाप का विकल्प मलिन भाव होता था समकिती को, **उस उपयोग को व्यावृत्त करके...** पर अनुसरण करना छोड़ दिया। उसका अर्थ अपने स्वभाव का उग्र अनुसरण किया। आहाहा! समझ में आया? यह धर्म होने की विधि, यह निर्जरा होने की विधि, यह धर्मध्यान होने की प्रगट विधि का प्रकार। तो कहते हैं कि **उपयोग को व्यावृत्त करके (-उस विपाक के अनुरूप...** अनुरूप समझे न?

कल आया था। यह कर्म का पाक है, (वह) सम्यग्दृष्टि जानता है कि है। परन्तु वह निमित्त है। निमित्त है। किसमें? अपनी पुण्य-पाप की अशुद्ध परिणति / पर्याय होती थी, उसमें वह निमित्त था। तो निमित्त था वह अनुकूल था। और उस अनुकूल या अनुसरण करने से अन्दर पुण्य-पाप की पर्याय, उसे अनुरूप कहा गया है। कर्म का पाक अनुकूल निमित्त और पाक को अनुसरण करके अपना आत्मा अपनी कमजोरी से पुण्य और पाप का भाव जो होता था, उसके अनुरूप। **विपाक को अनुरूप,....** यह अनुरूप या अनुकूल। अनुकूल या अनुरूप शब्द सुना है? अनुकूल-अनुरूप क्या कहते हैं? कि यह मेरे पुत्र हमें अनुकूल है। लो! ऐसा नहीं कहते? अनुकूल का अर्थ निमित्त। वह यहाँ ज्ञानी सम्यग्दृष्टि को अपना शुद्धस्वरूप दृष्टि में अनुभव में आया है। अभी बाकी रहे हैं, पुण्य-पाप के मैल भाव। यदि बाकी न रहे हों तो वीतराग हो जाये और पर से पृथक् न किया हो तो मिथ्यादृष्टि हो जाये। समझ में आया?

तो पुण्य-पाप का विकल्प राग से अपना स्वभाव पृथक् किया है। दृष्टि में ज्ञायकपना लिया है। पृथक् किया है परन्तु अभाव नहीं किया। तो अभाव करने के काल में क्या होता है?—कि जो कर्म की जड़ प्रकृति है, नौ तत्त्व में अजीवतत्त्व लक्ष्य में-प्रतीति में आये हैं। उनकी ओर के झुकाव से जो पुण्य और पाप अपनी पर्याय में शुभ, अशुभ, हिंसा, झूठ, चोरी, भोग आदि वासना थी, वह कर्म के निमित्त को अनुरूप। निमित्त को अनुरूप अपनी पर्याय निमित्त से अनुरूप और अनुरूप को कर्म का पाक अनुकूल। अनुकूल को निमित्त कहते हैं और नैमित्तिक पर्याय को अनुरूप कहते हैं। समझ में आया?

वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा ने नौ पदार्थ कहे। तो कहते हैं, देखो! उसमें नौ का भान आ गया है कि मैं ज्ञायक हूँ, ऐसी दृष्टि हुई। मेरी पर्याय में इतना स्वभाव का अनुसरण करके शुद्धता प्रगट हुई है, वह पर्याय संवर है और जितनी शुद्धि की वृद्धि है, वह निर्जरा है और पुण्य-पाप जो कर्म के पाक का अनुसरण करके अपने में उत्पन्न होता है, वह आस्रव और बन्ध है। अरूपी आत्मा की पर्याय। समझ में आया? वह अरूपी आत्मा की पर्याय जो पर का अनुसरण करके उत्पन्न होती थी (उसे) व्यावृत्त करके, **परिणमन**

में से उपयोग का निवर्तन करके... समझ में आया? अनजाने व्यक्ति को तो ग्रीक लेटिन (अटपटा) लगे ऐसा है। यह ग्रीक लेटिन जैसा क्या होगा यह?

कभी अभ्यास (नहीं) कि चैतन्य तत्त्व वीतराग क्या कहते हैं? सर्वज्ञ का पंथ क्या है? वीतराग तीन लोक का नाथ सौ इन्द्रों के पूजनीक! उन्होंने क्या तत्त्व कहा? यह तो पर का करो, ऐसा करो, ऐसा करो। कहते हैं धर्मी को अपने स्वभाव की दृष्टि होने पर भी, उसकी प्रतीति है कि मैं ज्ञायकभाव हूँ। उसके आश्रय से जितना संवर अर्थात् सम्यग्दर्शन में एकाग्रता उत्पन्न हुई है, उतना पर्याय में संवरतत्त्व है और जितना कर्म के पाक को अनुसरण करके, उस कर्म के अनुरूप अपनी पर्याय में-अवस्था में पुण्य-पाप के परिणाम होते हैं, वह आस्रव और बन्ध है और विपाक है; वह अजीव है। अजीव आया, पुण्य-पाप आये, संवर आया, आत्मा आया। संवर में शुद्धि की वृद्धि, वह शुभाशुभ परिणाम से हटकर जितनी एकाग्रता होती है, उतनी संवर की वृद्धि अर्थात् शुद्धि की वृद्धि अर्थात् निर्जरा है।

मुमुक्षु : दोनों एक साथ?

पूज्य गुरुदेवश्री : एक साथ। समझ में आया? अनुकूल निमित्त से होता है। वह निमित्त है न पाक? वह अपेक्षा से अनुरूप कहा है। है अपनी पर्याय अपने में तादात्म्य। परन्तु उसे अनुरूप क्यों कहा कि कर्म है न जड़, वह अनुकूल है। अनुकूल अर्थात् निमित्त और उसके अनुरूप हुई। अपनी पर्याय वह अनुरूप। पर्याय अपने में हुई। वह अनुरूप। किसे अनुरूप? निमित्त के अनुरूप। अपने निर्मल परिणाम में मलिन परिणाम जो थे, वे अनुरूप और कर्म का पाक अनुकूल। अनुकूल का लक्ष्य छोड़ दिया। विकारी पर्याय जो अनुरूप थी, वह छूट गयी।

फिर से। **विपाक के अनुरूप।** यहाँ विपाक को अनुरूप लेना है न? कर्म का पाक है परन्तु जो सम्यग्दर्शन हुआ परन्तु यदि वीतराग हो जाये तो बात पूरी! वीतराग पहले नहीं होता। सम्यग्दृष्टि तो संसार में राजपाट में भी पड़ा हो, छियानवें हजार स्त्रियों के (वृन्द में) पड़ा हो। क्षायिक सम्यग्दृष्टि। तो कहते हैं कि अपने आत्मा को अजीव के कार्य से भिन्न किया। पुण्य-पाप से पृथक् किया। ज्ञायकभाव में एकाकार दृष्टि की। अब

पुण्य-पाप जो उत्पन्न होते हैं, वह कर्म का पाक निमित्त है, वह अनुकूल। उसके अनुरूप विकार वह अपनी पर्याय। अपने आत्मा में विकारी पर्याय वह आत्मा के साथ अनित्य तादात्म्य है। अनित्य तादात्म्य है। नित्य तादात्म्य नहीं। उसमें दो भेद हैं। आत्मा में ज्ञान, दर्शन, आनन्द जो गुण हैं, वे नित्य तादात्म्य, नित्य तद्रूप है। और विकारी पर्याय है, वह अनित्य एक क्षण की समय की पर्याय में अनित्य तादात्म्य है। आहाहा! मालचन्दजी! यह माल की बात चलती है। अन्दर में क्या माल पड़ा है? देखो! आहाहा!

विकार पर्याय निमित्त वह विकार कर्म। उसे अनुरूप विकारी पर्याय। अपनी पर्याय में अनित्य तादात्म्य है। अपने आत्मा में, हों! अनित्य तादात्म्य है। परन्तु दृष्टि ज्ञायक पर नित्य तादात्म्य स्वभाव पर है। तो उसका (विकार का) कर्तव्य मेरा है, यह दृष्टि छूट गयी है। होता है। क्या कहा? समझ में आया? समयग्दृष्टि को भी पुण्य-पाप का भाव होता है। युद्ध का, भोग का, विषय का। हों! वह अनुरूप। किसे अनुरूप? कि वह विपाक कर्म निमित्त अनुकूल, उसके अनुरूप। हुआ किसमें? अपनी पर्याय में। आत्मा की पर्याय में। होने पर भी, सम्यग्चैतन्य ज्ञायक का भान है, तो वह कार्य मेरा है, ऐसी बुद्धि छूट गयी है, परन्तु परिणति रह गयी है। आहाहा! परिणति समझे? पर्याय। अवस्था है।

मैं करूँ, ऐसी बुद्धि छूट गयी है। परन्तु पुण्य-पाप की परिणति कर्म के निमित्त के अनुरूप है। और विकार के परिणाम को कर्म का पाक अनुकूल अर्थात् निमित्त है। यह अनुरूप आत्मा की पर्याय में सम्यग्दृष्टि को भिन्न तत्त्वरूप ज्ञान में भासित होता है। दया, दान, व्रतादि के विकल्प ज्ञायक से भिन्न तत्त्वरूप अन्तर में भासित होते हैं। हैं अवश्य। परन्तु मेरे ज्ञायकतत्त्व से भिन्न हैं। है पर्याय में, परन्तु कर्तृत्वबुद्धि से रहित है। परिणति सहित है।

मुमुक्षु : अभिप्राय में भासते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, भासते हैं। एक समय उपयोग थोड़ा, असंख्य समय में उसमें काम करे। परन्तु उसमें ऐसा कार्य में भासन होता है। समझ में आया? एक समय पकड़ा नहीं जा सकता।

मुमुक्षु : ....दोनों के साथ अनित्य तादात्म्य।

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों के साथ तादात्म्यसम्बन्ध है। एक ही समय में, एक ही समय में। दोनों के साथ अनित्य तादात्म्यसम्बन्ध। लो! भाई ने प्रश्न पूछा विपाक का। फिर से अधिक स्पष्ट करते हैं। देखो! यहाँ नौ तत्त्वसहित की अनुभवदृष्टि हुई, उसकी बात चलती है न? तो आत्मा ज्ञायकस्वरूप है, अकेला चिद्घन, ऐसी द्रव्यरूप बुद्धि हो गयी। तो पुण्य-पाप के परिणाम से बुद्धि हट गयी। अजीवतत्त्व का कार्य मेरा है, ऐसी बुद्धि हट गयी। और अपने स्वभाव की ओर जितना जम गया, उसकी दृष्टि को सम्यग्दर्शन कहते हैं। और उस सम्यग्दर्शन को संवर कहते हैं और संवर के साथ थोड़ी शुद्धि भी है तो उसे निर्जरा कहते हैं। परन्तु विशेष निर्जरा कैसे होती है, यह बात चलती है। तो वह जीवद्रव्य दृष्टि में आया है। उसके आश्रय से थोड़ी संवर, निर्जरा उत्पन्न हुई है, वह भी प्रतीति में है, परन्तु संवर निर्जरा आत्मा के साथ पर्याय से अनित्य तादात्म्य है। परन्तु वास्तव में शुद्ध है तो आत्मा के साथ अभेद हो जाते हैं और पुण्य-पाप की पर्याय उत्पन्न होती है, अनित्य तादात्म्य होती है, तथापि वह स्वभाव से भिन्न है। आहाहा! भाई!

मुमुक्षु : भारी कठिन!

पूज्य गुरुदेवश्री : हें?

भगवान आत्मा... वह तो नौ पदार्थ और उसमें से निकालकर मात्र आत्मा की दृष्टि हुई, तथापि नौ की प्रतीति वर्तती है। समझ में आया? जितना उस वस्तु का स्वभाव से आश्रय (से), विकल्प, पुण्य-पाप से पृथक्, अपनी परिणति निर्मल हुई, वह तो स्वभाव के साथ अभेद हुई, इसलिए उसे कोई अनित्यतादात्म्य की कुछ आवश्यकता नहीं। स्वभाव के साथ अभेद हुई। समझ में आया? है तो अनित्य एक समय की पर्याय। परन्तु पृथक् पड़े तो लक्ष्य करने में आता है कि यह पर्याय। परन्तु है अभेद। और जो राग और द्वेष उत्पन्न होते हैं समकिती को चौथे, पाँचवें, छठवें (गुणस्थान में)। राग तो मुनि को भी होता है पंच महाव्रत के, यह सब राग हैं। पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण, यह सब राग है। धर्म या संवर-बंवर नहीं। वह राग आस्रव है, ऐसी ज्ञानी को ज्ञान में प्रतीति हैं। अनित्य तादात्म्यरूप है। परन्तु मेरा कर्तव्य है, ऐसी बुद्धि छूट गयी है परन्तु

परिणमन में न्यूनता रह गयी है, इसका नाम आस्रव तत्त्व कहते हैं और दूसरे प्रकार से कहें तो त्रिकाल स्वभाव थोड़ा रुक गया है सम्यग्दृष्टि को भी, उतना भावबन्ध है। वह अनित्य तादात्म्य है। पुण्य-पाप, विकार उसकी पर्याय में होता है, कहीं जड़ में नहीं। पुण्य-पाप कहीं जड़ में नहीं होते। हैं तो आत्मा की पर्याय में। उस पर्याय में निर्मल उत्पन्न हुए वह तो अपने स्वभाव के अनुकूल हुई और उत्पन्न हो गये। और जितना विकार रहा, वह तो कर्म के अनुरूप रहा। कर्म उसमें निमित्त और उसे अनुरूप विकार। उस विकार से हटकर। ऐसा आया न?

देखो! **अनुरूप परिणमन में से...** अनुरूप परिणमने से अर्थात् विकारी शुभ-अशुभभाव, पुण्य-पाप के भाव, हिंसा-झूठ के भाव, भोग के भाव। ऐसे परिणमन से **उपयोग को व्यावृत्त करके मोही, रागी और द्वेषी न होनेवाले ऐसे...** पर में एकत्बुद्धि नहीं, वह मोही नहीं और रागी-द्वेषी भी नहीं। वह राग-द्वेष के परिणाम थे। वहाँ से उपयोग को हटाकर अपने ज्ञायक में जोड़ दिया। **ऐसे उस उपयोग को अत्यन्त शुद्ध आत्मा में ही...** देखो, अब! ऐसे उस उपयोग को, उपयोग वह पर्याय है, शुद्ध पर्याय। पुण्य-पाप की पर्याय से हटकर अपनी पर्याय में शुद्धता हुई, वह उपयोग है, व्यापार है, पर्याय है।

उस उपयोग को अत्यन्त शुद्ध आत्मा में ही... वह द्रव्य है। अत्यन्त शुद्ध आत्मा में रोका, वह द्रव्य है। 'अत्यन्त शुद्ध आत्मा', वह द्रव्य है, वस्तु है। 'उपयोग', वह पर्याय है। पर्याय को द्रव्य में रोका। समझ में आया? यह समझे बिना का, यह समझे नहीं उसे ध्यान नहीं होता। सम्यग्दृष्टि को ध्यान होता है, उसे भी ऐसे विवेक से होता है। ऐसे अपवास कर डाले और ऐसे बैठ जाये और ऐसे कर जाये... ताव काय ठाणेणं माणेणं अप्पाणं वोसिरामी काउसग्ग, किया। मालचन्दजी! आता है या नहीं? धूल में भी काउसग्ग नहीं। अभी आत्मा क्या है, गुण क्या है, पर्याय क्या है, निर्मल क्या है, संवर क्या है, संयोग क्या है। कितना संयोग का तत्त्व है। समझ में आया? पर्याय कितनी एक समय में है। निर्मल कितनी, मलिन कितनी किसमें है। उसका विवेक नहीं उसे सम्यग्दर्शन नहीं और सम्यग्दर्शन बिना कभी भी ध्यान होता नहीं। समझ में आया?

बात भाई कठिन है, प्रभु! जहाँ वस्तु जैसी है, वैसी आनी चाहिए या नहीं?

मुमुक्षु : आप तो नयी-नयी बातें सुनाते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : नवीनता कुछ नहीं। इसने सुनी नहीं, समझी नहीं। नवीनता है। वस्तु तो अन्तर की है। परन्तु कभी इसने अभ्यास में लिया नहीं। परिचय में दूसरा अभ्यास कर-करके मर गया। शास्त्र ग्यारह अंग पढ़ गया, लो न! परन्तु उसमें यह क्या चीज़ है, ऐसा विवेक अन्दर में किया नहीं। दूसरे पठन की तो बात भी कहाँ है? वह तो अज्ञान पठन है। क्या वकील के भी अज्ञान पठन होंगे, रामजीभाई का? कुज्ञान लो! ऐसे बड़े वकील। एक दिन में दो सौ रुपये लेते थे। लो, पच्चीस वर्ष पहले। वह कुज्ञान होगा?

मुमुक्षु : आप कहते हो कुज्ञान। चतुर हो तो कुज्ञान कहलाये?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन चतुर है? वकालत की बुद्धि सब कुज्ञान है। ऐई! डालचन्दजी! यह तम्बाकू की बुद्धि सब कुज्ञान है। भाई को सुना तो दें डालचन्दजी को, कि सब बहुत ही होशियार है। यह बुद्धि कुज्ञान है। धर्म के पठन के अतिरिक्त दूसरे सब पठन कुज्ञान है। अरे! शास्त्र के पठन भी अपने ज्ञायक का ज्ञान हुए बिना, वह भी कुज्ञान है। नथुलालजी! समझना तो पड़ेगा न, क्या सच्चा है? ऐसी की ऐसी जिन्दगी निकाल डाले। अनन्त काल गया। अनन्त बार मुनि हुआ, त्यागी हुआ, अनन्त बार ब्रह्मचारी हुआ। समझ में आया? ग्यारह अंग अनन्त बार पढ़ डाला। पढ़ डाला। नौ पूर्व पढ़ डाला। नौ पूर्व शास्त्र, हों! क्या चीज़ है। सर्वज्ञ प्रमाण कैसे प्राप्त होता है, ऐसा कभी प्रयत्न किया नहीं। ओहोहो! क्या कहा, समझ में आया?

ऐसे उस उपयोग को अत्यन्त शुद्ध आत्मा में ही... ऐसा उपयोग। कौन सा उपयोग? कि जो कर्म निमित्त था, और उसके अनुरूप जो पुण्य-पाप का विकार था। वह व्यापार छोड़ दिया। इसका अर्थ-छोड़ दिया, यह भी व्यवहार कथन है। ऐसे छोड़ नहीं सकता। स्वभाव सन्मुख एकाग्र होने पर वह परिणाम छूट गये अथवा उत्पन्न नहीं हुए। और जो शुद्ध पर्याय हुई, उसे स्वभाव में जोड़ दिया। समझ में आया?

स्वभाव क्या? कि अत्यन्त शुद्ध आत्मा। उस स्वभाव का द्रव्य, उसे द्रव्य कहते हैं। अत्यन्त शुद्ध आत्मा, उसका नाम द्रव्य और उपयोग जो पहले कहा, वह पर्याय। उस

निर्मल पर्याय को अपने शुद्ध आत्मा में जोड़ दिया। इसका नाम योगी कहा जाता है। यह क्रिया हो वह योगी। देरियाजी! यह योगी!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो पूरी दूसरी बात है। बात सत्य है भाई! १०० में १०० प्रतिशत। अनन्त काल में इसने यह बात विचार में भी नहीं ली। थोथे थोथा बाहर की बात और ऐसा और ऐसा और ऐसा।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ कहते हैं **उपयोग को अत्यन्त शुद्ध आत्मा में ही...** देखो! निश्चय किया। **निष्कम्परूप से लीन करता है,...** लीन करते हैं क्या? कि अपने पुरुषार्थ से उपयोग को अन्दर में लीन करता है। कोई कर्म मार्ग दे तो लीन होते हैं, ऐसा है नहीं। कर्म भिन्न है जड़। उनका लक्ष्य छूट गया। समझ में आया?

तब उस योगी को— देखो! अब वह योगी अर्थात् ध्यानी। कि **जो कि अपने निष्क्रिय चैतन्यरूप स्वरूप में विश्रान्त है,...** जो कि अपने निष्क्रिय चैतन्य स्वरूप में विश्रान्त है। कल यहाँ तक आया था। अपना निष्क्रिय चैतन्यरूप स्वरूप, यह द्रव्य लिया। **निष्क्रिय चैतन्यरूप स्वरूप में विश्रान्त है,...** स्थिर हुआ है। विश्रान्ति ली है। उपयोग वहाँ ध्यान में जम गया है। वचन, मन, काया को भाता नहीं। वह स्वभाव में बाहर से हट गया तो **वचन-मन-काया को नहीं भाता...** मन, वचन, काया के ओर की भावना नहीं। छूट गयी। शुभ-अशुभभाव भी छूट गये। मन, वचन, काया को भाता नहीं। चिन्तवन नहीं करता। नहीं ध्याता—अनुभव करता। भाने का नीचे अर्थ है।

और स्वकर्मों में व्यापार नहीं करता... आहाहा! देखो! दोनों नास्ति की बात ली है। अपने शुद्ध स्वरूप में वचन, मन, काया को भाता नहीं। अथवा वचन, मन, काया के परिणाम के ओर की भावना छूट गयी। स्वभाव सन्मुख की भावना-एकाग्रता हुई तो **स्वकर्मों में व्यापार नहीं करता...** देखो! स्वकर्मों द्वारा लिया। नीचे (फुटनोट में) व्यापार का अर्थ है। व्यापार २ है न? **व्यापार = प्रवृत्ति। (स्वरूपविश्रान्त योगी को...)** ओहो! विश्रान्त है। देखो! विश्रान्त लिखा है। विश्रान्ति लेनी है? कहते हैं या नहीं? विश्रान्ति

लेनी है। कहाँ लेनी है ? अत्यन्त शुद्ध चैतन्य भगवान में विश्रान्ति लेना, वह विश्रान्ति है।

स्वरूपविश्रान्त योगी को अपने पूर्वोपार्जित कर्मों में प्रवर्तन नहीं है,... यह स्वकर्म की व्याख्या। जो जड़कर्म है न, उसे स्वकर्म निमित्त से कहा। निमित्तसम्बन्ध है न ? **क्योंकि वह मोहनीयकर्म के विपाक को अपने से भिन्न-अचेतन-जानता है...** सम्यग्दृष्टि मोहकर्म को तो अचेतन मानता है, अजीव मानता है, जड़ मानता है, धूल मानता है। जैसे यह धूल है, वैसे कर्म सूक्ष्म धूल है। कहो, समझ में आया ?

तथा उस कर्मविपाक के अनुरूप... लो, आया। देखो ! कर्म का पाक जो जड़ में आया, उसके अनुरूप परिणमन से उससे उपयोग को विमुख किया है। उस ओर का शुभाशुभ परिणमन जो कर्म के निमित्त के अनुरूप हैऔर अपने परिणाम में, वह कर्म का विपाकमात्र निमित्त (है)। पृथक् चीज़ है हों, इतना। कराता नहीं। आत्मा में कर्म से विकार होता नहीं। कर्म से विकार मुझमें होता है, (ऐसा माननेवाले) को तो अजीव और आस्रवतत्त्व की श्रद्धा नहीं है। अजीव पृथक् तत्त्व है, आस्रव पृथक् तत्त्व है। नौ में दो तत्त्व पृथक् है। कोई ऐसा माने कि मुझे अजीवतत्त्व से यह विकार आया, तब तो अजीव को (और अपने को) दोनों को एक माना। समझ में आया ? क्या करें भाई ! कर्म का जैसा उदय आवे, वैसा हमें विकार करना पड़ता है। वह तो मूढ़ है, मिथ्यादृष्टि है। स्वच्छन्दी है। क्योंकि कर्म अजीव और पुण्य-पाप परिणाम तुझमें हुए, वे आस्रव। दो तत्त्व नौ में भिन्न हैं। एक अजीव और एक आस्रव। तो अजीव से आस्रव हुआ तो अजीव और आस्रव एक हो गये। समझ में आया ?

वहाँ तो विपाक है, इतना सिद्ध किया। परन्तु उसका अनुसरण करे तो विपाक होता है। न करे तो विकार नहीं होता। सम्यग्दृष्टि को भी। आहाहा ! कितनी बात को स्पष्ट करते हैं। विपाक है, अजीवतत्त्व है, प्रतीति में है, जिसका अनुसरण जितना में करूँ, उतना विकार होता है। मुझमें होता है। मेरे स्वभाव में नहीं। परन्तु इतनी मलिनता है। तो उस अनुरूप परिणमन से उसने उपयोग को विमुख किया। लो ! उस परिणमन से हटा, परिणमन से हटकर, विपाक का लक्ष्य तो था परन्तु परिणमन से हटकर स्वरूप में एकाग्रता की। वह स्वकर्म का निमित्त है न अपने में। स्वकर्म हुआ न।

किसी का कर्म नहीं। निमित्तरूप से कर्म अपने में है। आस्रव भी अपने नहीं। स्वकर्म अपना कहा। वह स्वकर्म निमित्त विपाक है या नहीं अन्दर में? अपने सम्बन्ध में है या नहीं? अपने सम्बन्ध में है या नहीं? या दूसरे के सम्बन्ध में है और यहाँ आस्रव होता है, ऐसा नहीं है।

एकक्षेत्रावगाह कर्म जड़ अपने क्षेत्रावगाह में रहे हैं। उसे यहाँ स्वकर्म कहा गया है। समझ में आया? लो! कहाँ आया। देखो! **स्वकर्मों में व्यापार नहीं करता उसे...** अर्थात् दो बात हुई। एक तो धर्मी जीव अपने सम्यग्दर्शन के भान में अशुद्ध की परिणति परलक्ष्य से थी, उस अशुद्ध परिणति का लक्ष्य छोड़कर, अशुद्ध परिणति भी छोड़ दी। अर्थात् शुद्धस्वभाव में लीन दृष्टि सम्यग्दर्शन है, तो राग से भिन्न विवेक तो हो गया। उसमें विशेष लीन हुआ, वह चारित्र हुआ। वह चारित्र हुआ, ध्यान हुआ। ध्यान हुआ, वह निर्जरा हुई। एक-एक तत्त्व पर्याय-नौ तत्त्व में जीव और पुद्गल दो द्रव्य तत्त्व है और सात पर्याय तत्त्व है। समझ में आया?

जीव और कर्म पुद्गल आदि या दूसरे अजीव द्रव्य, द्रव्य है वस्तु। और दोनों के संयोग में सात पर्याय है। पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष। ये सात पर्याय हैं। गुण नहीं, द्रव्य नहीं। समझ में आया? तो पर्याय में कितनी मलिनता है और वह मलिनता छूटती है, वह बात करते हैं।

मुमुक्षु : जीव की है।

पूज्य गुरुदेवश्री : जीव की पर्याय है। अपनी शुद्ध। शुद्ध है न? अपने से प्रगट हुई, वह शुद्ध है। और आस्रव है, पुण्य-पाप वह अशुद्ध है, मलिन है। समझ में आया? संवर, वह शुद्ध पर्याय है, निर्जरा भी शुद्ध पर्याय है, मोक्ष भी पूर्ण शुद्ध पर्याय है। मोक्ष भी आत्मा की निर्मल पर्याय-अवस्था है। समझ में आया? सुनाई देता है थोड़ा-थोड़ा? हाँ, सुनाई देता है। इनको सुनाई देता है, इनको नहीं सुनाई देता। एक तो रह गया है कान ठीक! नहीं, नहीं, ध्यान तो बराबर है।

मुमुक्षु : जीव अजीव के साथ सात तत्त्व, वह पर्याय है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह पर्याय है। अजीव में सात भिन्न है। उस अजीव में

सात भिन्न, सात भिन्न, सात भिन्न। दो, वह उसके दोष अजीव हैं, उसमें जो विकारी कर्मरूप पर्याय हुई, वह पर्याय हुई। उस पर्याय में भी जितना द्रव्यास्रव आनेवाला है, उसे द्रव्यास्रव पर्याय जड़ की कहते हैं। समझ में आया? वह आनेवाले हैं। नहीं आनेवाले, उसे द्रव्य संवर कहते हैं, जड़ की पर्याय को। बन्ध होने को द्रव्यबन्ध कहते हैं। बन्ध होता है, उसे द्रव्यबन्ध कहते हैं और भावबन्ध यहाँ छोड़ा और द्रव्यबन्ध छूट गया, उसे निर्जरा का तत्त्व-द्रव्यनिर्जरा तत्त्व पर्याय में कहते हैं। जड़ की पर्याय। सात में जरा सूक्ष्म पड़े, इसलिए थोड़ा लेते हैं। अजीव में भी सात और जीव में भी सात हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अस्ति। द्रव्य? नहीं, यह नास्तिरूप है। द्रव्य को नास्ति कहा न? द्रव्य संवर परमाणु आनेवाले नहीं थे, उसे द्रव्यसंवर कहा। परन्तु यह बहुत सूक्ष्म पड़ती है। एक-एक में नहीं लेते। आत्मा में शुद्ध श्रद्धा सम्यग्दर्शन हुआ, वह संवर। तो उस समय मिथ्यात्व का आस्रव रुक गया। रुक गया का अर्थ कि आनेवाला नहीं था। उसे द्रव्यसंवर कहो, द्रव्यसंवर कहा, क्योंकि रुक गया इसलिए द्रव्यसंवर कहा। रुक गया इसलिए। मिथ्यात्व किया तो भावबन्ध। और नये रजकण आये, वे द्रव्यास्रव।

समकित दृष्टि को तो भावमिथ्यात्व है नहीं। मिथ्यात्व का द्रव्यास्रव भी है नहीं। अब समकिती को अव्रत, प्रमाद, कषाय के परिणाम रहे, वे भावास्रव हैं। और जितना भावास्रव है, उस प्रमाण में परमाणु-रजकण आनेवाले हैं। यहाँ आस्रव हुआ तो कषाय के रजकण को द्रव्यास्रव कहा। प्रमाद के रजकण इतने आये तो द्रव्यास्रव। कषाय भी इतनी आयी तो द्रव्यास्रव। वह तो बहुत सूक्ष्म बात है। और स्वभाव के आश्रय से जितने परिणाम रुक गये, वे भावसंवर और तब जो रजकण आनेवाले नहीं थे, उसे द्रव्यसंवर कहा। वहाँ शुद्धि की वृद्धि हुई, वह भावनिर्जरा। कर्म के रजकण का छूट जाना, वह द्रव्य निर्जरा।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह जड़ में कहा। जड़ में कहा न?

मुमुक्षु : लकड़ी के

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, लकड़ी के नहीं। उसके साथ सम्बन्ध ही नहीं। अन्दर कर्म के साथ सम्बन्ध है। हाथ के साथ सम्बन्ध नहीं। सूक्ष्म रजकण के साथ सम्बन्ध है। अन्दर कर्म के साथ सम्बन्ध है। हाथ के साथ सम्बन्ध नहीं। यह तो नोकर्म तो जड़ है, पर है। आत्मा में जो कर्म रजकण पड़े हैं, उनके साथ आत्मा को द्रव्य और भावपर्याय के साथ सम्बन्ध है। हाथ के साथ सम्बन्ध नहीं। वह तो बाह्य पदार्थ है। अन्तर में आठ कर्म के रजकण पड़े हैं, सूक्ष्म धूल। वह निमित्त अपनी पर्याय में अनुकूल से जो विकार, वह नैमित्तिक। अब जब विकार करता है, वह भावास्रव हुआ और कर्म के नये रजकण आते हैं, वह द्रव्यास्रव हुआ। वह द्रव्यास्रव जड़ की पर्याय है और जो आस्रव स्वभाव के आश्रय से रुक गया, वह भावसंवर हुआ। वहाँ द्रव्यास्रव आनेवाला नहीं था, उसे द्रव्यसंवर कहा। वह जड़ की पर्याय है। जरा थोड़ी अधिक सूक्ष्म है। सभा में साधारण बात नहीं पकड़ में आये।

यहाँ तो कर्म और आत्मा के बीच सात तत्त्व है। पर के साथ कोई सम्बन्ध नहीं। यह तो शरीर और नोकर्म जड़-पर है।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : स्थिति ऐसी है। आठ कर्म। यह अवस्था में प्रकार पड़ते हैं, बस। उस कर्म की स्थिति। द्रव्यकर्म कहते है न? द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म, ये तीन बोल आते हैं न? तारणस्वामी में तो बहुत आते हैं। उसमें भी जिनागम के शब्दरूप हैं। द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म। द्रव्यकर्म कौन? आठ कर्म जड़। नोकर्म कौन? कि यह वाणी, शरीर आदि वह नोकर्म। भावकर्म कौन? कि आत्मा में पुण्य-पाप के विकार हो, वह भावकर्म। भावकर्म अरूपी, जड़कर्म रूपी, नोकर्म रूपी परन्तु स्थूल बाह्य चीज़।

इन तीनों से रहित भगवान ज्ञायकमूर्ति की दृष्टि होना, उसका नाम सम्यग्दर्शन। उस समय कर्म का आस्रव रुक गया, उसे द्रव्यसंवर कहा गया। रुक गया का अर्थ?— आनेवाला था और रुक गया, ऐसा नहीं। बहुत सूक्ष्म बात है। आनेवाला नहीं था, उसे

द्रव्यसंवर कहने में आया है। समझ में आया? यहाँ आयेगा अभी। थोड़े समय में बहुत समझकर जन्म-मरण टले, इतना सीख ले। दूसरा सब भले भूल जा भले। यह आयेगा। अभी आयेगा। जिससे जन्म-मरण का अन्त आवे, वह बात सीख ले। दूसरी छोड़ दे। बुद्धि थोड़ी हो या न हो, उसके साथ सम्बन्ध ही नहीं है। क्यों सुमेरुमलजी! लो! **नहीं भाता और स्वकर्मों में व्यापार नहीं करता...** अर्थात् जो जड़कर्म है, उस ओर का लक्ष्य छोड़ देता है। **सकल शुभाशुभकर्मरूप ईंधन को जलाने में...** देखो! यह शुभाशुभकर्म जड़, हों! मिट्टी। यह शुभाशुभकर्मरूप ईंधन अर्थात् लकड़ी। **जलाने में समर्थ होने से अग्निसमान ऐसा,...** आत्मा में सम्यग्दर्शनसहित जो उग्ररूप से एकाग्रता का ध्यान हुआ, वह अग्नि समान **परमपुरुषार्थसिद्धि के उपायभूत ध्यान प्रगट होता है।**

एक गाथा में तो बहुत बात ली है। जड़ के साथ बहुत नहीं कहते, क्योंकि जड़कर्म है न, उस कर्म की अवस्था में एक आनेयोग्य अवस्था, एक रुकनेयोग्य अवस्था। वह और जड़ की अवस्था है। उस जड़ की सात पर्याय है। आत्मा में यह पुण्य-पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध, मोक्ष यह आत्मा की पर्याय है। समझ में आया?

केवलज्ञान, केवलदर्शन उत्पन्न हो, वह भी एक पर्याय है। वह तो अपना स्वरूप ही है। केवलज्ञान, केवलदर्शन, मोक्ष, वह अपनी पर्याय है। परन्तु वह अपना स्वरूप परिणमन है, सिद्ध सादि अनन्त परिणमन करते हैं। वे अपने परिणमन के आनन्द का अनुभव समय-समय में भिन्न-भिन्न है। एक समय में आनन्द है, वह दूसरे समय में नहीं है। वैसा सही, परन्तु वह नहीं। ऐसी पर्याय सिद्ध में भी सादि-अनन्त है। अनन्त पर्याय सिद्ध में उत्पन्न होती है। बहुत ही सूक्ष्म। सात तत्त्व का, नौ तत्त्व का ज्ञान और उसमें सम्यग्दर्शन क्या, इस बात में सब घोटाला उठा है।

कर दिया। उसने ऐसा कर दिया, उसने ऐसा कर दिया, उसने ऐसा किया, यह सब मिथ्यात्व का पोषण है। कौन करे तेरा? जड़ का कार्य तू नहीं कर सकता और पुण्य-पाप का कार्य मेरा मानना, वह भी मिथ्यात्व है। तेरी पर्याय में उत्पन्न होनेवाला विकार। समझ में आया? कर्ता हो तो पूरे द्रव्य को विकारी माना। सुमेरुमलजी! दूसरे

का कौन करे और किससे हो ? समझ में आया ? **अग्निसमान ऐसा, परमपुरुषार्थसिद्धि के उपायभूत ध्यान प्रगट होता है।**

मुमुक्षु : ..... उठा लाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन उठा लाये ? धूल में भी उठा न लावे। **परमपुरुषार्थसिद्धि के उपायभूत ध्यान प्रगट होता है। उसका परमपुरुषार्थ,...** है न नीचे ? **पुरुषार्थ=पुरुष का अर्थ; पुरुष का प्रयोजन; आत्मप्रयोजन। (परमपुरुषार्थ अर्थात् आत्मा का परम प्रयोजन मोक्ष है,...** देखो ! **और वह मोक्ष ध्यान से सधता है, इसलिए परमपुरुषार्थ की (-मोक्ष की) सिद्धि का उपाय ध्यान है।)** यह सम्यग्दर्शनसहित का ध्यान है। समझ में आया ? इसके अतिरिक्त मोक्ष का उपाय और मोक्ष प्रगट नहीं होता। विशेष कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

प्रवचन नं. ४५, गाथा-१४६
दिनांक - ११-१०-१९६४, आसोज शुक्ल ६, रविवार

आज अधिकार जरा सूक्ष्म आया है। ध्यान का अधिकार हो तो सूक्ष्म ही होगा। ध्यान सम्यग्दर्शन के पश्चात् होता है, यह बात अन्दर में अब कहेंगे। आगे पण्डितजी ने लिखा है। यहाँ नौ पदार्थ हैं, उनकी प्रत्येक की पृथक्-पृथक् अवस्था और व्यवस्था और कार्य है। समझ में आया? नौ पदार्थ के नौ कार्य हैं। नौ कार्य कहो या नौ मार्ग कहो। समझ में आया?

यह इसमें ही है न? पहली इसमें ही गाथा है। देखो! पहली। देखो! पढ़ो भाई! देखो! कलश है। नौ पदार्थ के नौ मार्ग हैं, देखो! पाँचवाँ कलश है, तीसरे पृष्ठ पर। हिन्दी है न हिन्दी? तीसरे पृष्ठ पर पाँचवाँ कलश है। अमृतचन्द्राचार्य महाराज! जिन्होंने यह टीका की है। वे कहते हैं। है?

पश्चात् (दूसरे अधिकार में), जीव और अजीव—इन दो की पर्यायोंरूप नौ पदार्थों की—कि जिनके मार्ग अर्थात् कार्य भिन्न-भिन्न प्रकार के हैं, उनकी—व्यवस्था प्रतिपादित की है। यह चलता है वह। क्या कहा? समझ में आया? जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष। इन नौ पदार्थों का कार्य भिन्न है। इसका अर्थ कि नौ का मार्ग भी भिन्न है। समझ में आया? देखो! उसमें लिखा है न?

जीव और अजीव—इन दो की पर्यायोंरूप नौ पदार्थों की.... जीवद्रव्य है, वह तो ज्ञायकद्रव्य है। अनन्त गुण का पिण्ड। और अजीवद्रव्य है, वह कर्म आदि, शरीर आदि भी यहाँ तो अपने मुख्य कर्म लेना है। आवे तो अजीव पदार्थ का सब। अजीवद्रव्य है, और कर्म दोनों की सात पर्याय लेनी हैं न? तो पर के साथ सम्बन्ध नहीं है। आत्मा को कर्म के साथ सम्बन्ध संयोग-वियोग से सात पर्याय होती है। समझ में आया?

अभी नौ तत्त्व किसे कहना और मार्ग क्या, यह बात चलती है। तो जीव और पुद्गलकर्म दो पदार्थ है द्रव्य और उनके संयोग-वियोग से आत्मा में सात पर्यायें होती हैं और पुद्गल में भी सात पर्यायें जड़ में होती हैं। नौ के नौ मार्ग अर्थात् नौ कार्य हैं।

यहाँ जीव का कार्य तो, जीवमार्ग तो ज्ञायकभाव है। जाननेवाला, देखनेवाला उसका कार्य जानने-देखने का है। समझ में आया?

जड़ का कार्य उसकी पर्याय जड़ में होना पर्याय जड़ में होना। ऐसा कार्य। और फिर आत्मा में पुण्य परिणाम हो दया, दान, भक्ति, व्रतादि के परिणाम वे पुण्यपरिणाम, वह बन्ध का मार्ग है, वह आस्रव है। हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, भोग वह बन्ध का मार्ग है पाप। यह दो पर्याय है। पुण्य और पाप यह दो आत्मा की पर्याय है। दोनों का कार्य भिन्न है। दोनों का मार्ग भिन्न है और जड़ में भी कर्म के परमाणु आवें, वह पुण्यभाव है। रजकण की पर्याय का आना वह द्रव्यपुण्य की पर्याय जड़ की है। उसे यहाँ पाप हुआ, नये पाप के रजकण आये, वह जड़ की पर्याय है। समझ में आया?

अब जब यहाँ वह आस्रव। पुण्य और पाप दोनों मिलकर आस्रव है। तो वह आत्मा की पर्याय में विकार और पर के रजकण आनेवाले, उसे द्रव्य-जड़ आस्रव कहते हैं। अपने आत्मा में शुद्ध ज्ञायकस्वभाव की ओर दृष्टि होकर अपनी पर्याय में जितनी शुद्धि उत्पन्न हो, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्शान्ति अरागी परिणति, उसका नाम जीव की संवर पर्याय कहने में आता है। उस संवर पर्याय का मार्ग, कार्य मोक्ष का कारण है। वह संवर अपना मार्ग-अपना कार्य भिन्न रखता है।

और निर्जरा, उस शुद्धि की वृद्धि हुई, शुद्धि हुई, उसमें स्वभाव के एकाग्र ध्यान द्वारा शुद्धि की वृद्धि हो, वह निर्जरा का-भावनिर्जरा कार्य है। यहाँ संवर हुआ तो नये रजकण आने से रुक गये। रुक गये का अर्थ आनेवाले नहीं थे, उसे द्रव्यसंवर की जड़ की पर्याय कहा। और यहाँ आत्मा में निर्जरा हुई तो कर्म में जड़ की अवस्था छूट गयी, वह द्रव्यनिर्जरा कहने में आयी। वह जड़ की पर्याय है।

बन्धमार्ग, आत्मा में जो त्रिकाल स्वभाव शुद्ध है, जितना राग-द्वेष में रुकता है, वह बन्धभाव है, वह बन्धमार्ग है, वह बन्धकार्य है। उन्मीष, नये रजकण आना और रुक जाना, वह द्रव्यबन्ध है। आत्मा में पूर्ण शुद्धि का होना, वह मोक्ष पर्याय है और रजकण का सर्वथा छूट जाना, वह द्रव्यमोक्ष है, वह जड़ की पर्याय है। कितना याद रखना इसमें? देखो! सेठ कठिन कहते हैं। यह तो इसकी मूल चीज़ नौ पदार्थ है। पश्चात् मोक्षमार्ग का वर्णन, है न देखो! नवपदार्थपूर्वक मोक्षमार्ग प्रपंचवर्णन, प्रपंच

अर्थात् विस्तार। तो अभी नौ पदार्थ क्या, यह खबर नहीं तो उसे मोक्षमार्ग कहाँ से होगा। समझ में आया?

नौ का भिन्न कार्य, नौ का भिन्न मार्ग। तो अजीवकर्म का मार्ग अपनी पर्यायरूप होना, उसे अपने में पुण्य-पाप का होना, वह नहीं। वह कार्य उसका नहीं। अपने में पुण्य-पापरूप आस्रव होना, वह अपनी विकारी पर्याय का कार्य। संवर, निर्जरा, मोक्ष होना वह अपनी निर्मलपर्याय का कार्य। पहली चीज़ ही अभी तो अन्य से भिन्न क्या भगवान कहते हैं और भगवान के मार्ग में ऐसी दूसरी चीज़ होती नहीं। उसकी अभी खबर नहीं। नौ का पन्थ क्या? रास्ता क्या? मार्ग क्या? किस प्रकार सम्यग्दर्शन होता है, किस प्रकार उसे आत्मा में शुद्धि होती है। समझ में आया?

यहाँ अपने निर्जरा अधिकार चलता है। निर्जरा का कार्य। वह पर्याय है, निर्जरा एक शुद्धपर्याय है। संवर की शुद्धि की वृद्धि, वह निर्जरा पर्याय भाव और रजकण का छूट जाना, वह जड़ निर्जरा है। समझ में आया? गजब बात! अब फिर कहा है। देखो! यहाँ तक तो आया था न अपने? **परमपरुषार्थसिद्धि के उपायभूत ध्यान प्रगट होता है।** यहाँ तक तो आया है न? भाई को दी पुस्तक? ठीक।

और कहा है कि —

''अज्ज वि तिरयणसुद्धा अप्पा झाएवि लहइ इंदतं।
लोयंतियदेवत्तं तत्थ चुआ णिव्वृदिं जंति॥''

यह कुन्दकुन्दाचार्य महाराज की गाथा है। समझ में आया? इसमें लिखा नहीं, उसमें लिखा है। लिखा है इसमें। यह दो उद्धत गाथा में पहली गाथा कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत मोक्षप्राभृत की है, देखो!

कुन्दकुन्दाचार्य महाराज की यह गाथा है। भगवान परमगुरु कुन्दकुन्दाचार्य। जो दो हजार वर्ष पहले हुए। उन्होंने जो मोक्षप्राभृत आदि आठ (पाहुड़) बनाये, उसमें यह गाथा है। और दूसरी गाथा, दूसरी है।

''अंतो णत्थि सुईणं कालो थोओ वयं च दुम्मेहा।
तण्णवरि सिक्खियव्वं जं जरमरणं खयं कुणइ॥''

अब दोनों का अर्थ। इस समय भी, इस पंचम काल में भी **त्रिरत्नशुद्ध जीव...** होते हैं। यह व्यवहार त्रिरत्नशुद्ध होगा? यह लोग कहते हैं न अभी। व्यवहार मोक्षमार्ग है, व्यवहार मोक्षमार्ग है। नहीं... नहीं... नहीं...। यह त्रिरत्नशुद्ध जीव निश्चय मोक्षमार्ग है। शुद्ध है न? त्रिरत्नशुद्ध, वह (व्यवहार तो) अशुद्ध है। ओहोहो!

बड़े-बड़े शास्त्र के पढ़नेवाले ऐसी दखलगिरी करते हैं कि वर्तमान में जो मुनि सच्चे भावलिंगी हों कुन्दकुन्दाचार्य जैसे, उनके पास तो व्यवहाररत्नत्रय था। निश्चयरत्नत्रय तो बारहवें गुणस्थान में ही होता है, तेरहवें में ही होता है, बाहर में ऐसे लेख बहुत आते हैं। कोई आठवें शुक्लध्यान करते हैं कोई, सातवें से देशअंश निश्चय और लेते हैं। परन्तु पाँचवें, छठे तक तो अकेला व्यवहाररत्नत्रय होता है, ऐसा कहते हैं। जिसे जैसे ठीक पड़े, वह वैसे लगा देता है।

यहाँ कहते हैं इस काल में कुन्दकुन्दाचार्य महाराज कहते हैं, महा परम दिगम्बर सन्त मुनि परमगुरु (कहते हैं)। समझ में आया? **इस समय भी त्रिरत्नशुद्ध जीव (-इस काल भी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप तीन रत्नों से शुद्ध ऐसे मुनि)...** देखो! सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र निर्विकल्प वीतरागी पर्याय, उसे त्रिरत्न शुद्ध कहते हैं।

आत्मा अखण्ड आनन्दकन्द, उस ओर झुकने से जो अपनी सम्यक्श्रद्धा, सम्यक् अनुभव, उसमें प्रतीति आत्मा के वेदन का सम्यग्ज्ञान और आत्मा में लीनता का चारित्र, समझ में आया? यह त्रिरत्न कहने में आते हैं। यह त्रिरत्न कारण है और मोक्ष कार्य है। समझ में आया? **(-इस काल भी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप तीन रत्नों से शुद्ध ऐसे मुनि)...** देखो! पाठ में तो शुद्ध लिया है। '**तिरयणसुद्धा**' आत्मा का ध्यान करके सम्यग्दर्शन तो पहले है। आत्मा शुद्ध आनन्द का अनुभव ज्ञान होकर प्रतीति हुई और अपने स्वरूप का ज्ञान हुआ, यहाँ निश्चय की बात चलती है। शास्त्र का ज्ञान व्यवहार, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का विकल्प व्यवहार और शास्त्र का ज्ञान भी व्यवहार और व्रतादि के विकल्प भी व्यवहार। व्यवहाररत्नत्रय, वह पुण्यबन्ध का कारण है। वह बात यहाँ नहीं ली।

यहाँ तो आत्मा 'तिरयणशुद्ध' किसी-किसी जगह त्रिकरणशुद्ध ऐसा भी लिखा है। भाई! तिरयण शब्द है और वहाँ किसी-किसी जगह त्रिकरण ऐसा शब्द आता है।

परन्तु यह ठीक है। त्रिरयणशुद्ध। समझ में आया? कहा है न स्वयं आचार्य ने। आत्मा अपने एक समय में पूर्ण आनन्द शुद्ध द्रव्यस्वभाव, वह अजीव से लक्ष्य हटकर, पुण्य-पाप के विकल्प से भी लक्ष्य हटकर, एक समय की वर्तमान चलती पर्याय की भी प्रतीति हटकर अपना पूर्ण स्वभाव वस्तु अन्तर्मुख होकर सम्यग्दर्शन अनुभव में प्रतीति होना, उसका नाम सम्यग्दर्शन, वह तो चौथे गुणस्थान में भी होता है। और वह आत्मा का ज्ञान, ज्ञान का ज्ञान, हों! शास्त्र का ज्ञान थोड़ा बहुत हो, यह बाद में आयेगा। आत्मा का ज्ञान, स्वसंवेदनज्ञान, चिदानन्द ज्ञानमूर्ति पूर्ण स्वरूप, उसका अन्दर ज्ञान में ज्ञानगुण में पर्याय लीन होना, वह स्वसंवेदन सम्यग्ज्ञान है। यह चौथे गुणस्थान में भी होता है और सम्यक्चारित्र। पंचम गुणस्थान में थोड़ी शान्ति, स्थिरता, स्वरूप की रमणता बढ़ जाती है, पंचम गुणस्थान में।

इससे पहले का सम्यग्दर्शन, ज्ञान तो है। तदुपरान्त शान्ति, आनन्द बढ़ जाता है। समझ में आया? और निर्विकल्प उपयोग करने की ताकत चौथे गुणस्थान से और पाँचवें में अल्प काल में निर्विकल्प उपयोग होता है, ऐसी ताकत पाँचवें में बढ़ जाती है। समझ में आया? भाषा सब निर्विकल्प उपयोग और इसमें कहीं (समझ पड़े, ऐसा नहीं)। कहा गये तुम्हारे.... नहीं आये। काम में रुके होंगे। कहो, समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी कहाँ बात! क्या चलता है? चौथे की पहले बात की।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पश्चात्, अभी आने तो दो बात! सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान चौथे से पहले से कहते आये हैं। अभी कहाँ? और पाँचवें तक पहुँचे हैं। अभी छठवें में आये नहीं। पहले चौथे गुणस्थान में अविरति सम्यग्दृष्टि जीव को अन्तर में तीन कषाय का त्याग नहीं। एक आत्मा का अनुभव चिदानन्द की कणिका सम्यक् प्रतीति और वेदन कणिका चलती है और स्वरूपाचरण का अंश है, उतना बोल तो चौथे गुणस्थान में उत्पन्न होता है। वह भी जघन्यध्यान। नीचे थोड़ा आयेगा। द्रव्य का इतना अवलम्बन है, उतना जघन्यध्यान उसे भी कहने में आता है। नीचे है भाई! फुटनोट।

अभी वापस पंचम चलता है। पंचम गुणस्थान होता है, तब स्वरूप की आनन्द और शान्ति की अन्दर चौथे से वृद्धि होती है। और शान्ति में फिर बारह व्रत के विकल्प हों, वह आस्रव है। वह स्वरूप में स्थिरता अपना अनुभव करने के लिये चौथे गुणस्थानवाला निर्विकल्प उपयोग में जमता है, (उसका) काल अल्प रहता है और बहुत ही काल में निर्विकल्प ध्यान आता है। पंचम गुणस्थान में उससे थोड़ा विशेष रहता है और चौथे की अपेक्षा थोड़े काल में विशेष निर्विकल्प अनुभव, वास्तविक आनन्द का वेदन चौथे की अपेक्षा पाँचवें में उपयोग में विशेष आता है। छठे गुणस्थान में सम्यक्चारित्र विशेष हुआ। तीन कषाय का अभाव और चारित्र—स्वरूप की उग्र रमणता बाहर में नग्नदशा हो, वनवासी हो, आत्मा का ध्यान, तीन कषाय का अभाव तो हो गया और जब वह अपने स्वरूप में निर्विकल्प ध्यान करता है, तब सातवाँ गुणस्थान आता है। समझ में आया? और उपयोग अन्दर में इतना जम जाता है कि मैं ध्यान करता हूँ या अनुभव करता हूँ, ऐसा विकल्प भी नहीं। समझ में आया?

इन **तीन रत्नों से शुद्ध ऐसे मुनि...** ये तीनों पूर्ण हैं, उसे मुनि कहते हैं। समझ में आया? कुन्दकुन्दाचार्य मुनि थे न? तो अपने मुनि (की दशा से) बात करते हैं। गौण में चौथे, पाँचवें की बात तो की, वह मुनि आत्मा का ध्यान करके, **आत्मा का ध्यान करके इन्द्रपना...** आहाहा! उस ध्यान का फल इन्द्रपना नहीं, परन्तु ध्यान में जितनी शुद्धि हुई, उतनी तो कर्म की निर्जरा हुई और उतनी अशुद्धता टल गयी। परन्तु अभी थोड़ा विकल्प बाकी है। वीतराग नहीं हुआ, पंचम काल में सर्वज्ञ नहीं हो सकता। वीतराग नहीं हो सकता। तो ऐसा ध्यान करने में राग बाकी रहा।

मुनि सन्त भावलिंगी कुन्दकुन्दाचार्य जैसे मुनि। ऐसा थोड़ा राग रहा, उसमें इन्द्रपद का बन्ध हो जाता है। वे मुनि यहाँ से छूटकर इन्द्रपद में जायेंगे। ऐसे त्रिरत्नशुद्ध भी इस काल में लिखते हैं, तो अभी है, ऐसा लिखते हैं। समझ में आया? **इन्द्रपना तथा लौकान्तिक-देवपना प्राप्त करते हैं...** कोई मुनि इन्द्रपद में जाते हैं। कोई लोकान्तिक सर्वार्थसिद्धि से आगे नहीं जा सकते।

पंचम काल के मुनि, जो सर्वार्थसिद्धि आगे है, कोई मुनि नहीं जा सकता। समझ में आया? यह तो दो हजार वर्ष पहले के मुनि यह कहते हैं। अभी यदि जाये तो इन्द्र

हौ और कोई लोकान्तिक पाँचवें देवलोक में देव है, देवऋषि कहने में आते हैं। देव-ऋषि, देव, ऋषि जिन्दगी भर ब्रह्मचारी ररहते हैं और आत्मज्ञान और आत्मध्यान अनुभव लेकर गये हैं। यह वस्तु, नहीं तो बाहर का ब्रह्मचर्य तो नौवें ग्रैवेयकवाला अभव्य भी पालता है। अभव्य नौवें ग्रैवेयकवाला ब्रह्मचारी है। देव को, स्त्री का भी विकल्प नहीं, मन का भी विकल्प नहीं। इतना तो यहाँ से अभव्य मिथ्यादृष्टि वहाँ नौवें ग्रैवेयक में जाता है। वहाँ भी उसे बिल्कुल विकल्प नहीं। मन से भी नहीं। यह तो आत्मा के सम्यग्दर्शन ज्ञानसहित स्वरूप की रमणता लेकर गये हैं। थोड़ा विकल्प रह गया, इन्द्रपद का बन्ध हो गया या लोकान्तिक का हो गया।

प्राप्त करते हैं.... देखो! पाठ तो ऐसा है कि ध्यान करके इन्द्रपद लोकान्तिक प्राप्त करते हैं। परन्तु समझना चाहिए न कि ध्यान तो निर्जरा है। निर्जरा से कोई पुण्यबन्ध नहीं होता। परन्तु साथ में ऐसा विकल्प रहा तो सच्चे मुनि होते हैं, वे भी इस इन्द्रपद को लोकान्तिक ऐसा पाठ है। बात ध्यान की है तो सूक्ष्म तो है। परन्तु इसे समझना तो चाहिए या नहीं? समझ में आया? निर्जरा कैसे होती है, निर्जरा कहीं इतने अपवास कर डाले, ऐसा कर लिया, ऐसी जैसे-तैसे निर्जरा नहीं होती।

और वहाँ से चयकर... इन्द्रपद और लोकान्तिक से निकलकर **(मनुष्यभव प्राप्त करके) निर्वाण को प्राप्त करते हैं।** ऐसे भी मुनि भावलिंगी सन्त सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र रत्नत्रयसहित लोकान्तिक इन्द्र में जाते हैं और वहाँ से चयकर मनुष्यपना पाकर चारित्र अंगीकार कर अन्दर बहुत ही आनन्द का अनुभव करके केवलज्ञान प्राप्त करके मुक्ति को पाते हैं।

लो! इस काल में भी (अर्थात्) इस समय मुनि कहते हैं। एकभवतारी मुनि हो सकते हैं। समझ में आया? देखो! यहाँ सर्वार्थसिद्धि का नहीं कहा, हों! (अभी) सर्वार्थसिद्धि में कोई मुनि नहीं जा सकते। दो हजार वर्ष पहले के मुनि भी। समझ में आया? महान परम कुन्दकुन्दाचार्य गुरु महान छठवें-सातवें गुणस्थान में झूलनेवाले। कहते हैं कि आज कोई हो तो लोकान्तिक (या) इन्द्रपद प्राप्त करता है। समझ में आया? यह पुण्य के फलरूप से (प्राप्त करता है)। और स्वभावरूप से शुद्धि का ध्यान, उतनी निर्जरा होती है। डालचन्दजी! सूक्ष्म बात है। बहुत ही सूक्ष्म!

अभी यह तो निर्जरा अधिकार थोड़ा नीचे आयेगा। फिर दूसरे श्लोक का अर्थ। पहले श्लोक का अर्थ कुन्दकुन्दाचार्य का था। दूसरा श्लोक यहाँ है। दूसरे में कहीं है? पाहुड़—दोहापाहुड़? ठीक। अरे! आचार्य कहते हैं। अमृतचन्द्राचार्य (कहते हैं)। **श्रुतियों का अन्त नहीं है (-शास्त्रों का पार नहीं है),...** ओहोहो! और काल थोड़ा है। शास्त्रों का पार नहीं। **काल अल्प है और हम दुर्मेध हैं;...** आहाहा! अमृतचन्द्राचार्य जैसे कुन्दकुन्दाचार्य ने पंचम काल के तीर्थंकर जैसा कार्य किया है और टीकाकार अमृतचन्द्राचार्य ने गणधर जैसा काम किया है। यह टीका ऐसी समयसार की टीका, प्रवचनसार की टीका भरतक्षेत्र में (दूसरी है नहीं) है। ऐसी गम्भीर इतनी अध्यात्म के रस से भरपूर। (वे) कहते हैं कि हम तो दुर्मेध हैं। आहाहा! हम तो अल्पबुद्धिवाले, मन्दबुद्धिवाले, आहाहा!

कहाँ केवलज्ञान! कहाँ अवधिज्ञान! कहाँ मनःपर्ययज्ञान! कहाँ मुनियों का बारह अंग और चौदह पूर्व का ज्ञान! ओहोहो! अमृतचन्द्राचार्य पंचम काल के श्रुतकेवली! समझ में आया? यह लघुता-लघुता। अरे! अपनी तो बहुत ही थोड़ी बुद्धि है न? दुनिया को साथ लेकर बात करते हैं। भाई! श्रुत का पार नहीं। काल रहा अल्प! अल्प काल में बड़ा काम करना है। केवलज्ञान लेने का साधन करना है। समझ में आया? भले केवलज्ञान न हो परन्तु तैयारी ऐसी करनी है कि भविष्य में एक भव के बाद दूसरे भव में केवलज्ञान लेकर मुक्ति जाना है। एक या दो आदि उसमें कुछ है नहीं। समझ में आया?

ओहो! शास्त्रों का तो पार नहीं। काल तो अल्प है। एक तो शास्त्रों का पार नहीं और काल अल्प, दो मिलाये। तीसरा हम दुर्मेध हैं। मेध अर्थात् बुद्धि। हमारी बुद्धि अल्प। समझ में आया? सुमेरुमलजी! आहाहा! श्रीमद् भी जहाँ इतने बुद्धिवाले थे श्रीमद्। क्षयोपशम जोरदार! तो भी कहते हैं कि अरे! पामर। इस हम पामर को भगवान कुन्दकुन्दाचार्य का बहुत ही उपकार है। समझ में आया? अभी ही हुए हैं। थोड़े वर्ष पहले। बहुत ही क्षयोपशम। इस पामर को, हे भगवान कुन्दकुन्दाचार्य! आपके शास्त्र हमको महान उपकारभूत हुए हैं। अतिशय भक्ति से नमस्कार! समझ में आया?

आचार्य कहते हैं। नौ सौ वर्ष पहले के आचार्य। यह समयसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय की टीका। ओहो! अद्भुत टीका! यह तो जो अन्दर में खोज करता जाये,

उसे खबर पड़े। खोज करता जाये, उसे खबर पड़े। यह कितना गम्भीर है।

यह कहते हैं कि अरे! हम दुर्मेध—बुद्धि अल्प, मन्दबुद्धि। **इसलिए वही मात्र सीखनेयोग्य है...** इस कारण वह आत्मा में जाननेयोग्य-सीखनेयोग्य है। **कि जो जरा-मरण का क्षय करे।** एक बात। समझ में आया?

जिसमें जन्म, जरा, मरण का क्षय हो और आत्मा की शुद्धि की उत्पत्ति हो। यह एक करने का है। दूसरा कुछ तो अभी कर नहीं सकते। शास्त्रों का पार नहीं। कितना सीखें? समझ में आया? और बुद्धि अल्प, काल अल्प। दोनों अल्प पुरुषार्थ का काल। काम करना है। बस! आहाहा! **इसलिए वही मात्र सीखनेयोग्य है...** कि यह एक आत्मा सर्वज्ञ परमात्मा ने जैसा देखा (वह) कैसा है और उसकी शक्तियाँ कैसी हैं, उसकी पर्याय कैसी है और उसमें अन्दर जाननेयोग्य वेदन किस प्रकार होता है।—यह पहले सीख लेना। आहाहा! समझ में आया? जिससे ज्ञानानुभूति, आत्मानुभूति हो, वह कैसे हो, यह सीख लेना। बाकी क्या शास्त्र में, दूसरी विद्या की तो बात कहाँ है? इस शास्त्र के अतिरिक्त दूसरी विद्या तो निरर्थक है, पापबन्ध का कारण है। परन्तु शास्त्र, अपार शास्त्र पढ़ने से पर के ऊपर कितना जान सके। अपार शास्त्र..... यह सीख लेना।

भगवान आत्मा.... डालचन्दजी! भगवान आत्मा एक समय में द्रव्य है, उसमें अनन्त-अनन्त संख्या से गुण हैं और उसकी अनन्त-अनन्त निज पर्याय है। उसमें विकार और अविकारी दो पर्याय होती है और उसमें से विकारी पर्याय को छोड़कर अपनी निर्मल वर्तमान अस्ति आदि गुण की पर्याय का लक्ष्य छोड़कर, अपने द्रव्य को कैसे प्राप्त करे—यह सीख लेना। मगनभाई! आहाहा! **इसलिए वही मात्र सीखनेयोग्य है...** जिसमें जन्म-मरण के अन्त का भणकार आवे। जन्म-मरण के अन्त का भणकार आत्मा दे। अब जन्म-मरण नहीं। समझ में आया? ऐसा पंचम काल में भी हो सकता है। आहाहा! कहो, समझ में आया?

दूसरी विद्या की तो यहाँ बात भी नहीं की। अध्यात्मविद्या उसमें शास्त्र के पठन भी दूसरा अल्प हों, परन्तु अध्यात्मविद्या जो आत्मा को प्राप्त करा दे, वह तो इसे पहले सीखना आवश्यक है। मगनभाई! आहाहा! समझ में आया? कौन सीखे? सीखनेयोग्य है और सीखनेयोग्य कहा न? शब्द आवे तब कहे न? ओहो प्रभु! तेरी प्रभुता पहले

अन्तर (में) जाननी चाहिए। ज्ञान में महान द्रव्य का स्वभाव, उसकी एक-एक पर्याय का महान अनन्त स्वभाव, उसका माहात्म्य उसकी दृष्टि में, अपनी निर्मल पर्याय का माहात्म्य तो क्या कहना? परन्तु उससे गुण और द्रव्य का कितना अनन्तगुणा माहात्म्य है! ऐसी वस्तु की स्थिति है। महिमा-माहात्म्यवन्त पदार्थ, 'जो स्वरूप सर्वज्ञ ने देखा ज्ञान में, कह सके नहीं वह भी श्री भगवान जब' यह अपूर्व अवसर में श्रीमद् कहते हैं न!

'जो स्वरूप सर्वज्ञ ने देखा ज्ञान में,
कह सके नहीं वह भी श्री भगवान जब'
उस स्वरूप को अन्य वाणी वह क्या कहे,
अनुभवगोचर मात्र रहा वह ज्ञान जब
अपूर्व अवसर ऐसा किस दिन आयेगा—

वहाँ अन्त में ऐसा कहा है, 'वह परमपद प्राप्ति का किया ध्यान में,' देखो! गृहस्थाश्रम में थे, स्त्री-पुत्र थे, लाखों का मोती का व्यापार था, धन्धे के घर में धन्धा और आत्मा के घर में आत्मा था। 'यही परमपद प्राप्ति का किया ध्यान में, गजा बिना अरु हाल मनोरथरूप जब' अरेरे! मैं स्थिति बिना का हूँ, हों! कहे। आहाहा! समझ में आया? गजा बिना का समझते हो? भाषा नहीं समझते न? गुंजाईश नहीं।

श्रीमद् हो गये न? श्रीमद् राजचन्द्र। तैतीस वर्ष में देह छूट गयी। तैतीस वर्ष। सात वर्ष में तो जातिस्मरण हुआ था। और फिर उनतीस वर्ष में आत्मसिद्धि बनायी। और तीसवें वर्ष में अपूर्व अवसर बनाया। उसमें ऐसा लिखा 'यही परमपद प्राप्ति का किया ध्यान में, गजा बिना अरु हाल मनोरथ रूप जो', उस मनोरथ में रहेंगे। इतना ध्यान नहीं (होता) कि जिसमें केवल (ज्ञान) प्राप्त करूँ। तो भी निश्चय राजचन्द्र मन में रहा, प्रभु आज्ञा से रहूँगा वही स्वरूप जब। प्रभु आज्ञा स्वीकारते हैं कि ऐसी दृष्टि और अल्प ध्यान हुआ तो अल्प काल में केवलज्ञान प्राप्त करूँगा। ऐसी भगवान की आज्ञा है। हम भी शीघ्र ही अल्प काल में केवलज्ञान प्राप्त करेंगे। अभी स्थिति नहीं है। मुश्किल-मुश्किल से यह पाँचवें-छठवे गुणस्थान की निर्जरा की क्रिया हमारे पास है नहीं। समझ में आया? वह ध्यान हमारे पास है नहीं। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं **इसलिए वही मात्र सीखनेयोग्य है कि जो जरा-मरण का क्षय करे।**

समझ में आया? कोई कहे शास्त्र के प्रश्न पूछे, उसमें न आवे, उसमें आवे तो बड़ा हो गया, ऐसा नहीं, बापू! सुन तो सही अब! सेठ! समझ में आया? एक बार उसमें जहाँ कुछ सीखकर आया हो, वहाँ दूसरे को पूछे और उसे न आवे, हाँ.... यह नहीं आया वहाँ हो गयी बड़ी भूल! धूल में भी नहीं। सुन न अब! समझ में आया?! यह लड़का कहीं से सीखकर आता है। बहुत दिमागवाला! उसे पूछे लो! .....अब न आया या आया। जिसे आत्मा आया, उसे सब आया, सुन! समझ में आया? तुझे खबर नहीं पड़ती ज्ञानी के पद, समझ में आया? आहाहा! ज्ञानी के हृदय जानना जगत को कठिन पड़ता है। यह बात दूसरी है। यह सीख ले एक बार।

देखो! **इसलिए वही मात्र...** मात्र का अर्थ एक ही बार। जिसे सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ फरमाते हैं। ऐसा आत्मा का अनुभव हो, उसे सीख ले। समझ में आया? आहाहा! सेठी! अपूर्व अवसर सेठी को बहुत ही प्रिय है। समझ में आया? आचार्य महाराज अमृतचन्द्राचार्य मुनि! ओहोहो! भावलिंगी सन्त! परमेश्वरपद में विराजमान 'णमो लोए आयरियाणं', इस पद में विराजमान हैं। वे कहते हैं, अरे भाई! अरे प्रभु! श्रुत का तो पार नहीं न, भाई! और अपनी बुद्धि तो बहुत थोड़ी है न! और काल अल्प रहा है न भाई! बहुत थोड़ा! बहुत थोड़ा! पाँच, पच्चीस, पचास (वर्ष) उसमें तो कितनों के पचास-पचास (वर्ष) चले गये। समझ में आया? चालीस-चालीस, पचास के चले गये। बहुत थोड़ा रहना है, भाई! तो मुद्दे की माल की रकम समझ ले। समझ में आया? मुद्दे की रकम।

इस चैतन्य वस्तु का अनुभव वेदन सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान शान्ति कैसे हो, यह सीख ले। समझ में आया? यह कोई थोड़ा आया, किसी समय नहीं आया, मूल चीज़ में जो दिक्कत आयी (तो) तेरा सब पढ़ा-लिखा फोकट है। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, देखो! यह धवल, यह तो बात चलती है। धवल, जयधवल परम श्रुत का अभ्यास कहाँ होता है? समझ में आया? बुद्धि इतनी नहीं, अभ्यास नहीं होता। बुद्धिवाले को कहते हैं तो उसे निवृत्ति नहीं मिलती। उसमें इतने बोल! ओहोहो! यह वीरसेनस्वामी क्षयोपशम के समुद्र! त्रिकाल सर्वज्ञ की सिद्धि करते थे, ऐसा पाठ इतिहास में है। इतने करोड़-अरबों श्लोकों की प्राप्ति की बात और चरणानुयोग की

बात। आचार्य थे। महामुनि थे। पानी के पूर की भाँति अरबों श्लोक अरबों! ऐसे। फाट... फाट... फाट... ! अपने ध्यान में लक्ष्य रखकर। समझ में आया? अभ्यास तो हो सकता नहीं। पहले तो दर्शनमात्र पुस्तकें थीं। अब बाहर आयी। समझ में आया? भाषण करे परन्तु सुननेवाले को खबर नहीं होती और एक व्यक्ति ने पूछा कि यह श्रद्धा वास्तविक है या नहीं? नहीं। श्रद्धा, वह तो अश्रद्धा हो बाकी श्रद्धा... श्रद्धा... नहीं। क्या कहते हैं, कुछ खबर नहीं होती। समझ में आया? यह वह वेदान्त कहता है कि यह वह जैन कहता है कि यह वह अन्य कहते हैं। कुछ खबर नहीं होती। कहनेवाले को भी खबर नहीं और सुननेवाले को भी खबर नहीं होती। डालचन्दजी!

भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्यवें भाग में पूर्ण समुद्र अनन्त शक्ति का पिण्ड भरा है। एक-एक शक्ति का अनन्त सामर्थ्य है और एक-एक शक्ति की अनन्त पर्याय, बस! यह द्रव्य। पर्याय, गुण और द्रव्य वास्तविक क्या है, यह समझ ले और स्वभाव सन्मुख की दृष्टि करना, वह सीखना है। कहो, बल्लभदासभाई! आगे-पीछे के पहलू जितने (हैं, वे बतलाना तो चाहिए न?) बहुत ही विपरीत मान्यता घुस गयी है तो इतने प्रमाण में अविपरीत ख्याल आये बिना विपरीत निकलेगा नहीं। नहीं निकलेगा। विपरीत बहुत ही डाला है न? विपरीत मान्यता का पार नहीं। सुनानेवाले, सुननेवाले भी ऐसे मिले। उसकी दृष्टि ऐसी। विपरीता इतनी घुस गयी कि उसे उसके प्रमाण में सच्ची समझ करके विपरीतता निकालनी पड़ेगी। समझ में आया? देखो! कोई गुजराती शब्द भी आ जाता है, हिन्दी कोई.... कारगार हुआ? लो, कर बात! यह तुम्हारे जामनगरवाले आये और कारगार हो, ऐसी बात है। समझण करके विपरीतता निकाल देना। वह तो इसलिए बात चलती है।

अब भावार्थ। **निर्विकार निष्क्रिय चैतन्यचमत्कार में निश्चल परिणति, वह ध्यान है।** पाठ में आया था न? ध्यान की व्याख्या। उसे समझे बिना ऐसे-ऐसे सब मूढ़ हो जायेंगे। समझ में आया? यह तो मूढ़ हो जायेंगे। अन्दर लगे, सुन्न-मुन्न जैसा लगे। जरा लौकिक आदि विकल्प कम दिखायी दे, इसलिए अन्दर ध्यान। वह ध्यान नहीं। ध्यान की बात तो कोई अपूर्व है। समझ में आया?

यह आत्मा जैसा है, वैसी वस्तु की दृष्टि करके, फिर अन्दर निर्मल परिणति की

पर्याय उत्पन्न हो स्व के आश्रय से, वह **निर्विकार निष्क्रिय चैतन्यचमत्कार में...** यह द्रव्य लिया और **निश्चल परिणति...** यह पर्याय ली। यह ध्यान है। निर्विकार निष्क्रिय चैतन्यचमत्कार, वह द्रव्य। उसमें निश्चल परिणति वह ध्यान। **यह ध्यान मोक्ष के उपायरूप है।** मोक्ष का कारण एक ही है। इसमें कोई वह नहीं लिया कि व्यवहार ध्यान और निश्चयध्यान। यह व्यवहारध्यान मोक्ष का कारण ऐसा है और वैसा है। यह तो एक ही ध्यान कहा है। कौन जाने क्यों... आहाहा!

जिस प्रकार थोड़ी-सी भी अग्नि बहुत-से घास और काष्ठ की राशि को अल्प काल में जला देती है,... थोड़ी अग्नि। एकदम थोड़ी। लाखों ढ़ेर घास को जला डालती है। **उसी प्रकार मिथ्यात्व-कषायादि विभाव के परित्यागस्वरूप...** देखो! परन्तु पहले अन्दर मिथ्यात्व का त्याग होना चाहिए। तो मिथ्यात्व किसे कहते हैं, यह खबर बिना त्याग कैसे होगा? **उसी प्रकार मिथ्यात्व-कषायादि विभाव के परित्यागस्वरूप महा पवन से प्रज्वलित हुई और अपूर्व-अद्भुत-परम-आह्लादात्मक सुखस्वरूप घृत से सींची हुई...** अग्नि-ध्यानाग्नि। ध्यानाग्नि में एक तो मिथ्यात्व और कषाय का त्याग बराबर होना चाहिए। पश्चात् वह **महा पवन से प्रज्वलित हुई और अपूर्व-अद्भुत-परम-आह्लादात्मक सुख...** आनन्द। इस ध्यान में परम अतीन्द्रिय आनन्द का रस झरे, उसे यहाँ घी से सींची हुई कहा जाता है। ध्यान में परम अतीन्द्रिय आनन्द का रस आना चाहिए। ऐसे थोथा ध्यान, ऐसा नहीं।

निश्चल-आत्मसंवेदनरूप ध्यानाग्नि... यह तीन बोल लिये। निश्चय-आत्मसंवेदनरूप ध्यानाग्नि, आत्मा का ज्ञानानन्द में वेदन, ध्यानाग्नि। ये तीन बोल लिये। ध्यान किसे होता है?—कि पहले मिथ्यात्व और कषाय का त्याग, उसकी हवा लगे और अपूर्व सुखस्वरूप घी से सिंचित-आननद से और आत्मसंवेदनरूप ध्यानाग्नि। लो! यह संक्षिप्त में सीखने की बात आयी।

मूलोत्तरप्रकृति-भेदवाले कर्मरूपी ईंधन की... मूल अर्थात् आठ कर्म, उत्तर अर्थात् बहुत प्रकृति ऐसे **कर्मरूपी ईंधन की राशि को क्षणमात्र में जला देती है।** क्षणमात्र में कर्म का नाश होता है। समझ में आया? **इस पंचम काल में भी यथाशक्ति ध्यान हो सकता है।** इस काल में जो विच्छेद है, वह शुक्लध्यान का है। अभी शुक्लध्यान

नहीं है। धर्मध्यान का विच्छेद नहीं है। धर्मध्यान तो है। **आज भी यहाँ से जीव धर्मध्यान करके देव का भव और फिर मनुष्य का भव पाकर मोक्ष प्राप्त करते हैं...** आज भी अपने स्वरूप की दृष्टि सम्यग्दर्शन प्रगट करके, समझ में आया? स्वभाव का अवलम्बन लेकर और उतना धर्मध्यान जो हुआ, जो राग बाकी रहे तो **देव का भव और फिर मनुष्य का भव पाकर मोक्ष प्राप्त करते हैं...** समझ में आया?

और **बहुश्रुतधर ही ध्यान कर सकते हैं, ऐसा भी नहीं है;...** शास्त्र का बहुत ज्ञान हो, वह ध्यान कर सकता है, ऐसा भी नहीं है। दूसरे की बुद्धि की तो बात भी नहीं। यह तो शास्त्र का बहुश्रुत लिया न? शास्त्र के बहुश्रुतधर ही ध्यान कर सकते हैं, ऐसा भी नहीं है। **सारभूत अल्प श्रुत से भी ध्यान हो सकता है।** समझ में आया? नव तत्त्व वास्तविक पदार्थ का बोध हुआ और आत्मद्रव्य क्या है, (वह जानकर) उस ओर झुका तो उससे भी ध्यान हो सकता है।

सारभूत अल्प श्रुत से भी ध्यान हो सकता है। इसलिए मोक्षार्थियों को शुद्धात्मा का... देखो! **शुद्धात्मा का प्रतिपादक,...** शुद्धात्मा का प्रतिपादक। उसमें सब आया, देखो! अशुद्धता अन्दर है नहीं, ऐसा शुद्धात्मा पूर्णस्वरूप है, गुण अनन्त है, शुद्ध स्वभाव है। **संवर-निर्जरा का करनेवाला...** ध्यान-ध्यान। **तथा जरामरण का हरनेवाला सारभूत उपदेश ग्रहण करके...** ऐसा उपदेश ग्रहण करके, ध्यान करनेयोग्य है। समझ में आया? ठीक! यह गाथा रविवार को आयी। मोक्षार्थियों को, जिसे आत्मा की पूर्ण प्राप्ति करनी है। उसे शुद्धात्मा को कहनेवाले का उपदेश ग्रहण करना। शुद्धात्मा की इसमें व्याख्या। शुद्धात्मा की भाषा तो अन्य भी कहते हैं। उसमें तो है ही नहीं।

सर्वज्ञ परमात्मा जैसा आत्मा कहते हैं, उसमें उपदेश है, वह उपदेश सच्चा है। समझ में आया? बौद्ध में कहते हैं, वेदान्त में कहते हैं। उपदेश की भाषा तो बहुत ही आती है। सब ही मिथ्यात्व। सब मिथ्यादृष्टि के कथन हैं। समझ में आया? ऐई! देखो! यहाँ तो सर्वज्ञ भगवान के श्रीमुख में से परमात्मा त्रिलोकनाथ ने कहा, उसे सन्त भावलिंगी सन्त ने कहा, वही शुद्धात्मा, उसके अतिरिक्त कोई दूसरा शुद्धात्मा हो नहीं सकता। कहो, समझ में आया? **संवर-निर्जरा का करनेवाला तथा जरामरण का हरनेवाला सारभूत उपदेश...** सारभूत सार **ग्रहण करके ध्यान करनेयोग्य है।** अब थोड़ा स्पष्टीकरण।

यहाँ वह लक्ष में रखनेयोग्य है... अपने पढ़ा था। **उपरोक्त ध्यान का मूल सम्यग्दर्शन है।** वह सुनकर एकदम ध्यान में चढ़ जाये, ऐसा-ऐसा। नहीं चढ़े कोई। अभी बहुत चलता है अभी। यह अभी यहाँ की बात बहुत चली न? कोई साधु, कोई मन्दिरमार्गी के, कोई अमुक के (कहते हैं कि) यह अब ध्यान में चढ़ जाओ, अपने नदी के किनारे जाकर बैठ जाओ। परन्तु आत्मा के किनारे कैसे आया जाये, इसकी तो अभी खबर कर! नदी किनारे बाहर में धूल में क्या है? गिरिगुफा तो अन्दर है। बाहर की गिरिगुफा में क्या है? सेठी!

उपरोक्त ध्यान का मूल सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन बिना ध्यान नहीं होता। आत्मा सर्वज्ञ परमात्मा ने मुनि सन्तों ने जैसा जाना और कहा है, वैसी अन्तर्दृष्टि अनुभव हुए बिना ध्यान नहीं होता। याद करे, विकल्प ऐसे-ऐसे चाहे जो करे, उसे ध्यान नहीं होता। समझ में आया? क्योंकि निर्विकार निष्क्रिय चैतन्य चमत्कार की सम्यक् प्रतीति बिना, भगवान आत्मा पूर्ण शुद्ध एकरूप निर्विकार रागादि की क्रिया बिना के चैतन्य चमत्कार की, ऐसे भगवान **चैतन्यचमत्कार की सम्यक् प्रतीति बिना उसमें निश्चल परिणति कहाँ से हो सकती है?**

चीज़ ही क्या है, उसकी श्रद्धा-ज्ञान नहीं, उसे स्थिरता कहाँ से हो सकती है? यह मुद्दे की बात है। समझ में आया? अभी बहुत ही लिखाते हैं। बड़े-बड़े साधु लिखते हैं, देखो! बौद्ध में ऐसा है, अमुक में ऐसा है, दोनों पन्थ ऐसे हैं न? दोनों पन्थ का मूल एक ही है न। बौद्ध में भी सम्यग्दर्शन, निर्वाण और मुक्ति और फुक्ति, अब जितने शब्द आवें, वे सब मिथ्यात्व के हैं। सुन न अब! तुझे (खबर नहीं)। इन सेठियों को कुछ खबर नहीं होती। अब तुम्हारे चिरंजीवी पर कहते हैं। सिर पर (बैठा हो वह) कहे वह सत्य होगा। वहाँ कहाँ कोई पढ़े लिखे हैं? समझ में आया? बहुत निश्रित में ऐसा है, अमुक निश्रित में ऐसा है। निश्रित में ऐसा है। सुन न? सब गप्प-गप्प मारी है।

सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ वे यहाँ कहते हैं। वीतराग परमेश्वर ने जैसा केवलज्ञान में देखा। अनन्त आत्मा, अन्त परमाणु, अनन्त-अनन्त एक द्रव्य के गुण ऐसी एक-एक पर्याय अनन्त एक-एक द्रव्य में ऐसी बात तीन काल-तीन लोक में दूसरी हो नहीं सकती। समझ में आया? निचोड़ी गयी पछेड़ी! **निर्विकार निष्क्रिय चैतन्यचमत्कार**

की (शुद्धात्मा की) सम्यक् प्रतीति बिना उसमें निश्चल परिणति कहाँ से हो सकती है ? इसलिए मोक्ष के उपायभूत ध्यान करने की इच्छा रखनेवाले जीव को प्रथम तो जिनोक्त... जिनोक्त देखो! आया। जिनोक्त-वीतराग ने कहा वह। अभी वीतराग क्या कहते हैं, यह खबर नहीं और मार्ग वीतराग ऐसा कहते हैं। सब ऐसे ही कहते हैं। अभी लोग समन्वय बहुत ही करते हैं। समन्वय... समन्वय। जहर और अमृत इकट्ठे। जहर और अमृत का समन्वय। एक रेशम का टुकड़ा और एक.... पाणकोरुं नहीं। यह थैलियों का। यह चावल... चावल.. वह क्या कहते हैं ? टाट। एक टाट का टुकड़ा और एक रेशम का टुकड़ा, इसका समन्वय करे। यह अक्ल नहीं है!

वीतरा त्रिलोकनाथ परमात्मा ने जो छह द्रव्य और नव तत्त्व, पंचास्तिकाय कहे, ऐसी बात तीन काल-तीन लोक में अन्यत्र कहीं है नहीं। उन्हें (लोगों को) खबर नहीं और लगा देते हैं, वे भी ऐसा कहते हैं, वे भी ऐसा कहते हैं। सब में एक ही बात है न ? सब में बात तो, ध्येय तो एक ही है न ? धूल में भी ध्येय एक नहीं। सुन तो सही! ऐसा ही कहते हैं। तुमको खबर नहीं, ऊपर (वाला) कहा हो, वह तुमने मान लिया। सेठ! खबर नहीं, खबर नहीं क्या चीज़ है और अभ्यास नहीं न ? अभ्यास नहीं। समझ में आया ?

कहते हैं **जिनोक्त द्रव्यगुणपर्यायरूप...** देखो! भाषा! वीतराग परमात्मा ने कहा हुआ द्रव्य, उनके कहे हुए गुण और उन्होंने कही हुई पर्याय। यह तो महा समुद्र है। **वस्तुस्वरूप की यथार्थ...** यह तो फिर मगनभाई याद आ गये। मगनभाई एक बार कहते थे, उसमें भी थोड़ा सत् तो है। है कहा। झपट लगी फिर तो, उन्होंने सुन लिया बराबर! पढ़े बहुत, निवृत्त बहुत है तो पढ़े बहुत। गीता और उपनिषद् यह और वह। थोथे थोथा दिमागवाले व्यक्ति। यहाँ भी है और उसमें भी कुछ है। है, कहा है। समझ में आया ? नरभेरामभाई! यह तुमको कोई खबर नहीं पड़े और वकालत करके निवृत्त हुए और ऊपर वह कहे, वैसे हाँ, वह हाँ।

यह तो **जिनोक्त द्रव्यगुणपर्यायरूप वस्तुस्वरूप की यथार्थ समझपूर्वक...** भाषा देखो! इतनी कड़क। इतनी शर्त! जिनोक्त द्रव्य-गुण-पर्यायरूप वस्तुस्वरूप की यथार्थ समझणपूर्वक, जैसी वस्तु है, वैसी यथार्थ समझणपूर्वक। **निर्विकार निष्क्रिय**

चैतन्यचमत्कार की सम्यक् प्रतीति का सर्व प्रकार से उद्यम करनेयोग्य है;... पहले तो यह सम्यग्दर्शन प्रगट करने की योग्यता करो, पश्चात् दूसरी बात! समझ में आया? **पश्चात् ही उस चैतन्यचमत्कार में विशेष लीनता का यथार्थ उद्यम हो सकता है।** नहीं तो यथार्थ उद्यम नहीं हो सकता। कहो, समझ में आया? यह अधिकार भी आज पूरा करना था। डालचन्दजी! तुम पहले कह गये, फिर बाद में सेठ आये। कहा, आज नहीं चलेगा। हमारा निर्णय बदलता नहीं। और यह..... कारण था। समझ में आया?

ओहो! वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा देवाधिदेव... तारणस्वामी भी जहाँ और तहाँ— जिनोक्त जिनोक्त हजारों बार जिन-जिन शब्द आता है। पढ़ा है? देरियाजी! कितनी बार? हेतु है। शब्द साधारण नहीं। चलती भाषा में रखा है। जिन... जिन... जिन... जिन... इसके अतिरिक्त कहीं तीन काल में बात है नहीं। यह जिन ने कहे हुए द्रव्य-गुण-पर्याय को पहले यथार्थ समझना। गुरुगम से-शास्त्र से; पहले गुरुगम हो! अपने आप शास्त्र पढ़े तो समझ नहीं आवे। आता है या नहीं? उसमें आता है। 'गुरु बिना ज्ञान।' ऐसा पीछे आता है। हाँ, यह। बराबर है। क्या है? उसमें आया बराबर! निमित्त आया न? देवानुप्रिया!

यह तो समझ में योग्यता हो, तब सच्चे गुरु मिले बिना रहे नहीं, और मिले तो उनसे ज्ञान हो, ऐसा है नहीं। गजब भाई! दोनों बात! जैसी चीज़ है, वैसा बोध पहले गुरुगम से लेना चाहिए। **पश्चात् ही उस चैतन्यचमत्कार में विशेष लीनता का यथार्थ उद्यम हो सकता है।** यह पहले नहीं हो सकता। निर्जरा का अधिकार पूरा हुआ।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - १४७

अथ बन्धपदार्थव्याख्यानम् ।

जं सुहमसुहमुदिण्णं भावं रत्तो करेदि जदि अप्पा।
सो तेह हवदि बद्धो पोग्गलकम्मेण विविहेण।।१४७।।

यं शुभमशुभमुदीर्णं भाव रक्तः करोति यद्यात्मा।
स तेन भवति बद्धः पुद्गलकर्मणा विविधेन।।१४७।।

बन्धस्वरूपाख्यानमेतत् ।

यदि खल्वयमात्मा परोपाश्रयेणानादिरक्तः कर्मोदयप्रभावत्वादुदीर्णं शुभमशुभं वा भावं करोति, तदा स आत्मा तेन निमित्तभूतेन भावेन पुद्गलकर्मणा विविधेन बद्धो भवति । तदत्र मोहरागद्वेषस्निग्धः शुभोऽशुभो वा परिणामो जीवस्य भावबन्धः, तन्निमित्तेन शुभाशुभकर्मत्व-परिणतानां जीवेन सहान्योन्यमूर्च्छनं पुद्गलानां द्रव्यबन्ध इति ।। १४७ ।।

आतमा यदि मलिन हो करता शुभाशुभभाव को।
तो विविध पुद्गल कर्म द्वारा प्राप्त होता बन्ध को।।१४७।।

अन्वयार्थ :— [यदि] यदि, [आत्मा] आत्मा, [रक्तः] रक्त (विकारी) वर्तता हुआ, [उदीर्ण] उचित, [यम् शुभम् अशुभम् भावम्] शुभ या अशुभभाव को [करोति] करता है, तो [सः] वह आत्मा [तेनः] उस भाव द्वारा (-उस भाव के निमित्त से) [विविधेन पुद्गलकर्मणा] विविध पुद्गलकर्मों से [बद्धः भवति] बद्ध होता है।

टीका :- यह, बन्ध के स्वरूप का कथन है।

यदि वास्तव में यह आत्मा अन्य के (-पुद्गलकर्म के) आश्रय द्वारा अनादि काल से रक्त रहकर कर्मोदय के प्रभावयुक्तरूप वर्तने से उदित (-प्रगट होनेवाले) शुभ या अशुभभाव को करता है, तो वह आत्मा उस निमित्तभूत भाव द्वारा विविध पुद्गलकर्म से बद्ध होता है। इसलिए यहाँ (ऐसा कहा है कि), मोहरागद्वेष द्वारा स्निग्ध ऐसे जो जीव के शुभ या अशुभपरिणाम, वह भावबन्ध है और उनके (-शुभाशुभ-परिणाम के) निमित्त से शुभाशुभकर्मरूप परिणत पुद्गलों का जीव के साथ अन्योन्य अवगाहन (-विशिष्ट शक्तिसहित एकक्षेत्रावगाहसम्बन्ध), वह द्रव्यबन्ध है॥१४७॥

प्रवचन नं. ४६, गाथा-१४७-१४८
दिनांक - २१-१०-१९६४, आसोज शुक्ल पूर्णिमा, बुधवार

इसमें नौ पदार्थ का कथन चलता है। नौ पदार्थ किसे कहना, भगवान ने जो नौ पदार्थ का स्वरूप कैसा जाना? और कैसा कहा, उसका यहाँ स्पष्टीकरण अधिक है। पश्चात् उसका-मोक्षमार्ग का वर्णन बाद में चलेगा। यह अपने चल गया है। अपने निर्जरा अधिकार तक चला है।

पहला जीव अधिकार—जीव पदार्थ की व्याख्या आ गयी, अजीव की व्याख्या आ गयी, पुण्य-पाप की, आस्रव की, संवर और निर्जरा, यह सब व्याख्या आ गयी है। जीव और अजीव दो द्रव्य हैं और पुण्य-पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा इनकी-जीव की विकारी-अविकारी पर्याय है और पुद्गल में भी यहाँ कर्म की अवस्था का, पर्याय का होना, वह जड़ की अवस्था है, यह सब आ गयी है।

अब बन्धपदार्थ का व्याख्यान है। १४७ (गाथा)। भावबन्ध और द्रव्यबन्ध किसे कहना? १४७ (गाथा)।

जं सुहमसुहमुदिण्णं भावं रत्तो करेदि जदि अप्पा।
सो तेह हवदि बद्धो पोग्गलकम्मेण विविहेण।।१४७।।

आतमा यदि मलिन हो करता शुभाशुभभाव को।
तो विविध पुद्गल कर्म द्वारा प्राप्त होता बन्ध को।।१४७।।

इसकी टीका—**यह, बन्ध के स्वरूप का कथन है।** भावबन्ध की पहली व्याख्या। भावबन्ध अर्थात् क्या? और भावबन्ध, वह दु:खरूप है। भावबन्ध वह दु:खरूप है। आत्मा को अहितरूप है। वह भावबन्ध किसे कहना और उसका क्या स्वरूप है, इसका वर्णन है।

यदि वास्तव में यह आत्मा अन्य के (-पुद्गलकर्म के) आश्रय द्वारा... क्योंकि जीव जो विकारी भाव करता है, उसमें उसे स्वस्वभाव का आश्रय नहीं है। स्वस्वभाव के आश्रय से कहीं विकारी भाव नहीं होते। इसलिए कहा कि **यह आत्मा,...** 'यह', ऐसा

कहकर आत्मा सिद्ध किया। यह आत्मा वस्तु है, अनादि-अनन्त तत्त्व-पदार्थ है।

यह आत्मा अनादि-अनन्त पदार्थ है। वह अन्य अर्थात् साथ में पुद्गलकर्म-पुराने कर्म पड़े हैं, वह पुराने कर्म की बात है। नये (कर्म) की द्रव्यबन्ध की बात बाद में आयेगी। **पुद्गलकर्म के...** अवलम्बन द्वारा-**आश्रय द्वारा...** अनादि काल से **रक्त रहकर,...** भगवान आत्मा अपना स्वरूप ज्ञान-आनन्द आदि शान्त, उसका मूल स्वभाव तो अनाकुल आनन्द और शान्त है। यह आत्मा है, उसका मूल अन्तर स्वभाव शाश्वत् असली अनाकुल शान्त और आनन्द वास्तविक स्वभाव पदार्थ में विकार और दुःख नहीं हो सकता। ऐसा आत्मतत्त्व अपना स्वभाव शान्ति, आनन्द को चूककर, अन्य कर्म अन्दर जो दूसरी चीज़ है - परमाणु, जड़, मिट्टी। पूर्व के बँधे हुए जड़कर्म, उसके **आश्रय द्वारा अनादि काल से रक्त रहकर...** उसमें अनादि से लीन रहा हुआ है। कहो, समझ में आया?

ऐसा आनन्दस्वरूप, उसका सच्चिदानन्द सिद्ध परमानन्द शुद्ध (स्वरूप) उसमें अनादि से अज्ञानी लीन नहीं है। समझ में आया? अपना अन्तरस्वभाव निज शाश्वत् असली स्वभाव शान्त आनन्द और ज्ञायकभाव ज्ञान और आनन्द का स्वरूप, उसमें कोई अनादि काल से अज्ञानी एक समय भी उसके आसक्तपने स्वभाव में उसका रक्तपना नहीं है। इसलिए वह **(-पुद्गलकर्म के) आश्रय द्वारा अनादि काल से रक्त रहकर...** पर में लीन-लीन अपना ज्ञानस्वभाव, आनन्दस्वभाव छोड़कर, अनादि कर्म के आश्रय से लीन रहकर, **कर्मोदय के प्रभावयुक्तरूप वर्तने से...** कर्म का जो पाक, उसका जो विशेष भाव, उसके सहितपने वर्तने से, सहितपने वर्तने से। स्वभाव के सहितपने न वर्त कर, अपना आनन्द शान्तरस है, उसके सहित / युक्तपने न वर्तते हुए, कर्म के पाक के युक्तपने वर्तना, उसके सहित वर्तना। समझ में आया?

कर्मोदय का जो पाक, उसके सहित, उसके ऊपर लक्ष्य करके, अनादि से मोह और राग-द्वेष के परिणामरूप से वर्त रहा है। यह मोह और राग-द्वेष के भाव, वह भावबन्ध है। वह दुःखदायक है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ प्रभाव कहाँ किया? अर्थ क्या किया? **कर्मोदय के प्रभावयुक्तपने...** सहितपने वर्ता है। स्वयं उसके प्रभाव-बात में सहितपने, उसके सम्बन्ध में वर्ता है। ऐसा स्वभावपने वर्तना चाहिए, ऐसे न वर्तकर कर्म के उदय का प्रभाव-पाक, उसका युक्तपना, पाठ में सहित जुड़ान हो गया। धर्मचन्दजी!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, प्रभावयुक्तपने। युक्त आया न? स्वयं युक्त हुआ है। कहीं कर्म युक्त कराता है, ऐसा नहीं है। कहो, समझ में आया?

एक सिद्धान्त यह आत्मा वस्तु है, पदार्थ है, अनादि-अनन्त है। जो पदार्थ-वस्तु है, उसकी कोई कृत्रिमता या आदि किसी ने करायी हुई नहीं हो सकती। यह वस्तु आत्मा पदार्थ देह, वाणी से भिन्न ऐसी चीज़ अनादि है, सत्.... सत्.... सत्.... सत्.... सत्.... है, उसका अन्तरस्वभाव अनादि ज्ञान और आनन्द और शान्त है। अविकारी वीतरागी समस्वभाव उसका त्रिकाली स्वरूप है।

क्योंकि मूलस्वभाव में विकार, अपूर्णता, सदोषता नहीं हो सकती। उसका वास्तविक स्वरूप स्वभाव, वस्तु जैसे अनादि है, वैसे उसका स्वभाव अनादि, ज्ञान-आनन्द और शान्तरस ऐसा उसका स्वभाव है। उसे छोड़कर अनादि काल से निगोद से लेकर नौवें ग्रैवेयक जैन दिगम्बर साधु होकर गया, तथापि अभी मिथ्यादृष्टि अनादि आठ कर्म के आश्रय में रक्त रहकर कर्मोदय के पाक के युक्तपने वर्तता है। आत्मा के आनन्द के पाकपने न वर्त कर... ऐसा अमेरिका में कुछ आता होगा? ऐसी भाषा! वहाँ तो सर्वत्र गप्प-गप्प चलते हैं। नहीं? बजुभाई!

मुमुक्षु : ऐसा कुछ नहीं होता।

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ नहीं होता। सच्ची बात है। वहाँ तो दूसरी पढ़ाई होती है। भगवान आत्मा यह वस्तु है न, वस्तु। वस्तु अर्थात् 'है'। सत् है। है, उसकी आदि नहीं होती; है, उसका अन्त नहीं होता; है, उसे कोई करे, ऐसा नहीं हो सकता। ऐसा यह भगवान आत्मा अनादि ऐसा का ऐसा है। उसे जैसे वस्तु है, उसका स्वभाव स्व, स्व—अपना भाव—ज्ञान, आनन्द, शान्त। क्योंकि मूल स्वभाव निर्विकारी और

निर्दोष ही होता है। मूल स्वरूप में कोई विकार या अपूर्णता नहीं हो सकती। ऐसा जो आत्मस्वभाव, उसके ऊपर इसने एक क्षण भी अन्दर लीनता की एकाग्रता नहीं की। समझ में आया?

यह कर्मोदय के प्रभाव के सहितपने, उसके प्रभाव के पाक के सहितपने स्वयं वर्ता है। है न? **वर्तने से,** ऐसा कहा है। कर्म के पाक के सम्बन्ध में वर्ता है। अपने ज्ञानानन्द के स्वभाव में अन्तर्दृष्टि करके वर्तना चाहिए, ऐसे न वर्तकर कर्म के.... अब यहाँ तो स्पष्ट गुजराती (भाषा) आती है। हिन्दी बहुत ही चला। समझ में आया? अनादि से भगवान अपने महिमावन्त स्वरूप को स्वयं ही अनादि से भूलकर कर्म के प्रभाव के पाक के सहितपने... सहितपने; रहितपने चाहिए... कर्म के पाक से रहितपने स्वभाव के आनन्द में लीनता चाहिए। उसके बदले कर्म के पाक में सहित दृष्टि से सहितपने **वर्तने से उदित,...** देखो!

उसे कर्म के पाक के सहितपने वर्तने के कारण उदित। पाठ में है न '**सुहमसुहमुदिण्णं**' मूल तो यहाँ '**सुहमसुहमुदिण्णं**' भाव कहना है। स्वभाव में है नहीं और शुभ और अशुभभाव जिसने प्रगट किया। शुभ और अशुभ दया, दान, व्रत, भक्ति, वह शुभभाव। हिंसा, झूठ, चोरी, वह अशुभभाव। दोनों मलिनभाव, दोनों विकारभाव, दोनों बन्धभाव। समझ में आया? भावबन्धभाव—भावबन्धभाव। यह ठीक! भावबन्ध, ऐसा भाव। जड़ नहीं। जड़ की पर्याय की बात बाद में करेंगे। विकार के कारण से नया बन्धन पड़ता है, यह बात बाद में करेंगे। पहले तो विकारी भाव कैसे हुआ, उसे पुराने कर्म के पाक के युक्तपने वर्ता, इसलिए उसमें शुभाशुभभाव प्रगट हुए। कहो, समझ में आया? यह बन्ध अधिकार है। भावबन्ध आत्मा की विकारी पर्याय, द्रव्यबन्ध कर्म की विकारी पर्याय अर्थात् पुद्गल की कर्मरूप विकारी पर्याय, वह द्रव्य बन्ध। दो (विकारी) पर्यायों की बात चलती है। परन्तु पर्याय अर्थात् अवस्था।

वस्तु कायम रही और उसकी अवस्था, रूपान्तर, हालत होती है, उस हालत में अनादि से अज्ञानी को अपने स्वभाव चैतन्यज्योति आनन्दसहित, दृष्टिसहित स्वभावयुक्तपने वर्तना चाहिए, ऐसे न वर्तकर कर्म के स्वभाव के युक्तपने वर्तने से **(-प्रगट होनेवाले)**

शुभ या अशुभ भाव... देखो! यह दया, दान, व्रत, भक्ति जो शुभविकल्प उठता है, वह सब शुभ और अशुभभाव कर्म के निमित्त के संग से वर्तने से आत्मा में शुभ और अशुभभाव प्रगट हुआ है। कहो, समझ में आया? इसे भी खबर नहीं होती, यह शुभभाव कहाँ से हुए और क्यों हुए? हें? अभी दया, दान, भक्ति, व्रत, तप, यह विकल्प / राग, वह हमारा धर्म!

यहाँ कहते हैं कि वह धर्म नहीं है। वह परिणाम मलिन है। पुण्य और पाप दोनों भाव शुभभाव विकार है। भगवान उसे भावबन्ध कहते हैं। समझ में आया? भावबन्ध अर्थात् क्या? धर्मचन्दजी! भावबन्ध अर्थात् स्वभाव शुद्ध त्रिकाली है, वह विकार में रुके, रुके। विकार में रुकता है, वह भावबन्ध है। समझ में आया? अभी तो नौ तत्त्व में, नौ यह बन्धतत्त्व किसे कहना, उसकी व्याख्या है। बन्ध की भी खबर नहीं होती।

कहते हैं कि भाई! प्रभु! तेरा स्वरूप तो अन्दर शुद्ध और आनन्द, उससे सहित वर्तमान दशा को उसके सहित स्वभावसहित वर्तना चाहिए, वह मोक्ष का मार्ग है। ऐसे न वर्तकर वह कर्म जड़, वह पाक अन्दर दूसरी चीज़ है, उसके सहित के संग के सम्बन्ध में जुड़ान होने से तेरी पर्याय में, अवस्था में शुभ और अशुभभाव प्रगट हो, उसे वह जीव करता है। यह जीव करता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : एक ओर तो आप ऐसा कहते हो 'कर्म बेचारे कौन, भूल मेरी अधिकाई।'

पूज्य गुरुदेवश्री : किसने कहा? क्या सुना यह?

मुमुक्षु : एक ओर कर्म को यहाँ स्थापित किया।

पूज्य गुरुदेवश्री : कर्म को स्थापित किया नहीं। कर्म का इनकार किया? किसने कर्म का इनकार किया? कर्म स्थापित नहीं किये? कर्म नहीं? परन्तु कर्म के कारण विकार होता है, ऐसा किसने कहा? ध्यान कहाँ रखा तुमने? जेचन्दभाई! परन्तु अन्दर थोड़ा बदल गया। जेचन्दभाई! दूसरी बात की भाई ने।

मुमुक्षु : ऐसा कहते हैं कि कल की अपेक्षा आज दूसरा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। दूसरा है ही नहीं। कर्म बेचारे कौन, वह तो यहाँ

आगे है। कहा नहीं ? कर्म वस्तु नहीं कर्म ? जगत में कर्म पदार्थ नहीं ? जड़कर्म है, आठ कर्म है। जड़, मिट्टी, धूल, अजीव। परन्तु उस कर्म के कारण जीव को विकार है, ऐसा नहीं है। यह कर्म के आधीन हो, इसलिए विकार होता है, ऐसा है। यह तो बात अभी हो गयी। बराबर ध्यान रखना चाहिए। जेचन्दभाई ! आज और शिथिल होकर आये हैं, थोड़े ढीले। हें ? कहा न ? इस समय ढीला होकर। राजा भी सिंह भी हो गया पिल्ला। गडुलिया समझते हो ? यह कुत्ती का बच्चा होता है न, क्या कहलाता है ? हमारे (काठियावाड़ी में) कुरकुरियां कहते हैं। तुम्हारे क्या कहते हैं ? पिल्ला। सिंह, सिंह !

इसी प्रकार आत्मा अन्दर में सिंह अनन्त ज्ञान, दर्शन का भरपूर पदार्थ है। महावीर्य की मूर्ति पूर्ण... पूर्ण... बल का वह स्वामी है। खबर नहीं होती ! इसलिए जहाँ जिसकी प्रीति हुई, वहाँ उसका भाव उस जाति का प्रगट हुआ, इसे कर्म में प्रीति हुई। कर्म ने करायी नहीं। समझ में आया ? जरा भी कराता नहीं और आज कहा कि जरा भी कराता नहीं। किसने कहा ?

कर्म के सम्बन्ध में जुड़ान था, वह ऐसा कहा। कर्म ने कराया, ऐसा यहाँ अभी बात है नहीं। कल भी नहीं थी, आज भी नहीं और कभी नहीं होगी। कहो, समझ में आया ? यहाँ तो कहते हैं कि **अन्य के (-पुद्गलकर्म के) आश्रय द्वारा...** ऐसा कहा है। अन्य द्वारा हुआ, ऐसा नहीं। और वह अनादि काल से उसमें रक्त रहा है, पर के आश्रय में। **कर्मोदय के प्रभावयुक्तरूप वर्तने से उदित (-प्रगट होनेवाले)...** देखो ! भाषा कैसी है ? स्वभाव में यह है नहीं। पुण्य और पाप, दया और दान यह आदि शुभाशुभभाव, वह आत्मा के स्वभाव में नहीं है। शुद्ध शक्ति में नहीं है। पर्याय में नये प्रगट करता है। शुभ और अशुभ—हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, काम, क्रोध, कमाना, कमाना, वह पाप, वह पाप। दया, दान, भक्ति, व्रत, तप, पूजा, यात्रा यह दोनों शुभ और अशुभ विकार भाव है। भगवान इसे भावबन्ध कहते हैं। इसकी भी खबर नहीं होती, उसे धर्म किस प्रकार होगा ? समझ में आया ?

शुभ या अशुभभाव को करता है,... है न पाठ ? '**करेदि जहि अप्पा**' ऐसा पाठ में है न ? इसका शब्द है इसके साथ। '**स्तो**' लिया और '**उदिण्णं**' लिया, उसमें है वह

लिया है। तो वह आत्मा, देखो! ऐसा करे तो वह आत्मा अब... यह गुजराती कहीं बहुत ऐसा (न समझ में आये ऐसा) नहीं है। समझ में आये ऐसा है। समझ में आया? ध्यान रखे न तो समझ में आये ऐसा है। कहीं हमेशा हिन्दी हो फिर? दो महीने से हिन्दी चलता है। अब तो यह गुजराती चलेगा। यह तो आवे, न समझ में आये ऐसा नहीं है। थोड़ा-थोड़ा अभ्यास कर लेना। जैसा गुजराती में आता है, वैसा स्पष्ट विस्तार हिन्दी में नहीं आता। अब यहाँ तो गुजराती की भाषा काठियावाड़ी है न! हिन्दी में अमुक भाव आवे, परन्तु उसका स्पष्टीकरण और विस्तार (स्पष्ट नहीं आता।) समझ में आया?

शुभ या अशुभ भाव को करता है, तो वह आत्मा... ऐसा। यदि यह आत्मा अपने को भूलकर या अस्थिरता में कर्म के पाक के प्रभावनासहित स्वयं वर्ते तो शुभ और अशुभभाव उसमें प्रगट होता है। यह दोनों विकारी मलिन दुःखरूप, आकुलतारूप दोनों भाव हैं। कहो, समझ में आया इसमें?

शुभ-अशुभभाव दोनों दुःखरूप होंगे? हें? यहाँ ही अभी सबको दिक्कत है न? भगवान तो ऐसा कहते हैं कि शुभ और अशुभ दोनों कर्म के आश्रय से तुझमें हुआ विकारी भाव है। उसमें शुभभाव, वह धर्म और पाप भाव वह अधर्म, दो कहाँ से लाया? सम्यग्दृष्टि को शुभभाव है, वह बन्ध का कारण है। मिथ्यादृष्टि को शुभभाव है, वह बन्ध का कारण है, वह धर्म का कारण है ही नहीं। भावबन्ध कहीं और अबन्ध परिणाम का कारण होगा? भावबन्ध, वह अबन्ध परिणाम। अबन्ध परिणाम कहो या मोक्षमार्ग कहो। कहो, समझ में आया?

तो वह आत्मा उस निमित्तभूत भाव द्वारा... इस निमित्तभूत भाव द्वारा **विविध पुद्गलकर्म...** अब नये कर्म। वे पहले पुराने थे। आहाहा! बात का नव तत्त्व की जिसे अभी पृथक्ता की खबर नहीं होती, श्रद्धा की पहिचान नहीं होती और हो गया धर्म। लो! करो धर्म। प्रतिमा ले लो और व्रत ले लो! कहाँ से प्रतिमा और व्रत आये? सम्यग्दर्शन बिना अभी प्रतिमा का विकल्प सच्चा होता ही नहीं। उसे व्रत का विकल्प भी सच्चा नहीं होता। व्रत और प्रतिमा भी अभी विकल्प-व्यवहार है। समझ में आया?

तो वह आत्मा उस निमित्तभूत भाव द्वारा... आत्मा में निमित्तभूत भाव हुआ।

किसे ? नये कर्म को। नये कर्म जब बँधे, उसे यह शुभाशुभभाव निमित्त हुआ। निमित्तभूत भाव द्वारा, भाव कहो या पर्याय कहो, हों! पर्याय कहो, भाव कहो, अवस्था कहो। शुभ-अशुभभाव, वह विकारी पर्याय है। शुभ-अशुभभाव, वह आत्मा की मलिन, सदोष दशा है। वह धर्मस्वरूप नहीं। धर्मरूप हो, उसका उस बन्ध में निमित्त नहीं होता। नये जड़ बन्ध में धर्म पर्याय हो, वह बन्ध में निमित्त नहीं होती। नये बन्ध में निमित्त हो, वह पुण्य-पाप का भाव अधर्म पर्याय है। और स्पष्ट भाषा हुई। समझ में आया ? आहाहा!

नये कर्म के बन्धन पड़े, उसे जो निमित्त हो, वह अधर्मभाव होता है, धर्मभाव नहीं। धर्मभाव से बन्धन में निमित्त होने की योग्यता नहीं होती। धर्म तो संवर और निर्जरा का कारण है। आहाहा! समझ में आया ? **तो वह आत्मा...** जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बाँधे, वह भाव धर्म नहीं। कहो। वह कर्म संयुक्तपने के लक्ष्य से-वश से उत्पन्न हुआ शुभभाव है। वह शुभभाव, वह नये कर्म को तीर्थंकरप्रकृति बाँधे, उसे निमित्तभूत होता है समकिती को। वह राग को हेय जानता है। बन्ध को ज्ञेय जानता है। स्वभाव चिदानन्द शुद्ध को उपादेय जानता है। कहो, समझ में आया ?

तो वह आत्मा उस निमित्तभूत भाव द्वारा... वह निमित्त कौन ? शुभाशुभभाव हुए वह। शुभ और अशुभभाव जो प्रगट हुए, उन निमित्तभूत भाव द्वारा, ऐसे निमित्तभूतभाव द्वारा, विविध पुद्गलकर्म से बद्ध होता है। नये रजकण आठ कर्म से जो बँधें (वह) व्यवहार से बँधते हैं। कहो, समझ में आया ? आत्मा बँधता है, ऐसा लिया है न ? व्यवहार से लेना है न ? वह निश्चय से बँधता है। यह व्यवहार से। यह तो आत्मा शब्द पड़ा है न ? **तो वह आत्मा उस निमित्तभूत भाव द्वारा विविध पुद्गलकर्म से बद्ध होता है।** यहाँ तो अभी ऐसा कहना है। समझ में आया ? अब इसका स्पष्टीकरण करते हैं कि यह क्या कहा ? **इसलिए यहाँ (ऐसा कहा है कि), मोहरागद्वेष द्वारा स्निग्ध ऐसे जो जीव के शुभ या अशुभ परिणाम, वह भावबन्ध है...**

यहाँ ऐसा कहा कि मिथ्यात्वभाव, वह पुण्यभाव से धर्म होता है, पापभाव में मजा, ऐसा जो मिथ्यात्वभाव और राग-द्वेषभाव, दया, दान, वह पुण्यपरिणाम; हिंसा, झूठ, वह पापपरिणाम, ऐसे मोह-राग-द्वेष द्वारा, स्निग्धतावाले—स्निग्ध-स्निग्ध।

स्निग्धतावाले **ऐसे जो जीव के शुभ या अशुभ परिणाम...** देखो! शुभभाव भी मोह-राग-द्वेष द्वारा स्निग्धतावाले परिणाम हैं। समझ में आया? है?

मोहरागद्वेष द्वारा स्निग्ध... स्निग्ध-चिकने ऐसे जो जीव के शुभ या अशुभ परिणाम, मोह और राग-द्वेष, पुण्य को धर्म मानना, वह मिथ्यात्व और साथ में राग और हिंसा का भाव-द्वेष। यह जो सब भाव चिकने। समझ में आया? **जो जीव के...** शुभ जो दया, दान का भाव वह शुभ, हिंसा का अशुभ। वे सब परिणाम चिकने हैं। वे आत्मा के स्वभाव की अरागी वीतरागी पर्याय नहीं है। धर्म पर्याय नहीं है। ओहोहो! समझ में आया इसमें?

यह तो अभी नौ पदार्थ की व्याख्या चलती है। लो! यहाँ नौ तत्त्व लिखे। नौ पदार्थ। समझ में आया? जीव, अजीव, पुण्य-पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष। सात की व्याख्या चल गयी। बन्ध और मोक्ष की व्याख्या चलती है। तो कहते हैं कि भावबन्ध किसे कहा? कि **मोहरागद्वेष द्वारा स्निग्ध ऐसे जो जीव के शुभ या अशुभ परिणाम, वह भावबन्ध है...** वह विकारी परिणाम आत्मा के अबन्धस्वभाव को रोकनेवाले भावबन्ध परिणाम हैं। कहो, समझ में आया? वजुभाई! यह तो सरल है। आज कहीं बहुत ऐसा सूक्ष्म नहीं है।

मोहरागद्वेष द्वारा स्निग्ध... भाषा देखो! यह चिकने परिणाम हैं, तब बन्ध का निमित्त होते हैं न? चिकने बिना नये जड़ का निमित्त नहीं होता। नये जो कर्म बँधते हैं, उसे यह निमित्त होते हैं। कौन? कि चिकने परिणाम। कैसे? कि शुभभाव और अशुभभाव। कैसे? कि मोह-राग-द्वेषवाले, स्निग्धतावाले। ओहोहो! हें? चिकनाई अर्थात् यह चिकनाई कहाँ है? स्पर्श की चिकनाहट। यहाँ तो मोह-राग-द्वेष द्वारा चिकनाहट, विकार की चिकनाहट, विकारभाव की चिकनाहट। जड़ की चिकनाहट तो स्पर्श अन्दर में रही जड़ में। आत्मा में कहाँ है?

यह तो आत्मा की पर्याय में, अवस्था में मोह-राग-द्वेष द्वारा चिकनाहटवाले शुभ और अशुभभाव। शुभ को (भी) मोह-राग-द्वेष की चिकनाहटवाले शुभ कहे, अशुभ को (भी) मोह-राग-द्वेष की चिकनाहटवाले कहे। कहो, समझ में आया? अब, देखो! अभी जगत के प्राणी एक तो ऐसा कहते हैं कि यह शुभभाव है, वह पुण्य है और पुण्य

करते-करते धर्म होगा। यह दृष्टि अत्यन्त मिथ्यात्व है। एकदम उल्टी दृष्टि है, ऐसा यहाँ भगवान कुन्दकुन्दाचार्य महाराज (कहते हैं)। स्निग्धता परिणाम शुभ भी स्निग्ध परिणाम हैं, बन्ध का कारण है। उससे आत्मा को वीतराग दृष्टि, सम्यग्दृष्टि नहीं होती। समझ में आया?

मोहरागद्वेष द्वारा स्निग्ध ऐसे जो जीव के शुभ या अशुभ परिणाम... कहो, पर्याय कहो, अवस्था कहो, भाव कहो। शुभ-अशुभभाव, वह भावबन्ध है। लो! भावबन्ध है। आत्मा अबन्धस्वरूपी, वह भावबन्ध में रुके, वह भाव पर्याय विकारी है। ऐसा तत्त्वों के जाननेवाले को भावबन्ध को भावबन्धरूप से जानना चाहिए। यह संवर और निर्जरा है, ऐसा उसे नहीं जानना चाहिए। कहो, समझ में आया?

सम्यग्दृष्टि को भी जितना रागादि, द्वेष है, वह भावबन्ध है। छूट जाये तो केवल (ज्ञान) हो जाए। यहाँ तो मोह-राग-द्वेषसहित लिया है न एक साथ सब। कहो, समझ में आया? भावबन्ध समझ में आया? आत्मा वस्तु अनन्त ज्ञानादि निर्मल कन्द प्रभु आत्मा, वह कर्म के निमित्त के संग में जुड़ा हुआ विकार पुण्य-पाप के करे मोह और राग-द्वेष के परिणाम चिकनाई, उसे यहाँ भावबन्ध कहा जाता है। भगवान अरूपी, अबन्धस्वरूपी, वह विकार में अटका, इसका नाम भावबन्ध, अरूपी विकार को भावबन्ध कहते हैं। समझ में आया? कहो, शिवलालभाई! कहीं है नहीं। यह सब गड़बड़-गड़बड़। शिवलालभाई को तो अब... कहो, समझ में आया इसमें?

टीका में कितनी स्पष्टता है। पढ़े नहीं, विचारे नहीं, ऐसा का ऐसा बिना भान के मुट्ठियाँ बाँधकर चले, यह चलो, चलो। परन्तु कहाँ जाना है? अभी जीवतत्त्व कौन है? अन्दर पुण्य-पाप के भावरूपी नये आवे वह आस्रव, परन्तु रुका वह भावबन्ध कौन? संवर-निर्जरा वह अन्दर क्या चीज़ है? (जो) स्वभाव के आश्रय से प्रगट होती है। यह पुण्य और पाप के भाव तो पर के आश्रय से प्रगट हुए। चिकने हैं। इसका नाम भावबन्ध कहने में आता है। कहो, समझ में आया?

और उसके यह शुभाशुभपरिणाम के निमित्त से इस शुभाशुभपरिणाम के संयोग-निमित्त से शुभाशुभकर्मरूप परिणत पुद्गलों का। यह नया आने का। देखो! यहाँ शुभाशुभपरिणाम निमित्त है। नये कर्म स्वयं के कारण से **शुभाशुभकर्मरूप परिणत पुद्गलों का...** कर्मों का **जीव के साथ अन्योन्य अवगाहन...** यह विशिष्ट शक्ति निमित्त-

निमित्त सम्बन्धरूप से विशिष्ट शक्तिसहित एकक्षेत्रावगाह, एक क्षेत्र में रहना, ऐसा सम्बन्ध, उसे द्रव्यबन्ध कहते हैं। वे रजकण जो नये शुभाशुभभाव स्निग्ध बन्ध का कारण भाव, उसका निमित्त और नये कर्म उसे आये, वे आत्मा के एकक्षेत्रावगाह से रजकणों का रहना, उसे द्रव्यबन्ध कहा जाता है। हीराभाई घड़ी के सामने देखते हैं। कब समाप्त हो। कहो, समझ में आया इसमें? समझ में नहीं आये और क्या करे परन्तु? क्या कहा, समझ में आया इसमें?

उनके निमित्त से शुभाशुभकर्मरूप परिणत... यह नयी बात क्या है, नया क्या है, यह समझ में नहीं आता। बस, वह का वह लगा करता है, ऐसा का ऐसा मानो... क्योंकि ज्ञान नहीं होता और पहिचान नहीं होती। समझ की दरकार नहीं होती। आहाहा! यह क्या और भावबन्ध, उसके निमित्त से शुभाशुभकर्मरूप परिणत वे परमाणु, **पुद्गलों का जीव के साथ अन्योन्य...** निमित्त-निमित्त की **विशिष्ट शक्ति सहित...** अवगाहन अन्दर एक क्षेत्र में कर्म का रहना, उस कर्म को द्रव्यबन्ध कहा जाता है।

कर्म के रजकणों की दशा को द्रव्यबन्ध (कहा जाता है)। आत्मा के साथ एक प्रदेश में रहना, उसे द्रव्यबन्ध कहते हैं। और विकारी परिणाम को भावबन्ध कहते हैं। कहो, यह तो सरल भाषा है। अब कोई बहुत ऐसी (कठिन नहीं है)। समझ में आता है न भाई! बहुत पुराने हैं न हमारे यहाँ हिन्दी ललितपुर। अब थोड़ा-थोड़ा समझते हैं। ऐसी कोई भाषा है। समझ में आया? आहाहा!

एक गाथा। एक ही गाथा, देखो! कितना स्पष्ट है! अमृतचन्द्राचार्य महाराज नौ वर्ष पहले दिगम्बर सन्त भावलिंगी मुनि (हुए हैं), उनकी यह टीका है और मूल श्लोक भगवान कुन्दकुन्दाचार्य महाराज के श्लोक। अभी भावबन्ध और द्रव्यबन्ध की यह व्याख्या इसे मस्तिष्क में नहीं होती। पुण्य से धर्म होता है और व्यवहार करते-करते— व्यवहार अर्थात् पुण्य। व्यवहार अर्थात् पुण्यपरिणाम, ऐसा करते-करते धर्म होता है अर्थात् कि वीतरागभाव होता है। यहाँ कहते हैं कि व्यवहार करते हुए निमित्तरूप से होकर नया बन्ध पड़ता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? लो! इस एक गाथा में भावबन्ध और द्रव्यबन्ध दोनों की व्याख्या हुई।

गाथा - १४८

जोगणिमित्तं गहणं जोगो मणवयणकायसंभूदो।
भावणिमित्तो बंधो भावो रदिरागदोसमोहजुदो।।१४८।।

योगनिमित्तं ग्रहणं योगो मनोवचनकायसम्भूतः।
भावनिमित्तो बन्धो भावो रतिरागद्वेषमोहयुतः।।१४८।।

बहिरङ्गान्तरङ्गबन्धकारणाख्यानमेतत् ।

ग्रहणं हि कर्मपुद्गलानां जीवप्रदेशवर्तिकर्मरस्कन्धानुप्रवेशः । तत् खलु योगनिमित्तम् । योगो वाङ्मनःकायकर्मवर्गणालम्बन आत्मप्रदेशपरिस्पन्दः । बन्धस्तु कर्मपुद्गलानां विशिष्टशक्ति-परिणामेनवस्थानम् । स पुनर्जीवभावनिमित्तः । जीवभावः पुना रतिरागद्वेषमोहयुतः, मोहनीयविपाकसम्पादितविकार इत्यर्थः । तदत्र पुद्गलानां ग्रहणहेतुत्वाद्बहिरंगकारणं योगः विशिष्टशक्तिस्थितिहेतुत्वादन्तरङ्गकारणं जीवभाव एवेति ।। १४८ ।।

है योग हेतुक कर्म आस्रव योग तन-मन जनित हैं।
है भाव हेतुक बन्ध अर भाव रतिरुष सहित है।।१४८।।

अन्वयार्थ :— [योगनिमित्तं ग्रहणम्] ग्रहण का (कर्मग्रहण का) निमित्त योग है; [योगः मनोवचनकायसंभूतः] योग मनवचनकायजनित (आत्मप्रदेश-परिस्पन्द) है। [भावनिमित्तः बन्धः] बन्ध का निमित्त भाव है; [भावः रतिराग-द्वेषमोहयुतः] भाव रतिरागद्वेषमोह से युक्त (आत्म-परिणाम) है।

टीका :- यह, बन्ध के बहिरंग कारण और अन्तरंग कारण का कथन है।

ग्रहण अर्थात् कर्मपुद्गलों का जीवप्रदेशवर्ती (-जीव के प्रदेशों के साथ एक क्षेत्र में स्थित) कर्मस्कन्धों में प्रवेश; उसका निमित्त योग है। योग अर्थात् वचनवर्गणा, मनोवर्गणा, कायवर्गणा और कर्मवर्गणा का जिसमें आलम्बन होता है, ऐसा आत्मप्रदेशों का परिस्पन्द (अर्थात् जीव के प्रदेशों का कम्पन)।

बन्ध अर्थात् कर्मपुद्गलों का विशिष्ट शक्तिरूप परिणामसहित स्थित रहना (अर्थात् कर्मपुद्गलों का अमुक अनुभागरूप शक्तिसहित अमुक काल तक टिकना); उसका निमित्त जीवभाव है। जीवभाव रतिरागद्वेषमोहयुक्त (परिणाम) है अर्थात् मोहनीय के विपाक से उत्पन्न होनेवाला विकार है।

इसलिए यहाँ (बन्ध में), बहिरंग कारण (-निमित्त) योग है क्योंकि वह पुद्गलों के ग्रहण का हेतु है, और अन्तरंग कारण (-निमित्त) जीवभाव ही है क्योंकि वह (कर्मपुद्गलों की) विशिष्ट शक्ति तथा स्थिति का हेतु है।

भावार्थ :- कर्मबन्ध पर्याय के चार विशेष हैं : प्रकृतिबन्ध, प्रदेशबन्ध, स्थितिबन्ध और अनुभागबन्ध। इसमें स्थिति-अनुभाग ही अत्यन्त मुख्य विशेष हैं, प्रकृति-प्रदेश तो अत्यन्त गौण विशेष हैं; क्योंकि स्थिति-अनुभाग के बिना कर्मबन्धपर्याय नाममात्र ही रहती है। इसलिए यहाँ प्रकृति-प्रदेशबन्ध का मात्र 'ग्रहण' शब्द से कथन किया है और स्थिति-अनुभागबन्ध का ही 'बन्ध' शब्द से कहा है।

जीव के किसी भी परिणाम में वर्तता हुआ योग, कर्म के प्रकृति-प्रदेश का अर्थात् 'ग्रहण' का निमित्त होता है और जीव के उसी परिणाम में वर्तता हुआ मोहरागद्वेषभाव, कर्म के स्थिति-अनुभाग का अर्थात् 'बन्ध' का निमित्त होता है; इसलिए मोहरागद्वेषभाव को 'बन्ध' का अन्तरंग कारण (अन्तरंग निमित्त) कहा है और योग को—जो कि 'ग्रहण' का निमित्त है उसे—'बन्ध' का बहिरंग कारण (बाह्य निमित्त) कहा है॥१४८॥

गाथा - १४८ पर प्रवचन

जोगणिमित्तं गहणं जोगो मणवयणकायसंभूदो।
भावणिमित्तो बंधो भावो रदिरागदोसमोहजुदो।।१४८।।

है योग हेतुक कर्म आस्रव योग तन-मन जनित हैं।
है भाव हेतुक बन्ध अर भाव रतिरुष सहित है।।१४८।।

टीका :- यह, बन्ध के बहिरंग कारण और अन्तरंग कारण का कथन है। देखो! आचार्य कितना विवेक बताते हैं! योग है, आत्मा के प्रदेश का कम्पन है, वह बहिरंग कारण है और आत्मा के अन्दर के मिथ्यात्व, राग-द्वेष के परिणाम, वे विशिष्ट कारण हैं। नये बन्ध में भी दो अन्तर किये हैं। समझ में आया?

टीका :- यह, बन्ध के... नया जो बन्ध पड़ता है न, जड़? उसके **बहिरंग कारण**

और अन्तरंग कारण का कथन है। नये कर्म के रजकण जो बँधते हैं, उसमें निमित्तपने में वह योग है, वह बाह्य निमित्त है और राग-द्वेष के परिणाम, वे अन्तरंग निमित्त हैं। कहो, है तो इसकी और इसकी पर्याय। कम्पन आत्मा के प्रदेश, है तो आत्मा की पर्याय, परन्तु वह नये बन्ध में बहिरंग कारण कहा। मात्र कर्म आने में वह निमित्त है। वह मूल बन्ध का कारण नहीं है। और कर्म में स्थिति-रस पड़ने का मूल निमित्त कारण... पड़ता है तो उससे, परन्तु उसका अन्तरंग कारण मोह और राग-द्वेष एक ही कारण अन्तरंग कर्म कारण है।

जीव के प्रदेशों का कम्पन, उसे बहिरंग कारण कहा। समझ में आया? और यह इसका बहिरंग कारण? वह नये कर्म रजकण बँधते हैं, जड़ परमाणु, उनका बाह्य कारण कम्पन और उनका निमित्त-यह निमित्त के दो भाग किये। एक बाह्य निमित्त, एक अन्तरंग निमित्त। राग और द्वेष, पुण्य और पाप, मिथ्यात्वभाव, वह अन्तरंग कारण नये बन्ध का अन्तरंग निमित्तकारण है। आहाहा! समझ में आया?

ग्रहण अर्थात् कर्मपुद्गलों का जीवप्रदेशवर्ती (-जीव के प्रदेशों के साथ एक क्षेत्र में स्थित) कर्मस्कन्धों में प्रवेश;... कहो, समझ में आया? ग्रहण अर्थात् पाठ है न? **'जोगणिमित्तं गहणं' कर्मपुद्गलों का...** नये रजकणों का एक **जीवप्रदेशवर्ती (-जीव के प्रदेशों के साथ एक क्षेत्र में स्थित) रजकणों, कर्मस्कन्धों में प्रवेश; उसका निमित्त योग है।** कर्म स्कन्धों का आना। समझ में आया? उसका निमित्त आत्मा के प्रदेशों का कम्पन है। आत्मा कर्म स्कन्ध में यह निमित्तरूप से प्रवेश हुआ न? निमित्त, उसका योग है। कम्पन-प्रदेश कम्पन, वह कहीं मूल कारण नहीं है।

योग अर्थात् वचनवर्गणा, मनोवर्गणा, कायवर्गणा और कर्मवर्गणा का जिसमें आलम्बन होता है... आत्मा के प्रदेश के कम्पन में जिसमें वचनवर्गणा वचन के परमाणुओं का निमित्त-अवलम्बन हो। जिसे मनोवर्गणा का निमित्त हो, वह मनायोग। जिसे कायवर्गणा का परमाणु का निमित्त हो वह काययोग—कम्पन। वह निमित्त। **और कर्मवर्गणा का जिसमें आलम्बन होता है ऐसा आत्मप्रदेशों का परिस्पन्द...** आत्मा के प्रदेशों का कँपना, कम्पन, जरा कम्पन, उसे योग कहते हैं। ओहोहो! समझ में आया? समझे?

उसे ग्रहण... ग्रहण। योग निमित्त का ग्रहण लिया है। बन्ध लिया है। रजकण आवे, उसमें कम्पन निमित्त है, वह कहीं मूल वस्तु नहीं है। इसलिए उसे बन्ध में निमित्तकारण—बाह्य निमित्तकारण कहा।

देखो! एक की एक आत्मा की पर्याय, उसके दो प्रकार किये। एक कम्पन को बहिरंग कारण और राग-द्वेष को अन्तरंग कारण (कहा)। अपने जो नियमसार में ५३वीं गाथा आती है, अन्तरंग कारण और बहिरंग कारण। मूल तो आचार्य, इन्हें पद्मप्रभमलधारिदेव ने अमृतचन्द्राचार्य की बहुत पद्धति ली है। यहाँ यह पद्धति अपनायी। अमृतचन्द्राचार्य के पद्य—गद्य-पद्य क्या कहलाते हैं वह सब? यह सब उनका ही अनुसरण किया है। अमृतचन्द्राचार्य तो! ओहोहो! इस पंचम काल में वे मुनि गणधर जैसा (और) तीर्थंकर जैसा काम तो कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने किया है। पंचम काल की योग्यता प्रमाण। गणधर जैसी टीका। अमृतचन्द्राचार्य मुनिधर्म के स्तम्भ, धर्म के स्तम्भ। महासन्त मुनि! समझ में आया? धर्म-धर्माचार्य।

कहते हैं, भगवान आत्मा में दो बात होती है। एक तो प्रदेश जो है, असंख्य प्रदेश आत्मा है। वस्तु देखो! एक पॉइन्ट परमाणु जो है, पॉइन्ट-परमाणु। जितने जगह को रोके, उसे प्रदेश कहते हैं। ऐसे असंख्य प्रदेशी चौड़ा आत्मा है। उन असंख्य प्रदेश में कम्पन हो, उसे योग कहते हैं। उस कम्पन में निमित्त जो-जो वर्गणा हो, उस प्रकार का उसे योग कहा जाता है। कम्पन तो यहाँ एकरूप है, परन्तु उस कम्पन में मनोवर्गणा का निमित्त हो तो उसे मनोयोग कहते हैं। वचनवर्गणा का निमित्त (हो तो) वचनयोग कहते हैं। कायवर्गणा का निमित्त हो तो (काययोग) उसे कहते हैं। कार्मणयोग का निमित्त हो तो काययोग कहते हैं। भाई! लिया है न चौथा कर्मवर्गणा? यह वह काययोग लिया। कार्मण-काययोग। इसलिए वह इकट्ठा डाला। समझ में आया? आहाहा!

आत्मा वस्तु है असंख्य प्रदेशी। अनन्त गुण का धाम। उसमें जो असंख्य प्रदेश का कम्पन, उसका नाम रखा है कि यह मनयोग, यह वचनयोग, यह काययोग, यह कार्मणकाययोग। भाई! काययोग तो औदारिक और वैक्रियिक का भी होता है। इसलिए यह कार्मण और काययोग को अलग करके रास्ते में जब होता है, तब... दूसरे नहीं।

औदारिक शरीर या ऐसा कुछ भी वह योग नहीं तो काययोग में वह आ जाता है। परन्तु काययोग से कर्मवर्गणा पृथक् एक निमित्त किया। क्योंकि मार्ग में काययोग का दूसरा नहीं है। रास्ते में कार्मणकाययोग कम्पन है तो उस कम्पन को वे कर्म के रजकण ऐसे हैं और इतना उसे निमित्त है। इसलिए उसे कार्मण-काययोग कहा है।

मुमुक्षु : कठिन तो पड़ता है, हों!

पूज्य गुरुदेवश्री : कठिन पड़े परन्तु धीरे-धीरे तो कहते हैं। इसमें कठिन पड़ता है? थोड़ा तो पड़े भाई! अमेरिका जाकर आये वहाँ मस्तिष्क रुका हो। कितने वर्ष हुए? पाँच वर्ष। ओहो! परन्तु है कोमलता थोड़ी। कहीं वह इसे बहुत असर नहीं हुआ। कहो, समझ में आया? वहाँ जाये न तो पावर फट जाता है। ओहो! अमेरिका अर्थात् क्या? पैसेवाले, किराये का बड़ा मकान-बकान। धूल है सब वहाँ। समझ में आया? फिर से कहते हैं, देखो न!

देखो! यह आत्मा है या नहीं? यह वस्तु है न अस्ति, है। तो 'है' उसमें अनन्त ज्ञान आदि शक्ति अर्थात् हदरहित स्वभाव, ऐसे उसमें अनन्त स्वभाव है। और उसमें एक योग नाम की भी शक्ति है। अब एक योग नाम का भी अन्दर एक गुण है। अब जब इन मन के परमाणुओं का अवलम्बन हो, पुद्गल परमाणु, तब उस कम्पन को मनयोग कहा जाता है। कम्पन तो एक प्रकार का, परन्तु उस मनोवर्गणा का निमित्त तो इसे मनोयोग कहा जाता है। वचनवर्गणा परमाणु है, सूक्ष्म यह, यह तो आवाज निकलती है न वर्गणा की, उसका तो निमित्त अन्दर वचनयोग, कम्पन को वचनयोग कहा जाता है। यह काया है, यह मिट्टी। यह वैक्रियिकशरीर, आहारकशरीर, उनके परमाणुओं का निमित्त अवलम्बन तो यहाँ काययोग कहा जाता है। और कार्मणशरीर के परमाणु का निमित्त अवलम्बन तो वहाँ काययोग कहा जाता है। इस प्रकार योग का कम्पन, उसका चार प्रकार से वर्णन किया है। फिर काया के भी बहुत भेद हैं, वह अलग बात है। मन के चार, वचन के चार। यह तो सामान्यरूप से... मन के चार, वचन के चार, काया के सात, ऐसा करके। यह सूक्ष्म बात है। कहो, समझ में आया इसमें?

ऐसा आत्मप्रदेशों का... ऐसे अर्थात् जिसमें ऐसा आलम्बन, निमित्त हो, ऐसे

आत्मप्रदेशों का, अन्तर में अपने उपादान के कारण से परिस्पन्द-कम्पन हो, उसे योग कहते हैं। वह योग तो मात्र नये कर्म में निमित्त ग्रहण में निमित्त है। आते हैं, उसके कारण से उसमें। परन्तु वास्तविक बन्ध वह नहीं है। समझ में आया?

बन्ध अर्थात् कर्मपुद्गलों का विशिष्ट शक्तिरूप परिणाम सहित स्थित रहना (अर्थात् कर्मपुद्गलों का अमुक अनुभागरूप शक्ति सहित अमुक काल तक टिकना); उसका निमित्त जीवभाव है। देखो! उसको साधारण बात की, यहाँ जीवभाव, ऐसा शब्द वापस अलग रखा है, भाई! उसको शब्दयोग कहा। भाव निमित्त शब्द है न, भाई! उसमें योगनिमित्तं, योगभाव, ऐसा शब्द प्रयोग नहीं किया।

यहाँ पाठ में भावनिमित्तो कहा। नहीं तो योग, वह भी भाव है। परन्तु उसकी न्यूनता-तुच्छता बतलाने को मात्र प्रदेश में कम्पन है, वह नये पुद्गल आने में निमित्त बहिरंग कारण कहने में आता है। समझ में आया? और जो कर्म में स्थिति, देखो न! **कर्मपुद्गलों का विशिष्ट शक्तिरूप परिणाम सहित...** स्निग्धता के विकारी अनुभागसहित स्थित रहना, वह स्थिति हो गयी, दोनों हो गये। अनुभाग और स्थिति। समझ में आया?

बन्ध अर्थात् जड़ के परमाणु, द्रव्यबन्ध अर्थात् कर्म पुद्गलों का विशिष्ट शक्तिरूप खास अनुभाग शक्तिसहित परिणामसहित उन पुद्गलों का वहाँ स्थिर रहना। अनुभाग और स्थिति दोनों ले ली। समझ में आया? भाई ने स्पष्टीकरण किया है, देखो! **कर्मपुद्गलों का अमुक अनुभागरूप शक्ति सहित...** अर्थात् अनुभाग आ गया। पुद्गलों का, हों! जड़ के कर्म में। और अमुक काल तक रहना, वह स्थिति आ गयी। योग में तो प्रदेश और प्रकृति। प्रदेश आवे और प्रकृति हो। सामान्य हो गयी। अनुभाग और स्थिति खास वस्तु है, इसलिए कहा, समझ में आया? कहो, अब बन्धतत्त्व की व्याख्या में भी सूक्ष्म पड़ता है, भाई! जमभाई! जमभाई (ने) अधिक सुना। यह सब ऊपर-ऊपर, ऊपर-ऊपर कितनी ही बातें पकड़े और ले। क्या कहा? समझ में आया इसमें? इसे वापस जाना पड़े चार दिन में और आठ दिन में, वे अट्ठाईस दिन। क्या कहा? है? झटकिया! पुस्तक है? ऐसा न? ठीक।

यह योग और स्थिति, रस का पृथक् किया। अपने वह नियमसार की ५३वीं

गाथा है या नहीं ? उसमें दोनों भिन्न किये हैं या नहीं ? ५३वीं गाथा में समकित पानेवाले को, सम्यग्दर्शन के परिणाम पानेवाले को बहिरंग और अन्तरंग कारण दो के भाग किये हैं। ज्ञानियों की वाणी को बहिरंग कारण कहा है और ज्ञानियों के अभिप्राय को अन्तरंग कारण कहा है। आहाहा! यह शैली यहाँ से ली है। बहिरंग की लाईन। क्योंकि अमृतचन्द्राचार्य का ही सब अनुसरण करते हैं। क्या कहा, समझ में आया इसमें ?

आत्मा अपने परमानन्दस्वरूप के प्रतीति का भान—कि मैं तो एक स्वभाव का सागर ज्ञायक दरबार आनन्दस्वभाव से भरपूर। ऐसी अन्तर अनुभव की प्रतीतिरूप सम्यग्दर्शन, उस सम्यग्दर्शन में निमित्त कौन ? एक तो, अभ्यन्तर, हों! अभ्यन्तर निमित्त के दो प्रकार। एक तो ज्ञानियों की वाणी, सम्यग्दृष्टि की वाणी को बहिरंग कारण कहा। उपचार से उसे अन्तरंग कहा है। समझ में आया ? बहिरंग है परन्तु उपचार से उसे अन्तरंग (कहा है)। इस प्रकार वह बहिरंग है। और वे परिणाम जो हैं, वे हैं बहिरंग परन्तु वास्तव में उसे उपचार से अन्तरंग कारण कहा है। उसे अन्तरंग कारण कहा है। सम्यग्दर्शन प्राप्त करनेवाले को धर्मी के सम्यग्दर्शन, ज्ञान आदि के परिणाम अभिप्राय को अन्तरंग कारण (कहा है)। है तो बाह्य। उपचार से अन्तरंग कारण कहा है। कौन वह ? बाह्य कारण। समझ में आया ?

इस प्रकार यहाँ भगवान अमृतचन्द्राचार्य ने... पाठ में है न कुन्दकुन्दाचार्य... '**जोगणिमित्तम्**' हल्का शब्द कर डाला। यह योग के भाव का निमित्त, ऐसा कहकर नहीं कहा। वास्तविक भाव तो राग-द्वेष और मोह है। वही संसार, वही उदयभाव, वही विकार और वही दुःखदायक है। मोहभाव, मिथ्यात्वभाव और राग-द्वेष भाव, वही वास्तविक भाव।

इसलिए कहते हैं कि नये जड़ जो आठ कर्म बँधते हैं, समझ में आया ? उसका बहिरंग निमित्त तो योग है, यह बाद में स्पष्टीकरण आयेगा। उसका निमित्त जीवभाव है। किसका ? उस कर्म में स्थिति और अनुभाग कर्म के कारण से जहाँ पड़े, उसका निमित्त जीव के विकारी मिथ्यात्व राग-द्वेष के भाव हैं। वापस भाव की व्याख्या की है। वह योग की व्याख्या की थी न ? निमित्त योग है, ऐसा कहा। परन्तु योग वापस कौन, उसे बतलाया था, हों! वह। यहाँ वापस कहा कि जीव भाव, परन्तु जीव भाव है कैसा ?

रतिरागद्वेषमोहयुक्त (परिणाम) है अर्थात् मोहनीय के विपाक से उत्पन्न होनेवाला विकार है। यह रति, अधिक प्रेम कहा न! वह रक्त था न रक्त उसमें। रक्त राग, उसमें राग हुआ। पर में रति, राग, द्वेष और मोहसहित परिणाम जीव की पर्याय नये द्रव्यबन्ध को मूल कारण वह विकारी भाव है। समझ में आया? आया था, परन्तु एक घण्टे में कितना आया? इसमें कितना याद रखना? यहाँ कहीं संसार नहीं ध्यान रखता? हजारों बोल का? व्यापार करे वहाँ ध्यान रखता है या नहीं? हें? भंगार यहाँ से आया और यहाँ से गया, अमुक, अमुक। उसमें से गोटी निकली थी और कितना याद रखे! लो! उसमें से चाँदी। कहा न? योगफल सब धूल-धाणी और वा पाणी। उसमें सब ध्यान रखे। आहाहा! देखो! गाथा कैसी वर्णन की है न?

नया द्रव्यबन्ध है न? उसे मात्र जीव के कम्पन परिणाम बाह्य निमित्तरूप से प्रदेश को आने में निमित्त है। निमित्त आता है तो उसके कारण से। वह वास्तविक बन्ध नहीं है। वास्तविक बन्ध तो उस पुद्गल में अनुभाग और स्थिति उसके कारण से पड़े, उसमें निमित्त जीव का भाव हुआ मिथ्यात्व, राग-द्वेष का, रति राग, द्वेष मोहयुक्त भाव। यह स्निग्ध परिणाम नये द्रव्यबन्ध को निमित्तरूप से बाह्य कारण कहने में आते हैं। कम्पन भी बाह्य कारण है और यह भी बाह्य कारण है, परन्तु इसका खास वजन देने के लिये इसे भाव कहने में आया है। कहो, समझ में आया? उसको अन्तरंग कहेंगे। कहेंगे। अब स्पष्टीकरण करे न? वह तो अभी स्पष्टीकरण करते हैं। योग। बस इसका।

इसलिए यहाँ (बन्ध में), बहिरंग कारण... नये जड़कर्म में बाह्य निमित्त कारण **(-निमित्त) योग है क्योंकि वह पुद्गलों के ग्रहण का हेतु है,...** मात्र पुद्गल आवे, उनका निमित्त है। समझ में आया? यहाँ बन्ध में, नया जड़बन्ध, कर्म की पर्यायरूप द्रव्यबन्ध एक आत्मा के स्निग्ध भावबन्ध। दोनों को निमित्त-निमित्तसम्बन्ध ऐसे दो बन्ध की व्याख्या चलती है। तो उसमें नये जो बन्ध, उसका निमित्त-योग है। क्योंकि मात्र पुद्गलों के ग्रहण का योग निमित्त है। **अन्तरंग कारण (-निमित्त) जीवभाव ही है...** है तो वह बाह्यनिमित्त। कर्म में स्थिति और अनुभाग वह तो उपादान उसका, उसमें जीव के विकारी भाव बाह्य कारण है। परन्तु योग की अपेक्षा से अन्तरंग निमित्त जीव भाव ही

है। ऐसा कहने में (आता है)। निमित्त की खास विशेषता विकार में है, ऐसा बताने को उसे अन्तरंग कारण कहा है। समझ में आया?

अन्तरंग कारण किसका? नया द्रव्यबन्ध पड़े कर्म का। जीव भाव ही है। वह जीव भाव कौन सा? कि रतिरागद्वेषमोहयुक्त परिणाम, जो ऊपर कहे वे। वह विकारीभाव नये जड़कर्म को अन्तरंग कारण है। **क्योंकि वह (कर्मपुद्गलों की)...** उसमें ऐसा था कि उन कर्म पुद्गलों के ग्रहण का हेतु था। यहाँ पुद्गलकर्म का **विशिष्ट शक्ति तथा स्थिति का हेतु है।** शक्ति अर्थात् अनुभाग। कर्म पुद्गलों का अनुभाग और स्थिति, उसका यहाँ विकारी और मिथ्यात्वभाव और दया, दान, काम, क्रोध के परिणाम, वह विकारी परिणाम कर्म का अनुभाग और स्थिति कर्म के कारण पड़ती है। उसमें निमित्त यह है। है तो बाह्य, परन्तु अन्तरंग कारण उसकी (योग की) अपेक्षा से कहा... कहो, समझ में आया इसमें?

यह तो एक की थी। यहाँ तो उसमें रक्त हुआ न? सब सब सबमें प्रेम। रक्त कहा है न उसमें? पाठ में। लिया है न? '**स्तो करेदि जदि अप्पा**' ऐसा था न? १४७ गाथा में। '**स्तो**' सबमें रक्त है। सब लीन ही है। कहो, समझ में आया? यह अधिक न समझ में आये तो रात्रि में पूछना। रात्रि में समय है नहीं? आहाहा! सूक्ष्म है। द्रव्यबन्ध पुद्गल तो उसके कारण से बँधता है परन्तु उसमें बाह्य निमित्त योग का कम्पन, वह भी निमित्त। दूसरा कुछ नहीं। उसमें स्थिति रस पड़े कर्म में। उसमें निमित्त। पुद्गल का उपादान तो उसका। उसमें निमित्त जीव का राग-द्वेष-मोहभाव, वह जीव भाव, वह निमित्त है। वह जीव भाव, वह भावबन्ध है। अन्य द्रव्यबन्ध है। द्रव्यबन्ध के दो प्रकार कर दिये। पुद्गल का आना और प्रकृति का होना। साधारण बात करके योग उसका निमित्त कहा। स्थिति रस का होना, उसमें राग-द्वेष-मोह के भाव का अन्तरंग कारण कहा। है तो उसकी अपेक्षा से दोनों बाह्य परन्तु इसका अधिक वजन देने के लिये अन्तरंग कारण कहा जाता है। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. ४७, गाथा-१४८-१४९
दिनांक - २३-१०-१९६४, आसोज कृष्ण २, शुक्रवार

यह १४८ गाथा चलती है। पंचास्तिकाय, इसमें नौ पदार्थ का स्वरूप है। वे नौ पदार्थ जैसे हैं, वैसे यथार्थ श्रद्धापूर्वक मोक्षमार्ग होता है। जिसे नौ पदार्थ की भी यथार्थ श्रद्धा और ज्ञान नहीं, उसे मोक्षमार्ग और धर्म नहीं हो सकता। इसमें यह अधिकार बन्ध का चलता है। बन्धतत्त्व किसे कहना?

सात तत्त्व आते हैं न? जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष। उसमें बन्धतत्त्व जड़बन्ध और भावबन्ध किसे कहना? और उसका क्या स्वरूप है, ऐसा इसे निर्णय करना चाहिए। ऐसा यहाँ १४८ का भावार्थ आया है। जो कर्म जड़ बँधते हैं न? जड़कर्म। भावार्थ है न, १४८ (गाथा का)। जड़ के रजकण कर्म जो बँधते हैं, वह द्रव्यबन्ध कहा जाता है। उस **कर्मबन्ध पर्याय के चार विशेष हैं :...** कर्मबन्ध, वह पुद्गल की पर्याय है। जड़कर्म बन्ध, वह पुद्गल की पर्याय है। इसके चार प्रकार हैं। **प्रकृतिबन्ध, प्रदेशबन्ध,...** प्रकृति अर्थात् कर्म बँधते हैं, इसमें उसका स्वभाव होता है। प्रदेश अर्थात् कर्म बँधते हैं, उसमें परमाणु की संख्या होती है। स्थिति अर्थात् उसमें कर्म की अवधि पड़ती है और अनुभाग अर्थात् पाक, उसमें रस फलदान शक्ति। ऐसे कर्मबन्ध की पर्याय जड़कर्म आठ हैं, जहाँ आत्मा है, उसके एक क्षेत्रावगाह में है। उसके चार प्रकार में इसमें स्थिति-अनुभाग ही अत्यन्त मुख्य विशेष है, यह सिद्ध करना है। उस कर्मबन्धन में जो स्थिति पड़े और अनुभाग जो फल देने की शक्ति है, वह चार में मुख्य वह है। अभी जड़ की बात चलती है, पश्चात् भाव लेंगे। इस जड़ को निमित्त कौन होता है कौन सा भाव?

तो कहते हैं कि कर्म के बन्धन में जो पुद्गल की पर्याय है, उसके विशेष चार प्रकार हैं। उसमें एक प्रकृति, प्रदेश, स्थिति और रस (अनुभाग)। ऐसे चार प्रकार जड़ बन्ध में हैं। समझ में आया? नौ तत्त्व, अभी खबर न हो और नौ तत्त्व किसे कहना— जड़ और चेतन। उसकी श्रद्धा सच्ची नहीं होती और उसे सम्यग्दर्शन बिना धर्म तीन काल में नहीं होता। सम्यग्दर्शन होने से पहले उसे सात तत्त्वों का बराबर जड़ और चैतन्य की

भिन्नता का भाव का भान होना चाहिए। इस भान बिना उसे आत्मा का सम्यग्दर्शन नहीं होता और सम्यग्दर्शन बिना कोई चारित्र, व्रत, तप आदि का धर्म अज्ञानी को नहीं हो सकता। कहो, समझ में आया?

तो कहते हैं, कर्म जो जड़-अजीव है, उसके चार प्रकारों में स्थिति और पाक कर्मफल दे। फल दे, उसी और उसी में। परन्तु निमित्त जीव को होता है। उसके दो मुख्य विशेष स्थिति और अनुभाग। **प्रकृति-प्रदेश तो अत्यन्त गौण विशेष हैं;...** जड़कर्म में कर्म का स्वभाव होना और प्रदेश का-संख्या का होना, वह तो गौण उसकी दशा है। वह कहीं मुख्य आत्मा को निमित्त होने में कारण है नहीं। **क्योंकि स्थिति-अनुभाग के बिना...** यदि कर्म में स्थिति और अनुभाग न हो तो **कर्मबन्धपर्याय नाममात्र ही रहती है।** सात तत्त्व में बन्धतत्त्व की व्याख्या है। जड़ का बन्ध और चेतन का बन्ध दो बतलाते हैं। उसमें जड़ में स्थिति और पाक कर्म के पाक, दो के बिना उस कर्मबन्ध की अवस्था नाममात्र है। इसलिए यहाँ प्रकृति, प्रदेशबन्ध को मात्र ग्रहण शब्द से कहा है। पाठ में देखो! **'जोगणिमित्तं गहणं'**

इसलिए यहाँ प्रकृति-प्रदेशबन्ध का मात्र 'ग्रहण' शब्द से कथन किया है और स्थिति-अनुभागबन्ध का ही 'बन्ध' शब्द से कहा है। अब यह जड़ की व्याख्या की। अब उसमें निमित्त जीव का कौन सा भाव भावबन्ध है। जीव का भाव कौन सा मुख्यबन्ध का कारण है और कौन गौण अर्थात् बहिरंग कारण है, उसकी व्याख्या अब जीव के परिणाम की करते हैं। कहो, समझ में आया?

अब **जीव के किसी भी परिणाम में...** आत्मा में परिणाम वर्ते, पर्याय में भाव वर्ते, उसमें **वर्तता योग...** आत्मा के प्रदेश का कम्पन, वह **कर्म के प्रकृति-प्रदेश का अर्थात् 'ग्रहण' का निमित्त होता है...** बात सूक्ष्म है। सात तत्त्व की इसे भिन्न-भिन्न प्रकार की पर्याय का क्या स्वरूप है, उसकी पहिचान की नहीं और समझे बिना (हम) धर्म करते हैं। कहो, समझ में आया? उसे धर्म हो नहीं सकता। सात तत्त्व भिन्न-भिन्न हैं। वह जड़ रजकण कर्मबन्धन के परमाणु की पर्याय जीव की दशा से भिन्न है। उसमें दो प्रकार है। प्रकृति और प्रदेश, अनुभाग और स्थिति। वह प्रकृति और प्रदेश तो

नाममात्र बन्धन है। स्थिति और अनुभाग वास्तव में जड़ का बन्धन है। उसे कहाँ निमित्त हो, उसकी व्याख्या अब करते हैं।

जीव के किसी भी परिणाम में वर्तता हुआ योग कर्म के प्रकृति-प्रदेश का अर्थात् 'ग्रहण' का निमित्त होता है... क्या कहा इसमें? समझ में आया? आत्मा वस्तु है, वह तो ज्ञान, आनन्द शान्त आदि अविकारी स्वभाव का कन्द है। भगवान आत्मा सच्चिदानन्दस्वरूप शाश्वत् ज्ञान, आनन्द की मूर्ति आत्मस्वभाव है। उसे भूलकर अनादि काल से उसकी पर्याय में, उसकी दशा में जो विकारी मिथ्यात्व या राग-द्वेष आदि के परिणाम होते हैं, उन परिणाम में योग अर्थात् कि आत्मा के प्रदेश का कम्पन वर्तता है। यह तो मात्र प्रकृति और प्रदेश के ग्रहण नाम से कहा जाता है। कहो, जमुभाई! सूक्ष्म तो इसमें साधारण बात है परन्तु अब कभी जगत को अभ्यास नहीं होता। बाहर के तत्त्वों की बात। परन्तु आत्मा क्या चीज़ है, उसमें विकार क्या होता है, यह कौन सा विकार किसे निमित्त होता है? कौन सा विकार, कौन सी प्रकृति, प्रदेश और स्थिति-अनुभाग को निमित्त होता है, उसके ज्ञान बिना यह जड़ और चैतन्य की भिन्नता जान नहीं सकता और भिन्नता जाने बिना उसे चैतन्यमय दृष्टि, उसे सम्यग्दर्शन नहीं होता। सम्यग्दर्शन बिना धर्म (नहीं होता)। कहो, रतिभाई! धर्म नहीं होता।

अभी आत्मा कौन है, इसका भान ही नहीं होता। धर्म तो आत्मा की निर्विकारीदशा है। धर्म, वह आत्मा की निर्दोष, निर्विकारी पर्याय / दशा है। परन्तु वह दशा कहाँ से प्रगट होती है, कैसे प्रगट होती है और अशुद्धता और मलिनता कैसे प्रगट होती है? उस मलिनता के प्रकार में भी जो गौण मलिनता और मुख्य मलिनता कौन है, उसके भान बिना उसे कर्मबन्धन के जड़ में निमित्त कौन मुख्य और गौण होता है, इसकी खबर नहीं, उसे सच्चा ज्ञान नहीं हो सकता। समझ में आया?

आत्मा के... भगवान आत्मा स्वभाव से तो ज्ञान और आनन्द का कन्द है। आत्मा शुद्ध पूर्णानन्द अनन्त गुण की आनन्द की खान है। वह आत्मा अपने स्वभाव के सन्मुखपने के भाव उसने अनादि से छोड़े हैं। समझ में आया? अनादि से छोड़े अर्थात् हुए और छोड़े हैं, ऐसा नहीं। ज्ञानानन्द प्रभु पूर्ण आनन्द और 'सिद्ध समान सदा पद

मेरो' सिद्धस्वरूप आत्मा भगवान अन्दर है। निज आत्मा भगवान है। ऐसे आत्मा के स्वरूप को पवित्र आनन्द और शुद्ध के स्वभाव के भान बिना, उसके ज्ञान बिना, उसकी प्रतीति-श्रद्धा बिना और उसमें रमणता बिना अनादि काल से विकार के भाव को, मिथ्यात्वभाव को वह करता है। कहो, समझ में आया?

यह मिथ्यात्व आदि भाव के जो परिणाम हैं, उन परिणाम में आत्मा के प्रदेश जिन्हें योग कहते हैं, कम्पन, प्रदेश अरूपी प्रदेश कँपते हैं, वह तो मात्र कर्म के प्रकृति-प्रदेश को ग्रहण आना, उसमें निमित्त होते हैं। समझ में आया? यह योग का बन्ध में खासपना—विशेषपना नहीं है। नये बन्ध में खास—विशेषपना अनादि से जीव के उसी परिणाम में... अब आया, देखो!

भगवान आत्मा ज्ञानानन्द शुद्ध चैतन्य प्रभु, उसकी इसे अनादि से खबर नहीं होती। मिथ्यादृष्टिरूप से अनन्त काल चौरासी के अवतार इसने किये हैं। समझ में आया? बाह्य त्याग भी अनन्त बार (किये)। नाम धराया परन्तु अन्तर वस्तु आत्मा ज्ञायक अखण्ड आनन्द का कन्द, सच्चिदानन्द शुद्ध परमात्मस्वरूप निज, उसकी इसने प्रतीति और अनुभव किया नहीं। यह अनुभव किये बिना इसके **परिणाम में,...** अर्थात् कि वर्तमान दशा में जो **वर्तता मोह-राग-द्वेषरूप भाव,...** मोह शब्द से मिथ्यात्वभाव। यह शुभ और अशुभभाव होता है, वह मुझे हितकर है, ऐसा मिथ्यात्वभाव। पापभाव वह मुझे ठीक मजा आता है, ऐसा जो मिथ्यात्वभाव। शरीरादि की अनुकूलता हो तो मुझे ठीक पड़ता है, ऐसा मिथ्यात्वभाव। बाहर की सामग्री प्रतिकूल हो तो मैं दुःखी हूँ, ऐसा मिथ्यात्वभाव। जैचन्दभाई!

आत्मा के अतिरिक्त बाहर में यह जड़, मिट्टी, शरीर में रोग-निरोग, निर्धन-सधनता, सन्तानहीनता, पुत्रपना, अविवाहित या विवाहितपना, वह सब बाह्य के संयोग हैं। वे संयोग प्रतिकूल हों तो मैं दुःखी हूँ, यह मान्यता मिथ्यादृष्टि की मिथ्यात्वभाव में है। कहो, रतिभाई! क्या होगा यह? आहाहा! ऐसा मिथ्यात्वभाव, उसे यहाँ मोह कहा है। उस परिणाम में उसकी वर्तमान दशा में जो मोहभाव वर्तता है, उसे यहाँ मिथ्यात्व कहा है। उस परिणाम के काल में आत्मा के प्रदेश का कम्पन हो, उसकी विशेषता नहीं

है। यह उसकी दुःखदायक दशा नहीं और बन्धन में उसकी निमित्तता मुख्यता नहीं। साधारण बन्ध प्रकृति और प्रदेश आवे, इससे उस बन्ध की विशेषता में गिनने में आया नहीं। समझ में आया?

परन्तु आत्मा ज्ञान शुद्धचैतन्य प्रभु, अपने स्वभाव के आनन्द की सावधानी महिमा, माहात्म्य, आदर छोड़कर अनादि काल से वह पुण्य और पाप के भाव में मुझे मजा है, यह मेरा स्वरूप है। अनुकूलता मुझे सुख का कारण है, प्रतिकूलता मुझे दुःख का कारण है, ऐसी मिथ्याश्रद्धा का पाप। वह पाप महान पाप है। समझ में आया?

किसे पाप महान और क्या पाप कहना, इसकी खबर नहीं होती, अब वह पाप से रहित आत्मा कब जाने? समझ में आया? बन्धतत्त्व! भगवान आत्मा अबन्धस्वरूपी है। उसके स्वभाव तो वह विकार भाव और जड़कर्म से रहित उसका स्वरूप है। ऐसे स्वरूप के भान बिना, ऐसे स्वरूप के ज्ञान बिना उस स्वरूप के अनुभव-वेदन बिना उसका वेदन अनादि से मिथ्यात्वभाव का वेदन उसे वर्तता है। समझ में आया? भाषा समझ में आती है न थोड़ी-थोड़ी रतलामवाले? थोड़ा समझ लेना। अब तो गुजराती चलता है। अभी तो हिन्दी चला था। दो महीने तक चला था। समझ में आया? आहाहा!

भगवान आत्मा वस्तुस्वभाव आत्मा का शान्त आनन्द अनाकुल और अनन्त गुण का चिद्धाम ऐसा आत्मा प्रत्येक का है। ऐसा आत्मा, उसके अन्तर का आदर छोड़कर, ऐसे स्वभाव का आदर छोड़कर, ऐसे स्वभाव का बहुमान छोड़कर, ऐसे स्वभाव की महिमा छोड़कर, उस स्वभाव का आदर छोड़कर अनादर करके... समझ में आया? उसके परिणाम में पर्याय में जो मिथ्यात्वभाव वर्तता है, वही वास्तव में कर्म का जो स्थिति और रसबन्ध होता है, उसमें वह मिथ्यात्व परिणाम ही मुख्य कारण है और उसे दुःखदायक मिथ्यात्व परिणाम वह वास्तविक दुःखदायक है। आहाहा! समझ में आया?

इसमें यह तो बन्ध का अधिकार अभी है। यह मिथ्यात्व के भाव मिटे कब? कैसे? कि ज्ञानानन्द आत्मा ज्ञानस्वरूप शुद्ध चैतन्य, मैं देखनेवाला मुझे, मैं जाननेवाला मुझे, मैं रमनेवाला मुझमें। समझ में आया? मैं जाननेवाला मुझे, देखनेवाला मुझे, माननेवाला मुझे, रमनेवाला मुझमें, ऐसे आत्मा के स्वभाव की सम्यक् दृष्टि हो, इससे

मिथ्यात्व का नाश होता है। दूसरा कोई इसका उपाय नहीं है। समझ में आया? इसने अनन्त काल शास्त्रों के पठन किये, बाहर के व्रत, नियम की क्रियाएँ शुभपरिणामरूप से अनन्त बार की। परन्तु इसने मिथ्यात्व को टाला नहीं और सम्यग्दर्शन प्रगट किया नहीं। इससे इसका जन्म-मरण एक भी मिटा नहीं। कहो, समझ में आया?

यहाँ तो परिणाम में जिसकी स्निग्धता और उग्रता की दु:खदशा है, उसका वर्णन करते हैं। जो कर्मबन्धन में खास जिसकी विशेषता निमित्तरूप से है, उसकी बात करते हैं। समझ में आया इसमें कुछ? द्रव्य-गुण-पर्याय—किसके द्रव्य, किसके गुण, किसकी पर्याय, इसकी तो खबर नहीं होती। यह तो कहते हैं कि जड़कर्म की एक अवस्था बँधती है, वह पुद्गल की जड़ आठ कर्म की पर्याय है। परमाणु कायम रहे, परमाणु की शक्ति कायम रहे और उसमें एक अवस्था विकृत कर्म पर्याय हो, उसे द्रव्यबन्धरूप से कहा जाता है, जो कि अजीव की पर्याय है। उस अजीव की पर्याय को जीव की कौन सी पर्याय किस बन्ध में खास निमित्त है और किस बन्ध में गौण-साधारण निमित्त है, इसकी व्याख्या है। कहो, समझ में आया? जो जीव के भाव, जीव तो वस्तु है। अनादि-अनन्त, अकृत, अनिर्मित, अनाशक—नाश न हो ऐसी अनादि-अनन्त वस्तु। उसकी चीज़ का भान नहीं होता। मैं तो आनन्द और ज्ञातादृष्टा हूँ। मुझमें मेरा आनन्द है। मुझमें मेरी शान्ति है। मुझमें मेरा सब ही है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, इसीलिए तो कहते हैं। अन्धे को कैसे दिखाई दे? उसने आँखें बन्द की हो तो। जैचन्दभाई! कौन उघाड़े? भगवान आत्मा ऐसा चैतन्य के नेत्र से ज्ञात हो, ऐसा आत्मा है। वह यह (जड़) आँखों से ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। यह तो मिट्टी है, धूल है, यह तो धूल। यह तो जलकर राख हो, ऐसी राख है यह। कहो, समझ में आया? इन आँखों से ज्ञात हो, ऐसा नहीं। तथा अन्दर में पुण्य और पाप, दया और दान, भक्ति और व्रत के विकल्प उठते हैं, (वह) राग है। उससे आत्मा ज्ञात नहीं होता, अनुभव में नहीं आता, सम्यग्दर्शन नहीं होता। आहाहा! जगत को सत्य मिला नहीं और जब मिला, तब उसका अनादर कर दिया है।

यह नहीं... यह नहीं... यह निश्चय...! यह तो ऊँचा, यह तो निश्चय! यह तो ऊँचा, ऐसा कहकर अनन्त काल इसने मिथ्यात्व की सेवा में अनन्त काल व्यतीत किया है। परन्तु आत्मसेवा... आत्मसेवा कैसे हो, उसकी इसने खबर नहीं की। समझ में आया? **जीव के उसी परिणाम में...** जीव कहा यह। यह कहा ऐसा है वह। उसके भान बिना उसकी दशा में, उसके परिणाम में अर्थात् अवस्था में, उसकी वर्तमान हालत में। वर्तता मोह-मिथ्यात्वभाव। यहाँ तो नये कर्म को स्थिति पड़े और रस (अनुभाग) पड़े, उसमें यह निमित्त है और यही मुख्य बन्ध का कारण है और यही दोष का मूल कारण है, ऐसा दोनों बतलाना है। कहो, समझ में आया?

मोह और राग-द्वेष भाव। मोह, वह मिथ्यात्वभाव है और राग-द्वेष, वह चारित्र के दोष का भाव है, सम्यग्दर्शन होने पर भी ज्ञानी को भी अभी राग और द्वेष होते हैं, वे कर्म में स्थिति-रस का निमित्त है। ज्ञानी का कम्पन योग है, वह प्रकृति और प्रदेश के आने की योग्यता से आते हैं, उसमें वह योग निमित्तमात्र है। वह योग कहीं बन्ध की विशेषता का कारण नहीं है। बन्ध के कारण में विशेषता मिथ्यात्व और राग-द्वेष है। समझ में आया? यहाँ तो द्रव्यबन्ध और भावबन्ध दोनों का ज्ञान कराते हैं। उसमें भी द्रव्यबन्ध में खास बन्ध कौन और गौण बन्ध कौन, उसका ज्ञान और उसमें निमित्त में खास बन्ध का निमित्त कौन और गौण बन्ध का निमित्त कौन, इसका ज्ञान कराते हैं। गौण क्या और मुख्य क्या उसमें? भीखाभाई! कहते हैं, **जीव के उसी परिणाम में...** भगवान आत्मा ऐसे सिद्ध भगवान हुए परमेश्वर अरिहन्त, वे आत्मा में से हुए हैं, कहीं बाहर से नहीं हुए। वह बाहर से कोई दशा आवे, ऐसी नहीं है। कहो, समझ में आया? वह दशा आत्मा में से आती है। आत्मा में वह अरिहन्तदशा, सिद्धदशा, वह आनन्ददशा, वह सब आत्मा में अन्दर पड़ी है। उसका पूरा स्वरूप वह आत्मा आनन्दकन्द और पूर्णानन्द है। ऐसे आत्मा को स्वस्वभावसन्मुख होकर श्रद्धा और ज्ञान और रमणता किये बिना अर्थात् कि दर्शन, ज्ञान और चारित्र को प्रगट किये बिना इसने मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र को सेवन किया है। वही वास्तव में दुःखदायक है और वही वास्तव में बन्ध में निमित्त कारण वास्तविक उसका है। समझ में आया?

उसी परिणाम में वर्तता हुआ मोहरागद्वेषभाव कर्म के स्थिति-अनुभाग का

अर्थात् 'बन्ध' का निमित्त होता है;... जड़कर्म में स्थिति पड़े कर्म में। कितने काल कर्म का रहना और उसमें रस पड़े, फल देने की शक्ति, ऐसा परमाणु में होता भाव, परमाणु में कर्म के बन्ध में होता विशेष भाव, उसमें निमित्तपना मोह और राग-द्वेष का बाह्य निमित्तपना वह है। समझ में आया? योग का निमित्तपना प्रकृति और प्रदेश को... प्रकृति आवे तो कर्म का स्वभाव हो परन्तु कर्म के प्रदेश होने पर उसका अनुभाग है, वह खास विशेष दुःखदायक में निमित्त है। समझ में आया?

इसीलिए कहते हैं, यह तो अभी सात पदार्थ, सात तत्त्व की व्याख्या चलती है। सात तत्त्व का जैसा स्वरूप है, ऐसा जाने और जानकर स्वभावसन्मुख हो, तब उसे सम्यग्दर्शन होता है। तब उसे धर्म की पहली दशा प्रगट होती है। इसके बिना उसे धर्म तीन काल, तीन लोक में नहीं हो सकता। कहो, समझ में आया इसमें? **इसलिए मोहरागद्वेषभाव को 'बन्ध' का अन्तरंग कारण...** देखो भाषा! है तो भगवान आत्मा के ही दोनों भाव। आत्मा के प्रदेश का कम्पन, वह भी आत्मा की ही एक पर्याय है और विकारी मोह और राग-द्वेष, वह भी आत्मा की ही पर्याय है, परन्तु वह आत्मा के परिणाम होने पर भी, समझ में आया?

मोहरागद्वेषभाव को 'बन्ध' का अन्तरंग कारण... भगवान ने कहा। अन्तरंग कारण अर्थात् है तो वह बहिरंग कारण। बन्ध में—नये बन्ध में मोह-राग-द्वेषभाव, है तो बाह्य परन्तु मुख्यपना बतलाने के लिये उसे अन्तरंग कारण कहा। आज सूक्ष्म है। कभी इसने सात तत्त्व की पहिचान क्या कहलाती है और साथ में द्रव्य किसे कहा जाता है और पर्याय किसे कहा जाता है, यह भान नहीं होता। सात तत्त्व में द्रव्य किसे कहना और पर्याय (किसे कहना)? द्रव्य यह पैसा और पर्याय अर्थात् यह प्रजा, ऐसा होगा?

सात तत्त्व है, भगवान ने कहे हुए, उसका ज्ञान जहाँ नहीं, उसे सम्यग्दर्शन हो सकता ही नहीं। सम्यग्दर्शन बिना किसी प्रकार का धर्म उसे नहीं होता। सात तत्त्व में यहाँ तो अभी बन्धतत्त्व की व्याख्या और उस बन्धतत्त्व के दो प्रकार। एक जड़ की पर्याय का बन्ध और एक आत्मा की विकारी पर्याय का भावबन्ध। भावबन्ध जीव की पर्याय में मिथ्यात्व और राग-द्वेष, वह भावबन्ध है और जड़बन्ध की पर्याय में स्थिति,

अनुभाग, प्रकृति, प्रदेश, ये चार जड़ के हैं। उसमें प्रकृति, प्रदेश की मुख्यता नहीं है। स्थिति और अनुभाग की मुख्यता बन्ध में है। उसमें बन्ध के कारण में आत्मा का मिथ्यात्व और राग-द्वेष भाव अन्तरंग कारण अर्थात् मुख्य कारण है, इसलिए अन्तरंग कारण कहा है। समझ में आया?

और योग को—जो कि 'ग्रहण' का निमित्त है... और परमाणु रजकण जड़ के प्रकृति और प्रदेशरूप होने की योग्यता से आते हैं। उसमें आत्मा के प्रदेश का कम्पन जो आत्मा की पर्याय में होता है, वह मात्र ग्रहण का निमित्त कहने में आया है। इसलिए **उसे—'बन्ध' का बहिरंग कारण (बाह्य निमित्त) कहा है।** हैं तो दोनों बाह्य निमित्त। एक को मुख्यपने का जोर देने के लिये उसे अन्तरंग कारण कहा। एक साधारण कम्पन है, वह प्रकृति, प्रदेश में निमित्त है, इसलिए उसे बहिरंग कारण कहकर उसकी तुच्छता वर्णन की है। कहो, समझ में आया इसमें? कानजीभाई! समझ में आता है न?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : इसकी ही महत्ता है विपरीतता की, ऐसा कहते हैं। प्रदेश का कम्पन है अन्दर। यह शरीर नहीं, हों! यह तो मिट्टी है, यह तो अजीवतत्त्व है।

अन्दर आत्मा के असंख्य प्रदेश हैं। वे कँपते हैं, उसे योग कहा जाता है। भगवान उसे योग कहते हैं। वह कम्पन का योग वह नये कर्म में प्रकृति, प्रदेश में निमित्त। प्रकृति-प्रदेश साधारण बात है। उसमें कोई स्थिति, अनुभाग बिना दुःख में निमित्त होने का कारण नहीं है। इसलिए उसका निमित्त योग भी साधारण बहिरंग कारण कहने में आया है। परन्तु उसके साथ मिथ्यात्व और राग-द्वेष के परिणाम, वे वास्तव में दुःखदायक जीव का भावबन्धस्वरूप, जीव की विकारी पर्याय, वह भावबन्ध। वह नये प्रकृति, प्रदेश में पड़ती स्थिति और रस में वह अन्तरंग कारण, मुख्य कारण गिनकर अन्तरंग कारण कहा गया है। कहो, समझ में आया? हो गया, बहुत समय हो गया। देखो! इसमें आधा घण्टा तो हुआ! अब इसमें याद रहे या नहीं? पाँच मिनिट में कुछ बोल सके या नहीं? कुछ नहीं भाई! रखो ऐसा का ऐसा १४९ (गाथा)।

इसमें क्या कहा कि यह आत्मा है, उसका शाश्वत् रहनापना और शाश्वत् उसका

स्वभाव। आत्मा वस्तु है, वह कायम रहनेवाला और उसका ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि स्वभाव ध्रुव कायम रहनेवाले। ऐसे कायमी चीज़ की श्रद्धा, ज्ञान बिना उसे अकृत्रिम यह बाहर के संयोगी निमित्तों की अनुकूलता, प्रतिकूलता में मुझे ठीक-अठीक की मान्यता और या ठीक-अठीक का राग-द्वेष, ऐसे जो मिथ्यात्व और राग-द्वेष के भाव, वे वास्तविक भावबन्धरूप है और नये बन्ध में स्थिति और रस पड़ने में वास्तविक अन्तरंग कारण, मुख्य कारण उसे गिनने में आया है।

उस परिणाम के काल में जीव का कम्पन वर्ते, वह कम्पन बन्ध में निमित्त है। वह बन्धरूप तो है। परन्तु कम्पन है साधारण, वह कहीं आत्मा को दुःखदायक नहीं है, इसलिए उस कम्पन को साधारण प्रकृति और प्रदेश में ग्रहण करने का निमित्त कहकर उसे बन्ध का गौणपना कहने के लिये उसकी अधिकता न बतलाकर, उसमें अधिकता नहीं; इसलिए प्रदेश का कम्पन वह प्रकृति और प्रदेश को निमित्त होता है। प्रकृति, प्रदेश जड़ की पर्याय, वह कम्पन यह। परन्तु वास्तव में आत्मा में स्वभाव को भूलकर होता मिथ्यात्वभाव और भूलकर अस्थिरता से होता भाव, राग और द्वेष, पुण्य और पाप दोनों बन्ध के कारण नये कर्म, स्थिति पड़े, उसमें उसे अन्तरंग कारण गिनने में आया है। कहो, धर्मचन्दजी! डॉक्टर की बात कितनी याद रहे? ऐसी यह बात याद रहे या नहीं? अभी कोई पूछा जाये? यह उतरता है वह।

अब १४९ गाथा। कुन्दकुन्दाचार्य महाराज, दो हजार वर्ष पहले दिगम्बर सन्त मुनि हुए। यह गाथा उनकी बनायी हुई है और इसका अर्थ-टीका की है ९०० वर्ष पहले अमृतचन्द्राचार्य महासन्त दिगम्बर मुनि ने। जंगल में रहते थे। उनकी यह संस्कृत टीका है। इसकी गाथा १४९ है।

गाथा - १४९

हेदू चदुव्वियप्पो अट्ठवियप्पस्स कारणं भणिदं।
तेसिं पि य रागादि तेसिमभावे ण बज्झंति।।१४९।।

हेतुश्चतुर्विकल्पोऽष्टविकल्पस्य कारणं भणितम्।
तेषामपि च रागादयस्तेषामभावे न बध्यन्ते।।१४९।।

मिथ्यात्वादिद्रव्यपर्यायाणामपि बहिरणङ्गकारणद्योतनमेतत् ।

तन्त्रान्तरे किलाष्टविकल्पकर्मकारणत्वेन बन्धहेतुर्द्रव्यहेतुरूपश्चतुर्विकल्पः प्रोक्तः मिथ्यात्वासंयमकषाययोगा इति । तेषामपि जीवभावभूता रागादयो बन्धहेतुत्वस्य हेतवः, यतो रागादिभावानामभावे द्रव्यमिथ्यात्वासंयमकषाययोगसद्भावेऽपि जीवा न बध्यन्ते । ततो रागादीनामन्तरङ्गत्वान्निश्चयेन बन्धहेतुत्वमवसेयमिति ।। १४९ ।।

-इति बन्धपदार्थव्याख्यानं समाप्तम् ।

प्रकृति प्रदेश आदि चतुर्विधि कर्म के कारण कहे।
रागादि कारण उन्हें भी, रागादि बिन वे ना बंधे।।१४९।।

अन्वयार्थ :- [चतुर्विकल्पः हेतुः] (द्रव्यमिथ्यात्वादि) चार प्रकार के हेतु [अष्टविकल्पस्य कारणम्] आठ प्रकार के कर्मों के कारण [भणितम्] कहे गये हैं; [तेषाम् अपि च] उन्हें भी [रागादयः] (जीव के) रागादिभाव कारण हैं; [तेषाम् अभावे] रागादिभावों के अभाव में [न बध्यन्ते] जीव नहीं बँधते।

टीका :- यह, मिथ्यात्वादि द्रव्यपर्यायों को (-द्रव्यमिथ्यात्वादि पुद्गलपर्यायों को) भी (बन्ध के) बहिरंग-कारणपने का [१]प्रकाशन है।

ग्रन्थान्तर में (अन्य शास्त्र में) मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और योग इन चार प्रकार के द्रव्यहेतुओं को (द्रव्यप्रत्ययों को) आठ प्रकार के कर्मों के कारणरूप से बन्धहेतु कहे हैं। उन्हें भी बन्धहेतुपने के हेतु जीवभावभूत रागादिक हैं; क्योंकि [२]रागादिकभावों का अभाव होने से द्रव्यमिथ्यात्व, द्रव्य-असंयम, द्रव्यकषाय और

१. प्रकाशन=प्रसिद्ध करना; समझाना; दर्शाना।
२. जीवगत रागादिरूप भावप्रत्ययों का अभाव होने से द्रव्यप्रत्ययों के विद्यमानपने में भी जीव बँधते नहीं हैं। यदि जीवगत रागदिभावों के अभाव में भी द्रव्यप्रत्ययों के उदयमात्र

द्रव्ययोग के सद्भाव में भी जीव बँधते नहीं हैं। इसलिए रागादिभावों को अन्तरंग बन्धहेतुपना होने के कारण [३]निश्चय से बन्धहेतुपना है, ऐसा निर्णय करना॥१४९॥

इस प्रकार बन्धपदार्थ का व्याख्यान समाप्त हुआ।

गाथा - १४९ पर प्रवचन

हेदू चदुव्वियप्पो अट्ठवियप्पस्स कारणं भणिदं।
तेसिं पि य रागादि तेसिमभावे ण बज्झंति।।१४९।।

प्रकृति प्रदेश आदि चतुर्विधि कर्म के कारण कहे।
रागादि कारण उन्हें भी, रागादि बिन वे ना बंधे।।१४९।।

इसकी टीका। टीका है न? **यह,...** इसमें क्या कहा जाता है? क्या कहते हैं कि **मिथ्यात्वादि द्रव्यपर्यायों को (प्रत्ययों को)...** अर्थात् कि कर्म के जड़पने में जो दर्शनमोह के परमाणु पड़े हैं, चारित्रमोह के परमाणु पड़े हैं। वह कम्पन होने में भी जो शरीरादि के परमाणु की प्रकृति पड़ी है, वह **(-द्रव्यमिथ्यात्वादि पुद्गलपर्यायों को) भी (बन्ध के) बहिरंग-कारणपने का प्रकाशन है।** समझ में आया? मिथ्यात्वादि द्रव्य प्रत्ये अर्थात् जड़, वह नये बन्ध में बहिरंग कारण है। कौन? वह जड़-जड़। दर्शनमोह की प्रकृति है, चारित्रमोह की प्रकृति है, आठ कर्म हैं। यह आठ कर्म का उदय नये कर्मबन्धन में जैसे वहाँ योग को बाह्य कारण कहा था, समझ में आया? उसी प्रकार यह एक भी बाह्य कारण है।

पुराने जड़कर्म का उदय नये बन्धन को बाह्य कारण है। अन्तरंग कारण अज्ञानी के मिथ्यात्व राग-द्वेष के भाव। अज्ञानी आत्मा को भूलकर मिथ्यात्व और राग-द्वेष करे

से बन्ध हो तो सर्वदा बन्ध ही रहे (-मोक्ष का अवकाश ही न रहे), क्योंकि संसारियों को सदैव कर्मोदय का विद्यमानपना होता है।

३. उदयगत द्रव्यमिथ्यात्वादि प्रत्ययों की भाँति रागादिभाव नवीन कर्मबन्ध में मात्र बहिरंग निमित्त नहीं हैं किन्तु वे नवीन कर्मबन्ध में 'अन्तरंग निमित्त' हैं, इसलिए उन्हें 'निश्चय से बन्धहेतु' कहे हैं।

तो उस बन्ध में वह बाह्य कारण होता है, यह अन्तरंग कारण करे तो। यह अन्तरंग कारण न करे तो जो जड़ का उदय है, वह कहीं बन्ध का कारण नहीं होता। देखो! यहाँ जड़कर्म का उदय आत्मा को विकार करावे, यह बात झूठी सिद्ध करते हैं। कर्म-वर्म आत्मा को विकार करावे या कर्म का उदय आवे तो आत्मा को दोष हो, यह भगवान के न्याय में शास्त्र में नहीं है। समझ में आया?

मिथ्यात्वादि द्रव्यपर्यायों को (प्रत्ययों को)... द्रव्य प्रत्यय, समझ में आया? यह जड़ मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय, योग जो जड़ प्रकृति-प्रकृति। मिट्टी आठ कर्म, उसे नये आठ कर्म के बन्ध में बहिरंग कारणपने का प्रकाशन है। बाह्य कारण है। यह अज्ञानी राग-द्वेष और मिथ्यात्व करे तो बाह्य कारण होता है। राग-द्वेष अज्ञान न करे तो बाह्य कारण भी नहीं होता। उसका कहीं जोर नहीं। जोर अज्ञानी का है। समझ में आया?

कहते हैं न भाई! कि कर्म का उदय आवे तो आत्मा को... दर्शनमोह का उदय हो तो मिथ्यात्व करना पड़े, यह यहाँ खोटी बात है, कहते हैं। झूठी (बात है)। तुझे जड़ और चैतन्य का भान नहीं। वह जड़ की पर्याय पाक में आवे तो चैतन्य को मिथ्यात्व की विकारी पर्याय करनी पड़े, ऐसा है ही नहीं। कोई द्रव्य किसी द्रव्य का स्वामी नहीं है। वह स्वतन्त्र है। इसी तरह अन्दर चारित्रमोह का कर्म का उदय आवे (तो) हमें वेद-वासना, क्रोध, मान, माया, लोभ, कर्म के कारण करना पड़ते हैं, (यह) एकदम झूठ बात है। अत्यन्त पाखण्डी ने मानी हुई बात है। ऐसा है नहीं। कहो, समझ में आया?

प्रकाशन=प्रसिद्ध करना; समझाना; दर्शाना। प्रकाशन कहा है। उसमें ऐसा था कि नया जो बन्ध पड़े, उसमें योग का बाह्य कारण निमित्त था। क्योंकि उसकी कुछ विशेषता नहीं है, मिथ्यात्व और राग-द्वेष परिणाम इसके हैं तो बाह्य निमित्त, परन्तु वह मुख्य निमित्त नये बन्ध का अन्तरंग कारण। यहाँ पुराने कर्म हैं अभी, उनकी यह बात है। वे नये बन्ध को किस प्रकार बन्ध का बाह्य कारण होतु हैं। समझ में आया?

१४८ में तो नया बन्ध होता है। उसमें अज्ञानी के परिणाम कहाँ मुख्य निमित्त है कि मिथ्यात्वभाव और राग-द्वेष। कम्पन, वह कहीं उसका कारण नहीं। वह तो मात्र प्रकृति-प्रदेश आवे, उसमें निमित्त है, इतनी साधारण बात कर डाली। तब अब? पुराने-

जूने कर्म हैं, वे नये का बन्धन होता है न? तो कहते हैं वह बाह्य कारण है। किसे? कि जो अन्दर आत्मा को भूलकर मिथ्यात्व और राग-द्वेष भाव करे, उसे नये बन्धन में वास्तविक कारण अज्ञानी के भाव हैं, उसे पुराने कर्म निमित्तरूप से कहे जाते हैं।

बाह्य कारण, आत्मा विकार न करे और आत्मा के स्वभाव सन्मुख-देखकर आत्मा का श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र करे तो कर्म के उदय हो, वह अपने आप खिर जाता है। बाह्य कारण भी नये को बन्ध में नहीं होता। समझ में आया? पुकार करते हैं न लोग जैन में कि भाई! अपने तो कर्म है। दूसरे को ईश्वर हैरान करे, इसे कर्म हैरान करे। यह तो उससे अधिक मूढ़ हुआ। क्योंकि दूसरे का ईश्वर चैतन्य, वह उसे हैरान करे। इसका ईश्वर कर्म। कर्म ने मार डाला, कर्म ने हैरान किया, कर्म का पाक आवे तो दुःखी हो जाते हैं। इसका ईश्वर कर्म, जड़, मिट्टी। अनन्त ईश्वर जड़।

यहाँ भगवान कहते हैं कि तू मूढ़ हो गया? कर्म तुझे विकार करावे और कर्म तेरा ईश्वर, किसने तुझे कहा? समझ में आया? ओहोहो! तेरे स्वरूप को स्वयं भूलकर और तू विकार करे, तब पूर्व के कर्म को निमित्त कहा जाता है, तब नये बन्ध को निमित्तकारण कहा जाता है और तेरा भाव, वह मुख्य कारण बन्ध में कहा जाता है। समझ में आया? कर्म ने इसे अज्ञान में भुलाया है या नहीं?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यह क्या कहते हैं? यह किसकी चलती है? तूने तुझमें विपरीतता लगायी है। कोई कर्म-वर्म बाधक नहीं, ऐसा कहते हैं। मोहनभाई! आहाहा! यह तो पुकार करते हैं न जहाँ और तहाँ, अरे भाई! ढँके कर्म ऐसे उदय में आवे! यह ढँके कर्म की खबर पड़ती नहीं, भाई! ऐसी बातें फुरसत में हो तब महिलायें करती हैं मुफ्त की! और आदमी भी स्त्रियों जैसे हों न भान बिना के, वे भी ऐसी बातें किया करते हैं। यह कर्म बापू! कठोर हों और बाँधे हुए हों न, निध्धत और निकाचित हो न, वे अपने भोगना पड़ें। भगवान कहते हैं तुझे ऐसा किसने कहा? मूर्ख! ऐसी बात लाया कहाँ से? किसी के पास तूने सुनी होगी, मूर्खों के पास। मूरख से यह सुनी है। वस्तु का स्वरूप ऐसा नहीं है। हमने कहा नहीं और ऐसा है नहीं।

यहाँ आचार्य महाराज कुन्दकुन्दाचार्य महाराज, जिन्होंने १४९ गाथा लिखी, उसकी टीका अमृतचन्द्राचार्य करते हैं कि भाई! यह नये कर्म बन्धन में तेरा अज्ञानभाव और राग-द्वेषभाव करे तो वह निमित्त होता है। तो पुराने कर्म को निमित्तरूप से कहा जाता है। परन्तु जड़कर्म का उदय आया, इसलिए मुझे विकार करना ही पड़े, ऐसा भगवान ने कहा नहीं। तेरी मान्यता में मिथ्याश्रद्धा में गड़बड़ उठी है। मिथ्याश्रद्धा तेरी है और ऐसा मानता है और तू कहता है कि हम सच्चा मानते हैं। कहो, समझ में आया?

ग्रन्थान्तर में (अन्य शास्त्र में) मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और योग इन चार प्रकार के द्रव्यहेतुओं को (द्रव्यप्रत्ययों को) आठ प्रकार के कर्मों के कारणरूप से बन्धहेतु कहे हैं। गोम्मटसार आदि में। मिथ्यात्व, यह मिथ्यात्व कौन? जड़, हों! दर्शनमोह। अन्दर एक जड़ प्रकृति दर्शनमोह है। मोहनीयकर्म के दो भाग। एक दर्शनमोह और एक चारित्रमोह। यहाँ अभी जड़ की बात चलती है। सुनो! यह मिथ्यादर्शनमोह, असंयम चारित्रमोह, कषाय चारित्रमोह, योगकम्पन नामकर्म....

इन चार प्रकार के द्रव्यहेतुओं को (द्रव्यप्रत्ययों को) आठ प्रकार के कर्मों के कारणरूप से बन्धहेतु कहे हैं। देखो! यह गोम्मटसार में ऐसा कहा है, उसका स्पष्टीकरण हम यहाँ करते हैं, ऐसा कहते हैं। वहाँ कहा है कि मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय, योग। कषायमात्र में ही आ गया। यह चार प्रकार के जड़कर्म आठ नये कर्मों के बन्ध के कारण कहे हैं, **उन्हें भी बन्धहेतुपने के हेतु...** वे पुराने कर्म जो नये का बन्ध होता है, उसका हेतु, उसका हेतु, **जीवभावभूत रागादिक हैं;...** यह आत्मा मिथ्यात्व और राग-द्वेष भाव करे, तब नये कर्म के बन्धन में पुराने कर्म को बाह्य कारण कहा जाता है। समझ में आया?

देखो! यहाँ तो दर्शनमोह का उदय हो तो आत्मा को मिथ्यात्व करावे, यह यहाँ इनकार करते हैं। चारित्रमोह का उदय हो तो आत्मा को भाई! चारित्रमोह ऐसा कर्म आड़े आवे! कि राग-द्वेष अन्दर से सिर घूम जाता है। राग-द्वेष कोई कर्म का उदय आवे तो होते हैं। मूढ़ है। ऐसा तुझे किसने कहा? ऐसी उल्टी मान्यता कहाँ से लाया? जड़कर्म तुझे विकार करावे, परद्रव्य तुझे विकार करावे, तुझसे निराला तत्त्व, वह तुझे

दोष करावे—ऐसा भगवान कहते हैं हमने देखा नहीं, ऐसा कहा नहीं, शास्त्र में ऐसे कथन आये नहीं। समझ में आया?

कहो, यह गोम्मटसार में सब आता है या नहीं? एक व्यक्ति कहता था कि गोम्मटसार में लिखा है कि चारित्रमोह का उदय हो तो क्रोध होता है। लो! एक पण्डित ने एक लड़के को थप्पड़ मारी। ऐसी मारी कि अरे! भाई पण्डित! तुम इस लड़के को क्या करते हो? तुम्हें खबर नहीं, ज्ञान नहीं। क्या ज्ञान नहीं? गोम्मटसार में लिखा है कि चारित्रमोह का उदय आवे तो क्रोध होता है। बहुत अच्छा किया बापू! ठीक सीखा तू यह। यह अन्ध अच्छा सीखा तू! सिर में मारी तो क्रोध से... परन्तु तू क्या करता है? तुमको खबर नहीं। वह पण्डित था। तुम कुछ पढ़े हो? कर्मकाण्ड, कर्म ग्रन्थ सीखे और कर्म में ऐसा लिखा है। चारित्रमोह का उदय आवे तो क्रोध होता है। साला! मूरख! ऐसा किसने कहा है? कहाँ कहा है? ऐसा हो नहीं सकता। तूने क्रोध किया, तब चारित्रमोह के उदय को बन्ध का बाह्य निमित्त कहने में आया। जड़कर्म तुझे दोष करावे? समझ में आया? कर्म विचारे कौन भूल मेरी अधिकाई। स्तुति में आता है। आता है या नहीं? कर्म विचारे कौन? वह तो जड़-मिट्टी है। आठ कर्म धूल है। जैसी यह धूल है, वैसी सूक्ष्म धूल कर्म है। उसे तो खबर भी नहीं कि मेरे ऊपर कौन आरोप डालता है?

'कर्म विचारे कौन भूल मेरी अधिकाई, अग्नि सहै घनघाति लोह की संगति पाई।' अग्नि लोह का संग करे तो घनघात पड़ते हैं। इसी प्रकार आत्मा विकार के भावकर्म का संग करे तो उसे दुःखदायक है। कर्म उसे दुःख करावे और संग (करने का कहता नहीं)। कर मेरा संग! मैं उदय आया, इसलिए मेरा संग कर, ऐसा (कर्म) कहता है? वह तो जड़ है। कहो, जैचन्दभाई!

मुमुक्षु : प्रभु आप.... ही खिलाते हो...

पूज्य गुरुदेवश्री : हं,... है ऐसा। गुलाँट खा। ऐसा कहते हैं। उल्टी मान्यता छोड़ दे। ऐसा कहते हैं। जैचन्दभाई! उल्टी मान्यता छोड़ दे। ऐसी प्रतिकूलता आयी और इस शरीर में रोग आये और अब हो गये ऐसे के थेथड़ा-पेथड़ा और इसलिए दुःखी। छोड़ दे, यह मान्यता तेरी भ्रमणा है। बाहर के कारण तुझे दुःख है नहीं। ऐसा कहते हैं।

जैचन्दभाई! पागल भूल जाता है। एक रात जहाँ जाये और नींद न आवे वहाँ यह भूल जाता है। और सवेरे आवे खोंखारो करते हुए। कहो, समझ में आया इसमें?

भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा तीर्थंकरदेव सर्वज्ञ परमेश्वर ने ऐसा देखा, ऐसा जाना, ऐसा कहा, ऐसा है कि जड़कर्म का पाक आवे तो जीव को विकार करना पड़े, ऐसा भगवान इनकार करते हैं। अज्ञानी कहता है कि नहीं... नहीं, वह भले कहते भगवान परन्तु शास्त्र में लिखा है न दूसरे ग्रन्थ में। दूसरे ग्रन्थान्तर में लिखा है न? यहाँ भले इनकार करे, परन्तु वहाँ लिखा है, किन्तु उसका यहाँ स्पष्टीकरण करते हैं। समझ में आया?

गोम्मटसार में कर्मकाण्ड में ऐसा आता है कि ज्ञानावरणीय से ज्ञान रुका। ज्ञानावरणीय ने ज्ञान को आवृत किया। मूढ़ है! ऐसा उसका अर्थ नहीं है। तुझे नहीं आता। तब? तू तेरे ज्ञान को उल्टा विपरीत करे, तब ज्ञानावरणीय कर्म को निमित्त कहने में आता है। उसने तुझे ज्ञान को रोका है, ऐसा हमने कहीं शास्त्र में कहा नहीं। भान नहीं होता-भान नहीं होता! कहो, समझ में आया? ज्ञान में हीनाधिकपना हो, वह तो कहीं कर्म के कारण होता होगा या नहीं? ज्ञानावरणीय और यहाँ आठों कर्म लिये हैं या नहीं? ज्ञानावरणीय का कोई उदय तीव्र हो तो ज्ञान कम हो, मन्द हो तो कुछ ज्ञान उघड़े। तुझे किसने कहा? कर्म के कारण होता है, ऐसा तुझे किसने कहा?

नव तत्त्व में अथवा सात तत्त्व में जीवतत्त्व और अजीवतत्त्व दोनों पृथक् हैं। उन अजीवतत्त्व की पर्याय के कारण तेरी पर्याय हो, यह तो दोनों तत्त्व एक हो गये। दो तत्त्व भिन्न रहे नहीं। कर्म का उदय, वह जड़तत्त्व है और तेरा विकार करना, वह चैतन्य का विकार, वह आस्रव, बन्धभाव है। उस दूसरे तत्त्व से दूसरे में हो, ऐसा भगवान ने किसी शास्त्र में कहा नहीं। और जिस शास्त्र में कहा निमित्तरूप से आठ कर्म के उदय से बाह्य बन्ध पड़ता है, उसका स्पष्टीकरण करते हैं और उसका स्पष्टीकरण यह है। यह कर्म के निमित्त में नये बन्धन में पुराने कर्म निमित्त हों, **उन्हें भी बन्धहेतुपने के हेतु...** वह निमित्त जो नये को हो, उसका हेतु अज्ञानी का भाव। **जीवभावभूत रागादिक हैं;...** राग-द्वेष, मिथ्यात्वभाव है। यदि मिथ्यात्वभाव और राग-द्वेष जीव करे तो नये कर्म को पुराने कर्म निमित्तरूप से कहने में आते हैं। न करे तो पुराने कर्म खिर जाते हैं। नये बँधते नहीं। तेरे

अधिकार की बात है। यह तो जैन में तो कितने ही तो ऐसा ही मानकर बैठे हैं कि अपने को कर्म हैरान करते हैं। अपने को कर्म हैरान करते हैं। अपने कर्म के खिलौने, खिलौने। कर्म का खिलौना। वह जादूगर डोरी जैसे हिलावे, वैसे पुतलियाँ हिले; इसी प्रकार हम कर्म जैसा हिलावे, वैसा हिलना। मूढ़ है मिथ्यादृष्टि, तुझे ऐसा किसने मनाया, ऐसा तुझे किसने कहा?

मुमुक्षु : अभी सम्प्रदाय में तो ऐसा ही है....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसका कहीं अपने काम नहीं है। यहाँ तो वस्तु क्या है, उसकी बात होती है। कहो, समझ में आया इसमें? यहाँ तो भगवान आत्मा भगवान त्रिलोकनाथ कहते हैं कि तुझे बँधे हुए कर्म जो जड़ पड़े हैं, ऐसे दूसरे ग्रन्थान्तर में अन्य ग्रन्थ में कहा है कि जड़कर्म का उदय नये बन्ध का इतना कारण होता है। उसमें ऐसा हमारे कहना है कि पुराने कर्म नये बन्ध का कारण कब होते हैं, नये बन्ध के हेतु कब पुराने होते हैं कि उसका हेतु तू मिथ्यात्व और राग-द्वेष करे तो। समझ में आया?

है या नहीं सब स्पष्टीकरण है या नहीं? बहुत... देख लिया। दर्शनमोह का उदय हो तो भी मिथ्यात्व हो, ऐसा है नहीं। चारित्रमोह का उदय हो तो राग-द्वेष हो, ऐसा है नहीं। देखो! **उन्हें भी...** अर्थात् कि नये कर्म में पुराने कर्म हेतु हो-निमित्त हो, उसे भी **बन्धहेतुपने के हेतु...** नये बन्ध के हेतु के हेतु, **जीव भावभूत,...** राग-द्वेष, काम-क्रोध, मिथ्यात्वभाव। **क्योंकि रागादिकभावों का अभाव होने से...** देखो! क्योंकि आत्मा ही स्वयं अपने शुद्धस्वभाव की दृष्टि पुरुषार्थ से करके शुद्धस्वभाव में रमणता के भाव किये तो आत्मा में मिथ्यात्व और राग-द्वेष भाव का भाव नहीं है।

ऐसे **रागादिकभावों का अभाव होने से द्रव्यमिथ्यात्व-जड़कर्म का उदय, द्रव्य-असंयम-चारित्र का उदय, द्रव्यकषाय और द्रव्ययोग के सद्भाव में भी जीव बँधते नहीं हैं।** कहो, इतनी तो बात! यह द्रव्यमिथ्यात्व, द्रव्यकषाय, द्रव्ययोग, समझ में आया? द्रव्यअसंयम, अव्रतपरिणाम जड़ के हों! जड़ के चारित्रमोह के। ऐसा होने पर भी जीव यदि मिथ्यात्व और राग-द्वेषभाव न करे तो वह बन्ध के कारण में निमित्त नहीं होते।

कर्म का घोटाला तो इतना भरा है न! इसलिए इतना तो स्पष्टीकरण आचार्य

महाराज जगत के समक्ष प्रसिद्ध करते हैं। प्रकाशन हुआ था न? प्रसिद्ध करना, समझाना, दर्शाना। क्या कहा? भाई! तूने तेरी सम्हाल नहीं की, इसलिए तुझमें मिथ्यात्व और राग-द्वेषभाव हुआ, इसलिए पुराने कर्म नये का हेतु तेरे भाव का, उसमें हेतुपना हुआ तो नये का हेतु पुराने को कहने में आता है। परन्तु पुराने कर्म के उदय काल में तू यदि आत्मा की दृष्टि और धर्मदृष्टि आत्मज्ञान और आत्मस्वभाव का भान कर तो राग और मिथ्यात्व के भाव में पुराने कर्म, बन्ध में निमित्त भी नहीं होते। समझ में आया?

समाज में तत्त्वज्ञान घट गया और बाहर की क्रिया-काण्ड के थोथा रह गये। वास्तविक तत्त्वज्ञान क्या है, उसका भान गोथाई गया। छोटाभाई! ऐसा होगा या नहीं? ऐसा ही है न? वह तो वहाँ बलीन में मास्टर थे। अहमदाबाद, ईडर, नहीं? ईडर न, छोटूभाई! सर्वत्र गप्प-गप्प चलती है, कहते हैं। भगवान... यहाँ आचार्य ने नाम देकर तो स्पष्टीकरण किया है। यह ग्रन्थान्तर, इस ग्रन्थ के अतिरिक्त दूसरे ग्रन्थों में कहा हो कि कर्म पुराने, नये बन्ध का कारण तो उसका अर्थ ऐसा करना कि तू यदि मिथ्यात्वभाव और राग-द्वेष भाव कर तो पुराने कर्म को नये में बन्धन हेतु में हेतु तू हो तो बन्धन का हेतु होता है। तू यदि ज्ञान-श्रद्धा को आत्मा की सच्ची पहिचान कर तो पुराने कर्मबन्ध का निमित्तपना भी होता नहीं। क्योंकि हेतु को हेतु मिला नहीं।

नये बन्ध का हेतु पुराने कर्म, उसे हेतु ऐसे। राग-द्वेष के भाव तूने नहीं किये तो क्या कर्म का उदय आता है तो राग-द्वेष करना पड़ते हैं और उसके कारण कर्म है, ऐसा नहीं है। तीन काल-तीन लोक में ऐसा नहीं है। अज्ञानियों ने जगत को भ्रमणा में डालकर भुलाया है। यह उसे समझाते हैं। समझ में आया? उसने कहा न, प्रसिद्ध-प्रकाशन। प्रकाशन का उद्योत् शब्द पड़ा है। '**बहिरंग कारण उद्योतमेतत्**' भगवान आचार्य उद्योत करते हैं। भाई! अनादि से अज्ञान की तेरी बड़ी भूल है। पुराने कर्म हमारे शास्त्र में आया है, गोम्मटसार में भी आया है। ज्ञान का बढ़ना-घटना ज्ञानावरणीय का जैसा उदय आवे, वैसा होता है। हमारे ज्ञान कम करने का भाव है? हाँ! कम करने का भाव नहीं। तेरे ज्ञान की पर्याय तू उल्टी कर और तू कहे कि कर्म के कारण हुई। मूढ़ है। महा मिथ्यात्व के नये पाप को बाँधता है। यह वास्तव में बन्धन और पाप का कारण है। विशेष कहेंगे। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. ४८, गाथा-१४९-१५०
दिनांक - २४-१०-१९६४, आसोज कृष्ण ३, शनिवार

नौ पदार्थ का वर्णन है। नौ पदार्थ का वास्तविक ज्ञान हो तो उसे आत्मा का ज्ञान अन्तर होकर सम्यग्दर्शन होता है। इससे यह नौ तत्त्व जैसे हैं, वैसे भगवान ने जाने, ऐसा कहा, ऐसा है। वह किस प्रकार है, उसका अधिकार चलने पर अभी बन्ध अधिकार चलता है।

जीव, अजीव, पुण्य-पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा इतने अधिकार हो गये हैं। यह बन्धतत्त्व किसे कहना? तो आत्मा वस्तु स्वभावरूप से तो ज्ञान-आनन्द का धाम शुद्ध पवित्र है। वह वस्तु स्वयं निज स्वभाव से तो अबन्ध है। समझ में आया? उसका स्वरूप सच्चिदानन्द, निर्मल, अनन्त चेतनगुण का धाम ऐसा आत्मा दृष्टि का विषय करने से, वह वस्तु अबन्ध है। वह वस्तु आत्मा के स्वभाव में बन्ध नहीं। उस स्वभाव को भूलकर चैतन्यज्योत ज्ञानानन्द को भूलकर वर्तमान में पुण्य और पाप के विकारी स्निग्धता के मोह और राग-द्वेषभाव करता है, वह भावबन्ध है। और वह नये द्रव्यकर्म के जड़ का वह भावबन्ध निमित्त कारण है। समझ में आया?

द्रव्यबन्ध और भावबन्ध की क्या व्याख्या है? उसकी यह व्याख्या चलती है। कहते हैं कि भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यमूर्ति होने पर भी अनादि से उसका जहाँ भान नहीं, उसे मिथ्यात्व, अव्रत, कषाय और योग, ऐसे भाव उसकी पर्याय में करता है। कर्ता स्वतन्त्र होकर विकार करता है। वह विकार नये द्रव्यकर्म को बाह्य निमित्त है, तथापि पुराने कर्म नये कर्म को जो बाह्य निमित्त हैं, उनकी अपेक्षा इसकी विशेषता बतलाने को पुराने आठ कर्म नये बन्ध का कारण वह बाह्य निमित्त है। क्योंकि आत्मा यदि मिथ्यात्व और राग-द्वेषभाव करे तो नये कर्म को बाह्य निमित्तकारण होता है। नये कर्म को पुराने बाह्य निमित्त होते हैं। तो वास्तव में द्रव्यबन्ध का वास्तविक कारण जीव का मिथ्यात्व और राग-द्वेषभाव है। रावजीभाई! समझ में आया?

यह बात—यहाँ १४८ में ऐसा वर्णन आ गया कि बन्ध जो होता है जड़, उसमें आत्मा के प्रदेश का कम्पन है, उसे बाह्य निमित्त कहते हैं। ऐसा कहा, क्योंकि पाठ ऐसा

था कि '**जोग गहणं**' मात्र कर्म के स्वभावरूपी प्रकृति और परमाणु, उनका आना हो, उसमें योग निमित्त है। इसलिए योग वास्तव में बन्ध में बाह्य निमित्त गिनने में आया है। क्योंकि उससे कहीं मूल कर्म में स्थिति और अनुभागरस जो पड़े, उसका वह कारण योग नहीं है। योग तो परमाणु आने को स्वभाव होने में निमित्त है। इसलिए योग की कम्पन पर्याय तो आत्मा की है, तथापि उसे ग्रहण के आने में निमित्त गिनकर बाह्य कारणरूप से जोग को कहा है। और आने में अन्तरंग कारणरूप से निमित्त मोह-राग-द्वेष और मिथ्यात्व आदि के भाव को नये बन्ध में अन्तरंग कारण अर्थात् मूल कारण कहने में आया है। समझ में आया?

अब यहाँ जो १४८ गाथा में कहा था कि नये कर्मबन्धन में पुराने कर्म निमित्त है, निमित्त योग है और अन्तरंग कारण मिथ्यात्व और राग-द्वेष है। ऐसा कहा था। यहाँ विशेष बात थोड़ी बढ़ाई, कि पुराने कर्म भी नये कर्म में बाह्य निमित्त है। जैसे योग निमित्त कहा था, वैसे पुराने कर्म नये को बाह्य निमित्त है। कब? कि यदि जीव राग-द्वेष और मिथ्यात्वभाव करे तो। यह बात अब अधिक वर्णन करते हैं। कहो, समझ में आया? देखो! टीका, फिर से १४९। १४९ गाथा की टीका।

यह, मिथ्यात्वादि द्रव्यपर्यायों को, (प्रत्ययों को) अर्थात् पुराने जो जड़कर्म हैं, १४९ की टीका हिन्दी-हिन्दी-गुजराती। पुराने जो दर्शनमोहकर्म है, चारित्रमोहकर्म है या नामकर्म है। यह द्रव्य प्रत्यय कहलाते हैं। जड़ प्रत्यय कहो या द्रव्य प्रत्यय कहो या अजीव प्रत्ये कहो। **यह (-द्रव्यमिथ्यात्वादि पुद्गलपर्यायों को) भी (बन्ध के) बहिरंग-कारणपने का प्रकाशन है।** क्या कहा? १४८ गाथा में ऐसा कहा था। नये कर्मबन्धन में योग का कम्पन आत्मा की पर्याय बाह्य निमित्त कहा था और मिथ्यात्व तथा राग-द्वेष अन्तरंग निमित्त कहा था। १४९। समझ में आया?

वह यह १४९ गाथा में नये कर्म को पुराने कर्म बाह्य निमित्त हैं, ऐसा सिद्ध करना है। देखो! मिथ्यात्व आदि द्रव्य... धीरे-धीरे समझने जैसी जरा सूक्ष्म बात है। जड़कर्म जो पुराने जड़कर्म हैं, दर्शनमोह, चारित्रमोह उसे यहाँ द्रव्य प्रत्यय कहते हैं। द्रव्य आस्रव कहो, द्रव्य प्रत्यय कहो, वह जड़ का उदय। वह नये बन्धन को बहिरंग कारणपने का इस गाथा में प्रकाशन है।

अब कहते हैं, **ग्रन्थान्तर में (अन्य शास्त्र में)...** गोम्मटसार आदि में **मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और योग इन चार प्रकार के द्रव्यहेतुओं को (द्रव्यप्रत्ययों को)...** दर्शनमोह, चारित्रमोह। चारित्रमोह में असंयम और कषाय दोनों आ गये। और योग में नामकर्म और शरीर आ गये। यह दूसरे शास्त्रों में इन चार प्रकार के द्रव्य प्रत्ययों को आठ प्रकार के कर्मों के कारणरूप से बन्ध हेतु कहा है। दूसरे शास्त्रों में ग्रन्थ में गोम्मटसार कर्मकाण्ड में पुराने द्रव्य प्रत्यय, पुराने कर्म, जड़, वे नये बन्ध का कारण कहा गया है।

अब उसमें स्पष्टीकरण करते हैं। उन्हें भी बन्ध हेतुपने के हेतु, वे पुराने जड़कर्म चार उदय में होने पर भी नये कर्म को निमित्तरूप से बन्ध हेतु कब होते हैं कि उस हेतु में बन्ध हेतुपना जीवभावभूत रागादिक है। जीव यदि मिथ्यात्वभाव और राग-द्वेषभाव करे तो पुराने कर्म नये (कर्म को) बाह्य निमित्त होते हैं। जो राग-द्वेष और मिथ्यात्व न करे और पुराने कर्म उदय में हो तो नये बन्ध का कारण नहीं होते। रावजीभाई! पुराने कर्म उदय में आवे, इसलिए मिथ्यात्व और राग-द्वेष करना पड़े, ऐसा नहीं है। यह ग्रन्थान्तर में जो कहा कि चार पूर्व के प्रत्ययों दर्शनमोह, चारित्रमोह में अव्रत और कषाय और योग आ जाते हैं। ये चार आठ कर्म के बन्ध के कारण पुराने कर्म का उदय नये बन्ध को कारण कहने में आया है।

यहाँ अब कहते हैं कि उस निमित्त में भी वह हेतु जो नये के थे, उनका हेतु जीव यदि मिथ्यात्व और राग-द्वेष करे तो वह नये कर्म को बाह्य हेतु कहने में आता है। समझ में आया? **उन्हें भी...** उन्हें अर्थात् पुराने जड़कर्म के उदय को भी **बन्ध हेतुपने के...** वह बन्ध हेतु कब कहलाये? कि उसके **हेतु जीवभावभूत रागादिक हैं;...** यदि जीव आत्मा के ज्ञातादृष्टा को भूलकर पुण्य और पाप के परिणाम में अपनापन मानकर भ्रमणा करे और पर आदि की क्रिया मेरे कारण से होती है, ऐसा मिथ्यात्वभाव सेवन करे तो वह मिथ्यात्व और राग-द्वेष का भाव वह पुराने कर्म को निमित्त होने पर पुराना कर्म नये का निमित्त होता है। रावजीभाई! सूक्ष्म बात! वह पुराना कर्म उदय आवे, इसलिए बन्ध होता है, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

क्योंकि रागादिकभावों का अभाव होने से... आत्मा यदि राग-द्वेष और मिथ्यात्व न करे, आत्मा ही मिथ्या भ्रमणा और राग-द्वेष न करे तो द्रव्य मिथ्यात्व, दर्शनमोह का

द्रव्य मिथ्यात्व, वह बन्ध का कारण नहीं होता। द्रव्य मिथ्यात्व जड़। भाव मिथ्यात्व जीव न करे तो द्रव्य मिथ्यात्व से नया बन्धन नहीं होता। वास्तव में द्रव्य मिथ्यात्व बन्ध का कारण नहीं है। वह द्रव्य मिथ्यात्व का उदय होने पर भी जीव सम्यग्दर्शन और ज्ञान की पर्याय प्राप्त करे तो पुराने कर्म नये को निमित्त भी न होकर निर्जरा का कारण हो जाता है। समझ में आया?

यह लोग कहते हैं न कि भाई! कर्म का उदय आवे, इसलिए जीव को राग-द्वेष करना पड़े। मिथ्यादृष्टि है वह। अथवा कर्म का उदय आवे तो डिग्री टू डिग्री विकार करना पड़े। डिग्री टू डिग्री थर्मामीटर आता है न कि भाई! शरीर में जितना बुखार आवे, उतना (थर्मामीटर में) बुखार आवे। इसी प्रकार कर्म का उदय आवे, उसके प्रमाण में जीव को मिथ्यात्व और राग-द्वेष करना पड़े। वीतराग कहते हैं कि तेरी मान्यता एकदम भ्रम और अज्ञान है। रावजीभाई! ऐसा ही चलता है न अभी सब, ऐसा ही चलता है।

क्या कहते हैं, देखो! कि पुराने कर्म द्रव्यमिथ्यात्व और द्रव्यचारित्र जड़ नये को बाह्य हेतु कब होते हैं? कि उस हेतु को जीव हेतु राग-द्वेष और मिथ्यात्वभाव होवे तो। परन्तु जीव राग-द्वेष और मिथ्यात्वभाव न करे तो पुराने कर्म नये को निमित्त भी नहीं होते। समझ में आया? यह वर्तमान में बहुत ही गड़बड़ चलती है। पण्डित नाम से और त्यागियों के नाम से। रावजीभाई! रावजीभाई को खबर है न? ये तो निवृत्तिवाले व्यक्ति हैं। आहाहा! क्या कहते हैं, देखो! पुराने को बन्ध हेतुपने के हेतु जीव राग-द्वेष और मिथ्यात्व करे तो पुराने कर्म नये को निमित्त कहलाते हैं।

क्योंकि रागादि भावों का अभाव होने पर, नीचे फुटनोट में। **जीवगत रागादिरूप भावप्रत्ययों का अभाव होने से...** जीव स्वयं ही आत्मा ज्ञानानन्द शुद्ध चैतन्य है। ऐसी अन्तर्दृष्टि और स्वभाव का भान करने से **जीवगत रागादिरूप भावप्रत्ययों का अभाव होने से...** अर्थात् कि स्वभाव का भान करने से, मैं ज्ञायक शुद्ध चैतन्य आनन्द हूँ। यह पुण्य-पाप के विकल्प जरा होते हैं, वे मुझसे पृथक् आस्रवतत्त्व हैं। कर्म और शरीर, वह अजीवतत्त्व है। कर्म और शरीर, वह अजीवतत्त्व है। मेरी पर्याय में अपराध से पुण्य और पाप की वृत्तियाँ होती हैं, परन्तु वह मलिन आस्रवतत्त्व है। मैं एक ज्ञायकतत्त्व हूँ।

ऐसा चैतन्य के ज्ञायक का सम्यग्दर्शन, ज्ञान होने पर उसे भाव प्रत्यय अर्थात् मिथ्यात्व और राग-द्वेष नहीं होते। समझ में आया?

यह **भावप्रत्ययों का अभाव होने से द्रव्यप्रत्ययों के विद्यमानपने में भी...** पुराने कर्म उदय में आने पर भी, दर्शनमोह, चारित्रमोह जड़रूप से आने पर भी, रहने पर भी, होने पर भी, जीव बँधते नहीं। स्वयं आत्मा की वीतराग दृष्टि करे, ज्ञायक हूँ, चैतन्य हूँ, जाननेवाला-देखनेवाला हूँ। मेरे स्वभाव में विकार नहीं, विकार में मैं नहीं। अजीव में मैं नहीं, मुझमें अजीव नहीं, ऐसा सम्यग्दृष्टि भिन्न भान करे, उसे नये कर्म में जो पुराने कर्म बाह्य निमित्त होने पर उसका हेतु यहाँ अज्ञानभाव रहा नहीं। इसलिए उसे पुराने कर्म नये कर्म को निमित्त नहीं होते। वे पुराने कर्म उदय में आने पर भी विद्यमान रहने पर भी, होने पर भी। राग-द्वेष और अज्ञान जीव न करे तो पुराने कर्म नये बन्ध में निमित्त नहीं होते। पण्डितजी! बहुत ही गड़बड़ करते हैं। यहाँ पण्डित भी गड़बड़ करते हैं। रावजीभाई! पण्डित लोग भी ऐसा ही चलाते हैं।

मुमुक्षु : पण्डित गड़बड़ नहीं करते।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह ठीक कहते हैं। यह ठीक कहते हैं। नहीं समझे हुए गड़बड़ करते हैं। नामधारी। भाव पण्डित हो, वह गड़बड़ नहीं करता। बात सच्ची है।

यहाँ कहते हैं, भगवान त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव परमात्मा देवाधिदेव परमेश्वर ने कहा, ऐसा कुन्दकुन्दाचार्य इस प्रकार से दो हजार वर्ष पहले भगवान कुन्दकुन्दाचार्य यहाँ थे। वे महाविदेहक्षेत्र में भगवान के पास आठ दिन रहे। गये थे, आठ दिन वहाँ रहे थे। वहाँ से यहाँ आकर यह शास्त्र रचे हैं। उसमें इस शास्त्र की गाथा १४९, पंचास्तिकाय। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, उसकी टीका अमृतचन्द्राचार्य ने ९०० वर्ष पहले महामुनि भावलिंगी सन्त महन्त ज्ञानी-ध्यानी, उन्होंने यह टीका की है। उस टीका में ऐसा कहते हैं कि भाई! प्रभु! तू आत्मा है न, भाई!

यह आत्मा अपने ज्ञानानन्दस्वभाव को भूले और राग-द्वेष में धर्म माने, निमित्त के कारण मुझमें कार्य होता है और मैं दूसरे के कार्य कर दूँ, ऐसी दो द्रव्य के प्रति एकताबुद्धि करे और विकार से मुझे लाभ होगा, ऐसा मिथ्यात्वभाव यदि सेवन करे तो

उसे नये कर्म में पुराने कर्म जो हेतु थे, उनका हेतु इसने दिया, इसलिए नये में पुराने कर्म निमित्त हुए। परन्तु यदि मिथ्यात्व और राग-द्वेष यदि जीव न करे तो पुराने कर्म उदय में होने पर भी जीव को बन्ध का कारण नहीं होता। स्पष्ट है इसमें। देखो!

यदि जीवगत रागदिभावों के अभाव में भी... देखो! **द्रव्यप्रत्ययों के विद्यमानपने में भी जीव बँधते नहीं हैं।** जड़कर्म भले हो। वह तो मिट्टी-धूल है, परवस्तु है, वह कहीं आत्मा को विकार कराते नहीं। वह विकार कराते नहीं और वास्तव में वे बन्ध के निमित्त भी नहीं हैं। वे तो बहिरंग कारण हैं। अन्तरंग कारण तू मिथ्यात्व और राग-द्वेष कर तो बहिरंग कारण कहलाता है। अन्तरंग कारण तो तेरा मिथ्यात्व और राग-द्वेष भाव ही बन्ध में कारण है। समझ में आया? है या नहीं पण्डितजी! देखो!

द्रव्यप्रत्ययों के... अर्थात् कि जड़ उदय **विद्यमानपने में भी जीव बँधते नहीं हैं। यदि जीवगत रागदिभावों के अभाव में भी द्रव्यप्रत्ययों के उदयमात्र से बन्ध हो...** जीव अपने स्वभाव की दृष्टि करके रागादि को ज्ञान में पृथक् जाने और वैसा सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान करे, ऐसे जीव को **द्रव्यप्रत्ययों के उदयमात्र से बन्ध हो...** पुराने कर्म का उदय बन्ध का कारण हो तो सर्वदा बन्ध ही रहे। कभी मुक्ति होने का प्रसंग ही न बने। समझ में आया?

(-मोक्ष का अवकाश ही न रहे), क्योंकि संसारियों को सदैव कर्मोदय का विद्यमानपना होता है। कर्मोदय तो सदा होता है। इसलिए कर्मोदय के कारण तुझे विकार हो तो कभी छूटने का प्रसंग बने नहीं। रावजीभाई! देखो! गाथा ऐसी आयी हे, हों बराबर! आहाहा! अभी तो यह ही विपरीतता (बात चलती है) बस! विकार हो वह कर्म के कारण होता है, विकार हो... परन्तु बापू! कर्म अजीवतत्त्व है, विकार आस्रवतत्त्व है, आत्मा ज्ञायकतत्त्व है।

सात तत्त्व में भिन्न-भिन्न की यह व्याख्या चलती है। नवपदार्थ की व्याख्या। तो कर्म, शरीर अजीवतत्त्व में जाते हैं। पुण्य-पाप के भाव मिथ्यात्वभाव आस्रवतत्त्व में जाते हैं। भगवान ज्ञायकतत्त्व आत्मा है। ऐसा जिसे ज्ञायकतत्त्व का भान नहीं, उसे मिथ्यात्वभाव और राग-द्वेषभाव हो, वह कर्म का विद्यमान उदय होने पर भी पुरुषार्थ उल्टा करे तो होता है। सुलटा करे तो कर्म उदय होने पर भी विकार नहीं होता। यह तो

कहे—क्या करें हमारे कर्म का उदय, शास्त्र देखो! विकार कर्म के उदय बिना बना हो तो लाओ दृष्टान्त। विकार कर्म के बिना, परन्तु यहाँ कहते हैं कि कर्म का उदय हो और विकार करे, करना पड़े तो सदा संसार से कोई मुक्त होगा नहीं। सदा ही कर्म का उदय तो रहा ही करता है। भारी गड़बड़ चली है, बहुत ही गड़बड़।

कर्म के नाम से, अन्य में ईश्वर कर्ता, इसे कर्म कर्ता अर्थात् जड़ कर्ता, वह ईश्वर करावे, हिलावे, ऐसे हिलना। पत्ता भी ईश्वर के बिना नहीं हिलता। जैन में कहे, नाम धरानेवाले जैन, हों! कर्म प्रमाण विकार होता है, आत्मा कर्म का खिलौना है। जैसे खिलावे वैसे खेलता है। मूढ़ है। तेरा ईश्वर कर्ता जड़ हो गया। सीधे ऐसा हुआ या नहीं? वह ईश्वर कर्ता कहे, चैतन्यवाला है नहीं। थोथा! यह कहे कि हमारे कर्ता कर्म। अपने जैन हैं और इसे कर्म भटकावे। चार गति में निगोद में, एकेन्द्रिय में, दो इन्द्रिय में कर्म भटकावे। भगवान कहते हैं कि ऐ मूढ़! ऐसा तूने कहाँ से कहा? ऐसा निकाला कहाँ से? हमने तो ऐसा कभी कहा नहीं। पण्डितजी! क्या कहा?

क्योंकि रागादिकभावों का अभाव होने से... आत्मा ही अपने स्वभाव की दृष्टि और विकारी दृष्टि छोड़कर स्वभाव की दृष्टि ज्ञान हूँ, आनन्द हूँ—ऐसी दृष्टि करे तो उसे द्रव्यमिथ्यात्व होने पर भी, जड़कर्म में द्रव्यमिथ्यात्व का उदय होने पर भी, दर्शनमोह का उदय होने पर भी, यहाँ विकार होता नहीं। पण्डितजी! यहाँ थोड़ा निर्णय कर देना। यह पण्डितजी बाहर के सुधरे हुए में सबमें मिलते हैं, जहाँ हो वहाँ। ठीक बात है या नहीं? निर्णय करना चाहिए। यह तो वीतरागमार्ग है। यह तो जैन परमेश्वर ने कहा हुआ मार्ग है। यह कोई कल्पित या दुनिया के साथ मिले, ऐसा नहीं है।

यह तो तीन काल, तीन लोक में सर्वज्ञ ने देखा हुआ स्वरूप, इस प्रकार से कहा हुआ और इस प्रकार से है। तीन काल में दूसरे प्रकार से नहीं हो सकता। और अन्यमत की या दूसरे के साथ इसका कहीं मिलान खाये, ऐसा है नहीं। मिलान समझते हो? मिलान, समन्वय करते हैं न, समन्वय। दूसरे के साथ समन्वय हो, ऐसा वीतरागमार्ग है नहीं। देखो! क्या कहा? जैन में रहने पर भी ऐसा मानता है कि कर्म का उदय आवे चारित्रमोह का उदय आवे, इसलिए राग-द्वेष के भाव करना पड़ते हैं। देखो! यह राम और लक्ष्मण! रामचन्द्रजी लक्ष्मण को छह-छह महीने तक रखा। यह चारित्रमोह का

उदय था, इसलिए राग हुआ। भगवान इनकार करते हैं कि तेरी यह बात मिथ्या है। तुझे एकदम भ्रमणा हुई है।

यह द्रव्यमिथ्यात्व होने पर भी भावमिथ्यात्व न करे तो बन्धन है नहीं। भावमिथ्यात्व करना, न करना, वह द्रव्यमिथ्यात्व के कारण नहीं है। तेरे उल्टे पुरुषार्थ के कारण से है। द्रव्यमिथ्यात्व-द्रव्य असंयम देखो! द्रव्य असंयम। द्रव्य असंयम अर्थात् जड़ का उदय अव्रत का। अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान है जो कर्म जड़, उसका उदय। यह उदय, वह तुझे राग-द्वेष कराता है—ऐसा नहीं है। **द्रव्य-असंयम, द्रव्यकषाय और द्रव्ययोग के सद्भाव में भी जीव बँधते नहीं हैं।** जड़ का उदय होने पर भी जीव राग-द्वेष स्वयं न करे, मिथ्यात्वभाव न करे तो कर्म से बँधता नहीं।

जड़ का उदय ही विकार करावे और विकार करना पड़े तो कभी उसे सम्यग्दर्शन होने का भी प्रसंग बनता नहीं। शान्ति और वीतरागदृष्टि होने का भी प्रसंग नहीं बनता। इसलिए तेरी बात एकदम झूठी है। जड़कर्म हो, इसलिए विकार होता है। यहाँ इनकार करते हैं कि जड़कर्म के विद्यमानपने में-अस्ति में भी यदि जीव अपने पुरुषार्थ से (आत्मा) ज्ञाता-दृष्टा और आनन्द का भान करे तो उसे जड़कर्म के कारण से विकार करना पड़े, ऐसा है नहीं। रावजीभाई! यह निर्णय करना पड़ेगा, हों! अभी यह सब बहुत गड़बड़ चली है। उसमें मुख्य-मुख्य तुम्हारे जैसे को तो यह सब निर्णय करना पड़े। तुम्हारे कारण लड़के—विद्यार्थी भी ऐसा समझे। लो! है या नहीं? वहाँ कारंजा में व्यवस्थापक हैं वहाँ। कारंजा में। बालब्रह्मचारी। वहाँ कर्ता-हर्ता। समझ में आया?

यह गाथा ऐसी ली है न! कि भाई! द्रव्यकर्म बन्ध का हेतु नहीं। द्रव्यकर्म के निमित्त में तू यदि विकार करे तो निमित्त हो। न करे तो वह द्रव्यकर्म छूट जाता है। द्रव्यकर्म उदय आया, इसलिए मुझे राग-द्वेष... चारित्रमोह का उदय आया हो तो राग-द्वेष होते हैं। भगवान इनकार करते हैं। असंयम का विद्यमान उदय होने पर भी जीव राग-द्वेष असंयम न करे तो बन्धन नहीं होता। है टीका में, स्पष्ट शब्द है, पाठ में, हों! पूरी गड़बड़ कर्म की अभी इतनी अधिक है न? बस। प्ररूपणा करते हैं ऐसी! अपने तो भाई! कर्म के कारण हैं। गति में कौन ले जाये? कर्म। आत्मा को जाने का भाव है? परन्तु वह अपनी पर्याय की योग्यता से गति में जाता है। कर्म के कारण नहीं। वह तो

जड़ परद्रव्य है। परद्रव्य तुझे कहीं तेरे कार्य में तिरा दे? समझ में आया? उसका उदय होने पर भी तू यदि अज्ञान और राग-द्वेष न करे तो वह तेरे अधिकार की बात है। समझ में आया?

देखो! क्योंकि राग-द्वेष के अभाव में धर्मी जीव को यह कर्म का असंयम का उदय होने पर भी, जीव स्वयं ही अपने में राग-द्वेष के भाव को न करे तो वह असंयम का उदय **सद्भाव में भी जीव बँधते नहीं हैं।** असंयम के उदय में भी जीव राग-द्वेष स्वयं न करे तो असंयम से नया बन्धन नहीं होता। आहाहा!

मुमुक्षु : परन्तु साहेब! उदय आवे तब क्या करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : उदय आवे उसके कारण से। उदय जड़ में आता है। यह आत्मा अपने स्वरूप को भूलकर पुण्य-पाप और पर को माने-पर को अपना माने, तो मिथ्यात्व के कारण नया बन्धन पड़ता है। पुराने कर्म उदय में आये, इसलिए मिथ्यात्वभाव रना पड़ता है, ऐसा नहीं है। ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। चारित्रमोह का उदय आया, इसलिए राग-द्वेष (करने पड़ते हैं)। नहीं, चारित्रमोह का द्रव्य (कर्म) का उदय होने पर भी, विद्यमान होने पर भी तू राग-द्वेष न करे तो बन्धन नहीं होता। इसलिए उदय तुझे राग-द्वेष कराता है, ऐसा तीन काल, तीन लोक में वस्तु में नहीं है। भाई! समझ में आया? आहाहा! देखो न! क्या कहते हैं?

द्रव्यमिथ्यात्व, द्रव्यअसंयम अर्थात् जड़ उदय, द्रव्यकषाय अर्थात् चारित्रमोह का उदय और द्रव्ययोग अर्थात् नामकर्म का उदय। यह सद्भाव में भी उसके उदय की अस्ति होने पर भी जीव यदि विकारादि का भाव न करे तो बँधता नहीं है। स्पष्ट बात है या नहीं? या कोई थोड़ी गड़बड़ है? स्पष्ट लिखा है।

पण्डितजी! इस गाथा में बन्ध अधिकार है। भावबन्ध, द्रव्यबन्ध में निमित्त होता है। बस, द्रव्यबन्ध तो जड़ (और) भावबन्ध यदि करे तो निमित्त होता है। न करे तो द्रव्यबन्ध खिर जाता है। द्रव्यबन्ध उदय में आया, इसलिए जीव को विकार करना पड़ेगा, यह एकदम खोटी बात है। मिथ्यादृष्टि की पुष्टि करनेवाले का यह भाव है। जड़कर्म आवे तो हमारे राग करना पड़े। पुरुषवेद का उदय आवे न, तो वासना होती है। मूढ़ है। तुझे किसने कहा?

यह तो कहते हैं। वासना होती है, जड़ का-वेद का उदय आया, वह तो जड़ में आया। तुझे वासना करना, न करना, यह तेरी स्वतन्त्र चीज़ है। वेद का उदय आया, इसलिए तुझे वासना करनी पड़े? भगवान इनकार करते हैं। बात तो सच्ची हो, वह इसे जाननी पड़ेगी या नहीं? हम क्या करें भाई! हमारे ऐसा वेद का उदय आता है न, तो भोग की वासना होती है। भगवान कहते हैं कि मूढ़ है। किसने तुझे कहा? ऐसा तू कहाँ से सीखा? कहाँ से ऐसा सीखा? कर्म को तो हम जानते हैं। कर्म तो वह जानता भी नहीं। कर्म की स्थिति, वर्णन और अनुभाग कैसे हैं, वह तो हमको भगवान ने कहा है। वह हम कहते हैं कि कर्म के उदय काल में तू विकार न कर तो बन्ध नहीं होता। कर्म के उदय काल में तुझे विकार करना ही पड़े, ऐसा हम नहीं कहते। समझ में आया?

ओहोहो! जैन में यह एक भारी गड़बड़! और फिर प्ररूपणा करे लोगों को बेचारे सुननेवालों को भान नहीं होता। चारित्रमोह के उदय से ही बड़े रामचन्द्रजी जैसे भी छह-छह महीने तक लक्ष्मण को कन्धे पर रखना पड़ा। भाई! चारित्रमोह का उदय है। और वह चारित्रमोह बन्द पड़ा, इसलिए शान्त हो गये। भगवान इनकार करते हैं। चारित्रमोह का उदय असंयम का उदय होने पर भी, जीव राग-द्वेष करे तो उसे निमित्त बन्ध में कहा जाता है। राग-द्वेष न करे तो उदय-उदय खिर जाये, उसके कारण से। रावजीभाई! बात तो ऐसी है। समझ में आया? क्या कहा? देखो!

रागादिकभावों का अभाव होने से... आत्मा में राग और द्वेष को, राग शब्द से उसमें मिथ्यात्व लेना। मिथ्यात्वभाव और राग-द्वेष का जीव अभाव करने से द्रव्यमिथ्यात्व उदय हो, सद्भाव हो। द्रव्य-असंयम का सद्भाव चारित्रमोह का उदय हो, जड़कषाय का उदय हो और द्रव्ययोग नामकर्म का उदय हो, वैसे सद्भाव में भी जीव बँधते नहीं। क्योंकि संसारियों को सदा ही कर्मोदय का विद्यमानपना होता है। फिर कर्म का उदय, वह विकार करावे तो कभी मुक्त होने का प्रसंग आवे नहीं। इसलिए यह बात सच्ची नहीं है। लॉजिक से-न्याय से तो आचार्य बात करते हैं।

आचार्य महाराज को करुणाबुद्धि से विकल्प आया है। शास्त्र, शास्त्र से रच गये जड़ से। वह तो जड़ की पर्याय है। वह कहीं आचार्य ने की नहीं। यह तो परमाणु की

यह पर्याय है। परमाणु की पर्याय से यह शास्त्र रच गये हैं। आत्मा ने रचे नहीं। आत्मा उसका रचनेवाला है ही नहीं। तीन काल में जड़ की पर्याय का रचनेवाला हो सकता नहीं। यह अन्तिम श्लोक में आता है। हमने यह शास्त्र नहीं रचे। शब्दों से शास्त्र रच गये हैं। अन्तिम शब्दों में आता है। समझ में आया? जड़ की पर्याय आत्मा करे? भाषा की पर्याय आत्मा करे? आत्मा में रजकण पड़े हैं, उसकी खान में?

मुमुक्षु : इकट्ठे होकर करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन इकट्ठा होकर करे। कभी तीन काल में (नहीं करता)। अपने स्वचतुष्टय में प्रत्येक द्रव्य विराजमान है। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव में। कोई दूसरे के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव में दूसरा द्रव्य (नहीं है)।

मुमुक्षु : दो के मिश्रण के बड़े-बड़े कथन आते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : मिश्रण आया है न अभी, आया है न कथन! खोटा-खोटा पण्डित के नाम धराकर! मिश्रण हो दोनों का। किसे मिश्रण भगवान! आत्मा अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव में पोताना समझे? अपना। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव—द्रव्य अर्थात् गुण-पर्याय का पिण्ड; क्षेत्र अर्थात् चौड़ाई; भाव अर्थात् शक्ति त्रिकाल; काल अर्थात् वर्तमान पर्याय। अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव में है, पर के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से तो नास्ति है। और पर परमाणु आदि पर के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव में है और अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से उसमें नास्ति है।

यह कर्म के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव कर्म में हैं, आत्मा में है ही नहीं। आत्मा में कर्म है ही नहीं। रावजीभाई! आत्मा में कर्म नहीं। आत्मा में कर्म है? आत्मा तो अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव में है और परमाणु परमाणु से एक-एक परमाणु अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव में है और आत्मा में वह नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

यह अँगुली का द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव इसमें (अँगुली में) है। इस अँगुली का द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव इसमें है। इसका इसमें अभाव और इसका इसमें अभाव। ऐसा परमाणु के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव—परमाणु द्रव्य अर्थात् गुण-पर्याय का पिण्ड; उसका क्षेत्र अर्थात् चौड़ाई; भाव अर्थात् शक्ति-गुण; पर्याय अर्थात् अवस्था। वह परमाणु अपने

द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव में है। आत्मा के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव में नहीं। भावार्थ इसका सच्चा हो वह होता है या खोटा होगा? 'सत्य शोधन' है यह। समझ में आया?

आत्मा में कर्म नहीं। हाय... हाय! चिल्लाहट मचा दे! आत्मा में कर्म होगा? स्वद्रव्य में परद्रव्य होगा? परद्रव्य में स्वद्रव्य होगा? और स्वद्रव्य में परद्रव्य होगा? अपने-अपने द्रव्य में सब है। निमित्त-निमित्त सम्बन्ध कब कहलाता है? उसके उदय काल के समय जड़ में उदय आया और तू विकार तेरे उल्टे पुरुषार्थ से कर तो उसे निमित्त कहा जाता है। न करे तो निमित्त खिर जाता है। तेरे अधिकार की बात है। नहीं कि चारित्रमोह का उदय आवे, इसलिए हमारे वासना करनी पड़े। अनन्तानुबन्धी आदि क्रोध का उदय आवे, इसलिए हमारे क्रोध आवे ही। भगवान इनकार करते हैं। उसके उदय के सद्भाव में भी यदि तू विकार न करे तो उसका सद्भाव खिर जाता है। बन्ध का कारण होता नहीं। समझ में आया? यहाँ तक तो कल आया था।

इसलिए रागादिभावों को... अर्थात् मिथ्यात्व और राग-द्वेषभाव जीव करे, उसे **अन्तरंग बन्धहेतुपना होने के कारण...** अन्तरंग क्यों? कि बाहर में उदय जो आया द्रव्यमिथ्यात्व का, द्रव्यचारित्रमोह का, वह बाह्य निमित्त कहने में आया। नये कर्म को। परन्तु उसे भी यह राग-द्वेष और मिथ्यात्व करे तो इसे अन्तरंग कारण कहने में आया। देखो! कर्म को बाह्यकारण कहने में आया। नया बन्ध हुआ उसे।

बन्धहेतुपना होने के कारण निश्चय से बन्धहेतुपना है... निश्चय शब्द से, निश्चय से बन्धहेतु शब्द से, नये बन्ध को यह तो बाह्यनिमित्त है। जीव के राग-द्वेष, मोह परिणाम भी। तथापि निश्चय से बन्धहेतु क्यों कहा? इसमें नीचे स्पष्टीकरण किया है। नीचे देखो! फुटनोट। **उदयगत द्रव्यमिथ्यात्वादि प्रत्ययों की भाँति रागादिभाव नवीन कर्मबन्ध में मात्र बहिरंग निमित्त नहीं हैं...** अर्थात् क्या कहा? उदयगत जो जड़कर्म का उदय दर्शनमोह का, चारित्रमोह का, उन प्रत्ययों की भाँति ये नये को बाह्यनिमित्त पुराना है। इसकी **भाँति रागादिभाव नवीन कर्मबन्ध में मात्र बहिरंग निमित्त नहीं हैं किन्तु वे नवीन कर्मबन्ध में 'अन्तरंग निमित्त' हैं...** अर्थात् खास यह कारण है, ऐसा कहना है। अन्तरंग, नहीं तो यह भी बाह्य है। नये बन्ध का मिथ्यात्वभाव, राग-द्वेषभाव पुराना वह

बाह्य थे परन्तु उस पुराने कर्म का बाह्यनिमित्तपना क्यों कहा कि उसकी कोई विशेषता नहीं। वह जड़कर्म का उदय होने पर भी जीव विकार न करे तो नये बन्ध का यह बाह्यनिमित्त भी नहीं है। क्योंकि अन्तरंग कारण हुआ नहीं इसलिए।

फिर से। पुराने कर्म द्रव्यमिथ्यात्व द्रव्यचारित्रमोह का उदय होने पर भी। यदि उदय हो और जीव यदि राग-द्वेष और मिथ्यात्वभाव करे तो वे नये कर्म को बाह्यनिमित्त कहलाते हैं। क्योंकि मूल कारण अज्ञान और मिथ्यात्व और राग-द्वेष निमित्त कारण है। इसके बिना पुराने कर्म को बाह्यनिमित्त भी कहने में नहीं आता। बाह्यनिमित्त को साधारण बात की, नये कर्म को वास्तव में बन्धन में जीव यदि मिथ्यात्व और राग-द्वेषभाव करे तो वह वास्तविक कारण बन्धन में कहने में आता है। समझ में आया? आहाहा!

किन्तु वे नवीन कर्मबन्ध में 'अन्तरंग निमित्त' हैं... कौन? वह मिथ्यात्व और राग-द्वेष के भाव। **इसलिए उन्हें 'निश्चय से बन्धहेतु' कहे हैं।** नहीं तो निश्चय से बन्धहेतु नहीं। निश्चय से बन्धहेतु तो जीव अपने परिणाम को करे, वह निश्चय से बन्धहेतु। नये बन्ध को तो वह बाह्यहेतु है। नये आठ कर्म को मोह, राग-द्वेष के परिणाम बाह्यहेतु हैं। परन्तु उनका बाह्यहेतु पुराने कर्म को बाह्यहेतु गिनकर क्योंकि वह विद्यमान होने पर भी जीव यदि मोह-राग-द्वेष न करे तो बन्ध का कारण नहीं, इसलिए मोह और राग-द्वेष को वास्तविक अन्तरंग कारण बन्ध में कहने में आया है। यह तो शब्द-शब्द में न्याय से उसमें तोलकर आना चाहिए। एक भी (शब्द) का अन्तर पड़े तो पूरे तत्त्व का सब फेर पड़ जाता है। सात तत्त्व रहते नहीं।

अजीव के कारण आस्रव हो तो आस्रव और अजीव दोनों एक होने से सात तत्त्व भिन्न नहीं रहते। कर्म का उदय जड़ है, उसके कारण यहाँ आस्रव हो तो सात तत्त्व नहीं रहते। यहाँ सात तत्त्व को पृथक् करके नौ पदार्थ की व्याख्या करनी है। पुण्य और पाप, आस्रव, संवर, बन्ध और मोक्ष-जीव-अजीव दोनों द्रव्य हैं। सात उनकी पर्याय है। जीव और अजीव दोनों द्रव्य हैं। सात इनकी पर्यायें हैं। पुण्य-पाप, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष। सात पर्याय जीव में और सात पर्याय जड़ में। ऐसा वापस दोनों में।

इस प्रकार यहाँ भावबन्ध और द्रव्यबन्ध, भावबन्ध जीव की पर्याय है, द्रव्यबन्ध

जड़ की पर्याय है। समझ में आया? द्रव्यबन्ध अर्थात् पर्याय है। कर्म की पर्याय है, वह कहीं द्रव्य नहीं। कर्म का उदय वह पर्याय है। उसके द्रव्य-गुण तो कायम हैं। उदय आना, कर्म का पाक आना वह तो पर्याय है। उस जड़ की पर्याय को द्रव्यहेतु कहा है। जीव के मिथ्यात्व और राग-द्वेष को भावबन्ध का हेतु कहा है। नये बन्ध में भावबन्ध कहा है। वह जीव की विकारी पर्याय है। वह अजीव की विकारी पर्याय है। उसे द्रव्यहेतु कहा, इसे भावहेतु कहा। आहाहा! भारी सूक्ष्म, भाई! अभी तो यहाँ सात तत्त्व की लगायी है। नौ पदार्थ किसे कहना। ऊपर है न? नौ पदार्थपूर्वक मोक्षमार्गप्रपंचवर्णन। ऊपर। नौ पदार्थ के पृथक्पनेपूर्वक मोक्षमार्ग का प्रपंच अर्थात् विस्तार का वर्णन। समझमें आया? है पण्डितजी ऊपर? नौ पदार्थ का अभी वर्णन है। (गाथा) ५४ से अपने मोक्षमार्ग का अधिकार चल गया है, वाँचन हो गया है। यह ५३ तक नहीं वाँचन हुआ था, इसलिए ५३ चलता है।

यह तो नौ पदार्थ क्या है? भिन्न। एक पदार्थ दूसरे के कारण हो तो नौ पदार्थ साबित नहीं होते। इसलिए यह सिद्धान्त कहा है कि कर्म का उदय अजीवतत्त्व है। वह अजीवतत्त्व की पर्याय है। और आस्रव, वह जीव की विकारीपर्याय है। इसलिए यदि कर्म के उदय के कारण आस्रव हो तो वह अजीव और आस्रव दोनों एक तत्त्व (हों तो) नौ नहीं रहते। भाई! हमें कर्म के उदय के कारण पुण्य का भाव होता है। कर्म मन्द पड़े तो हमको पुण्य का भाव होता है। कर्म अजीव यहाँ पुण्य-परिणाम जीव की विकारी पर्याय दोनों एक हो जायें, ऐसा नहीं है। राग की मन्दता तू कर तो पुण्य होता है। राग की तीव्रता तू कर तो पाप होता है। राग बिना का मेरा चैतन्य भिन्न है, ऐसा सम्यग्दर्शन कर तो संवर, निर्जरा होती है। समझ में आया?

मूल जैनदर्शन की नौ की मूल पद्धति क्या है, इसकी भी खबर नहीं होती और इसे अब धर्म करना है! चलो भाई! हमारे धर्म करना है, परन्तु बापू! भाई नौ क्या है? नौ में द्रव्य कितने, नौ में पर्याय कितनी, उस पर्याय में जीव की पर्याय कितनी, जड़ की पर्याय कितनी, ऐसा भेद जाने बिना एक-दूसरे में खिचड़ा करे तो उसे नौ पदार्थ की श्रद्धा का ठिकाना नहीं। समझ में आया?

इस प्रकार बन्धपदार्थ का व्याख्यान समाप्त हुआ। लो! १४९ तक में बन्ध पदार्थ की व्याख्या की। बन्ध पदार्थ के दो प्रकार वर्णन किये। द्रव्यबन्ध, भावबन्ध। द्रव्यबन्ध जड़ के नये परमाणु पड़े, वह और पुराने बन्ध पड़े हुए हैं, उनका उदय आने पर भी जीव भावबन्ध के विकारी परिणाम न करे तो उसे बन्ध नहीं होता। समझ में आया?

अब मोक्षपदार्थ का व्याख्यान है। मोक्ष, वह पर्याय है। वह द्रव्य-गुण नहीं। समझ में आया? जैसे पुण्य भी विकारीपर्याय है, पाप विकारीपर्याय है, आस्रव विकारीपर्याय है, भावबन्ध विकारीपर्याय है। संवर-निर्जरा, वह अविकारी अपूर्ण पर्याय है। मोक्ष, वह पूर्ण अविकारीपर्याय है। मोक्ष, वह गुण नहीं, द्रव्य नहीं। द्रव्य त्रिकाली है, गुण त्रिकाली है। मोक्ष नयी पर्याय होती है। वह सादि-अनन्त अवस्था है, परन्तु वह पर्याय है। केवलज्ञान पर्याय है, केवलज्ञान वह गुण नहीं। गुण तो त्रिकाली है। यह इसे न जाने तो यह अभी अनादि की गड़बड़ उठी है। यह कर्म के कारण विकार होता है और मैं विकार करूँ तो मैं कर्म बाँधता हूँ। दोनों झूठ बात! कर्म के कारण विकार हो तो अजीव के कारण आस्रव हो, दोनों तत्त्व की एकताबुद्धि मिथ्यात्व है। और मैंने आस्रव किया, इसलिए मैंने कर्म बाँधे। कर्म की पर्याय तू बाँधे, वह तो जड़ की पर्याय है। जड़ की पर्याय तेरे अधिकार की बात है कि तू बाँधे? रावजीभाई! प्रत्येक शब्द में न्याय है, हों! समझने जैसी बात है। बहुत घोटाला है। यह तो एक-एक गाथा ऐसी है! पंचास्तिकाय में १७३ गाथा है। समझ में आया? पंचास्तिकाय में विस्तार नौ पदार्थ का। पंचास्तिकाय में नौ पदार्थ का विस्तार है न? अजीव की पर्याय सात, अजीवद्रव्य। जीव की पर्याय सात, जीवद्रव्य। उनकी व्याख्या किस प्रकार पर्याय कैसे है भिन्न-भिन्न, उसका यह स्वरूप है। उसे ऐसे न जानकर एक-दूसरे को मिश्रण करके माने तो उसे सात तत्त्व की भिन्नता की श्रद्धा का भी ठिकाना नहीं है। उसे सम्यग्दर्शन हो नहीं सकता। पण्डितजी! बराबर आये हो न, गाथा भी ऐसी ठीक आयी है, हों! दूर से आये हो न दूर से, पहले-वहले आये हो। भाई भी पहले कभी नहीं आये? पहले यहाँ तक, आये नहीं? ...समझ में आया? क्या कहा?

इसलिए रागादिभावों को... राग शब्द से मिथ्यात्व और राग-द्वेष सब राग

कहलाता है। कर्मबन्धन होता है कर्म की पर्याय के कारण से, आत्मा उसे नहीं करता। क्योंकि जड़ की पर्याय है। परन्तु उसमें निमित्त होता है योग और कषाय। तो योग है, वह कम्पन प्रदेश का है। उसकी कुछ महत्ता नहीं है। परन्तु वह तो मात्र कर्म का आना प्रकृति का और प्रदेश का। उसमें योग का निमित्त अर्थात् मूल वह चीज़ गिनने में आयी नहीं। परन्तु कर्म में स्थिति और अनुभाग पड़े, वह कषाय का निमित्त है। उस कषाय में मिथ्यात्व और राग-द्वेष सब मिलकर कषाय कहने में आता है। मिथ्यात्व भी कषाय है, अव्रत भी कषाय है, प्रमाद भी कषाय है और कषाय भी कषाय है।

पाँच बन्ध के कारण हैं। मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय और योग। यह योग एक नामकर्म में जाता है। चार कषाय में जाते हैं। मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद और कषाय। इस कषाय में मिथ्यात्व और राग-द्वेष सब आ गये हैं। समझ में आया? हें?

मुमुक्षु : कषाय में रागादि आ गये।

पूज्य गुरुदेवश्री : मिथ्यात्व। रागादि नहीं, मिथ्यात्व। राग-द्वेष तो आवे ही। इस कषाय में मिथ्यात्व आ गया। यह जड़ की बात यहाँ नहीं है। यहाँ तो भाव की बात है। जड़ में जड़ आ गया। वह और अलग। यह बात नहीं। यहाँ तो कषाय बन्ध का कारण कहा न? यह तो जीव के भाव की बात चलती है। कषाय बन्ध का कारण।

मुमुक्षु : कौन सी कषाय?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन सी कषाय? अभी तो इस कषाय की बात चलती है वहाँ उस जड़ की बात याद आ जाये। लोगों को वह प्रकृति ही अन्दर पड़ी है। वह कषाय तो जड़ है। उसके बन्धन में जीव का निमित्त कहना... कि जीव कषाय करे तो कर्म के जड़ में स्थिति-अनुभाग में निमित्त कहलाये। वह कषाय अर्थात् क्या? मिथ्यात्व और राग-द्वेषभाव को कषाय कहते हैं।

कषाय का अर्थ ही मिथ्यात्व और राग-द्वेषभाव। अकेला राग-द्वेष कषाय, ऐसा नहीं। मिथ्यात्व और राग-द्वेष मिलकर कषाय कहने में आती है। जो स्थिति, अनुभाग में निमित्त पड़ती है, वह मिथ्यात्व और राग-द्वेष कषाय है, वह निमित्त है। और प्रदेश तथा प्रकृति में निमित्त योग कम्पन है। कम्पन को तो साधारण बाह्यकारण ऐसा कहकर

उसकी कुछ महत्ता नहीं। महात्ता तो अज्ञानी के मिथ्यात्व और राग-द्वेषरूपी कषाय। वह स्थिति और अनुभाग में निमित्त। स्थिति और अनुभाग तो कर्म में कर्म के कारण से पड़ता है, आत्मा के कारण से नहीं। परन्तु उसकी पर्याय भिन्न और इसकी पर्याय भिन्न। इसने कषाय मिथ्यात्व सेवन किया, इसलिए वहाँ स्थिति और अनुभाग पड़ना पड़ा, ऐसा नहीं है। वह तो जड़ की पर्याय स्वतन्त्र है। उस जड़ में अनुभाग और स्थिति की पर्याय वहाँ हो, तब उसे कषाय का निमित्त है। कौन सी कषाय? जीव की। कौन से भाव का? मिथ्यात्व और राग-द्वेषरूपी कषाय का। समझ में आया?

यह परिणाम विकारी परिणाम जो मिथ्यात्व और राग-द्वेष, उसे यहाँ कषाय, अनुभाग और स्थिति में निमित्त कहने में आता है। आहाहा! वह मिथ्यात्व मानो भाव ही उड़ गया। एक कषाय रह गया। परन्तु वह मिथ्यात्व स्वयं कषाय है। कष अर्थात् संसार आय अर्थात् बढ़ानेवाला। वह मिथ्यात्व स्वयं संसार है। वही कषाय है। समझ में आया?

मोक्षमार्ग में आता है, मोक्षमार्गप्रकाशक (में आता है)। मोक्षमार्गप्रकाशक। मिथ्यात्व, वह मूल कषाय है। है न.... वह तो है न! मिथ्यात्व और राग-द्वेष कषाय है। स्थिति, रस में वह निमित्त है। इसलिए कषाय कहने से क्रोध, मान, माया, लोभ अकेले, ऐसा नहीं। मिथ्यात्व और राग-द्वेष, वह कषाय है। रावजीभाई! विकारी भाव सब मिथ्यादृष्टि, राग-द्वेष, प्रमाद, कषाय, वह सब कषाय में जाता है। अरूपी जीव का विकारी भावबन्ध भाव, अरूपी। जड़ में स्थिति और रस पड़े वह रूपी। मिट्टी की पर्याय। वह उसके कारण से, इसके कारण से नहीं। दोनों भिन्न हैं। सबके कारण से सबमें। किसी के कारण से किसी में नहीं। कोई द्रव्य किसी के आधीन नहीं है। सभी पदार्थ स्वतन्त्र है। कहो, समझ में आया?

गाथा - १५०-१५१

अथ मोक्षपदार्थव्याख्यानम् ।

हेदुमभावे णियमा जायदि णाणिस्स आसवणिरोधो।
आसवभावेण विणा जायदि कम्मस्स दु णिरोधो।।१५०।।
कम्मसाभावेण य सव्वण्हू सव्वलोगदरिसी य।
पावदि इंदियरहिदं अव्वाबाहं सुहमणंतं।।१५१।।

हेत्वभावे नियमाज्जायते ज्ञानिनः आस्रवनिरोधः।
आस्रवभावेन विना जायते कर्मणस्तु निरोधः।।१५०।।
कर्मणामभावेन च सर्वज्ञः सर्वलोकदर्शी च।
प्राप्नोतीन्द्रियरहितमव्याबाधं सुखमनन्तम्।।१५१।।

द्रव्यकर्ममोक्षहेतुपरमसंवररूपेण भावमोक्षस्वरूपाख्यानमेतत् ।

आस्रवहेतुर्हि जीवस्य मोहरागद्वेषरूपो भावः । तदभावो भवति ज्ञानिनः । तदभावे भवत्यास्रवभावाभावः । आस्रवभावाभावे भवति कर्माभावः । कर्माभावेन भवति सार्वज्ञं सर्वदर्शित्वमव्याबाधमिन्द्रियव्यापारातीतमनन्तसुखत्वञ्चेति । स एष जीवन्मुक्तिनामा भावमोक्षः । कथमिति चेत् । भावः खल्वत्र विवक्षितः कर्मावृत्तचैतन्यस्य क्रमप्रवर्तमानज्ञप्ति-क्रियारूपः । स खलु संसारिणोऽनादिमोहनीयकर्मोदयानुवृत्तिवशादशुद्धो द्रव्यकर्मास्रवहेतुः । स तु ज्ञानिनो मोहरागद्वेषानुवृत्तिरूपेण प्रहीयते । ततोऽस्य आस्रवभावो निरुध्यते । ततो निरुद्धास्रवभावस्यास्य मोहक्षयेणात्यन्तनिर्विकारमनादिमुद्रितानन्तचैतन्यवीर्यस्य शुद्धज्ञप्तिक्रियारूपेणान्त-र्मुहूर्तमणिवाह्य युगपज्ज्ञानदर्शनावरणान्तरायक्षयेण कथञ्चित् कूटस्थज्ञानत्वमवाप्य ज्ञप्तिक्रियारूपे क्रमप्रवृत्त्यभावाद्भावकर्म विनश्यति । ततः कर्माभावे स हि भगवान्सर्वज्ञः सर्वदर्शी व्युपरतेन्द्रियव्यापाराव्याबाधानन्तसुखश्च नित्यमेवावतिष्ठते । इत्येष भावकर्ममोक्षप्रकारः द्रव्यकर्ममोक्षहेतुः परमसंवरप्रकारश्च ।। १५०-१५१)

अब मोक्षपदार्थ का व्याख्यान है।

मोहादि हेतु अभाव से ज्ञानी निरास्रव नियम से।
भावास्रवों के नाश से ही कर्म का आस्रव रुके।।१५०।।
कर्म आस्रवरोध से सर्वत्र समदर्शी बने।
इन्द्रिसुख से रहित अव्याबाध सुख को प्राप्त हों।।१५१।।

अन्वयार्थ :- [हेत्वभावे] (मोहरागद्वेषरूप) हेतु का अभाव होने से; [ज्ञानिनः] ज्ञानी को [नियमात्] नियम से [आस्त्रवनिरोध जायते] आस्त्रव का निरोध होता है [तु] और; [आस्त्रवभावेन विना] आस्त्रवभाव के अभाव में [कर्मणः निरोधः जायते] कर्म का निरोध होता है। [च] और [कर्मणाम् अभावेन] कर्मों का अभाव होने से वह [सर्वज्ञः सर्वलोकदर्शी च] सर्वज्ञ तथा सर्वलोकदर्शी होता हुआ [इन्द्रियरहितम्] इन्द्रिय रहित, [अव्याबाधम्] अव्याबाध, [अनन्तम् सुखम् प्राप्नोति] अनन्त सुख को प्राप्त करता है।

टीका :- यह, [१]द्रव्यकर्ममोक्ष के हेतुभूत परम-संवररूप से भावमोक्ष के स्वरूप का कथन है।

आस्त्रव का हेतु वास्तव में जीव का मोहरागद्वेषरूप भाव है। ज्ञानी को उसका अभाव होता है। उसका अभाव होने से आस्त्रवभाव का अभाव होता है। आस्त्रवभाव का अभाव होने से कर्म का अभाव होता है। कर्म का अभाव होने से सर्वज्ञता, सर्वदर्शिता और अव्याबाध, [२]इन्द्रियव्यापारातीत, अनन्त सुख होता है। यह [३]जीवन्मुक्ति नाम का भावमोक्ष है। 'किस प्रकार ?' ऐसा प्रश्न किया जाए तो निम्नानुसार स्पष्टीकरण है:—

यहाँ जो 'भाव' [४]विवक्षित है, वह कर्मावृत (कर्म से आवृत हुए) चैतन्य की क्रमानुसार प्रवर्तती ज्ञप्तिक्रियारूप है। वह (क्रमानुसार प्रवर्तती ज्ञप्तिक्रियारूप भाव) वास्तव में संसारी को अनादि काल से मोहनीयकर्म के उदय का अनुसरण करती हुई परिणति के कारण अशुद्ध है, द्रव्यकर्मास्त्रव का हेतु है। परन्तु वह (क्रमानुसार प्रवर्तती ज्ञप्तिक्रियारूप भाव) ज्ञानी को मोहरागद्वेषवाली परिणतिरूप से हानि को प्राप्त होता है, इसलिए उसे आस्त्रवभाव का निरोध होता है। इसलिए जिसे आस्त्रवभाव

---

१. द्रव्यकर्ममोक्ष=द्रव्यकर्म का सर्वथा छूट जाना; द्रव्यमोक्ष। (यहाँ भावमोक्ष का स्वरूप द्रव्यमोक्ष के निमित्तभूत परम संवररूप से दर्शाया है।)

२. इन्द्रियव्यापारातीत=इन्द्रियव्यापार रहित।

३. जीवन्मुक्ति = जीवित रहते हुए मुक्ति; देह होने पर भी मुक्ति।

४. विवक्षित = जिसका कथन करना है।

का निरोध हुआ है ऐसे उस ज्ञानी को मोह के क्षय द्वारा अत्यन्त निर्विकारपना होने से, जिसे अनादि काल से अनन्त चैतन्य और (अनन्त) वीर्य मूँद गया है ऐसा वह ज्ञानी (क्षीणमोह गुणस्थान में) शुद्ध ज्ञप्तिक्रियारूप से अन्तर्मुहूर्त व्यतीत करके युगपद ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय का क्षय होने से कथंचित् [१]कूटस्थ ज्ञान को प्राप्त करता है और इस प्रकार वे ज्ञप्तिक्रिया के रूप में क्रमप्रवृत्ति का अभाव होने से भावकर्म का विनाश होता है। इसलिए कर्म का अभाव होने पर वह वास्तव में भगवान सर्वज्ञ, सर्वदर्शी तथा इन्द्रियव्यापारातीत—अव्याबाध—अनन्त सुखवाला सदैव रहता है।

इस प्रकार यह (जो यहाँ कहा है), [२]भावकर्ममोक्ष का [३] प्रकार तथा द्रव्यकर्ममोक्ष का हेतुभूत परम संवर का प्रकार है॥१५०-१५१॥

गाथा - १५०-१५१ पर प्रवचन

अब मोक्षपदार्थ। अन्तिम पदार्थ रह गया। लो! आठ पदार्थ की बात हो गयी। अब मोक्ष की अन्तिम व्याख्या।

हेदुमभावे णियमा जायदि णाणिस्स आसवणिरोधो।
आसवभावेण विणा जायदि कम्मस्स दु णिरोधो।।१५०।।
कम्मसाभावेण य सव्वण्हू सव्वलोगदरिसी य।
पावदि इंदियरहिदं अव्वाबाहं सुहमणंतं।।१५१।।

---

१. कूटस्थ= सर्व काल एकरूप रहनेवाला; अचल। [ज्ञानावरणादि घातिकर्मों का नाश होने पर ज्ञान कहीं सर्वथा अपरिणामी नहीं हो जाता; परन्तु वह अन्य-अन्य ज्ञेयों को जाननेरूप परिवर्तित नहीं होता—सर्वदा तीनों काल के समस्त ज्ञेयों को जानता रहता है, इसलिए उसे कथंचित् कूटस्थ कहा है।]

२. भावकर्ममोक्ष= भावकर्म का सर्वथा छूट जाना; भावमोक्ष। ज्ञप्तिक्रिया में क्रमप्रवृत्ति का अभाव होना, वह भावमोक्ष है अथवा सर्वज्ञ-सर्वदर्शीपने की और अनन्तानन्दमयपने की प्रगटता, वह भावमोक्ष है।

३. प्रकार=स्वरूप; रीति।

मोहादि हेतु अभाव से ज्ञानी निरास्रव नियम से।
भावास्रवों के नाश से ही कर्म का आस्रव रुके।।१५०।।

कर्म आस्रवरोध से सर्वत्र समदर्शी बने।
इन्द्रिसुख से रहित अव्याबाध सुख को प्राप्त हों।।१५१।।

देखो! बन्धतत्त्व, आस्रवतत्त्व की व्याख्या कर दी। अब मोक्षतत्त्व और मोक्ष कैसे हो, उसका भी यहाँ स्वरूप साथ में कह दिया। इसकी इस ओर टीका है। टीका।

टीका :- यह, द्रव्यकर्ममोक्ष के हेतुभूत... क्या कहते हैं? दोनों साथ-साथ लेते हैं न? वह जड़कर्म जो छूट जाये, उसका नाम द्रव्यकर्ममोक्ष कहा जाता है। क्या कहा? आठ कर्म जो छूट जाये, वह द्रव्यकर्ममोक्ष कहलाते हैं। उनकी पर्याय का छूटने का काल और छूट गया, उसे द्रव्यमोक्ष कहा जाता है जड़। आठ या चार द्रव्यकर्म का, जिसका वहाँ छूटा, वह द्रव्यकर्ममोक्ष कहालाता है, निमित्त जड़। उसका निमित्त **परम-संवररूप से भावमोक्ष के स्वरूप का कथन है।**

वह छूटते हैं—द्रव्यमोक्ष, तब जीव स्वयं आत्मा के शुद्ध आनन्द की दृष्टि का अनुभव और शुद्धचैतन्य की रमणता, ऐसा जो परम-संवररूप निर्मलपर्याय, वह परिणमा, वह परम-संवररूप भावमोक्ष, वह आत्मा की पर्याय। परम-संवररूप से मोक्ष की पर्याय आत्मा की पर्याय। जड़ की पर्याय आठ कर्म का छूटना, वह जड़ की पर्याय, उसे द्रव्यमोक्ष कहा जाता है, यह भावमोक्ष कहलाता है। भावमोक्ष द्रव्यमोक्ष को निमित्त कहलाता है। द्रव्यमोक्ष भी भावमोक्ष को निमित्त (कहलाता है)। (दोनों) पृथक्-पृथक् किसी के कारण से कोई है नहीं।

फिर से, **यह...** ऐसा शब्द आचार्य ने प्रयोग किया है न? एतत् है न अन्तिम, '**भावमोक्षस्वरूपाख्यानमेतत्**' ऐसा संस्कृत में है अन्तिम शब्द। पहली लाईन है संस्कृत में। **यह...** अन्तिम संस्कृत शब्द है अन्तिम। इस गाथा में क्या कहना है, कहते हैं। कि द्रव्यकर्म जो छूटे, छूटना कहो या मोक्ष कहो। द्रव्यकर्म का जड़ का छूटना, उसका हेतु निमित्त कौन? कि परम-संवररूप से भावमोक्ष। आत्मा के बिल्कुल अयोग परिणाम होना अत्यन्त शुद्ध। भावस्वरूप शुद्ध संवर, वह द्रव्यकर्म में निमित्त। समझ में आया?

द्रव्य छूटने में निमित्त। द्रव्यकर्म उसके कारण से छूटा। भावसंवर पूर्ण शुद्ध सम्यग्दर्शन का पहला संवर हुआ। स्वभाव की दृष्टि करके विकार को पृथक् अनुभव करके वह सम्यग्दर्शन हुआ। उसके साथ सम्यक् स्वसंवेदन हुआ, उसके साथ स्वरूप के आचरणरूप चारित्र हुआ। वह आचरण होते... होते.... होते.... कम्पन था, वह कम्पन भी रुक गया। अयोग परिणमन हो गया।

वह अयोग परम-संवररूपी भावमोक्ष की दशा कहने में आती है। समझ में आया? वहाँ उज्जैन में कुछ एक-दो दिन में ऐसा नहीं चलता। अमुक-अमुक बातें चले। पण्डितजी! कोई दिन रहना और पहले दिन नहीं? एक व्याख्यान में तो वर्षा आयी। व्याख्यान बन्द रहा। इस बार। फिर और दो हुए। उसमें कहीं ऐसा लगावे तो वे वहाँ समझे क्या? समझना, सूक्ष्म बात होवे तो अमुक जहाँ हो वहाँ समझना। वहाँ कोई व्याख्यान में अमुक बात आवे। दृष्टान्त, तर्क कोई मुश्किल से वह। अब हजारों लोग हों वहाँ ऐसा द्रव्यमोक्ष और ऐसा भावमोक्ष। वह कहे क्या कहते हैं यह? समझ में आया?

यहाँ तो भगवान वीतराग परमात्मा का मूल नवतत्त्व का पृथक् स्वरूप कैसे है, उसकी व्याख्या चलती है। वहाँ तो साधारण कहा जाता है। आत्मा आत्मा के भान को सम्यग्दर्शन, ज्ञान को करे तो कर्मबन्धन नहीं होता। मिथ्यात्व और राग-द्वेष को करे तो कर्मबन्धन होता है। अब यह बन्धन और यह अमुक, ऐसा सब वह करे! समझ में आया? यहाँ तो पर्याय से पर्याय का स्वतन्त्र विवेक भिन्न बतलाना है। जड़ की और चैतन्य की एक-एक समय की पर्याय दोनों भिन्न-भिन्न हैं। किसी के कारण कोई है ही नहीं। ऐसा बतलाना है। द्रव्यमोक्ष, वह जड़ की पर्याय है। आठ कर्म का छूटना, वह जड़ की पर्याय है। स्वतन्त्र उसके छूटने के काल में छूटती है। आत्मा ने भावसंवर किया, इसलिए उसे छूटना पड़ा, ऐसा नहीं है। इसलिए उसे भावमोक्ष को तो हेतु कहा है। उपादान तो उसका ही पर्याय छूटने के काल में छूटी है। उसे निमित्त कौन? कि परम-संवर अयोगदशा का परिणमन।

पहला मिथ्यात्वरहित परिणमन हुआ, पश्चात् अव्रतरहित हुआ, पश्चात् प्रमादरहित हुआ, पश्चात् कषायरहित हुआ, इतन संवर बढ़ता गया। फिर योगरहित हुआ—

अयोग। परमसंवर हो गया। समझ में आया? यह तो अन्तिम मोक्ष की बात है न? संवर, निर्जरा की व्याख्या तो अन्दर आ गयी है। यह तो परम-संवररूप से, भाई! ऐसा कहा। ओहोहो! आचार्य भी टीका की एक-एक बात को, संवर की व्याख्या कर गये हैं, निर्जरा की व्याख्या कर गये हैं, आस्रव की (हो गयी है)। तब कहे, मोक्ष क्या? **परम-संवररूप से भावमोक्ष...** आस्रव के बिल्कुल अभावरूपी निरोध और पूर्ण संवर की परिणति की पर्याय अस्तित्वपने प्राप्त, उसे भावमोक्ष कहा जाता है। समझ में आया? **भावमोक्ष के स्वरूप का कथन है।** उसका क्या स्वरूप है, वह कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. ४९, गाथा-१५०-१५१
दिनांक - २५-१०-१९६४, आसोज कृष्ण ४, रविवार

पंचास्तिकाय, गाथा १५०-१५१। मोक्षपदार्थ की व्याख्या। मोक्षपदार्थ नौ पदार्थ में मोक्ष किसे कहना। द्रव्यमोक्ष किसे कहना और भावमोक्ष किसे कहना? यह दो पर्यायों का वर्णन है। समझ में आया?

जीव और अजीव दो द्रव्य है, उनकी सात पर्यायें हैं। पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष पर्याय है। पर्याय है। जो जड़ कर्म है, उसमें भी सात प्रकार की पर्याय जड़ की है। ऐसा कहकर यहाँ नौ पदार्थ वर्णन किये गये हैं। उसमें भी यह एक मोक्षपदार्थ का व्याख्यान है। मोक्ष एक आत्मा की निर्मल शुद्ध पर्याय है।

भावमोक्ष, यह आत्मा की शुद्ध (पर्याय है)। अनन्त ज्ञान यह तेरहवें गुणस्थान की बात है, जड़ कर्म का (अघाति का) नाश बाद में कहेंगे। भावमोक्ष, वह आत्मा की शुद्ध परिपूर्ण पर्याय है। समझ में आया? वह जड़कर्म के नाश का जड़ का भाव होता है, उसमें यह भावमोक्ष निमित्त कहने में आता है। समझ में आया? जड़ की पर्याय का मोक्ष आत्मा करता नहीं। जड़कर्म की पर्याय चार घातिकर्म का नाश आत्मा करता नहीं। क्योंकि वह तो जड़ की पर्याय है। रावजीभाई! जड़ की पर्याय आत्मा कर सके? व्यय कर सकता नहीं, उत्पाद कर सकता नहीं। वह तो जड़ की पर्याय है। परन्तु जड़ घातिकर्म का व्यय उसके कारण से जिसमें द्रव्यमोक्ष होता है, उसमें जीव का भावमोक्ष निमित्तरूप कहने में आता है। समझ में आया?

द्रव्यमोक्ष, वह जड़ की पर्याय कर्मरूप थी, उसका छूट जाना, इसका नाम द्रव्यमोक्ष और परमाणु की पर्याय है। उसे आत्मा नहीं करता। परन्तु उसे निमित्तभूत होता है। कौन? जीव का परम-संवररूप भावमोक्ष की पर्याय, वह टले और यह टालने के कारण में इसका निमित्त कहलाता है। टलता है, उसके कारण से। समझ में आया? किसी की पर्याय किसी के आधीन है ही नहीं। द्रव्य की पर्याय जीव के आधीन या जीव की पर्याय कर्म के पर्याय के आधीन, ऐसा नहीं है। ऐसा है नहीं। इसलिए यहाँ भावमोक्ष....

टीका :- यह, द्रव्यकर्ममोक्ष के हेतुभूत... द्रव्यकर्म अर्थात् जड़ चार घातिकर्म,... इसकी टीका है न? यह द्रव्यकर्म, यहाँ तो सिद्धान्त है। सिद्धान्त में तो एक-एक शब्द में भाव भरे होते हैं। ऐसी कोई यह वार्ता नहीं। समझ में आया? यह द्रव्यकर्म जो जड़ है, उसकी पर्याय का व्यय होता है। घातिकर्मरूप जो यह चार कर्म की पर्याय है, उसका व्यय हो, वह द्रव्यकर्ममोक्ष कहलाता है। उसके हेतुभूत उसका निमित्त। निमित्त अर्थात् कि जो हो, उसे निमित्त कहा जाता है। निमित्त से यहाँ होता तो उसे निमित्त नहीं कहा जाता। समझ में आया?

घातिकर्म चार, उसका उत्पादरूप पर्याय जो कर्मरूप जड़ में है, उस कर्म की पर्याय का उसे व्यय का काल है, नाश का। घातिपर्याय के उत्पाद का जो भाव, उसके नाश का काल है। अर्थात् कि अकर्मरूप परिणमना। कर्मरूप पर्याय घाति की है, वह अकर्मरूप पर्याय हो, उसका नाम घातिकर्म का मोक्ष हुआ अथवा द्रव्यमोक्ष हुआ, ऐसा कहने में आता है। उसे हेतुभूत उसका निमित्त, उसका कर्ता नहीं। जड़कर्म की पर्याय घाति का नाश व्यय का, उसके काल में जीव का परम-संवररूप शुद्ध पर्याय निमित्त कहने में आती है। समझ में आया इसमें?

अब यह **परम-संवररूप से भावमोक्ष के स्वरूप का कथन है।** वहाँ पहले भावमोक्ष के स्वरूप का कथन है। अब भावमोक्ष किसे कहना, यह बात जरा सूक्ष्म पड़ेगी, यह बाद में लेंगे। पहले साधारण बात लेते हैं। देखो! **आस्रव का हेतु...** नये कर्म रजकण आवे, उसका निमित्त। आस्रव अर्थात् नये रजकण आवें, उसके कारण से। वह आस्रव जड़, उसका हेतु अर्थात् निमित्त **वास्तव में जीव का मोहरागद्वेषरूप भाव है।** समझ में आया?

भगवान आत्मा अपने स्वरूप को स्वयं भूलकर, अपने स्वरूप को स्वयं भूलकर मिथ्यात्वभाव करे और राग-द्वेषभाव करे, वह जीव का भाव जीव की पर्याय में उसके अस्तित्व में है। वह आस्रव का हेतु था। नये रजकण घातिकर्म के आवें, उसका वह निमित्त हेतु था। वह आस्रव का हेतु नये रजकण तो उसके कारण से आने की योग्यता से आते थे। उसका हेतु—निमित्त जीव का मोह-राग-द्वेषरूपभाव। मोह शब्द से मिथ्यात्व और राग-द्वेष शब्द से चारित्र दोष। मिथ्यात्व और राग-द्वेष के विकारी अरूपी जीव की

पर्याय के दोषरूपीभाव वह जड़कर्म के आने के काल की उसकी योग्यता से आते थे, उसमें यह हेतु मोह और राग-द्वेष के परिणाम निमित्त थे। वह ज्ञानी को उनका अभाव होता है, यह बात पहले सिद्ध करते हैं।

ज्ञानी को अर्थात् आत्मा अखण्ड ज्ञान चैतन्य द्रव्यस्वभाव पूर्ण। ज्ञानी की दृष्टि संयोग से हट जाती है। पुण्य-पाप के विकल्प के अस्तित्व में से हट जाती है। वर्तमान अल्पज्ञ, अल्प दृष्टि, अल्प वीर्य के विकासवाला भाव, उससे दृष्टि हट जाती है। दृष्टि पूर्ण ज्ञायक पर जाती है। उस पूर्ण ज्ञायक पर दृष्टि जाने से सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति होती है। मिथ्यात्व के भाव का व्यय होता है। समझ में आया?

यह अभाव पहला मिथ्यात्व का कहा, दूसरा राग-द्वेष का। ज्ञानी को स्वरूप की दृष्टि के भाव से मिथ्यात्व का नाश हुआ-व्यय और सामने दर्शनमोह का नाश हुआ, उसके कारण से—कर्म के कारण से। यहाँ नाश किया, इसलिए वहाँ नाश होना पड़ा, ऐसा नहीं है। वह कर्म ही उसे उस समय दर्शनमोह के नाश के पाक का फल था, उसके कारण से द्रव्यदर्शनमोह परमाणु नाश हुए। यहाँ जीव ने मिथ्यात्व को नाश किया, अर्थात् मिथ्यात्व का नाश करूँ, ऐसा नहीं। परन्तु ज्ञायक चैतन्य परिपूर्ण स्वभाव है, उसकी दृष्टि करने से मिथ्यात्व का उत्पत्ति भाव नहीं होता। उसने मिथ्यात्व का नाश किया, ऐसा कहने में आता है। समझ में आया?

तो कहते हैं, कि आस्रव का हेतु घातिकर्म के रजकण जो आते हैं, उनका निमित्त जीव का... **वास्तव में...** ऐसा कहा है न? वास्तव में निमित्त **जीव का मोहरागद्वेषरूप भाव है।** आत्मा का आत्मा की पर्याय में उत्पन्न होनेवाला मिथ्यात्व और राग-द्वेष का अरूपी विकार उदयभाव है। वह जीव की पर्याय का भाव, उदयभाव, वह नये कर्म आने का हेतु था। नये कर्म आने का निमित्त था। वह ज्ञानी को इसका अभाव होता है। समझ में आया? सम्यग्ज्ञानी को पहले दर्शनशुद्धि होने पर चैतन्य स्वसंवेदनज्ञान जानने पर आत्मा पर से, विकल्प से, राग से निराला, ऐसा परम आत्म के परमस्वभाव के माहात्म्य की महिमा में दृष्टि जाने से स्वभाव में दृष्टि स्थिर होती है, तब उसे मिथ्यात्व की पर्याय का व्यय होता है अर्थात् कि उत्पाद नहीं होता। उसके प्रमाण में दर्शनमोह का नाश उसे दर्शनमोह के कारण से होता है। ऐसा निमित्त-निमित्त सम्बन्ध है।

यहाँ दूसरी बात ज्ञानी को राग-द्वेष का नाश होता है। अर्थात् कि जो स्वरूप चैतन्यमूर्ति ज्ञायक स्वद्रव्य, ऐसी दृष्टि हुई थी, उसमें विशेष लीन होने पर, राग-द्वेष का भाव उत्पन्न नहीं होता, उसे राग-द्वेष का नाश होता है, ऐसा कहा जाता है। समझ में आया? अर्थात् **ज्ञानी को उसका...** उसका अर्थात् मोह-राग-द्वेषरूप भाव का **अभाव होता है।** किस प्रकार अभाव होता है, वह यह विधि कही। समझ में आया?

उसका अभाव होने से... आत्मा में सम्यग्दर्शन और वीतरागपरिणति होने पर मोह और राग-द्वेष का अभाव होने से आस्रव के नये कर्म का आना रुक जाता है। नये कर्म का आना रुक जाने से कर्म का अभाव होता है। जीव में कर्म रहता नहीं। कर्म का अभाव होने से, कर्म का अभाव होने से-यह निमित्त से बात की है, हों! सर्वज्ञपना, सर्वदर्शीपना आत्मा में आत्मा की पर्याय में आत्मा के पुरुषार्थ से होता है। कर्म का अभाव होने से, यह तो निमित्त लिया, भाई! अब वहाँ से उठाते थे, देखो! कर्म का अभाव हुआ इसलिए। अब यह तो यहाँ निमित्त-निमित्त की बात करते हैं। उसकी शैली है। है न समयसार की गाथा। है न इसमें लिखा है। समयसार गाथा १९१। समझ में आया? संवर की गाथा में अन्त में आता है। दो गाथाएँ आती हैं।

परन्तु यहाँ तो निमित्त-निमित्त सम्बन्ध बताते हैं। वे कहते हैं कि कर्म का अभाव हो तो केवलज्ञान होता है, ऐसा तुम क्यों नहीं लेते। परन्तु केवलज्ञान हो तो कर्म का अभाव होता है। यह ऐसा ही है। परन्तु वासतव में तो ऐसा भी नहीं। केवलज्ञान आत्मा, आत्मा अपने स्वभाव के अवलम्बन से उत्पन्न करे, तब घातिकर्म का नाश उसके होने के काल में उसका कार्यकाल है, इसलिए नाश होता है। इसने केवलज्ञान किया, इसलिए घातिकर्म का नाश होता है, ऐसा नहीं है। ऐसा होवे तो केवलज्ञान कर्ता और घातिकर्म का नाश वह कार्य होता है। ऐसा नहीं हो सकता। रावजीभाई! समझ में आया? पण्डितजी! सूक्ष्म बात है। ऐसा का ऐसा लोग पढ़ जाते हैं और वापस यह किये और यह किया। प्रभु! अरे! यह तो महासिद्धान्त है। वस्तु के वास्तविक स्वरूप को सिद्ध करने के लिये यह सिद्धान्त है।

आत्मा अपने पुरुषार्थ से, कहा न पहले? कि आस्रव का अभाव स्वयं किया।

यहाँ कहा न? ज्ञानी को उसका अभाव होता है, वह स्वयं के कारण से हुआ पहले। वह राग-द्वेष और मोह। **उसका अभाव होने से आस्रवभाव का अभाव होता है।** नहीं आया। नहीं आया अर्थात्? आनेवाले थे और नहीं आये, ऐसा नहीं है। वह अभाव होने पर आस्रव का अभाव इसलिए तब उसे रजकण को आने के योग्य थे नहीं। आहाहा! समझ में आया? पण्डितजी! यह शब्द-शब्द में अन्तर है।

पहले तो ऐसा कहा कि **आस्रव का हेतु वास्तव में जीव का मोहरागद्वेषरूप भाव है। ज्ञानी को उसका अभाव होता है।** पहले यहाँ से लिया है। तब **उसका अभाव होने से...** अब यह निमित्त कहा। **आस्रवभाव का अभाव होता है।** अर्थात् कि रजकणों का आना होता नहीं। आना होता नहीं अर्थात् आने के योग्य थे ही नहीं। रजकण आनेवाले थे और इसने राग-द्वेष का अभाव किया, इसलिए उन्हें आने से रोक दिया, ऐसा नहीं है। रावजीभाई! बहुत समझने की (बात है)। यहाँ पूरी पर्याय की स्वतन्त्रता बतलाते हैं। एक दूसरे का निमित्त-नैमित्तिकपना बतलाते हुए, कर्ता-कार्यपना नहीं। निमित्त-नैमित्तिक बतलाते हुए कर्ता-कार्य नहीं। नहीं तो आत्मा ने मोह, राग-द्वेष का नाश किया, इसलिए कर्म आने से रुक गये। आते थे, रुक गये। तो यहाँ राग-द्वेष-मोह का अभाव वह कर्ता हुआ और कर्म का आना अटकाना, वह उसका कार्य हुआ। ऐसा है नहीं। ओहोहो!

यहाँ तो कहते हैं। आत्मा ने नये आवरण का हेतु राग-द्वेष और मोह था, वह निमित्त था। वह आते थे उसके कारण से। यहाँ आत्मा ने स्वयं ज्ञानस्वभाव का भान करके सम्यग्दर्शन प्रगट किया। स्वरूप में स्थिरता करके चारित्र की वीतरागता प्रगट की। ऐसा मोह-राग-द्वेष का अभाव होने से आस्रव अर्थात् नये रजकण आने के नहीं थे, उनका अभाव हुआ, ऐसा कहने में आता है। समझ में आया? यह आस्रवभाव का अभाव होने पर उन आने का अभाव होने से अब कर्म नहीं हुए, ऐसा। वे कर्म अब अन्दर नहीं हैं। वह रजकण आये नहीं, उसके कारण से अर्थात् कर्मरूप रहे नहीं।

वह **कर्म का अभाव होता है।** कर्म का अभाव होने से अर्थात् उसमें कर्मरूपी पर्याय रही नहीं, तब आत्मा ने स्वयं जो मोह-राग-द्वेष का नाश किया है, ऐसी दशा में उसे सर्वज्ञपना, सर्वदर्शीपना प्रगट होता है। समझ में आया? भगवान आत्मा अपने

स्वभाव की अन्तर्दृष्टि चिदानन्द की दृष्टि करने से, अनुभव होने पर सम्यग्दर्शन होता है, दर्शनमोह उसके कारण से टल जाता है। उसके कारण से, इसके कारण से नहीं। यह तो निमित्त है। निमित्त है, इसलिए इसके कारण से टला तो यह कर्ता और वह कार्य, ऐसा नहीं है। उसके कारण से टलने की योग्यता से टला है। राग-द्वेष की उत्पत्ति भाव जीव ने वीतराग अन्तरस्वभाव में स्थिर होने से राग-द्वेष उत्पन्न नहीं हुए, (इसलिए) उसका नाश किया, ऐसा कहा जाता है।

इसलिए चारित्रमोह के रजकण नाश किये, आनेवाले थे वे नहीं आये - ऐसा कहने में आता है। उस क्षण में कर्मरूपी दशा रही नहीं। आस्रव न आवे, इसलिए कर्मरूपी दशा रही नहीं। कर्म का अभाव होने पर आत्मा ने अपने स्वभाव-सन्मुख की उग्र एकाग्रता से सर्वज्ञ और सर्वदर्शीपना प्रगट किया है। समझ में आया? **सर्वज्ञपना...** भगवान आत्मा के चैतन्यपद में जो सर्वज्ञशक्ति थी, आत्मा के अन्दर ध्रुवपद में सर्वज्ञशक्ति थी। ध्रुव में सर्वज्ञशक्ति थी। उसे एकाग्रता से व्यक्तरूप से सर्वज्ञपर्याय प्रगट हुई। समझ में आया?

इसी प्रकार **सर्वदर्शीपना,....** भगवान आत्मा में सर्वदर्शीशक्ति ध्रुवरूप से, गुणरूप से थी तथा मोह और राग-द्वेष का नाश होने पर, उसमें एकाग्र होने पर वह सर्वदर्शीपना शक्ति में था, वह व्यक्तरूप से प्रगट हुआ है। समझ में आया? पण्डितजी! यह पंचास्तिकाय, समयसार सब शास्त्र ऐसे हैं, बहुत ही गूढ़ हैं। ऐसा अपनी कल्पना से पढ़ जाये और अर्थ करे, इसका क्या ऐसा समझे, यह बात बहुत गूढ़ है। रावजीभाई! लगता है या नहीं? यह तुम्हारे जैसों को तो बहुत ही ध्यान रखकर यह सब समझना पड़ेगा। समझ में आया इसमें? बालकों को फिर इस प्रकार का तुम सीखे हो, वैसा बालकों को सिखलाओ। क्यों पण्डितजी! वहाँ व्यवस्थापक है न? कारंजा में व्यवस्थापक है। कहते हैं, अपनी पर्याय का व्यवस्थापक जीव है। पर का व्यवस्थापक कहना, वह निमित्त का कथन है। वह तो यहाँ चलता है। आहाहा!

कहते हैं, भगवान आत्मा ने अपने महान चैतन्यप्रभु प्रभुत्वशक्ति जो आत्मा में थी, सर्वज्ञ, सर्वदर्शीत्वशक्ति थी, इन्द्रियातीत अतीन्द्रियपने का स्वभाव आत्मा में था। उसके अवलम्बन से उसमें एकाग्र होकर उसने सर्वज्ञपना, सर्वदर्शीपना पर्याय में प्रगट

किया। यह सर्वज्ञ, सर्वदर्शी पर्याय है। गुण नहीं। और **अव्याबाध,...** यह भी पर्याय है। पर्याय में कोई विघ्न नहीं रहा, बाधा-पीड़ा नहीं रही, ऐसी पर्याय प्रगट की। भगवान आत्मा ने अपने स्वतन्त्र आश्रय से स्वभाव के आश्रय से यह पर्याय प्रगट की।

इन्द्रियव्यापारातीत,... पहले इन्द्रिय के लक्ष्य से व्यापार था, वह छूट गया। यह इन्द्रियव्यापारातीत-इन्द्रियव्यापार रहित अर्थात् कि अतीन्द्रियव्यापार सहित अतीन्द्रियपर्याय का परिणमन हुआ। इन्द्रिय के निमित्त में अथवा भाव खण्ड-खण्ड इन्द्रिय थी। उसके लक्ष्य से व्यापार था, वह ज्ञायक के पूर्ण आश्रय से इन्द्रियव्यापार के भावइन्द्रिय के खण्ड-खण्ड का व्यापार छूट गया। **अनन्त सुख होता है।** ओहोहो!

भगवान आत्मा में एक सुख नाम की शक्ति है। गुण है, स्वभाव है। वह व्यक्तरूप से अनन्त सुख प्रगट होता है, उसे भावमोक्ष कहा जाता है। उसे जीवन्मुक्तदशा कहा जाता है। देहादि का आयुष्य होने पर भी जीवन्मुक्त हो गया। वह जीवन जीव का। कहो, लोग कहते हैं न भगवान का आदेश है।—जीवो और जीने दो। भगवान ने ऐसा कभी नहीं कहा। दूसरे को कौन जिलावे? ऐसा भगवान कहे? ऐ रावजीभाई! दूसरी की आयुष्य की पर्याय से जीवे, उसे जीने दो। परन्तु जीने दो या न (जीने) दो, इसमें दूसरे के अधिकार की बात कहाँ है? यह अंग्रेजों का कथन लेकर यहाँ पड़े हैं।

यहाँ तो जीवन्मुक्तदशा से जीव और नहीं तो जीवन्मुक्त मेरा स्वभाव है, ऐसी प्रतीति (वह) जीव। ऐसी प्रतीति से जीव। मैं एक जीवन्मुक्त परमात्मा शुद्ध परमानन्द-स्वरूप हूँ। मुझमें अल्पज्ञ और रागादि तो पर्यायदृष्टि से वस्तु में है नहीं। ऐसी वस्तु की दृष्टि करके सम्यग्दर्शन करना, वह जीवन्मुक्त होने की प्रतीति से जी रहा है। समझ में आया? और यह जब यह जीवन्मुक्तदशा हुई, तब तो खास उसका जो जीवन था, वह प्रगट हुआ। समझ में आया?

यह जीवन्मुक्ति नाम का भावमोक्ष है। वह यह जीवन्मुक्ति नाम का, पर्याय में जीवन्मुक्ति नाम का उसका जीवन्मुक्तदशा आयुष्य होने पर भी वह अन्दर मुक्त हो गया है। भाव के विकारभाव से छूट गया है और भावमोक्षदशा प्रगट हो गयी है। उसे यहाँ जीवन्मुक्ति नाम का भावमोक्ष, ऐसा कहा। नीचे (फुटनोट में) है न? **जीवन्मुक्ति=जीवित रहते हुए मुक्ति; देह होने पर भी मुक्ति।** लो! समझ में आया?

यह तो निमित्त से कथन है। ख्याल में है। भावमुक्ति उसे फिर देह होने पर भी, भाई! भावमुक्ति कहनी है न और यहाँ देहसहित मुक्ति! निमित्त की अपेक्षा से वर्णन है। बाकी जीवन का जीव वह राग-द्वेष के क्रम-क्रम से काम करना रुक गया, वह जीव का जीवन भावमुक्ति में जीता है। पूर्ण स्वभाव की एकता हो गयी। यह कहेंगे अभी।

यह जीवन्मुक्ति नाम का भावमोक्ष है। 'किस प्रकार?' ऐसा प्रश्न किया जाए तो... अब आचार्यदेव कैसी शैली लेते हैं? कि जिसे यह समझने की जिज्ञासा हो, उसे हम कहते हैं। बेगारीरूप से बात सुने, उसे हमारा कथन नहीं है। प्रश्न उठाया है। आचार्य महाराज अमृतचन्द्राचार्य। यह जीवन्मुक्ति नाम का भावमोक्ष है, है, पर्याय है। किस प्रकार? ऐसा प्रश्न किया जाये। ऐसी तुझे यदि जिज्ञासा हो, ऐसे शिष्य को कहते हैं। तो हम जिज्ञासावन्त को, यह बात समझायी जाती है।

मुमुक्षु : आत्मा की बात बेगाररूप से सुनता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, बहुत अधिक बेगाररूप से क्या? चलो गाँव में हैं तो सुनें। कहा नहीं था वहाँ? अभी बहुत दिन पहले नहीं हुआ था? यहाँ सज्झाय होती थी, वहाँ नोखुं (पृथक्) करते थे। पचास-इक्यावन निकले। क्या इसकी दरकार? समझ में आया? यहाँ तो तुमको हो, वैसा तुरन्त जबाव आया। कितने ही ऐसा कहे, चलो अपने टाईम है तो टाईमसर सुनना। घण्टा पूरा करना है। घर में बैठै क्या है? चलो वहाँ जायें। वे सब बेगार से सुननेवालों की यहाँ बात नहीं है। जिसे उत्साह से (सुनना हो) महाराज!

यह देखो! अमृतचन्द्राचार्य ने प्रश्न (कैसा रखा है?) जीवन्मुक्त नाम का भावमोक्ष वह क्या? ऐसी जिसे जानने की इच्छा हो। **ऐसा प्रश्न किया जाए तो निम्नानुसार स्पष्टीकरण है:—** संस्कृत में है। संस्कृत टीका में अन्दर है। समझ में आया? '**कथमिति चेत्**' ऐसा शब्द है। '**कथमिति चेत्**' क्या है यह प्रभु! यह जीवन्मुक्त नाम का भावमोक्ष क्या है? क्या है? यह कैसे है? जीवन्मुक्ति नाम का भावमोमक्ष यह क्या है? यह पर्याय का क्या स्वरूप है? ऐसी यदि तुझे जिज्ञासा हो, उसे उत्तर कहा जाता है। है न? रावजीभाई! संस्कृत में है। '**कथमिति चेत्**' उसका यह अर्थ है।

यह तो अमृतचन्द्राचार्य, आहाहा! केवली का पेट (अभिप्राय) खोलकर रखा

है। समझ में आया? कुन्दकुन्दाचार्य की गाथा में जो गर्भ भरा है, गर्भ। सत्व। उसे टीका द्वारा, तर्क द्वारा इसमें स्पष्टीकरण किया है। इसमें ऐसा कहते हैं। साधारण मोक्ष सुनने आया हो, ऐसा नहीं। ऐ प्रभु! जीवन्मुक्त भावमोक्ष पर्याय अर्थात् क्या? यह भावमुक्ति ऐसा जीवन्मुक्त भावमुक्ति अर्थात् क्या? भाव से मुक्त हो, यह क्या? यह और भाव क्या और मुक्त होना भाव में? यह क्या? समझ में आया?

तो निम्नानुसार स्पष्टीकरण है :- यहाँ जो 'भाव' विवक्षित है... भावमोक्ष कहा न? भावमोक्ष अब जो भाव कहा, उसकी पहले व्याख्या करते हैं। यहाँ जो भावमोक्ष जीवन्मुक्ति नाम का भावमोक्ष है, यहाँ जो भाव विवक्षित, भाव हो, भावमोक्ष, उसका जो भाव। वह विवक्षित अर्थात् कहना चाहते हैं वह। देखो! भाव छूटता है किससे? कि जिसे भावमोक्ष कहते हैं। **कर्मावृत (कर्म से आवृत हुए) चैतन्य की क्रमानुसार प्रवर्तती ज्ञप्तिक्रियारूप भाव है।** देखो! यह भाव मुक्तपने को पाता है। कैसे भाव से? ज्ञप्तिक्रिया के भाव से छूटता है। ऐसी ज्ञप्तिक्रिया के अशुद्धभाव जो यह भाव है, ज्ञप्तिक्रियारूपभाव, उस भाव से छूटकर अकेला निर्मलभाव होता है, उसे भावमोक्ष कहा जाता है।

फिर से, **यहाँ जो 'भाव' विवक्षित है...** कहना चाहते हैं, वह तो कर्म से आवृत्त निमित्त, चैतन्य की क्रम से प्रवर्तती ज्ञप्तिक्रिया, वह तो साधारण भाव की व्याख्या की। वह भाव क्रम से प्रवर्तती ज्ञप्ति-जाननेरूप क्रिया। क्रम-क्रम से प्रवर्तती, ऐसा जो भाव वह वास्तव में संसी को अशुद्ध है, ऐसा सिद्ध करना है। ऐसा भाव पहला। और उस अशुद्धपने से छूटता है, वैसा भाव उसे भावमोक्ष कहते हैं। समझ में आया? देखो! विशिष्टता कैसी है! कर्म से छूटता है, ऐसा नहीं लिया। भाई! यहाँ तो अभी यह भाव अनादि कर्म के निमित्त के सम्बन्ध में अपना ज्ञप्तिक्रियारूप जानने की क्रम... क्रम... क्रम... क्रम... क्रम... क्रम... क्रम... क्रम से जानने की क्रिया का अशुद्धभाव, वह छूटता है, तब भावमोक्ष होता है। समझ में आया?

छूटता है अर्थात? जीव अपने एकाग्र होता है, तब अशुद्ध जो ज्ञप्तिक्रिया का क्रम-क्रम से होता भाव टल जाता है। ऐसे स्वभाव-सन्मुख की एकाग्रता होने पर क्रम-क्रम से जो ज्ञान में जानने का अशुद्धभाव है, वह स्वभाव-सन्मुख एकाग्र होने पर वह

भाव उत्पन्न नहीं होता। वह नहीं होता, उसका नाश करके यह भाव निर्मलपने को प्राप्त होता है, इसका नाम जीवन्मुक्ति नाम का भावमोक्ष कहा जाता है। समझ में आया?

चैतन्य की क्रमानुसार प्रवर्तती ज्ञप्तिक्रियारूप है। वह क्रम से प्रवर्तती जानने की क्रिया क्रम से प्रवर्तती है और वही दोष है। **वास्तव में संसारी को अनादि काल से...** हों! **मोहनीयकर्म के उदय का अनुसरण करती हुई परिणति...** अनादि काल से मोहनीयकर्म का उदय जड़, परन्तु उसे अनुसरती परिणति करनेवाला जीव। वहाँ भी निमित्त-निमित्त सम्बन्ध कहा। करानेवाला, ऐसा नहीं। मोहनीयकर्म का उदय वह इसे ज्ञप्तिक्रिया क्रम से करावे, ऐसा नहीं। समझ में आया? जानने की क्रिया क्रम-क्रम से होती है, वह अशुद्ध है, दोष है। वह कर्म के उदय के कारण कार्य है, ऐसा नहीं है। परन्तु अनादिकाल से मोहनीयकर्म के उदय को, बस वहाँ इतनी बात। अनुसरती परिणति, वह जीव का स्वतन्त्रभाव। निमित्त को अनुसरता क्रम-क्रम से प्रवर्तती क्रिया का ज्ञप्ति का भाव, वह जीव का किया हुआ, जीव की पर्याय में, जीव के दोष से हुआ। कर्म से नहीं। समझ में आया? पुस्तक-पुस्तक रखी है या नहीं? प्रेमचन्दजी! पुस्तक है? रखो तो खबर पड़े, नहीं तो नींद आये, ऐसा है इसमें। एक-एक शब्द में जहाँ है बात। भले गुजराती है परन्तु उसमें न समझ में आये, ऐसा निकाल डालना। धीरे-धीरे गुजराती के शब्दों में... पहले ऐसा हो कि अपने को गुजराती समझ में नहीं आती। हो गया, अटके वहाँ। फिर पुस्तक न हो सामने तो किस शब्द का क्या अर्थ है, इसलिए फिर भाव बदले बिना रहे नहीं। समझ में आया?

वास्तव में संसारी को अनादि काल से मोहनीयकर्म के उदय... निमित्त को **अनुसरण करती हुई परिणति...** की हुई जीव ने अशुद्ध है। जीव की पर्याय में वह अशुद्ध जीव ने की हुई है। समझ में आया? यहाँ तो समय-समय की पर्याय स्वतन्त्र सिद्ध करते हैं। मोहकर्म का उदय-पाक जड़ है, उसकी पर्याय में जड़ में। उसके कारण आत्मा में अशुद्धज्ञप्ति की क्रिया का भाव, ऐसा नहीं। परन्तु स्वभाव को अनुसरण नहीं करता और निमित्त को अनुसरकर ज्ञप्ति-जानने की क्रिया क्रम-क्रम से करने का भाव, वह जीव के अस्तित्व में अशुद्धभाव है। ओहोहो! समझ में आया?

यहाँ जो भाव कहना चाहते हैं, वह भाव कर्मावृत, फिर अन्दर उस भाव की मुक्ति कहनी है न? चैतन्य की क्रम से प्रवर्तती ज्ञप्तिक्रिया, क्रम-क्रम से होती जानने की क्रिया —क्रम-क्रम से होती जानने की क्रिया। स्वभाव तो अक्रम से जानने का स्वभाव होना चाहिए। उसके बदले क्रम-क्रम से जानने की क्रिया, वह संसारी को अनादिकाल से निगोद से लेकर। अनादि क्यों लिया? नित्यनिगोद से लेकर, एकेन्द्रिय से लेकर। कर्म के कारण नहीं, ऐसा यहाँ कहा। कर्म के निमित्त की पर्याय को जीव अनुसरता हुआ काम करे, इसलिए उसे दोष होता है। यह इसमें इकट्ठी निगोद की बात भी है। कोई कहे कि निगोद के जीव को कर्म का जोर है, इसलिए उसकी पर्याय में मलिनता है और निगोद में रहना पड़ता है। बिल्कुल झूठ बात! समझ में आया?

आचार्यदेव पुकार करते हैं हैं कि संसारी जीव एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय, वह अनादि काल से मोहनीयकर्म का उदय पाक निमित्त जड़ की पर्याय को अनुसरता हुआ पर्याय करता है निगोद से लेकर जीव। स्वभाव को अनुसरकर नहीं करता। निमित्त को अनुसरकर करनेवालो उसका अपना दोष है। कर्म का दोष जरा भी नहीं है। निगोद में रहा नित्यनिगोद में कर्म का जोर है और मनवाला हो, तब कर्म घटें, तब आत्मा का जोर होगा, ऐसा नहीं है।

ऐसा कहते हैं न कि मन आया तो आत्मा का पुरुषार्थ काम करे। मनरहित प्राणी को तो कर्म का जोर है तो बेचारे चले जाते हैं। ऐसा है नहीं। अनादि काल के निगोद से लेकर जीव अपने स्वभाव को अस्तिरूप से अनुसरण नहीं करता, कर्म के लक्ष्य को अनुसरती अपरिणति क्रम-क्रम से जानने की क्रिया करता हुआ जीव स्वयं के कारण से अशुद्ध है। समझ में आया?

निगोद में हो या मिथ्यादृष्टि द्रव्यलिंगी साधु नौवें ग्रैवेयक में गया हो। समझ में आया? नौवें ग्रैवेयक गया न? 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' तो भी कोई अपराध कर्म का नहीं है। कर्म का अपराध उसमें नहीं है। अपराध उसकी अपनी पर्याय का निज अपराध है। रावजीभाई! आहाहा! अरे! नौ पदार्थ जैसे है, वैसे भी जिसके जानने में स्वतन्त्ररूप से न आवे, उसे

पूरा अव्यक्त चैतन्यद्रव्य जो प्रगट नहीं, उसकी स्वतन्त्रता की प्रतीति कहाँ से होगी? समझ में आया?

नौ तत्त्व, नौ पदार्थ। नौ पदार्थ की व्याख्या चलती है। भिन्न-भिन्न स्वतन्त्र... स्वतन्त्र... स्वतन्त्र। यह जीव कर्म की पर्याय का उदय स्वतन्त्र कर्म का। जीव स्वयं अपने को भूलकर क्रम-क्रम से प्रवर्तती ज्ञप्ति-जानने की क्रिया करे, वह अशुद्ध, उसे करने को जीव स्वतन्त्र है। समझ में आया? हेमभाई! वह पूछता है न? '**कथमिति चेत्**' प्रभु! तुम-आप किस भाव को मोक्ष कहते हो? कौन सा भाव और क्या छूटे और क्या कहते हो? जीवन्मुक्त नाम का भावमोक्ष। प्रभु! यह और भावमोक्ष अर्थात् क्या? कौन सा भाव मुक्तिपने को प्राप्त हुआ? तब कहते हैं कि ऐसा पहला भाव जो क्रम से प्रवर्तता है, उसे स्वभाव के अवलम्बन से अक्रम से प्रवर्तता करता है, वह क्रम से प्रवर्तता भाव छूट जाता है। बल्लभदासभाई! लो मौके से यह सूक्ष्म आया। रविवार आवे तब ऐसा आवे। लो! समझ में आया?

भगवान परमात्मा के ज्ञान में आया। ऐसी वाणी आयी। ऐसा सन्तों ने ज्ञानसहित चारित्र में अनुभव किया। और वह जब अनुभव करके जो बात थी, उसका एक विकल्प उपकार के लिये आया। उस विकल्प के ज्ञाता हैं। उस वाणी के कारण से यह शास्त्र की वाणी की रचना हो गयी, जड़ की पर्याय से (हो गयी)। समझ में आया? उसका वाच्य क्या कहते हैं? यह तो वाचक शब्द है। शब्द है। उसका वाच्य-भाव क्या?

शिष्य ने पूछा प्रभु! जीवन्मुक्त नाम का भावमोक्ष, वह भाव क्या और उसकी मुक्ति क्या? तो कहते हैं, प्रभु! यह आत्मा अनादि काल से जो कर्म के निमित्त को अनुसरती जानने की क्रिया में खण्ड-खण्ड करता था, क्रम-क्रम से जानता था, अशुद्धपना जो जानने की क्रिया में खड़ा किया है, उसे हम मलिन भाव कहते हैं। समझ में आया? डॉक्टर! बहुत सूक्ष्म है यह, हों! भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा सर्वज्ञ देवाधिदेव तीर्थंकर जिन्हें एक समय में तीन काल, तीन लोक प्रत्यक्ष ज्ञात हुए। उन भगवान के मुख से वाणी निकली वाणी के कारण से, हों! भगवान वाणी के कर्ता नहीं। दिव्यध्वनि तो जड़ की पर्याय है। जड़ की पर्याय को चैतन्य कैसे करे? निमित्त कहने में आता है, परन्तु

निमित्त है तो वाणी निकली तो निमित्त रहा नहीं। तो कर्ता हो गया। कर्ता है नहीं। वाणी के कारण वाणी की पर्याय में स्व-परप्रकाशक करने की शक्ति है। भाई! आता है न? धवल में आता है। धवल में एक शब्द आता है। यह वाणी वाणी में स्व-परप्रकाशक करने की ताकत है। स्व-परप्रकाशक करने की ताकत है। नाम अपने को याद नहीं। इस ओर के पृष्ठ पर है। वाणी में स्व-परप्रकाशक करने की (कहने की) ताकत है।

भाई ने ऐसा कहा-धर्मदासक्षुल्लक ने, कि वाणी में स्व-पर वार्ता कहने की ताकत है। अमृतचन्द्राचार्य ने कहा कि शब्दों में स्व-पर वार्ता कहने की ताकत है। इन शब्दों में स्व-पर को प्रकाशित करने की ताकत है। शब्दों की ताकत है, हों! आया न इसमें? अपने पहले बताया था न? हाँ, अन्तिम श्लोक में बताया था। अन्तिम श्लोक में आया था। देखो! उसमें है। अन्तिम है। २६४ पृष्ठ है न? अन्त में।

अपनी शक्ति से जिन्होंने वस्तु का तत्त्व (यथार्थ स्वरूप) भलीभाँति कहा है, ऐसे शब्दों ने... शब्दों ने। अन्तिम-अन्तिम पृष्ठ पर। हिन्दी में २६४ पृष्ठ है। यह गुजराती। २६४ है। अन्तिम दो लाईन। अमृतचन्द्राचार्य महाराज स्वयं कहते हैं। **अपनी शक्ति से...** है? **अपनी शक्ति से जिन्होंने वस्तु का तत्त्व (-यथार्थ स्वरूप) भलीभाँति कहा है, ऐसे शब्दों ने,...** शब्दों ने कहा है, मैंने नहीं। मुझमें शब्द करने की ताकत नहीं है। **यह समय की व्याख्या (-अर्थसमय का व्याख्यान अथवा पंचास्तिकायसंग्रह शास्त्र की टीका) की है।** हें!

अमृतचन्द्रदेव ने कहा कि आत्मा कभी वाणी का कर्ता नहीं हो सकता। स्वरूपगुप्त (-अमूर्तिक ज्ञानमात्र स्वरूप में गुप्त) **अमृतचन्द्रसूरि का (उसमें) किंचित् भी कर्तव्य नहीं है।** भाषा टीका बनने में आत्मा का कुछ भी कर्तव्य नहीं है। आत्मा किसकी भाषा की पर्याय बनावे। आहाहा! वे चिल्लाहट मचाते हैं सब। अरे! एकान्त हो जायेगा, एकान्त हो जायेगा। अरे! सुन न अब! आत्मा विकार कर्म की पर्याय करे नहीं और कर्म की करे—ऐसा माने, वह मिथ्यादृष्टि है।

एक ओर ऐसा मानना कि अजीव, अजीवरूप से और जीव, जीवरूप से। तो अजीव की पर्याय जीव करे तो अजीव, अजीवरूप कहाँ रहा? जीव से अजीव भिन्न।

तो परमाणु भी भिन्न और उसकी पर्याय भी भिन्न। तो जीव, अजीव की पर्याय करे कहाँ से? यह तो भाषा जड़ की पर्याय है। रावजीभाई! न्याय से तो इसे स्वीकार करना पड़ेगा या नहीं? लॉजिक 'नी' धातु है न? न्याय में 'नी' ले लाना, ले जाना। जैसी वस्तु की मर्यादा है, उस ओर ज्ञान को ले जाना, उसका नाम न्याय कहते हैं। समझ में आया? आचार्य कहते हैं कि हमको गाली नहीं देना। हमने टीका बनायी, हमको कर्ता न मानो। जहाँ-जहाँ कर्ता मैंने किया... मैंने किया... मैंने किया। भेड़ की भाँति मैं... मैं... किया करता है। अभिमान... अभिमान! भाई! बापू! भाषा छूटती है, वह जड़ की पर्याय से निकलती है। आत्मा से बिल्कुल नहीं। आहाहा!

कहते हैं, आत्मा का भावमोक्ष किसे कहना? यह जो भाव अनादि से कर्म के निमित्त को अनुसरती ज्ञप्तिक्रिया क्रम-क्रम से पर्याय में होती है, उसे स्वभाव के अवलम्बन से उस पर्याय को टालकर जो भाव रह गया, उसे भावमुक्ति कहने में आता है। समझ में आया? इस भाव को, बल्लभदासभाई! यह जैन में जन्मे हों तो भी यह भाव और मुक्ति... जयन्तीभाई! एकेन्द्रिय की दया पालो। यह करो, अमुक करो। कौन करे? सुन न! परद्रव्य की पर्याय को कोई कर सके, दया पाल सके, यह तीन काल में नहीं है। हाय.. हाय! अरर्र! तो फिर यह जैन! प्रभु! सुन तो सही अब?

मुमुक्षु : दया का उपदेश करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन उपदेश करे? वह तो वाणी के काल में वाणी निकलती है और उसके भाव होनेवाले उस काल में उसे होते हैं। करे कौन? किसके कारण से कौन करे? तो द्रव्य की स्वतन्त्रता पर के आधीन हो जाती है। ऐसा है नहीं। सत्येन्द्रजी! यह सत् का धारण करना पड़ेगा। बराबर है? ओहोहो! बात करते हैं भावमोक्ष की। द्रव्यमोक्ष में निमित्त। द्रव्यकर्म का छूटना उसके कारण से। उसमें यह निमित्त।

यह भावमुक्ति को आप क्या कहते हो? कहते हैं। यह भाव जो ऐसा है न जीव का। क्रम-क्रम से ज्ञान की क्रमशः प्रवृत्ति जो होती है न? वह अशुद्ध है। देखो यहाँ! वह **परिणति के कारण अशुद्ध है,...** क्रम से प्रवर्तती पर्याय। **द्रव्यकर्मास्रव का हेतु है।** देखो! यह आत्मा की क्रम-क्रम से ज्ञान के जानने का, खण्ड-खण्ड जानने का जो

भाव, वह द्रव्यकर्मास्त्रव का हेतु है। नये आवरण आवे आस्त्रव, वह तो उसके कारण से। उसका यह ज्ञप्तिक्रिया क्रम-क्रम से प्रवर्ते ऐसा अशुद्धभाव, वह नये आने में निमित्त है। नये तो उसके कारण से आते हैं। इसने ऐसा भाव किया, इसलिए कर्म को आना पड़ा, ऐसा नहीं है। समझ में आया? ऐसा नहीं है।

वे कर्म के रजकण पुद्गल की पर्याय उस काल में उसी प्रकार से आने की थी, उसका वहाँ स्वतन्त्र पर्याय का धर्म है। उसे यह ज्ञप्तिक्रिया का अशुद्ध क्रम-क्रम से होता भाव निमित्त कहा जाता है। यह निमित्त-नैमित्तिक और निमित्त-उपादान का घोटाला! पार नहीं होता अभी। सर्वत्र गड़बड़ घोटाला। भगवान! निमित्त नहीं, ऐसा किसने कहा? परन्तु निमित्त से उसमें कार्य होता है, ऐसा नहीं है। यह यहाँ सिद्ध करना है। समझ में आया?

यहाँ क्या कहते हैं? वह **परिणति के कारण अशुद्ध है,...** द्रव्यकर्म के निमित्त के कारण अशुद्ध है, ऐसा नहीं। उसके अपने उपादान में क्रम से प्रवृत्ति करने के भाव की पर्याय स्वयं उत्पन्न करता है। तब कर्म का उदय उसे निमित्त कहने में आता है। निमित्त कौन इनकार करता है? परन्तु निमित्त है, इसलिए यहाँ प्रवृत्ति होती है, ऐसा नहीं है। यह तो निमित्त कब कहा कहलाये कि उसके कारण से यहाँ होता है तो तुमने निमित्त को माना कहलाये। परन्तु ऐसा कभी नहीं हो सकता। आनन्दजी! नहीं तो निमित्त रहता नहीं। आहाहा!

एक-एक में पारस्परिक निमित्त की कितनी शैली करते हैं! यह **अशुद्धभाव, वह द्रव्यकर्मास्त्रव का हेतु है। परन्तु वह (क्रमानुसार प्रवर्तती ज्ञप्तिक्रियारूप भाव) ज्ञानी को...** देखो! **मोहरागद्वेषवाली परिणतिरूप से हानि को प्राप्त होता है...** देखा! क्या कहते हैं? ऐसा जो क्रम से प्रवर्तता, ज्ञान का क्रम-क्रम से, खण्ड-खण्ड प्रवर्तता अशुद्धभाव, उसमें मोहनीय के निमित्त को अनुसरता हुआ उसका अपना स्वतन्त्र भाव। वह ज्ञानी का, वह जो निमित्त को अनुसरता क्रम काम करता हुआ, वह ज्ञानी द्रव्य के स्वभाव को अनुसरता हुआ जहाँ परिणति खड़ी हुई, ज्ञायकस्वभाव की शक्ति पूर्णानन्द ध्रुव, उसे अनुसरती पर्याय धर्मी को उत्पन्न हुई। **मोहरागद्वेषवाली परिणतिरूप से हानि**

को प्राप्त होता है... कौन? वह क्रम-क्रम से प्रवर्तती जो अशुद्धक्रिया, वह ज्ञानी को मोह-राग-द्वेषवाली परिणतिरूप से वह क्रिया घटती जाती है। हानि पाती है। क्रम-क्रम से प्रवर्तता-घटता जाता है। समझ में आया? कैसी गाथा और कहाँ रखी बात! ओहोहो!

कहाँ तक ले गये! यहाँ से उठाकर ठेठ वहाँ तक ले गये।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : बराबर शोध सकता है। ऐ भीखाभाई! उसकी पुष्टि तुमको मिले ऐसी है। यह तो तब गुरु का निमित्त कहने में आता है। गुरु वहाँ कर देते हैं? यह कहते हैं कि ऐसा हमें समझ में नहीं आता। यह तो समझने की योग्यता हो, तब ऐसा निमित्त होता है। परन्तु निमित्त के कारण वहाँ समझ में आया, ऐसा है नहीं। वस्तु की स्थिति ऐसी है। एक अंश में कहीं भी गड़बड़ कर दे तो नौ तत्त्व की गड़बड़ खड़ी हो जाती है। गोटा समझे? भूल-गड़बड़ी हो जाती है। ओहोहो! टीका!!

भरतक्षेत्र में ऐसी टीका अमृतचन्द्राचार्य ने की, वैसी कोई टीका नहीं है। कहो, समझ में आया इसमें? आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य ने तो तीर्थंकर जैसा काम (किया और) अमृतचन्द्राचार्य ने पंचम काल में इन तीर्थंकर कुन्दकुन्दाचार्य पंचम काल में। उनके हिसाब से गणधर जैसा काम अमृतचन्द्राचार्य ने टीका करके किया है। समयसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय। गजब काम! समझ में आया? अजोड़... अजोड़... अजोड़! अरे भाई! पर्याय-पर्याय की स्वतन्त्रता, गुण-गुण की स्वतन्त्रता, अशुद्धता की स्वतन्त्रता, शुद्धता की स्वतन्त्रता उसकी पुकार, उसका यह नगाड़ा बजा है। रावजीभाई!

अब जैन में रहे, पण्डित लोग जैसे भी बहुत विचारकर पढ़ते नहीं। विचारकर पढ़ते नहीं, ऐसा कहा, हों! फिर स्वयं अर्थ समझे, वैसा अर्थ दुनिया को कहे। बात तो दूसरी क्या करे? समयसार में कहा है न? विद्वानजन निश्चय को तजकर व्यवहार को जो करे, निश्चय को छोड़कर, व्यवहार को करे। निश्चयनय बिना आत्मा की मुक्ति कभी होती नहीं। यह आता है। गाथा (१५६) है। पुण्य-पाप अधिकार। 'विद्वानजन भूतार्थ तज व्यवहार में वर्तन करे, परन्तु कर्मक्षय का विधान तो निश्चय नयाश्रित मुनि को-सन्त को।' गाथा है। विद्वान व्यवहार नाम धराकर निश्चय की वस्तु को-भूतार्थ को

छोड़ देते हैं और व्यवहार को पकड़ते हैं। ऐसा कहते हैं। ऐसा लिखा था। ऐसा है न? १५६ (गाथा समयसार)। देखो!

मोत्तूण णिच्छयट्ठं ववहारेण विदुसा पवट्टंति।
परमट्ठमस्सिदाण दु जदीण कम्मक्खओ विहिओ॥१५६॥

भगवान कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, अरे विद्वानों! तुम '**मोत्तूण**' निश्चय सत्य वस्तु के अर्थ के प्रयोजन को छोड़कर '**ववहारेण विदुसा पवट्टंति**' अकेले व्यवहार में प्रवर्तते हो और व्यवहार की बात तुम सिद्ध करते हो, परन्तु उस व्यवहार से कभी मुक्ति-फुक्ति नहीं होती। जरा भी उपयोगी नहीं है। जानने के लिये उपयोगी है। '**परमट्ठमस्सिदाण दु जदीण कम्मखओ...**'

मुमुक्षु : छोड़ने के लिये उपयोगी है?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, छोड़ने के लिये नहीं। जानने के लिये उपयोगी है। छोड़ने के लिये नहीं। छोड़े कौन? अपने आप उत्पन्न हुआ और स्वभाव का आश्रय करने से छूट जाता है। राग के नाश का कर्ता भी आत्मा नहीं है। वस्तु के स्वभाव की दृष्टि से देखने पर राग का कर्ता तो नहीं परन्तु राग का नाशकर्ता का नाममात्र कथन है। परमार्थ से राग का नाशकर्ता आत्मा नहीं है। राग का नाश करने जाये तो दृष्टि पर्यायबुद्धि और मिथ्यादृष्टि होती है। अमृतलालजी!

स्वभाव की दृष्टि करने से उसमें स्थिर होने से राग की उत्पत्ति नहीं होती है, उसे रग का नाश किया, ऐसा नाम का कथन है। परमार्थ आत्मा राग का नाश करे, ऐसा स्वभाव में है ही नहीं। समझ में आया?

यहाँ तो निमित्त से उस राग की उत्पत्ति नहीं हुई, स्वभाव का अवलम्बन लेकर, तो उसने राग का नाश किया, ऐसा व्यवहार का कथन है। वस्तुस्वरूप ऐसा नहीं है। समझ में आया? **ज्ञानी को मोहरागद्वेषवाली परिणतिरूप से हानि को प्राप्त होता है...** कौन? वह अशुद्ध क्रम से प्रवर्तता भाव। अशुद्धभाव क्रम-क्रम से ज्ञानी को प्रवृत्ति क्रम-क्रम से अनुसरती जो भाव दशा, वह मोह-राग-द्वेष के अभाव को परिणति की हानि **परिणतिरूप से हानि को प्राप्त होता है, इसलिए उसे आस्रवभाव का निरोध होता**

है। पहला बोल है, उसका ही विस्तार है। बस, उसका ही विस्तार किया है। मोह-राग-द्वेष भाव हैं। ज्ञानी को उसका अभाव होता है। ज्ञानी के जीवन्मुक्ति कही, इसलिए कौन सा भाव मुक्तपने को प्राप्त होता है और कौन सा भाव पीछे से हटता है, यह बात करते हैं।

इसलिए जिसे आस्त्रवभाव का निरोध हुआ है... अर्थात्, धर्मी को स्वभाव के अन्तर अनुसरती परिणति प्रगट होने से, उसे नये कर्म का आना रुक जाता है। निरोध होता है अर्थात् रुक जाता है। अर्थात् कोई आते थे और बन्द हो गये, ऐसा नहीं है। वे आनेवाले नहीं थे, उसे निरोध हुआ—ऐसा कहा जाता है। समझ में आया?

इसलिए जिसे आस्त्रवभाव का निरोध हुआ है, ऐसे उस ज्ञानी को मोह के क्षय द्वारा... लो! ऐसे उस ज्ञानी को मोह के क्षय द्वारा, यहाँ अत्यन्त निर्विकारपना होने से, लो! अत्यन्त निर्विकारी पर्याय स्वभाव को अनुसरकर होने से फिर क्या होगा, यह बात कही जायेगी। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. ५०, गाथा-१५०-१५१
दिनांक - २६-१०-१९६४, आसोज कृष्ण ५, सोमवार

वर्णन है। नौ पदार्थ में मोक्ष का अधिकार चलता है। मोक्ष किसे कहना? नौ पदार्थ हैं, उसमें जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध। इतना अधिकार तो आ गया है।

अब द्रव्यमोक्ष अर्थात् कर्म का छूटना, उसमें निमित्तरूप से, हेतुरूप से भावमोक्ष उसका हेतु है। वह भावमोक्ष किसे कहना, वह बात यहाँ बतलायी जाती है। समझ में आया? यहाँ नौ पदार्थ में मोक्षतत्त्व किसे कहना? मोक्षतत्त्व कहो, मोक्षपदार्थ कहो। सात में तत्त्व और नौ में पदार्थ। मोक्षपदार्थ किसे कहना? मोक्ष वह क्या होगा? कोई द्रव्य-वस्तु होगी? कोई गुण होगा शाश्वत? कोई दशा होगी अवस्था? वह मोक्ष क्या है?

मोक्ष, वह आत्मा की परमशुद्ध निर्मल दशा है। कहो, समझ में आया? मोक्ष अर्थात् आत्मा, उसका अन्तर पूर्ण शुद्ध स्वरूप वस्तु में है। उसकी पर्याय में मुक्तस्वरूप पूर्ण शुद्धता प्रगट होना, उसका नाम मोक्ष कहने में आता है। अब इस भावमोक्ष को दो प्रकार से वर्णन करते हैं। एक भाव अशुद्धता के क्रम से छूट जाये, उसे भावमोक्ष कहा जाता है और एक अनन्त ज्ञान, दर्शन आदि की प्राप्ति, उत्पाद हो, उसे भी भावमोक्ष कहा जाता है। क्या कहा? समझ में आया इसमें? क्या कहा, धरमचन्दजी!

एक उत्पादरूप मोक्षपर्याय भावमोक्ष और एक व्ययरूप भावमोक्ष। आत्मा एक समय में शुद्धचिदानन्द घन परमआनन्दघन चिदानन्दमूर्ति। उसमें अनादि काल से ज्ञान की वर्तमान ज्ञप्तिक्रिया, जानने की क्रिया क्रम-क्रम से प्रवर्तती, खण्ड-खण्ड प्रवर्तती अशुद्धरूप है। समझ में आया? उस अशुद्धरूप का नाश होना और ज्ञप्ति शुद्धक्रिया की प्राप्ति होना, समझ में आया? और उसमें पूर्ण शुद्ध की प्राप्ति। शुद्धज्ञप्तिक्रिया तो बारहवें में भी होती है, परन्तु पूर्ण शुद्ध की परिणति निर्मलानन्द ज्ञान, दर्शन, आनन्द की प्राप्ति होना, वह और अशुद्धता के अंश से वह भाव छूट जाना, ऐसी दशा को भावमोक्ष कहा जाता है। थोड़ा-थोड़ा गुजराती समझते हो या नहीं? हें? यह गुजराती चलती है न? कहो, समझ में आया इसमें?

यह आत्मा वस्तु है वस्तु, पदार्थ। आत्मा देह से भिन्न वस्तु-पदार्थ है। और आत्मा में अनन्त गुण है। ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि उसका शक्तिस्वभाव अनन्त है। उसके भान बिना अनादि काल से ज्ञान की वर्तमान दशा, क्रम-क्रम से प्रवर्तती, खण्ड-खण्ड होकर प्रवर्तती है, उसमें राग-द्वेष और मिथ्यात्वभाव रहा है; इसलिए ज्ञान की पर्याय क्रम-क्रम से प्रवर्तती है। समझ में आया?

यह क्रम-क्रम से खण्ड-खण्डरूप से मिथ्यात्वसहित और राग-द्वेषसहित ज्ञान की वर्तमान दशा का उस प्रकार से क्रम-क्रम से अशुद्धपने होना, इसका नाम संसार, इसका नाम दु:खदशा, इसका नाम भावबन्धन। कहो, समझ में आया? उस भावबन्धन से भाव छूट जाये, उसे भावमोक्ष कहते हैं। और वह भावबन्धन छूटने पर आत्मा की पूर्ण निर्मल ज्ञान, दर्शन, आनन्द की पर्याय प्राप्त हो, उसे भावमोक्ष कहते हैं। समझ में आया या नहीं? यहाँ तक आया है। परन्तु वापस फिर से थोड़ा लेंगे, तब मिलान खायेगा। देखो! दूसरा पेराग्राफ।

यहाँ जो 'भाव' विवक्षित है... यहाँ जो भाव कहना चाहते हैं, कहना विचारा है। यहाँ जो भाव कहना विचारा है। **वह कर्मावृत (कर्म से आवृत हुए) चैतन्य की क्रमानुसार प्रवर्तती ज्ञप्तिक्रियारूप है।** वह आत्मा वस्तु का स्वभाव शुद्ध पूर्ण होने पर भी, उसकी ज्ञान की वर्तमान दशा में मिथ्यात्व और राग-द्वेष के संग से ज्ञान की वर्तमान क्रिया क्रम-क्रम से खण्ड-खण्डरूप से होती है। **वह (क्रमानुसार प्रवर्तती ज्ञप्तिक्रियारूप भाव)....** गजब भाषा कभी सम्प्रदाय में सुना न हो कि यह भावमोक्ष क्या और यह... यह क्रिया करो और यह करो और यह करो और यह करो। जाओ हो गया धर्म। धरमचन्दजी! धरमचन्द है तो वहाँ धर्म हो गया।

कहते हैं, भाई! धर्म की दशा कैसे हो। अधर्मदशा छूटे, वह धर्मदशा द्वारा कैसे टले, वह सब दशा आत्मा की है। उसका यहाँ वर्णन है। वस्तु तो त्रिकाली द्रव्य और गुण से भरपूर पूरा परिपूर्ण पदार्थ भगवान आत्मा है। परन्तु उसकी दशा में, उसकी हालत में कर्म के कारण नहीं। कर्म के निमित्त को अनुसरती अपनी ज्ञप्ति-जानने की खण्ड-खण्ड की क्रम-क्रम से प्रवर्तती ज्ञान की क्रिया, वह अशुद्ध है। जो मिथ्यात्व और राग-द्वेष से मैली है।

वास्तव में संसारी को... देखो! वह पर्याय वास्तव में अनादि अज्ञानी संसारी को **अनादि काल से मोहनीयकर्म के उदय का अनुसरण करती हुई परिणति के कारण...** स्वभाव को अनुसरती वह क्रिया नहीं है। मोहकर्म अन्दर पाक एक जड़कर्म है। भले उसे खबर न हो। परन्तु यहाँ चैतन्य ज्ञायकमूर्ति है, उसे अनुसरकर जो धर्मक्रिया शान्ति, श्रद्धा, निर्मलता होना चाहिए। वह स्वभाव त्रिकाल को न अनुसरते हुए, वह कर्म एक जड़ मोहनीय कर्म बाँधा हुआ है, उसे अनुसरकर, **परिणति के कारण...** अत्यन्त यह तो अभी नौ तत्त्व किसे कहना, उसकी व्याख्या है। अब नौ तत्त्व की खबर न हो, उसे सम्यग्दर्शन हो कब और सम्यग्दर्शन बिना धर्म नहीं हो सकता। समझ में आया? ऐसा का ऐसा यह वाडा में यह क्रिया करके पूजा की और भक्ति की और व्रत किये और यह किये और वह किये, वह धर्म-बर्म नहीं। धर्मचन्दजी! तो वह क्या है? राग है, वह राग। राग की क्रिया है, वह धर्म की क्रिया नहीं। आहाहा! वह ज्ञप्ति की क्रम-क्रम से प्रवर्तती वह रागवाली क्रिया है। आहाहा! कहो, समझ में आया?

यह कर्म के उदय को अनुसरती परिणति अर्थात् पर्याय, उसके कारण वह अशुद्ध है। पर्याय अशुद्ध है, अवस्था अशुद्ध है। अभी जैन में जन्मे तथापि पर्याय नाम भी किसी ने सुना न हो। पर्याय किसे कहना? भेदविज्ञानी। भान नहीं होता। कहो, समझ में आया? जैन में जन्मे, इसलिए सब भेदविज्ञानी तो है, अब उसे चारित्र करना, ऐसा एक व्यक्ति ने-पण्डित ने लिखा था। कहो, रावजीभाई! एक पण्डित ने लिखा था। जो दिगम्बर में जन्मे, वे भेदविज्ञानी तो हैं ही। जीव-अजीव को भिन्न जानते हैं। अब चारित्र करना है। दिगम्बर में जन्मे न? पैसेवाले में जन्मे तो गर्भश्रीमन्त कहलाते हैं या नहीं? गर्भश्रीमन्त। इसी प्रकार यह दिगम्बर में जन्मे तो भेदज्ञानी तो है ही। ऐसा अज्ञानी मानता है।

यहाँ कहते हैं कि भाई! दिगम्बर में जन्म कहाँ, दिगम्बर साधु हो तो भी क्या है? यह कहते हैं। दिगम्बर नग्नमुनि हो, अट्ठाईस मूलगुण पालता हो परन्तु वह सब क्रिया ज्ञान की वर्तमान खण्ड-खण्ड क्रम-क्रम से प्रवर्तती राग की क्रिया है। वह धार्मिक क्रिया नहीं। आहाहा! ऐ सौगंदचन्दजी! क्या करना? चक्की का पल लेकर आटा करना या क्या करना? समझ में आया? क्या भाई, कहाँ से आये हो? सागर? गुजराती समझते

हो? थोड़ी-थोड़ी? सागर से आये हैं, सागर। यह सेठ सागर के हैं। अच्छा! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि भाई! आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्यवें भाग में पूर्ण आनन्द और अन्तर शुद्ध ज्ञाता-दृष्टा सर्वज्ञ और सर्वदर्शी स्वभाव है। वह सर्वज्ञ और सर्वदर्शी स्वभाव, उसे अनुसरकर क्रिया नहीं करता, समझ में आया? भगवान आत्मा अन्दर सर्वज्ञ और सर्वदर्शी अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य, अनन्त चतुष्टय शक्ति में पड़ा है। उसके अनुसरकर क्रिया धर्म की पर्याय में नहीं करता... वह कर्म का उदय आवे, उसे अनुसरकर अपने ज्ञान को, पोताना समझते हो? अपना। गुजराती में थोड़ा-थोड़ा अन्तर है। बराबर ध्यान रखे न, तो समझे। नहीं तो हिन्दी (लोग) तो हमेशा आते हैं। हिन्दी हमेशा (बोलने में) आवे तो गुजरातीवालों को बराबर समझ में नहीं आता। ....छोटे-छोटे को भी हिन्दी समझ में नहीं आता। समझ में आया? सेठ को सीख लेना पड़ेगा। यहाँ कायम मकान रखा है इसलिए। थोड़ा-थोड़ा सीख लेना। अब तुमने गुजरात में मकान डाल दिया। डाला या नहीं? गुजराती हो गये। कहो, समझ में आया?

क्या कहते हैं? भगवान आत्मा अपना निज स्वभाव ज्ञान, दर्शन, आनन्द उसका पूर्णरूप अन्दर में स्वभाव पड़ा है। उस पूर्णरूप को न अनुसरते हुए, वर्तमान दशा में पूर्णरूप को न अनुसरते हुए, वर्तमान दशा कर्म के निमित्त को अनुसरते हुए जो परिणति के कारण जो पर्याय राग की, द्वेष की, मिथ्यात्व की ज्ञान की क्रम-क्रम से खण्ड-खण्ड प्रवृत्ति में मिथ्यात्व और राग-द्वेष उत्पन्न होते हैं, उसे अशुद्ध कहा जाता है। यह पंचास्तिकाय को समझना बहुत ही कठिन बात है। लोग कहे, हमने समझ लिया, हमने पढ़ लिया। भाई! वास्तविक तत्त्व भगवान सर्वज्ञदेव, वे कैसा कहते हैं, उसे समझना महान प्रयत्न माँगता है। समझ में आया?

वह द्रव्यकर्मास्रव का हेतु है। वह अशुद्धता जो वर्तमान ज्ञान की दशा कर्म के लक्ष्य से क्रम-क्रम से प्रवर्तती ऐसी पर्याय, वह अशुद्ध है। मिथ्यात्व और राग-द्वेष सहित मैली है। समझ में आया? यह द्रव्यकर्मास्रव का हेतु है। वह नये कर्म आने के रजकणों का वह मिथ्यात्वभाव आदि राग-द्वेष, जानने की क्रम-क्रम से क्रिया जो खण्ड-

खण्ड वर्ते। वस्तु अखण्ड है, उसके आश्रय से अखण्डपना न प्रगट करते हुए, कर्म के निमित्त के आश्रय से खण्ड-खण्ड ज्ञान की पर्याय को करता हुआ, जीव मिथ्यात्व और राग-द्वेष को तथा अशुद्धता को सेवन करता है। वह द्रव्यकर्मास्रव का हेतु है। वह चार नये घातिकर्म आदि, उसका वह हेतु है। कहो, समझ में आया? और आठों कर्म का वह हेतु है। आहाहा!

पहली चीज़ क्या? आत्मा की पर्याय-मोक्ष किसे कहना? मोक्ष, वह पर्याय है। मोक्ष, वह गुण नहीं। मोक्ष, वह द्रव्य नहीं। सिद्धपना, वह पर्याय है। मोक्ष, वह एक अवस्था है। आत्मा का एक निर्मल, निर्विकारी वेश है। समझ में आया? भेश-वेश। मोक्ष भी एक निर्विकारी वेश है। मोक्ष आत्मा का त्रिकाली द्रव्य और गुण का कायमी स्वरूप ऐसा मोक्ष नहीं। आहाहा! संसार, वह एक विकारी वेश है। वह स्वांग है। स्वांग कहते हैं न?

यह कहते हैं, देखो! अशुद्ध है, वह स्वांग है। आत्मा की पर्याय में अशुद्ध स्वांग-वेश अशुद्ध दशा है। वह द्रव्य का अशुद्ध एक वेश-स्वांग है। वह अशुद्ध अवस्था कायम की चीज़ नहीं है। द्रव्य और गुण कायम की वह चीज़ है, अशुद्ध स्वांग वह कायम की चीज़ नहीं। और वह अशुद्धता स्वभाव के अवलम्बन से छूट जाती है और पूर्ण शुद्धता प्रगट होती है, वह भी कायम की चीज़ नहीं। वह वेश है अवस्था का, आत्मा की निर्मल दशा का। समझ में आया?

स्वाँग है। निर्मल पर्याय, वह आत्मा का एक स्वाँग है। वह स्वाँग सादि-अनन्त रहता है। जब से निर्मल दशा प्रगट हुई, अनन्त काल रहती है, उसे यहाँ मोक्ष कहा जाता है। समझ में आया? तब कहते हैं कि यह क्या मोक्ष हुआ? किससे छूटा, यह उसे मोक्ष कहा। किससे छूटा, तब उसे मोक्ष कहा? छूटा किससे? कि जो आत्मा में ज्ञान की पर्याय क्रम-क्रम से खण्ड-खण्डरूप से मिथ्यात्व, राग-द्वेषरूप से प्रवर्तती थी, उससे दशा छूट गयी। मुकाणी, समझ में आया? छूटी। छूट गयी। वह अशुद्ध अवस्था छूट गयी और शुद्ध अवस्था हो गयी। यह शुद्ध अवस्था हुई, उसका नाम अस्तिरूप से भावमोक्ष। अशुद्धता छूट गयी, इसका नाम नास्तिरूप से भावमोक्ष। गजब बात परन्तु! जैन में जन्मे, उसे भी जैन क्या कहते हैं, इसकी खबर नहीं होती। शशीभाई!

यह अशुद्ध स्वाँग भगवान आत्मा पूर्ण शुद्ध चैतन्यमूर्ति दर्शन, ज्ञान, आनन्द का कन्द, उसे नहीं अनुसरते हुए, कर्म को अनुसरकर होती ज्ञान की ज्ञप्ति-जानने की क्रिया, वह जानने की खण्ड-खण्ड क्रिया, उसका नाम मिथ्यात्व और राग-द्वेष इकट्ठा आया, नहीं तो खण्ड-खण्ड होगा नहीं। वह क्रिया अशुद्ध स्वाँग, वह नये रजकण नये आवें, उसका वह निमित्त और हेतु है। **परन्तु वह (क्रमानुसार प्रवर्तती ज्ञप्तिक्रियारूप भाव)...** वह क्रम-क्रम से खण्ड-खण्डरूप से प्रवर्तती अपनी ज्ञान की अवस्था, वह **ज्ञानी को मोहरागद्वेषवाली परिणतिरूप से हानि को प्राप्त होता है...** कहो, समझ में आया? उसे मोह, राग-द्वेष घटने से उसके कारण ज्ञप्तिक्रिया खण्ड-खण्ड भी घटती जाती है। अरे! यह और किस प्रकार का धर्म है?

यह कुन्दकुन्द आचार्य महाराज, दिगम्बर सन्त, दो हजार वर्ष पहले महामुनि दिगम्बर जंगल में बसते थे। यह उनके बनाये हुए श्लोक हैं और नौ सौ वर्ष पहले एक अमृतचन्द्राचार्य दिगम्बर नग्नमुनि, भगवान की परम्परा से जो मार्ग आया, कुन्दकुन्द आचार्य ने जो कहा, उसकी टीका यह अमृतचन्द्राचार्य, यह टीका उन्होंने बनायी है। निमित्त से ऐसा (कहा जाता है)। कहो, समझ में आया? क्या दिगम्बर सन्त कहते हैं, क्या भगवान कहते हैं, नौ तत्त्व किसे कहना? खबर नहीं होती, यह क्रिया की, लो! यह चक्की से दलना और ऐसा करना। परन्तु वह कार्य तेरा नहीं। अब शुद्ध आहार तो सहज मिल जाये उसकी बात है। रावजीभाई!

यह तो चक्की से हम ऐसा करते हैं न, पीसते हैं न। वह क्रिया तेरी है तो तू कर सकता है? वह तो जड़ की क्रिया है, पर की क्रिया है। आत्मा उसे कर सकता है? उसे ऐसे हाथ फिरा सकता है? क्योंकि वह तो जड़ है। अजीवतत्त्व है। और चक्की-बक्की घूमना, वह पर अजीवतत्त्व है। उसकी क्रिया मैं करता हूँ, यह मान्यता मिथ्यात्व है। अजीव को जीव मानता है। रावजीभाई! कठिन बात है जगत को जैनदर्शन। जैनदर्शन अर्थात् वस्तुदर्शन। समझ में आया? ऐ सोगंदचन्दजी! एक चक्की का पड़ था और एक चक्की का पड़ खोजते थे। ऐसा एक बार सुना था, हों! अब वह बराबर याद रह गया। ऐसा था या नहीं? एक पड़ था और एक पड़ फिर खोजते थे। अरे! परन्तु यह पड़, यह तो पहला अन्दर खोज! कि इस पड़ का चक्र उल्टा कैसे घूमता है? यह भावकर्मचक्र

उल्टा कैसे घूमता है, उसे तो देख! समझ में आया? यह भावकर्मचक्र की बात चलती है। द्रव्यकर्म जड़ में वह नहीं। पर में पर का उसके साथ यहाँ कुछ सम्बन्ध नहीं है। आहाहा!

कहते हैं कि भाई! यह आत्मा की पर्याय में जो क्रम-क्रम से खण्ड-खण्डरूप से ज्ञान का जानना, ज्ञप्ति की क्रिया राग-द्वेष और मिथ्यात्वसहित होती है, वह ज्ञानी को, स्वभाव शुद्ध चैतन्यमूर्ति मैं हूँ, ऐसे अन्तरध्येय में सम्यग्दर्शन होने पर मिथ्यात्व हो, उसकी ज्ञप्तिक्रिया खण्ड-खण्ड वर्तती थी, उस क्रिया का नाश होता है। समझ में आया? और फिर राग-द्वेष का अभाव होने पर स्वभाव-सन्मुख की वीतरागी परिणति-अवस्था होने पर वह क्रम-क्रम से खण्ड की अवस्था हानि पाती है अर्थात् नाश हो जाती है। कहो, समझ में आया?

इसलिए जिसे आस्रवभाव का निरोध हुआ है... इसलिए ज्ञानी को-धर्मी को अपना ज्ञान, आनन्द स्वभाव की वर्तमान पर्याय उसे अनुसरती हुई होती थी, वह कर्म के निमित्त को अनुसरकर होती थी, वह ज्ञानी-धर्मी को, सम्यग्दृष्टि को प्रथम चौथे गुणस्थान से, पाँचवें, छठवें आदि मुनि को भी अपना आत्मा एक समय में ज्ञान, आनन्द ध्रुव चैतन्य प्रभु की वर्तमान दशा को, उसे अनुसरकर प्रगट करते हुए उस ज्ञप्तिक्रिया के खण्ड-खण्ड का नाश हो जाता है। इसलिए नये आस्रव नहीं आते। नये रजकण आने के थे और आते नहीं, ऐसा नहीं है। परन्तु जो आने के नहीं थे, उन्हें रोका, ऐसा कहने में आता है। समझ में आया? कहो, समझ में आया या नहीं रविन्द्र? वहाँ तुझे बहियों में आता है? यहाँ गप्प-गप्प चलती है वहाँ। वह सब कॉलेज में और अज्ञान पठन है पुस्तक का।

यह कहते हैं, **जिसे आस्रवभाव का निरोध हुआ है...** देखो! भाव-भाव। नये कर्म की पर्याय, उसे आती नहीं। **इसलिए जिसे आस्रवभाव का निरोध हुआ है, ऐसे उस ज्ञानी धर्मी को...** अपने आत्मा के अन्दर में वस्तु स्वभाव-सन्मुख को अनुसरकर अन्तर स्वभाव को अनुसरकर होती ज्ञान की क्रिया, सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की क्रिया के कारण से **ज्ञानी को मोह के क्षय द्वारा...** मोह का क्षय होता है। समझ में आया?

अत्यन्त निर्विकारपना होने से,... लो! यह आत्मा की पर्याय में अत्यन्त निर्विकार, जो विकारसहित ज्ञान की ज्ञप्ति की जानने की क्रिया खण्ड-खण्ड थी, वह स्वभाव को अनुसरती क्रिया करने से अत्यन्त निर्विकारी शुद्धपने की परिणति को वह पर्याय प्राप्त करती है। समझ में आया?

जिसे अनादि काल से अनन्त चैतन्य और (अनन्त) वीर्य मूँद गया है... क्या कहते हैं? भगवान आत्मा का ज्ञान और आनन्द कायम स्वभाव, उसकी पर्याय में आवृत्त हो गया, पर्याय में रुक गया है। जैसे फूल की कली हो कली। वह वर्तमान जैसे यह संकोचपने है, वैसे आत्मा की पर्याय अनादि की अनन्त चैतन्य और अनन्त वीर्य, बेहद जिसका अन्तर स्वभाव, उसकी वर्तमान पर्याय में आवृत्त हो गया है, संकोच हो गया है। ज्ञान संकोचपने को, वीर्य संकोचपने को प्राप्त हुआ है। समझ में आया?

ऐसा वह ज्ञानी... मुँद गयी हुई ज्ञान और आनन्द की, इस वीर्य के कारण, भाई! समझ में आया? ज्ञान के साथ आनन्द आदि की पर्याय मुँद गयी है, संकोच हुई है। पर्याय में संकोच, वस्तु में पूरा त्रिकाल पड़ा है। पर्याय अर्थात् अवस्था में संकोच है। कली ऐसे संकोच दिखती है, वह जब ऐसे खिलती है। कमल फूल की कली। उसी प्रकार आत्मा अनादि से पर्याय में ज्ञान और वीर्य, आनन्द और दर्शन, वह संकुचित हो गयी पर्याय है, **ऐसा वह ज्ञानी (क्षीणमोह गुणस्थान में)...** स्वभाव को अनुसरकर मोह क्षय हुआ, इसलिए **शुद्ध ज्ञप्तिक्रियारूप से...** वह पहली अशुद्ध थी। पहली कही थी अनुसरण करती परिणति अशुद्ध थी। वह अब बारहवें शुद्ध ज्ञप्तिक्रियारूप से पर्याय हुई। समझ में आया?

शुद्ध ज्ञप्तिक्रिया निर्मल तो चौथे से शुरु हुई। परन्तु यहाँ शुद्ध ज्ञप्तिक्रिया पूर्ण हुई। समझ में आया? आत्मा अपना शुद्धस्वभाव पूर्ण, उस पर नजर करने से पर्याय में खण्ड-खण्ड मिथ्यात्वसहित उत्पन्न होता था, उसका नाश हो गया। और ज्ञान, स्वभाव के आश्रय से सम्यग्दर्शन की पर्यायसहित ज्ञान की पर्याय थोड़ी अखण्ड प्रवर्तने लगी। वह शुद्धता प्रवर्तने लगी। अशुद्धता-मोह का क्षय होने से बारहवें में शुद्ध ज्ञप्तिक्रिया अन्तर्मुहूर्त रही। समझ में आया?

भाषा भी अलग और भाव भी अलग प्रकार के। यह वस्त्र छोड़ दो और हो गये त्यागी। यह किया और यह... परन्तु तत्त्व के भान बिना तेरे वस्त्र छूटे, वस्त्र तो छूटे हुए ही पड़े हैं। कहाँ अन्दर घुस गये हैं? समझ में आया? हें? क्षेत्र से तो भिन्न ही पड़े हुए हैं। वस्त्र वस्त्र के क्षेत्र में और आत्मा आत्मा के क्षेत्र में है। यह अनादि की है। पर के क्षेत्र में आत्मा का क्षेत्र नहीं और आत्मा के क्षेत्र में पर का क्षेत्र नहीं। कहो, समझ में आया? वह तो स्वक्षेत्रज्ञ है। ऐसा एक शब्द आता है न? क्षेत्रज्ञ। आता है न जीव के नाम आते हैं। वह स्वक्षेत्रज्ञ है। स्वक्षेत्रज्ञ वह आत्मा का नाम है। समझ में आया?

यह आत्मा स्व-असंख्य प्रदेशी क्षेत्र। निर्मलानन्द प्रभु, उसका ज्ञ अर्थात् जाननेवाला आत्मा क्षेत्रज्ञ है। परक्षेत्र रहा पर में। वस्त्र का क्षेत्र और शरीर यह सब परद्रव्य है। यह तो परवस्तु है, इसके परक्षेत्र में है। आत्मा के क्षेत्र में यह है ही नहीं। इसके क्षेत्र में आत्मा का क्षेत्र नहीं। दोनों के भिन्न क्षेत्र अन्दर हैं। क्षेत्र अर्थात् साथ के साथ... आत्मा तो अपने स्वचतुष्टय के भाव में है। आत्मा का द्रव्य, गुण-पर्याय का पिण्ड, वह द्रव्य। क्षेत्र अर्थात् चौड़ाई। असंख्य प्रदेशी क्षेत्र में आत्मा है। पर्याय अर्थात् काल। वर्तमान अवस्था, भाव अर्थात् शक्ति। अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव में है; पर के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव में नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, इसमें है न। सुनते नहीं? यह अशुद्धता का नाश होना, वह नास्तिरूप से भावमोक्ष, भाव छूटा, ऐसा कहने में आया। और अस्तिरूप से अनन्त ज्ञान आदि की प्रगट दशा हुई, उसे भावमोक्ष अस्तिरूप से कहने में आया। समझ में आया? यह मोक्ष-मोक्ष बातें करे मोक्ष। हमारे मोक्ष चाहिए है। परन्तु कहाँ मोक्ष किसे कहना, खबर है तुझे? उसमें मानो मोक्ष होगा! उस तीर्थफण्ड में वहाँ वह क्या कहलाता है? मुक्तिशिला में जाना, वह मोक्ष होगा? मुक्तिशिला में जाना वह तोक्ष होगा, ऐसा है नहीं। मुक्तिशिला तो कहीं रह गयी नीचे और सिद्धपद तो कहीं ऊपर है। और मुक्तिशिला में वहाँ भी निगोद के जीव हैं और सिद्ध विराजते हैं, वहाँ भी निगोद के जीव हैं। जहाँ ऊपर सिद्ध विराजते हैं वहाँ, उनके पेट में (आत्म प्रदेशों में) शरीर में निगोद के जीव हैं। (क्षेत्र अपेक्षा से है)।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी नहीं मिलती। सेठ ठीक कहते हैं। जहाँ सिद्ध का आत्मा है, वहाँ अनन्त निगोद पड़े हैं। एकक्षेत्रावगाह में कहाँ? सबका क्षेत्र भिन्न है, सबके भाव भिन्न हैं। भान नहीं होता, भान। आहाहा! थोड़ी शान्ति मिलती है या नहीं? सिद्धपद में जिसमें आत्मा अनन्त केवलज्ञानमय विराजता है। उसे वहाँ भी अन्दर निगोद है। पाँच एकेन्द्रिय सूक्ष्म हैं। उसे कहीं शान्ति मिलती होगी या नहीं? वहाँ दो-चार .... पड़े हैं। जेल में पड़े हैं। रावजीभाई!

सिद्ध है न? ५०० धनुष में निगोद महासूक्ष्म पड़े हैं पूरे लोक में, सूक्ष्म है न? पूरे लोक में सूक्ष्म भरे हुए हैं। सूक्ष्म पृथ्वी, सूक्ष्म जल, सूक्ष्म अग्नि, सूक्ष्म वायु, सूक्ष्म वनस्पति। निगोद है। सूक्ष्म वनस्पति निगोद है। वे चार प्रत्येक हैं। पूरे लोक प्रमाण पड़े हैं। सिद्ध हैं वहाँ है, परन्तु इससे क्या हुआ? प्रत्येक का क्षेत्र भिन्न, काल भिन्न, द्रव्य भिन्न। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, ज्ञानी को पर्याय मुँद गयी है। वह जहाँ स्वभाव का अनुसरण करके, वह पर्याय **(क्षीणमोह गुणस्थान में) शुद्ध ज्ञप्तिक्रियारूप से अन्तर्मुहूर्त व्यतीत करके...** शुद्ध की ज्ञप्ति केवली, पहली अशुद्धि थी, वह शुद्ध हुई। जानने की क्रिया शुद्ध हुई। अटकती आती, राग-द्वेष नहीं रहे। मोह, राग, द्वेष नहीं रहे। परन्तु अभी पूर्ण शुद्ध चेतना प्रगटी नहीं।

यह अन्तर्मुहूर्त बारहवें गुणस्थान में पहले से स्वभाव को अनुसरकर जो सम्यग्दर्शन प्रगट किया है, स्वभाव को अनुसरकर चारित्र प्रगट किया है। बढ़ते-बढ़ते बारहवें गुणस्थान में शुद्ध जानने की ज्ञप्तिक्रिया, जाननक्रिया शुद्ध हुई है, वह वहाँ अन्तर्मुहूर्त रहती है। **युगपद ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय का क्षय होने से...** लो! फिर एक समय में युगपद अर्थात् एक साथ ज्ञानावरण का नाश, दर्शनावरण का नाश, **अन्तराय का क्षय होने से कथंचित् कूटस्थ ज्ञान को प्राप्त करता है...**

यह भगवान आत्मा एक क्षण में किसी प्रकार कूटस्थ अर्थात् ऐसा का ऐसा ज्ञान सदा रहनेवाला, वह ज्ञान अब पलटनेवाला नहीं, इस अपेक्षा से वहाँ कूटस्थ कहने में

आता है। बाकी है तो ज्ञान की परिणति, केवली की परिणति। केवलज्ञान की पर्याय भी समय-समय में नयी प्रगट होती है। परन्तु ऐसी की ऐसी प्रगट होती है, इस अपेक्षा से कूटस्थ कहा है, देखो! (नीचे फुटनोट में)।

कूटस्थ= सर्व काल एक रूप रहनेवाला; अचल। [ज्ञानावरणादि घातिकर्मों का नाश होने पर ज्ञान कहीं सर्वथा अपरिणामी नहीं हो जाता;...] भगवान का केवलज्ञान कूटस्थ जैसे शिखर स्थिर रहता है, वैसे नहीं। समय-समय बदलता है। केवलज्ञानी का ज्ञान भी समय-समय में बदलता है। अनन्त गुण समय-समय में बदलते हैं। उत्पाद...

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह बदले सदा अनन्त काल। वे पूछते थे न तुम्हारे देरियाजी! यह लप पर्याय की! पर्याय की खबर नहीं होती खबर। पर्याय किसे कहना? पर्याय तो आत्मा का धर्म है। स्वभाव है वह कब मिटे? सिद्ध में भी पर्याय है। अनादि-अनन्त है। पर्याय निगोद में से लेकर सिद्ध, अनादि अनन्त पर्याय होती है। संसारी को अशुद्ध पर्याय मिथ्यादृष्टि की, साधक को शुद्ध और अशुद्ध पर्याय, सिद्ध को पूर्ण शुद्ध पर्याय। समझ में आया?

यह देखो! **अपरिणामी नहीं हो जाता;...** उसे भी खबर नहीं। केवलज्ञान बदले? केवलज्ञान अब पलटे। अब उसे पलटने का क्या कारण रहा? ऐसा। परन्तु वह तो पलटने का पर्याय का स्वभाव है। समय-समय नयी ही हुआ करे, नयी ही हुआ करे। वह की वह पर्याय दूसरे समय नहीं रहे। केवलज्ञानी भगवान अरिहन्त को भी वह केवलज्ञान की पर्याय वह की वह दूसरे समय नहीं रहती।

'उत्पादव्ययध्रुवयुक्तंसत्' पदार्थ अनन्त गुण की पर्याय से उत्पन्न होता है, पूर्व की पर्याय से व्यय होता है, अपनी जाति को बनाये-टिकाये रहे, ऐसा प्रत्येक द्रव्य का स्वयं सिद्ध स्वत: स्वभाव है। समझ में आया? **परन्तु वह अन्य-अन्य ज्ञेयों को जाननेरूप परिवर्तित नहीं होता—सर्वदा तीनों काल के समस्त ज्ञेयों को जानता रहता है, इसलिए उसे कथंचित् कूटस्थ कहा है।** नोट है न, नीचे है फुटनोट। प्रत्येक इस गाथा के भाव तो प्रत्येक सूक्ष्म हैं। पर्याय का कथन है। उसकी वस्तु पर्याय निर्मल, मलिन कैसी है?

और वह भी निर्मल पर्याय भी कूटस्थ है, इतनी रहती है। अर्थात् कि अलग-अलग ज्ञेय को जानने के लिये परिणमन बदलता नहीं परन्तु एक साथ सब ज्ञेयों को जानने की जो पर्याय पलटी, ऐसी की ऐसी दूसरे समय में, तीसरे समय में, सादि-अनन्त। नयी... नयी... नयी... पर्याय केवलज्ञान, तथापि अनेक ज्ञेयों को जानने के लिए परिणमन नहीं पलटता, इसलिए कूटस्थ कहने में आता है। कूट अर्थात् शिखर... पानी के तरंग की भाँति उठे, ऐसा नहीं। समझ में आया? क्या?

पानी की तरंग की भाँति ऐसे ऊँचे गया, ऊँचे गया वह है तो केवलज्ञान की भाँति उसकी पर्याय परन्तु ऐसी की ऐसी है, इसलिए कूटस्थ कहने में आता है। कूट अर्थात् शिखर होता है न शिखर, वह पर्वत पर शिखर। है? उसमें तरंग नहीं उठती। पानी की तरंग उठती है, शिखर स्थिर है। ऐसा यहाँ है नहीं, ऊपर में है नहीं। है तो अपनी समय-समय की पर्याय परिणमती हुई, परन्तु इस प्रकार से ज्ञेय को जानते हुए स्वयं ज्ञान अपने पूर्णपने परिणम रहा है, अनेक ज्ञेयों को भिन्न-भिन्न अटकता जानता हुआ पलटता नहीं, इसलिए उसे कूटस्थ कहने में आया है। रावजीभाई! अभी थोड़ा अभ्यास करना चाहिए। ऐसा का ऐसा यह सब बाहर में और बाहर में जिन्दगीयाँ जाती हैं। आहा! ऐसा समय मनुष्यदेह का, उसमें वीतराग में जन्म, उसमें सत् वाणी सुनने को मिले, उसमें इस प्रकार, यह तो महा दुर्लभ! दुर्लभ... दुर्लभ... दुर्लभ है। ओहोहो! यह निगोद के जीव कभी त्रस नहीं होते, आहाहा! त्रस नहीं होते तो समकित तो कहाँ से पावें? आहाहा! नित्य निगोद है न! आहाहा! भाई! तुझे तो यह अवसर मिला है, सब अवसर आ गया है। आहाहा!

यह वस्तु एक समय में पूर्ण शुद्ध, उसकी पर्याय बाहर के लक्ष्य में अटकती है, वह संसार! उसे अन्तर ज्ञायक में अनुसरण करना, वह धर्म की पर्याय और मोक्ष का उपाय है। वह तो कहे, यह करो और यह करो और यह करो। बेचारे को कहाँ विपरीतता घुसा डाली है! निवृत्त हो नहीं। एक व्यक्ति तो कहता था, दो-दो घण्टे तो हमारे दाना धोना पड़े, वहाँ उदासीन आश्रम में। प्रत्येक को दाना दे, धोना पड़े। सब्जी धोना पड़े, दो घण्टे रूकें। तब वापस नहाना-धोना। और ऐसा धनोज-बनोज होवे, उसे साफ करें। उसमें ही हमारा समय जाता है। हम पढ़ने के लिए कब निवृत्त हों! धर्म कब था वहाँ।

विकल्प है जरा! समझ में आया? वह बेचारा कहता हो कि यह तुम कहते हो, वह बात हमारे सुनने के लिये भी समय कहाँ पढ़ने का? यह खाना और यह नहीं खाना, यह पीना और यह नहीं पीना। यह बिगड़ गया और यह छोड़ दिया.... यह छू गया। अब सुन न! तू अटका है अज्ञान में, वहाँ यह तो निर्णय कर! भीखाभाई!

एक तो बेचारी बाई। उसका पति ऐसा सब करे कि कायर हो गयी फिर। गुड़ खाओ वह। पश्चात् गन्ना उसमें से ले आवे। शेरडी समझते हो? गन्ना। वह वहाँ दूध पिलावे वह वापस वहाँ वह क्या कहलाता है? चीचोडा, उसे पिलावे, किसान के हाथ धुलावे, उसे सब ऐसा करावे, वह रस निकाले, लावे! और वापस स्त्री को कहे कि तू यहाँ रह। भाई! उसकी अपेक्षा गुड़ खाना ही छोड़ दे न? इतनी सिरपच्ची है वह! कितनी सिरपच्ची! अभी गुड़ खाना है, परन्तु ऐसी सब कर्ता... कर्ता... कर्ता की क्रिया छोड़नी नहीं। अब उसे धर्म करने का अवसर कब रहे? उसने मान लिया। हें! और तुम्हारे जैसे सेठिया मिल गये। क्यों सेठ? ओहो! त्यागी महाराज है, त्यागी महाराज है, ऐसी पुष्टि की। उसको भाई पैसा चाहिए हो तो जाओ भाई ले जाओ, भाई! मूढ़ है। सामने बड़ा नाम। भगवानदास शोभालाल बड़ा-बड़ा नाम, अब क्या करना? बुन्देलखण्ड।

परन्तु यह सब समझे बिना सब थोथा है, कहते हैं। आहाहा! और बेचारे को घर में... यहाँ दस-बारह वर्ष पहले आये तब (कहते) यह बात हमारे सुनने को मिलती नहीं। ..... हमारा तो उसमें समय जाता है, खाने में समय जाता है, पीने में समय जाता है। जंगल में दो बार कदाचित् जाने का हो। उसमें जाता है। उसमें नहाना, धोना, पैर साफ करना। सब यह करना... यह करना। उसमें मुश्किल से निवृत्त हों, ऐसा साफ करना दाना और मैथी और गेहूँ।

भाई! यह तो सहज ही जिस काल में बनने की क्रिया बनती हो, पहले सम्यग्दर्शन प्रगटे, दर्शनशुद्धि हो, फिर सहज ऐसा विकल्प हो। बनने की क्रिया हो तो बन जाये। यह तो कर्ताबुद्धि को करना है और धर्म की श्रद्धा बढ़ानी है। कर्तृत्वबुद्धि से। पहले यह करते हैं। तो यहाँ कहते हैं कि भगवान आत्मा! अपने शुद्धस्वरूप की अन्तर की दृष्टि करने से...

देखो! अपनी पर्याय में ज्ञप्तिक्रिया शुद्ध हुई, अन्तर्मुख हुई तो केवलज्ञान हो गया। समझ में आया? यह क्रिया केवलज्ञान प्राप्त करने की है। कितने अपवास करना पड़ेंगे केवलज्ञान प्राप्त करने के लिये, ऐसा यहाँ नहीं लिखा। भगवान आत्मा, निमित्त को अनुसरकर ज्ञप्तिक्रिया खण्ड-खण्ड अकेली करता है, तो अन्तर्मुख का अनुसरण करके ज्ञप्ति के साथ अखण्डता, अशुद्धता का नाश होकर वह पूर्ण शुद्धता प्रगट होती है। पूर्ण शुद्धता तो बारहवें गुणस्थान में प्रगट होती है। अन्तर्मुहूर्त रहे तो तीनों का (अशुद्धता का) नाश होता है। उसकी कल्पना है, ऐसा होगा, ऐसा होगा यह।

इस प्रकार वे ज्ञप्तिक्रिया के रूप में क्रमप्रवृत्ति का अभाव होने से... जो जानने की क्रिया खण्ड-खण्डरूप में क्रमप्रवृत्ति का अभाव होने से, भावकार्य खण्ड-खण्ड का जो कार्य था, उसका नाश होता है। वह भावकर्म। वह भावकर्म यहाँ कहा। आहाहा! समझ में आया? बहुत सरस बात! इसकी क्रिया आदि है, वह पर के लक्ष्य से खण्ड-खण्ड होती है इतना, अपनी ज्ञप्ति-जानने की क्रिया, हों! स्वज्ञेय को ज्ञान न बनाकर अकेले परसन्मुख के पक्ष के लक्ष्य में उस ज्ञान की प्रवृत्ति अकेली खण्ड-खण्ड प्रवर्तती है, वह संसार है, वह भावकर्म है।

यह उदयभाव बन्धभाव खण्ड-खण्ड होने से यह दु:खदायकभाव है। समझ में आया? देखो! ज्ञप्तिक्रिया शब्द पड़ा है या नहीं? यह क्रिया है या नहीं? यह क्रिया उसकी खण्ड-खण्ड में वर्तती दु:खदायक है। उसे आत्मा का अनुसरण करके उस क्रिया का नाश हो जाना, इसका नाम भावकर्म का विनाश कहने में आता है। क्रम-क्रम से खण्ड-खण्ड होती क्रिया, वह भावकर्म है। ....उसका नाम भावकर्म है। आहाहा! समझ में आया?

इसलिए कर्म का अभाव होने पर वह वास्तव में भगवान... अब सीधी बात लेते हैं। **सर्वज्ञ...** होते हैं, **सर्वदर्शी...** होते हैं, **इन्द्रियव्यापारातीत...** होते हैं, **अव्याबाध—अनन्त सुखवाला सदैव रहता है।** आहाहा! इसीलिए उस कर्म का अभाव, वह कर्म कौन? वह भावकर्म, हों! ज्ञप्तिक्रियारूप भाव। **भगवान सर्वज्ञ, सर्वदर्शी तथा इन्द्रियव्यापारातीत—अव्याबाध—अनन्त सुखवाला सदैव रहता है।** वह पर्याय प्रगटी

अनन्त काल सिद्ध भगवान ऐसे के ऐसे ही रहते हैं। परमात्मा अरिहन्त पद प्रगट हुआ, वह इस आत्मा के अन्तरगुण को अनुसरण कर प्रगट होता है। सम्यग्दर्शन भी अन्तरगुण को अनुसरकर, चारित्र भी अन्तर स्वभाव को अनुसरकर, शुक्लध्यान भी अनन्त को अनुसरकर और केवलज्ञान अनन्त स्वभाव के त्रिकाल को अनुसरकर प्रगट होता है। भावकर्म से छूटता है और भावमोक्ष आदि दशा को उत्पन्न करता है। कहो, समझ में आया?

अनन्त सुखवाला सदैव रहता है। कहते हैं, यह आकुलता का नाश हुआ, भावकर्म का। अनाकुलता के आनन्ददशा की प्रगट दशा, वह सुख। सुख यह स्त्री, पुत्र का सुख है धूल का? यह स्त्री, पुत्र, पैसा, बँगला मकान दो लाख का, पाँच लाख का, वह सुख है? (वह तो) मिट्टी के ढ़ेर हैं, धूल है। वहाँ सुख है? और वहाँ दुःख है? तेरा दुःख वहाँ है? निर्धनता और शरीर में रोग, उसमें दुःख है? बिल्कुल नहीं। तेरा आत्मा आनन्दमूर्ति है, उसकी उल्टी दशा करके विकार का भाव करे, वह दुःखदशा है। लगता है इसे दुःख? यह भान बिना का दुःख दशा में है। दशा में, आत्मा की दशा में, शरीर में नहीं। शरीर में कौन कहता है? शरीर में कहाँ आत्मा था कि शरीर में हो।

मुमुक्षु : शरीर उसका नहीं तो किसका है?

पूज्य गुरुदेवश्री : मिट्टी, धूल का। वह तो पुद्गल का शरीर है। आत्मा का शरीर है यह? मोहनभाई! भाई को अब कुछ निर्णय करा देना। यह कहे, तुम करा दो, मैंने इन्हें सौंपा है। यह दुःख शरीर में भी नहीं, शरीर के कारण भी नहीं। दुःख है, वह आत्मा की वर्तमान दशा में आनन्द को भूलकर भ्रमणा और राग-द्वेष करे, वह दुःख है। किसका दर्द होता है, धूल में भी नहीं होता, मानता है। यहाँ कुछ हो तो मुझे कुछ होता है, ऐसी कल्पना करता है। कभी अपने अस्तित्व की सत्ता की दृष्टि और लक्ष्य नहीं करता।

मुमुक्षु : एकक्षेत्रावगाह में रहा हुआ है।

पूज्य गुरुदेवश्री : एकक्षेत्रावगाह में रहा हुआ अर्थात्? एकक्षेत्रावगाह में धर्मास्ति रहा है, अधर्मास्ति रहा है, आकाश भी रहा है। सब ही रहे हैं। यहाँ सब है। छह द्रव्य यहाँ हैं। यहाँ असंख्य प्रदेश धर्मास्तिकाय है, अधर्मास्तिकाय के असंख्य प्रदेश यहाँ हैं,

आकाश (लोकाकाश) के असंख्य प्रदेश हैं, काल के अमूर्त द्रव्य हैं। अनन्त परमाणु के अनन्त स्कन्ध हैं।

मुमुक्षु : तो इसमें भूल कहाँ होती है?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अज्ञान के कारण भूल होती है।

इसे अपनी महान सत्ता चैतन्य अरूपी आनन्दघन की सत्ता का स्वीकार नहीं करने से यह राग-द्वेष और अल्पज्ञता मैं हूँ, ऐसी सत्ता का स्वीकार करने से, इसे दुःख होता है। आहाहा! समझ में आया? इस शरीर को कुछ हो गया, यह मेरी सुविधा चली गयी, यह असुविधा मुझे है। यह मान्यता इसे दुःख है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यह क्या, वह तो इसका बाप हुआ वापस। शरीर में ठीक है, वह वापस सुविधा हो गयी। वह का वह हुआ। वह का वह वहाँ वापस होली हुई। परन्तु यह (शरीर) कब इसके पिता का था या इसका था? यह तो मिट्टी का है। यह मिट्टी राख होकर एक बार श्मशान में खड़ी रहेगी। अभी यह राख का पिण्ड है। ऐई! शरीर पर अरुचि आयी है। क्या तैयार है? आत्मा मर जाता होगा? आत्मा मरता होगा कभी? शरीर छूटे वहाँ मर गया? जेचन्दभाई! यह तो सब भ्रमणा अन्दर दुःख में पलटा गयी है दृष्टि। यह मरना है। वहाँ मौसीबा बैठी होगी?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ...यह सब देखते में से छूटे, इसलिए अन्धेरे में जाना है, ऐसा इसका अर्थ। यह देखते हैं न मोहनभाई और लड़के, यह मामा और सब था, उसमें से छूटते हैं तो यह देखनेवाले तो मरे! हम अन्ध को ये भी अन्ध और हम साथ में फिर सब। कहो, समझ में आया इसमें?

वह बात यह है कि इस जगत की व्यवस्था में हम ऐसे रहे, उसे देखनेवाले अधिकपने देखते, यह ऐसे देखेऐसी स्थिति में से चले जायें तो वहाँ अभी दूसरी दुकान में से छूट जाना है? आत्मा के अस्तित्व की सत्ता की खबर नहीं। कहो, समझ में आया इसमें?

इस प्रकार यह (जो यहाँ कहा है), भावकर्ममोक्ष का प्रकार... देखो! भावकर्म मोक्ष का प्रकार और द्रव्यकर्म मोक्ष के हेतुभूत परम संवर का प्रकार है। तीन लाईनें कहीं थी, उसका योगफल करते हैं। नीचे फुटनोट है, उसका अर्थ देखो! नीचे फुटनोट **भावकर्ममोक्ष= भावकर्म का सर्वथा छूट जाना;...** भावकर्म इतना क्रम-क्रम से, खण्ड-खण्ड राग-द्वेष छूट जाने से **भावमोक्ष। ज्ञप्तिक्रिया में क्रमप्रवृत्ति का अभाव होना, वह भावमोक्ष है...** नास्ति से बात की। अथवा वह सर्वज्ञ-सर्वदर्शीपने की और अनन्त आनन्दमयपने की प्रगटता, वह भावमोक्ष है। भावमोक्ष के दो प्रकार। भाव अपनी निर्मल पर्याय अशुद्धता से छूट जाये, वह भावमोक्ष और निर्मल पर्याय स्वयं पूर्ण हुई, उसका नाम भावमोक्ष। समझ में आया?

एक गाथा और एक न्याय समझ में आये तो निहाल होने का रास्ता है। बात समझने की दरकार करे नहीं और वह एक का एक घोंटे। बराबर है या नहीं? आहाहा! जहाँ नजर निधान में डालने की है, वहाँ नजर डालता नहीं। और इस स्थूल में और इसमें और इसमें, जहाँ-तहाँ नजर डालकर ज्ञान को खण्ड-खण्ड करता है। वह इसकी दु:खदशा है, वह आत्मा को अनुसरकर दु:खदशा टल सकती है। बाकी दूसरा कोई उपाय है नहीं। विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - १५२

दंसणणाणसम्मग्गं झाणं णो अण्णदव्वसंजुत्तं।
जायदि णिज्जरहेदू सभावसहिदस्यस साधुस्स।।१५२।।

दर्शनज्ञानसमग्रं ध्यानं नो अन्यद्रव्यसंयुक्तम्।
जायते निर्जराहेतुः स्वभावसहितस्य साधोः।।१५२।।

द्रव्यकर्ममोक्षहेतुपरमनिर्जराकारणध्यानाख्यानमेतत् ।

एवमस्य खलु भावमुक्तस्य भगवतः केवलिनः स्वरूपतृप्तत्वाद्विश्रान्तसुखदुःख-कर्मविपाककृतविक्रियस्य प्रक्षीणावरणत्वादनन्तज्ञानदर्शनसम्पूर्णशुद्धज्ञानचेतनामयत्वाद-तीन्द्रियत्वात् चान्यद्रव्यसंयोगवियुक्तं शुद्धस्वरूपेऽविचलितचैतन्यवृत्तिरूपत्वात्कथञ्चिद्ध्यान-व्यपदेशर्हमात्मनः स्वरूपं पूर्वसञ्चितकर्मणां शक्तिशातनं पतनं वा विलोक्य निर्जरा-हेतुत्वेनोपवर्ण्यत इति ।। १५२ ।।

ज्ञान दर्शन पूर्ण अर परद्रव्य विरहित ध्यान जो।
वह निर्जरा का हेतु है निजभाव परिणत जीव को।।१५२।।

अन्वयार्थ :- [स्वभावसहितस्य साधोः] स्वभावसहित साधु को (-स्वभाव-परिणत केवलीभगवान को); [दर्शनज्ञानसमग्रं] दर्शनज्ञान से सम्पूर्ण और [नो अन्यद्रव्यसंयुक्तम्] अन्य द्रव्य से असंयुक्त ऐसा [ध्यानं] ध्यान [निर्जरा हेतुः जायते] निर्जरा का हेतु होता है।

टीका :- यह, द्रव्यकर्ममोक्ष के हेतुभूत ऐसी परम निर्जरा के कारणभूत ध्यान का कथन है।

इस प्रकार वास्तव में यह (-पूर्वोक्त) भावमुक्त (-भावमोक्षवाले) भगवान केवली को—कि जिन्हें स्वरूपतृप्तपने के कारण [१]कर्मविपाककृत सुखदुःखरूप विक्रिया अटक गई है, उन्हें—आवरण के प्रक्षीणपने के कारण, अनन्त ज्ञानदर्शन से सम्पूर्ण शुद्धज्ञानचेतनामयपने के कारण तथा अतीन्द्रियपने के कारण जो अन्य द्रव्य

---

१. केवलीभगवान निर्विकार-परमानन्दस्वरूप स्वात्मोत्पन्न सुख से तृप्त हैं, इसलिए कर्म का विपाक जिसमें निमित्तभूत होता है ऐसी सांसारिक सुख-दुःखरूप (-हर्षविसादरूप) विक्रिया उन्हें विराम को प्राप्त हुई हैं।

के संयोग रहित है और शुद्ध स्वरूप में अविचलित चैतन्यवृत्तिरूप होने के कारण जो कथंचित् 'ध्यान' नाम के योग्य है, ऐसा आत्मा का स्वरूप (-आत्मा की निज दशा) पूर्वसंचित कर्मों की शक्ति का [१]शातन अथवा उनका [२]पतन देखकर निर्जरा के हेतुरूप के वर्णन किया जाता है।

भावार्थ :- केवलीभगवान के आत्मा की दशा ज्ञानदर्शनावरण के क्षयवाली होने के कारण, शुद्धज्ञानचेतनामय होने के कारण तथा इन्द्रियव्यापारादि बहिर्द्रव्य के आलम्बनरहित होने के कारण अन्य द्रव्य के संसर्गरहित है और शुद्धस्वरूप में निश्चल चैतन्यपरिणतिरूप होने के कारण किसी प्रकार 'ध्यान' नाम के योग्य है। उनकी ऐसी आत्मदशा का निर्जरा के निमित्तरूप से वर्णन किया जाता है, क्योंकि उन्हें पूर्वोपार्जित कर्मों की शक्तिहीन होती जाती है तथा वे कर्म खिरते जाते हैं॥१५२॥

प्रवचन नं. ५१, गाथा-१५२-१५३
दिनांक - २७-१०-१९६४, आसोज कृष्ण ६, मंगलवार

भावकर्म का मोक्ष। भावकर्म मोक्ष, यह उसका अधिकार चला। आत्मा में जानने की क्रिया क्रम-क्रम से खण्ड-खण्ड हो, वह भावकर्म है। अशुद्ध है, बन्ध का कारण है। उससे मोक्ष हो, इसका नाम भावमोक्ष कहने में आता है अथवा **द्रव्यकर्ममोक्ष के हेतुभूत ऐसी परम संवर...** अब यहाँ अधिकार निर्जरा का आयेगा। आगे की गाथा में निर्जरा अधिकार आयेगा। यह द्रव्यकर्म मोक्ष के हेतुभूत, जड़कर्म के छूटने के निमित्तभूत परम संवर का प्रकार अयोगदशा तक का यहाँ वर्णन किया। अब परम निर्जरा बताते हैं। १५२ और १५३ गाथा में पूरा करेंगे। फिर मोक्षमार्ग शुरु। यह अपने चल गया है।

दंसणणाणसम्मग्गं झाणं णो अण्णदव्वसंजुत्तं।
जायदि णिज्जरहेदू सभावसहिदस्यस साधुस्स।।१५२।।

ज्ञान दर्शन पूर्ण अर परद्रव्य विरहित ध्यान जो।
वह निर्जरा का हेतु है निजभाव परिणत जीव को।।१५२।।

---

१. शातन= पतला होना; हीन होना; क्षीण होना।
२. पतन=नाश; गलन; खिर जाना।

साधु अर्थात् भगवान केवली। यहाँ भगवान केवली को साधु कहने में आया है।

टीका :- यह, द्रव्यकर्ममोक्ष के हेतुभूत... जो पूर्व के कर्म बँधे हुए हैं। केवली को चार अघाति अभी पड़े हैं न? केवलज्ञानी परमात्मा को चार घातिकर्म नाश हुए और अघाति के चार अभी बाकी रहे। उनके छूटने के निमित्तभूत ऐसी **परम निर्जरा के कारणभूत...** परम निर्जरा के कारणभूत **ध्यान का कथन है।** जिसकी परम निर्जरा अर्थात् अधिक कर्म एक साथ छूट जाये, ऐसी परम निर्जरा का यहाँ स्वरूप ऐसा ध्यान, उसका कथन है। **इस प्रकार...** ऊपर कहा था वह १५० और १५१।

इस प्रकार वास्तव में यह (-पूर्वोक्त) भावमुक्त (-भावमोक्षवाले) भगवान केवली को... भावमोक्षवाले भगवान केवली को अपने स्वरूप में अत्यन्त रागरहित दशा, क्रम रहित जानने की क्रिया का कार्य नाश हो गया। और पूर्ण भावमुक्ति हो गयी। पर्याय में अशुद्धता का बिल्कुल नाश हुआ। यह ज्ञप्तिक्रिया की अशुद्धता का। और पूर्ण सर्वज्ञ और सर्वदर्शी पर्याय प्रगट हुई। **ऐसे भगवान केवली को—कि जिन्हें स्वरूपतृप्तपने के कारण...** देखो! स्वरूपतृप्तपना-अपने स्वरूप में अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव वर्तता है। जो आनन्द अन्तर शक्ति में था, वह पूर्ण एकाग्र होकर जो पर्याय प्रगट हुई। पूर्ण आनन्द... आनन्द... आनन्द। देखो! यह स्वरूपतृप्ति। स्वरूपतृप्ति हो गयी। **स्वरूपतृप्तपने के कारण...** भगवान केवली को स्वरूप की तृप्ति के आनन्द के कारण, कर्मविपाककृत सुख-दुःखरूप विक्रिया रुक गयी है।

नीचे फुटनोट है। **केवलीभगवान निर्विकार-परमानन्दस्वरूप स्वात्मोत्पन्न...** आत्मा से उत्पन्न हुआ सुख। निर्विकार—परमानन्दस्वरूप स्वआत्मा से उत्पन्न सुख से तृप्त है। लो! केवलीभगवान परम आनन्द से तृप्त है। तृप्ति हो गयी है। यहाँ लोग नहीं कहते? लड्डू खाये, कुछ पीवे क्या कहलाता है? मोसम्बी। प्यास की कुछ तृप्ति हुई अब? छाछ-मोसम्बी पीवे, अब तृप्ति तेरी तृषा की पूरी हुई या नहीं? ऐसा कहे। धूल भी तृप्ति नहीं। उसमें राग और कल्पना मिली। आत्मानन्द जो अन्तर में पूर्णानन्द पड़ा है, उसका पहला अन्तर में परिणमन करके आनन्द के अंश की प्रगट दशा में प्रतीति हो गयी कि पूरा आत्मा आनन्दमूर्ति है। समझ में आया? उसमें परिणमन किया, परिणमन।

पहला तो सम्यग्दर्शन के काल में वह आत्मा रागवाला और विकारवाला और संयोगवाला जो अनादि से मनाया हुआ था, वह मान्यता स्वरूप के परिणमन गमन में शुद्ध चैतन्यस्वरूप परम स्वभाव अकेला आननद आनन्दस्वरूप ही पूरा तत्त्व है। ऐसा प्रतीति में आने पर आनन्द के अंश की भी वेदन दशा होने पर, यह पूरा आत्मा स्वरूपतृप्त भरा हुआ है, ऐसा प्रथम सम्यग्दर्शन में भान होता है।

यह चारित्रसहित परमात्मा की बात ली है। भगवान को तो चारित्र पूर्ण स्वरूप में रमणता तो हो गयी और परमानन्द की पूर्ण तृप्ति हो गयी। जैसा वस्तु में आनन्द था, वह पहले अनुभव में प्रतीति आयी थी। ऐसा पर्याय में—अवस्था में आनन्द के अन्तर में लीन होने पर शक्ति की व्यक्तता परमानन्द की तृप्ति हुई। उसके कारण से, उसके कारण से है न? स्वरूपतृप्तपने के कारण, टीका। यहाँ भी नीचे (फुटनोट में) कहा है, **निर्विकार-परमानन्दस्वरूप स्वात्मोत्पन्न सुख से तृप्त हैं, इसलिए...** ऐसा। कर्म का विपाक जिसमें निमित्तभूत होता है, ऐसी सांसारिक सुख-दुःखरूप (-हर्ष-विषादरूप) विक्रिया उन्हें विराम प्राप्त हुई है, ऐसा। सुख-दुःख के विकल्प, संकल्प-विकल्प वे विराम अर्थात् नाश हो गये हैं। समझ में आया?

स्वरूपतृप्तपने के कारण कर्मविपाककृत... कर्म के विपाक से जिसमें निमित्तपना कर्म के विपाक का है, ऐसे आत्मा में होती **सुखदुःखरूप विक्रिया अटक गई है,...** अटक गयी अर्थात्? नहीं होती। **उन्हें,...** देखो! यहाँ भाषा ऐसी ली है, हों! कर्मविपाककृत, कर्म के विपाक से हुए सुख-दुःखरूप, निमित्त से, नीचे स्पष्टीकरण किया है। **स्वरूपतृप्तिपने के कारण,...** निमित्तपने के झुकाव का सुख-दुःख कल्पना का भाव, वह नाश हो गया है। अकेला आनन्द... आनन्द... आनन्द स्वरूप तृप्त... तृप्त... तृप्त।

उन्हें—आवरण के प्रक्षीणपने के कारण,... आवरण का प्र—विशेष, आवरण सब क्षीण हो गया। यह यहाँ अभी केवली की बात चलती है, हों! तेरहवें (गुणस्थान) की बात चलती है। **उन्हें—आवरण के प्रक्षीणपने के कारण,...** घाति के नाशपने के कारण। पहले लिया कि **स्वरूपतृप्तपने के कारण कर्मविपाककृत सुखदुःखरूप विक्रिया अटक गई है,...** अब **आवरण के प्रक्षीणपने के कारण,...** निमित्त। **अनन्त ज्ञानदर्शन से**

सम्पूर्ण शुद्धज्ञानचेतनामयपने के कारण... आवरण के प्रक्षीणपने के कारण, वह निमित्त कहा। आत्मा में अनन्त-अनन्त बेहद ज्ञान-दर्शन से सम्पूर्ण शुद्ध कहा। शुद्ध ज्ञानचेतना में भी सम्पूर्ण विशेष लगाया है। क्या कहा यह ?

पहले, चौथे गुणस्थान से शुद्धचेतना होती है। समझ में आया ? ज्ञान ज्ञान को जाने, वेदे, ऐसा अंश चौथे गुणस्थान में भी शुद्ध ज्ञानचेतना होती है। पाँचवें में होती है, छठवें में होती है, बारहवें में। सिद्ध को सम्पूर्ण ज्ञानचेतना, क्योंकि पहले कह गये हैं न कि तेरहवें गुणस्थान में ज्ञानचेतना है। पहले शुरुआत में कह गये हैं। कर्मचेतना, वह त्रस जीव को होती है। राग-द्वेष का वेदन करना, ऐसी कर्ताबुद्धि का वेदन कर्मचेतना त्रस जीव को होता है। कर्मफलचेतना एकेन्द्रिय को होती है। कर्मफलचेतना समझ में आता है ? क्या ? हर्ष-शोक का वेदन। हर्ष-शोक का वेदन मुख्यरूप से कर्म के फल का वेदन वह एकेन्द्रिय जीव को कर्मफल आनन्द का फल तो है नहीं। कर्म की चेतना का वीर्य मन्द है, इसलिए करना, ऐसी बुद्धि गौण है। मुख्यरूप से एकेन्द्रिय जीव को निगोद में अनादि के अनन्त... अनन्त... अनन्त... पड़े हैं, उन्हें तो अकेला विकार के परिणाम का भोगना, ऐसी कर्म-विकार के कर्मचेतना का अकेला वेदन है। त्रस जीव को मुख्यरूप से कर्मचेतना, गौणरूप से कर्मफल है। वीर्य की स्निग्धशक्ति अधिक है, इसलिए उसे कर्मचेतना मुख्यरूप से गिनी है। भगवान को ज्ञानचेतना गिनी है। कितने ही कहते हैं कि ज्ञानचेतना वहाँ ही होती है। नीचे नहीं होती। वहाँ ज्ञानचेतना तेरहवें गुणस्थान में गिनी है, पहले। उसका यहाँ टीकाकार ने स्पष्टीकरण किया है। देखो! समझ में आया ?

अनन्त ज्ञान-दर्शन से सम्पूर्ण शुद्ध ज्ञानचेतनामय हो गयी है दशा। केवली को सम्पूर्ण ज्ञान का चेतना, रमना, आनन्द पूर्ण हो गया है। **अनन्त ज्ञानदर्शन से सम्पूर्ण...** आहाहा! **शुद्धज्ञानचेतनामयपने के कारण...** वह तो सम्पूर्ण और शुद्ध इन दो शब्दों पर जरा वजन है। समझ में आया ? केवली परमात्मा को सम्पूर्ण और शुद्ध ज्ञानचेतना पूर्ण हो गयी है। चौथे गुणस्थान में शुद्ध ज्ञानचेतना आंशिक है। समझ में आया ? भले रागादि और हर्ष-शोक का वेदन है। परन्तु वह सुखबुद्धि की रुचि से नहीं है, इसलिए उसे मुख्यरूप से न गिनकर ज्ञानी को ज्ञान का ही वेदन चैतन्यप्रभु अन्तर स्वरूप आनन्द शुद्ध

आनन्द, उसके ही परिणमन का वेदन मुख्यरूप से गिनने में आया है। साथ में राग-द्वेष और हर्ष-शोक का वेदन है। केवली को कुछ जरा भी नहीं। हर्ष-शोक का वेदन नहीं, पहले कह गये। सुख-दुःख की विक्रिया नहीं। ओहोहो!

पूर्ण आत्मा। जैसी शक्ति में पूर्ण आनन्द और पूर्ण ज्ञान, दर्शन, वीर्य था, वह पूर्ण जो अनन्त ज्ञान, दर्शन प्रगट हुआ, वीर्य भी साथ में प्रगट हुआ, उसे सम्पूर्ण **शुद्धज्ञान-चेतनामयपने के कारण...** एक बात। उसकी आत्मदशा ऐसी है, ऐसा कहते हैं। ऐसी दशा से उसे पूर्व के अघाति कर्म **शातन** और **पतन** दो शब्द प्रयोग किये हैं न? ऐसी दशा के कारण उसे उस प्रकार का ध्यान वर्तता है, ऐसा। इसलिए पूर्व के कर्म का शातन—टलना और पतन—सर्वथा नाश होना। समझ में आया? भाषा देखो! शातन और पतन। यह शब्द पड़े हैं। शातन और पतन। कितना साहित्य है इसमें? हें? आचार्य शब्द-साहित्य में भी कितने प्रवीण हैं! कर नहीं सकते, हों! समझ में आया? जमुभाई शब्द रखते हैं न कितनी ही बार, इससे याद आया। वे बहुत रखते हैं। हें, खबर है? ववा साथ में ववा, भभा साथ में भभा। दो तीन भाषा आती है यह भाषा अलंकार कहलाता है।

यहाँ कहते हैं, ऐसा भगवान आत्मा की पर्याय **अतीन्द्रियपने के कारण...** अकेली अतीन्द्रियदशा। इन्द्रिय जड़, मिट्टी, भले छिद्र रह गये देह के इन्द्रिय खण्ड-खण्ड मिटकर अतीन्द्रिय हो गया। **जो अन्य द्रव्य के संयोग रहित है...** उसका स्वरूप है। भगवान आत्मा परमानन्दमूर्ति अन्य द्रव्य के संयोगरहित जिसकी दशा है। इस प्रकार पूरे आत्मा की व्याख्या करते हैं। और आत्मा की पूरी पर्याय हो तब ऐसा होता है। समझ में आया? **अन्य द्रव्य के संयोग रहित है...** यह आत्मदशा का स्वरूप है। **और शुद्ध स्वरूप में...** यह नास्ति से बात की है। **अन्य द्रव्य के संयोग रहित है...** यह नास्ति बात की है। अस्ति - **और शुद्ध स्वरूप में अविचलित चैतन्यवृत्तिरूप होने के कारण...** ओहो! अन्तर आत्मा के ध्रुवधाम में लीन होकर जो पर्याय प्रगट की, ऐसी शुद्ध स्वरूप में अविचलित-चलित नहीं। अविचलित—विचलित नहीं, चैतन्यपरिणति, चैतन्यवृत्ति, चैतन्यधारा ऐसी अविचलित होने के कारण **जो कथंचित् 'ध्यान' नाम के योग्य है,...** इस कारण से उसे ध्यान कहा जाता है।

भगवान को ध्यान। उन्हें ध्यान करना नहीं, ऐसा नहीं परन्तु इस कारण से उसे

ध्यान कहा जाता है। कहो, समझ में आया? शुद्ध स्वरूप में अविचलित चैतन्यधारा परिणतिरूप, वृत्ति-परिणति पर्याय **होने के कारण जो कथंचित् 'ध्यान' नाम के योग्य है,...** कहो, समझ में आया? **ऐसा आत्मा का स्वरूप (-आत्मा की निज दशा)...** अवस्था **पूर्वसंचित कर्मों की शक्ति का शातन...** अर्थात् कि पूर्व के अघातिकर्म जो पड़े हैं, उनका शातन होता है। **पतला होना; हीन होना; क्षीण होना।** अथवा उनका **पतन**-नाश, गल जाना, खिर जाना। ऐसा **अवलोक कर,...** ऐसी दशा के काल में कर्म का शातन-पतन देखकर **निर्जरा के हेतुरूप के वर्णन किया जाता है।** वह ध्यान निर्जरा के हेतु है, ऐसा वर्णन किया जाता है। समझ में आया?

यह 'ध्यान' नाम के योग्य है, ऐसा आत्मा का स्वरूप... ऐसा। ध्यान नाम के योग्य होना, ऐसा जो आत्मा का स्वरूप, ऐसा। वह पूर्वसंचित कर्मों की शक्ति का शातन, कौन? ऐसा जो ध्यान, ऐसी जो आत्मा की दशा। समझ में आया? यह कर्मों का पतला पड़ना और कर्मों का टलना **अवलोक कर...** उसे ध्यान **निर्जरा के हेतुरूप के वर्णन किया जाता है।** कहो, समझ में आया इसमें कुछ? ऐसे ध्यान नहीं कि मैं ध्यान करूँ। नीचे तो अन्दर ऐसा विकल्प आवे कि मैं स्थिर होऊँ। परन्तु वह ध्यान अन्तर की एकाग्रता-पूर्णता नहीं तो एकाग्रता करना चाहते हैं। यहाँ तो पूर्णता हो गयी है। अनन्त दर्शन-ज्ञान शुद्धचेतनामय परिपूर्ण... परिपूर्ण तृप्त-तृप्त वर्तते हैं।

इस कारण से, इस हेतु से उसे इस अपेक्षा से ध्यान कहने में आया, ऐसी ध्यान की दशा वह पूर्व के कर्म को पतला और खिरना देखकर उस दशा में उस ध्यान को निर्जरा का कारण और निमित्त कहने में आता है। कहो, समझ में आया इसमें? देखो! कितना तोल-तोलकर और कितने शब्द और कैसी... शब्दों के कर्ता नहीं, हों! परन्तु भाव में निमित्त-निमित्त सम्बन्ध है न? वह भाव कैसा है, वैसी ही भाषा की पर्याय भाषा प्रकाशती है पदार्थ को भाषा प्रकाशती है पदार्थ को।

भावार्थ :- केवलीभगवान के आत्मा की दशा... यह कहा न आत्मा का स्वरूप? ध्यान नाम को योग्य ऐसी आत्मा की दशा, ऐसा। इस कारण जो कथंचित् 'ध्यान' नाम के योग्य ऐसी जो आत्मा की दशा। ऐसी **केवलीभगवान के आत्मा की**

दशा ज्ञानदर्शनावरण के क्षयवाली होने के कारण,... उसे ज्ञानावरणीय और दर्शनावरणीय का क्षय हुआ है। शुद्ध ज्ञानचेतनामय होने के कारण, समुच्चय शब्द रखा, वह सम्पूर्ण निकाल डाला। **शुद्धज्ञानचेतनामय होने के कारण तथा इन्द्रियव्यापारादि बहिर्द्रव्य के आलम्बन रहित होने के कारण...** कौन सी दशा? अन्तर दशा। इन्द्रिय व्यापारादि रहित बहिर्द्रव्य के अवलम्बनरहित होने के कारण **अन्य द्रव्य के संसर्ग रहित है...** समझ में आया?

और शुद्धस्वरूप में निश्चल चैतन्यपरिणतिरूप होने के कारण... और शुद्धस्वरूप में निश्चल-चलित नहीं, ऐसी परिणति / वृत्ति थी न? उसका अर्थ परिणति पर्यायरूप होने के कारण **किसी प्रकार 'ध्यान' नाम के योग्य है।** इस अपेक्षा से कर्म खिरते हैं, पतले (पड़ते हैं), इस अपेक्षा से ध्यान के योग्य निर्जरा को अवलोककर यह ध्यान है, ऐसा कहने में आता है। ध्यान का भोग निर्जरा है न? वहाँ निर्जरा होती है, ऐसा जानकर इसे ध्यान कहने में आया है। ओहोहो! भगवान को ध्यान! वे वेदान्तवाले तो शोर मचा जाये। केवली हो गये? यह भान होने के बाद भी राग रहे और अनुभव करे? अनुभव करे आत्मा? आत्मा, आत्मा का अनुभव करे? द्वैत नाश हो गया। अब सुन न!

अद्वैत माननेवाले को यह तो बात ऐसी लगे! यह क्या कहते हैं यह सब? .... आत्मा को सुख होगा? परन्तु इसे खबर नहीं, उसे परिणमन है। अनन्त गुण का धनी और अनन्त उसका परिणमन है। वह परिणमन की पर्याय में शुद्ध चैतन्य की धारा के कारण उसे भी ध्यान कहने में आता है। समझ में आया? **उनकी ऐसी आत्मदशा का निर्जरा के निमित्तरूप से वर्णन किया जाता है, क्योंकि उन्हें पूर्वोपार्जित कर्मों की शक्ति...** केवली को पूर्व में बँधे हुए चार अघातिकर्म बाकी हैं। उनकी **शक्ति हीन होती जाती है-शातन। तथा वे कर्म खिरते जाते हैं-पतन। गलन; खिर जाना।** ऐसा गिनकर उसे ध्यान कहा है। भाव में ठेठ मोक्ष की पर्याय तक बात ले गये हैं। फिर मोक्षमार्ग का अधिकार-नवतत्त्व का वर्णन करना है न?

जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष। यह करके फिर मोक्ष के मार्ग का वर्णन करते हैं। कहो, समझ में आया? १५२ गाथा हुई।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : फिर कितना कहे ? इसमें केवली का ही कथन कितना है ?

मुमुक्षु : शब्दार्थ...

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु शब्दार्थ में भाव आया न स्पष्ट। क्या यह किसे... वहाँ आ गया उसमें सब आ गया। कहा न ? परन्तु इसमें क्या कहा ?

मोक्षदशारूपी आत्मा की पवित्रता परिपूर्ण स्वभाव के आश्रय से प्रगट हुई। समझ में आया ? वह कल गाथा नहीं रखी थी पंचास्ति की ? १०३-१०४, वहाँ गमण शब्द पड़ा है न ? अनुगमन नहीं ? इसमें है। यह तो अनुगमन शब्द पड़ा है न ? '**तदणुमगणुज्जदो**' है न शब्द ? '**मुणिऊण एतददं तदणुमगणुज्जदो**' ऐसा '**तदणुमगणुज्जदो**' उसे अनुसरने का उद्यम करता हुआ। इसमें से जरा यह केवली ने केवलज्ञान कैसे प्रगट किया, उसमें से यह याद आया। अनुगमन उद्धत है, ऐसा। देखो ! 'अनुगमन और उद्धत' तीन शब्द हैं।

यह पहला धर्मात्मा अपने स्वरूप को, शुद्ध चैतन्य ध्रुव को अनुसरकर, उसका लक्ष्य करके, उसका आश्रय करके उसमें गमन किया। गमन करने का 'अनुगमन और उद्धत' हुआ, परिणमन किया। समझ में आया ? टीका में यह शब्द है प्राय: जयसेनाचार्य में है न ? यह क्या है ? कितनी गाथा है यह ? १०४। देखो ! शब्द है न गमन उद्धत ऐसा शब्द है न ? जयसेन आचार्य ने किया है। गमन उद्धत ऐसा। गमन का अर्थ। '**तानमयत्वेन परिणमनोवत**' गमन करना, परिणमना। परिणमने में उद्धत। क्या कहा समझ में आया ? उसके बाद पहला शब्द यह पड़ा है।

अणु शब्द पड़ा है न ? **(तमणुं) तं शुद्धजीवास्तिकाय लक्षणमर्यं अनुलक्षणीय समाश्रित्य (गमणुज्जुदो)** अकेला आत्मा ज्ञायकभाव शुद्ध आनन्दकन्द ध्रुव का अनुसरण करता हुआ। उसका '**अनुलक्षणीय कृत समाश्रित्य**' उसका लक्ष्य करके उसे ध्येय करके गमन अर्थात् परिणमन में उद्यत होता हुआ। कहो, समझ में आया ? तब तो ध्यान की एकाग्रता है, उस जाति की एकाग्रता है। यहाँ तो पूर्ण हो गया। वहाँ होने पर उसे वह कर्म टलते हैं और गलते हैं अथवा घटते हैं, इस कारण से उसे ध्यान कहने में आया है।

यह तो ध्यान का विषय अकेला चैतन्य भगवान पूर्ण शुद्ध जीवास्तिकाय, ऐसा लिया

है न! देखो न! यह तो अस्तिकाय है न, इसलिए ऐसा शब्द लिया है। शुद्ध जीवास्तिकाय लक्षण अर्थम्। ऐसा जो पदार्थ '**अनुलक्षणीय कृत**' उसका अनुलक्ष करके उसका '**समाश्रित्य**' उसका आश्रय करके '**गमन उद्धत तनमयत्येन परिणमन**' यह गमन का अर्थ किया। इसमें ज्ञायकभाव शुद्ध ध्रुव, उसमें एकाकार दृष्टि से, यह पहले सम्यग्दर्शन की दशा है। कहो, समझ में आया? उद्यत, हों! वापस उसमें। वहाँ पुरुषार्थ है। फिर शुद्धात्मा उपादेय '**इति रुचिरूप निश्चय सम्यक्त्व प्रतिबंधक दर्शनमोहा भावातदनन्तर निहितमोहो नष्ट दर्शनमोह!**' समझ में आया?

यहाँ यह दशा हुई, वहाँ दर्शनमोह का नाश हुआ। पश्चात् यहाँ स्थिरता हुई, इसलिए राग-द्वेष का नाश हुआ। फिर उसमें से निकाले तो... स्थिरतावाले का समूह है, उसमें भी निकालना हो तो निकालनेवाला दिक्कत निकाले तब क्या? है तो शब्द पहले से क्रम पड़ा है। '**दुःखमोक्षकारणस्य कमं कथमति**' अमृतचन्द्राचार्य में क्रम आख्यातम् है न? क्रम... क्रम... क्रम से। परन्तु यह पहला क्रम इसके साथ इतना। समझ में आया? कि शुद्ध ज्ञायक चैतन्य परिपूर्ण परमभाव पूरी वस्तु एक समय की दशा वर्तती है, वह तो ऊपर-ऊपर है। परन्तु उसका दल अन्तर्मुख पूरा। वस्तु है वस्तु पूरी वस्तु। उस वस्तु को अनुलक्ष करके जो गमन अन्दर उद्यत होकर परिणमन करना। कहो, समझ में आया इसमें? भीखाभाई!

यह आत्मा वस्तु है या नहीं? तो वस्तु ऐसे द्रव्य है या नहीं ध्रुव? उसके ऊपर-ऊपर पर्याय वर्तती है। ऊपर अर्थात् एक क्षण की पर्याय पूरे द्रव्य में ऊपर-ऊपर... ऊपर अर्थात्? कहीं ऐसे पूरे में ऐसे ऊपर नहीं। पूरे सर्व में ऊपर-ऊपर पर्याय है।

मुमुक्षु : ऊपर के भाग में फल और अन्दर में नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा नहीं है। पूरा आत्मदल ऐसी पूरी चैतन्यमूर्ति। परमानन्द का दरबार पूरा समाज अनन्त गुण का पिण्ड ऐसी वस्तु, उसे लक्ष्य करके, अनु अर्थात् लक्ष्य करके, गमन अर्थात् उद्यत-पुरुषार्थ से अन्दर परिणमन एकाकार तन्मय होकर परिणमन हो, उसे प्रथम सम्यग्दर्शन का ध्यान कहने में आता है। कहो, समझ में आया? यह तो यहाँ ध्यान है न, इसलिए और वहाँ उस स्वरूप में एकाग्रता जो आंशिक प्रगट

हुई, वह ध्यान। परिणमन और सम्यग्दर्शन, विशेष में ध्रुव में एकाकार होकर, विशेष लीनता हुई, उसे चारित्ररूप ध्यान कहने में आता है। कहो, समझ में आया?

और वह विशेष लीनता होकर अनन्त ज्ञान-दर्शन आदि भगवान को प्रगट हुए। अब उसका जो चार अघाति बाकी रहे हैं, उसकी निर्मलदशा में अत्यन्त पूर्णानन्द की पर्याय शुद्ध चैतन्य ज्ञानमय तृप्तपने की दशा, उसके स्थान में पूर्व के चार अघातिकर्म हैं। हानि और नाश, ऐसा होता जाता है। उसके कारण यहाँ भगवान को ध्यान है, ऐसा कहने में आया है।

मुमुक्षु : विहार करते-करते भी ध्यान होता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : विहार कब करते थे वे? वह सब अपने में और अपने में हैं। वे कहाँ विहार किसे करना और किसे जाना? क्षेत्रान्तर द्रव्य हो परन्तु पर्याय तो अपने आनन्द में ही है।

मुमुक्षु : ज्ञान सूर्य ऐसा है?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ज्ञान सूर्य बड़ा, ऐसा है। बड़ा सूर्य ऐसे चमक-चमक केवलज्ञान को प्रगट करे, ऐसा चमकता सूर्य। समझ में आया? यह वह लाईट नहीं कहते? क्या कहलाती है बड़ी वह? सर्चलाईट, अपने नहीं वहाँ? बाहुबलीजी में। दो। ऊपर रखते हैं न दो ऐसी? बाहुबलीजी ऐसे सत्तावन फीट के। वह अनन्त सर्चलाईट का सूर्य है अन्दर। यह तो परनिमित्त है। क्या कहलाता है इसका नाम? परन्तु उसका कुछ प्रमाण होता है न? हजार और, ऐसी कुछ होती है। यह तुम्हारे सब अंग्रेजी के नाम होते हैं। हजार, पावर पाँच सेर (वाट)। ऐसा का ऐसा प्रकाश के प्रकाश का प्रवाह चला ही जाता है।

आत्मा उससे भी अनन्त-अनन्त बेहद शक्ति का पूरा सूर्य है। उसमें से किरण प्रवाह पर्याय में निकलती है। समझ में आया? क्षयोपशम की किरणें तो अनादि की हैं। उस क्षयोपशम की किरण को, धर्म नहीं कहा जाता। अनादि का क्षयोपशम है। उस क्षयोपशम को अन्तर में लक्ष्य करके परिणमन में अन्तरोन्मुख करे, तब उसे सम्यग्ज्ञान का सूर्य, सम्यग्दर्शन का सूर्य उगा। केवलज्ञान सूर्य बाकी है। समझ में आया?

भावमुक्त हुए। परन्तु पहले से मुक्त होते-होते हुए हैं या नहीं? समझ में आया? गजब बात! निरालम्बी बातें और धर्म को लोगों को बाहर से खोजना है। विवाद, तकरार, विवाद। भाई! यह तेरा महापरमात्मधाम महा चैतन्यस्वरूप ऐसा भगवान, उसमें लीन होने से सम्यग्दर्शन पर्याय-किरण होती है, सम्यग्ज्ञान, मति-श्रुत की किरण, स्थिर होते हुए चारित्र की वीतरागता की किरणें। वीतरागता की किरणें। उस प्रकाश में वीतरागभाव बढ़े। ऐसा करते हुए शुद्ध विशेष स्थिर हो, तब केवलज्ञान की किरण प्रस्फुटित हो। उसमें है, उसमें से प्रस्फुटित होती है। कहीं बाहर से आवे, ऐसा नहीं है। कहो, समझ में आया?

ऐसा भगवान ऐसे केवलज्ञान, केवलदर्शन शुद्ध चैतन्यमय तृप्त... तृप्त... तृप्त। परमात्मा अरिहन्त जो हुए, उसे निर्मल चेतना अविचलित चेतनास्वरूप की दशा देखकर उस काल में **पूर्वोपार्जित कर्मों की शक्ति का...** देखो! भाषा क्या है? कर्मों की शक्ति का। समझ में आया? स्थिति का नाश होता जाये। **शक्ति का...** समुच्चय शब्द प्रयोग किया है न? वास्तव में तो केवली को भी उसमें पाप के परमाणु की स्थिति-रस तो नाश पाता है। पुण्य की स्थिति नाश पाती जाती है। पुण्य का अनुभाग नाश नहीं पाता। सामान्य शक्ति शब्द। समझ में आया? कितना पृष्ठ जयसेनाचार्य में? ५२।

'**स्थितिविनाशं**' ऐसा है, देखो! '**तत्पूर्वसंचितकर्मणा ध्यानकार्यभूतं स्थितिविनाशं गलनं च द्रष्टवा**' कहीं अनुभाग घटता नहीं। पुण्य का तो अनुभाग बढ़ता है। इसलिए शब्द प्रयोग किया है। समझे? रावजीभाई! केवली को कर्म पुण्य और पाप के रस और स्थिति, पाप की दोनों घटती है। पुण्य की स्थिति घट जाये-नाश हो जाये। पुण्य का रस नहीं घटता। पुण्य का रस बढ़ जाता है। अन्त में पूरा हो, तब दोनों पृथक् हो जाते हैं। यह भी पृथक् और वह भी पृथक्। यहाँ पूरा हो तो वहाँ भी रस पूरा हुआ। दोनों पृथक् पड़ जाते हैं। यहाँ स्थिति कहा है। है न? '**ध्यानकार्यभूतं स्थितिविनाशं गलनं च द्रष्टवा निर्जरारूपध्यानस्य कार्यकारणमुपचर्योपचारेण ध्यानं भण्यत इत्यभिप्रायः**' लम्बी बात है। कहो, समझ में आया?

किसे क्या है? केवली को क्या है? यह तृप्त-तृप्त आनन्द, वह तो झरना बढ़े, ऐसा स्वभाव है। भगवान को क्या है उसमें? जड़ में बढ़े उसमें। आनन्द के रस का

अनुभव है, वह है और कितनी ही अघाति प्रकृति का क्षय होता जाता है। इतनी-इतनी थोड़ी शुद्धता भी बढ़ती जाती है, उस जाति के वे प्रतिजीवी गुण, पूर्ण हो गये, हो रहा। ऐसा प्रत्येक आत्मा का स्वभाव है। ऐसे पूरे भगवान पूर्ण स्थित हैं सब। महाभगवान... महाभगवान वे कहते हैं न? क्या कुछ कहते हैं। समझ में आया? यह केवली भगवान की दशा, उसे यहाँ ध्यान कहने में आता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ध्वनि उसके कारण छूटती है। वहाँ कहाँ वे छोड़ते हैं? वह तो भाषा उसके कारण छूटने का काल हो, तब छूटती है। भगवान कहाँ बोलते हैं? अरे! जगत से बहुत उल्टी बातें। भगवान तो आत्मा है, उसकी खान में भाषा के रजकण पड़े हैं? यह ध्वनि तो जड़ की उठती है।

मुमुक्षु : उनकी वाणी निकलती है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त सम्बन्ध ऐसा कहलाता है न? निमित्त का ज्ञान कराते हैं। उस वाणी के काल में निमित्त किसका था? कि केवली का। बस, इतनी बात! कहो, समझ में आया? यह १५२ गाथा हुई। अब यह इसका साधनपना कहकर यह पूर्ण साधन.... उसमें हो, इतना आवे न? कितना आवे? अब १५३ (गाथा)।

गाथा - १५३

जो संवरेण जुत्तो णिज्जरमाणोध सव्वकमाणि।
ववगदवेदाउस्सो मुयदि भवं तेण सो मोक्खो।।१५३।।

यः संवरेण युक्तो निर्जरन्नथ सर्वकर्माणि।
व्यपगतवेद्यायुष्को मुञ्चति भवं तेन स मोक्षः।।१५३।।

द्रव्यमोक्षस्वरूपाख्यानमेतत् ।

अथ खलु भगवतः केवलिनो भावमोक्षे सति प्रसिद्धपरमसंवरस्योत्तरकर्मसन्ततौ निरुद्धायां परमनिर्जराकारणध्यानप्रसिद्धौ सत्यां पूर्वकर्मसन्ततौ कदाचित्सवभावेनैव कदाचित्समुद्घात-विधानेनायुःकर्मसमभूतस्थित्यामायुःकर्मानुसारेणैव निर्जीर्यमाणायामपुनर्भवाय तद्भवत्यागसमये वेदनीयायुर्नामगोत्ररूपाणां जीवेन सहात्यन्तविश्लेषः कर्मपुद्गलानां द्रव्यमोक्षः।।१५३।।

– इति मोक्ष पदार्थव्याख्यानं समाप्तम्।

समाप्तं च मोक्षमार्गावयवरूपसम्यग्दर्शनज्ञानविषयभूतनवपदार्थव्याख्यानम्।।

जो सर्व संवर युक्त हैं अरु कर्म सब निर्जर करें।
वे रहित आयु वेदनीय और सर्व कर्म विमुक्त है।।१५३।।

अन्वयार्थ :- [यः संवरेण युक्तः] जो संवर से युक्त है ऐसा (-केवलज्ञान प्राप्त) जीव [निर्जरन् अर्थ सर्वकर्माणि] सर्व कर्मों की निर्जरा करता हुआ [व्यपगतवेद्यायुष्कः] वेदनीय और आयु रहित होकर [भवं मञ्चति] भव को छोड़ता है; [तेन] इसलिए (इस प्रकार सर्व कर्मपुद्गलों का वियोग होने के कारण) [सः मोक्षः] वह मोक्ष है।

टीका :- यह, द्रव्यमोक्ष के स्वरूप का कथन है।

वास्तव में भगवान केवली को, भावमोक्ष होने पर, परम संवर सिद्ध होने के कारण [१]उत्तर कर्मसन्तति निरोध को प्राप्त होकर और परम निर्जरा के कारणभूत ध्यान सिद्ध होने के कारण [२]पूर्व कर्मसन्तति—कि जिसकी स्थिति कदाचित् स्वभाव से ही

---

१. उत्तर कर्मसन्तति=बाद का कर्मप्रवाह; भावी कर्मपरम्परा।
२. पूर्व=पहले की।

आयुकर्म के जितनी होती है और कदाचित् [१]समुद्घातविधान से आयुकर्म के जितनी होती है वह—आयुकर्म के अनुसार ही निर्जरित होती हुई, [२]अपुनर्भव के लिए वह भव छूटने के समय होनवाला जो वेदनीय-आयु-नाम-गोत्ररूप कर्मपुद्गलों का जीव के साथ अत्यन्त विश्लेष (वियोग), वह द्रव्यमोक्ष है॥१५३॥

इस प्रकार मोक्षपदार्थ व्याख्यान समाप्त हुआ। और मोक्षमार्ग के अवयवरूप सम्यग्दर्शन तथा सम्यग्ज्ञान के विषयभूत नव पदार्थों का व्याख्यान भी समाप्त हुआ।

गाथा - १५३ पर प्रवचन

जो संवरेण जुत्तो णिज्जरमाणोध सव्वकमाणि।
ववगदवेदाउस्सो मुयदि भवं तेण सो मोक्खो।।१५३।।

जो सर्व संवर युक्त हैं अरु कर्म सब निर्जर करें।
वे रहित आयु वेदनीय और सर्व कर्म विमुक्त है।।१५३।।

नौ पदार्थ की व्याख्या में अन्तिम गाथा। नौ पदार्थ है न ऊपर। नौ पदार्थपूर्वक, वह मोक्षमार्गप्रपंचक-विस्तार। १५४ गाथा से अपने ठेठ तक आया। आहाहा! ओम... ओम... यह, द्रव्यमोक्ष के स्वरूप का कथन है। अघाति चार कर्म के नाश का कथन है। समझ में आया? भगवान को भी अभी चार अघातिकर्म बाकी हैं। महाविदेहक्षेत्र में परमात्मा विराजते हैं, उन्हें चार घातिकर्म गये हैं और चार अघातिकर्म बाकी हैं। उन चार अघाति के टलने की व्याख्या वर्णन की जाती है।

वास्तव में भगवान केवली को, भावमोक्ष होने पर,... आहाहा! उनके आनन्द

---

१. **केवली भगवान को वेदनीय, नाम और गोत्रकर्म की स्थिति कभी स्वभाव से ही (अर्थात् केवलीसमुद्घातरूप निमित्त हुए बिना ही) आयुकर्म के जितनी होती है और कभी उन तीन कर्मों की स्थिति आयुकर्म से अधिक होने पर भी वह स्थिति घटकर आयुकर्म जितनी होने में केवलीसमुद्घात निमित्त बनता है।**

२. **अपुनर्भव=फिर से भव नहीं होना। (केवली भगवान को फिर से भव हुए बिना ही उस भव का त्याग होता है; इसलिए उनके आत्मा से कर्मपुद्गलों का सदा के लिए सर्वथा वियोग होता है।)**

के कपाट पड़े हैं, उन्हें खोलकर पर्याय में आनन्द आया है। कल जरा वह रह गया था, हों! खींचकर ऐसा शब्द वहाँ पड़ा था, वह और अभी याद आया। खींचकर, ऐसा शब्द कहीं पड़ा है। वह अभी याद आया। वह शब्द कहीं है। समझ में आया? ध्यान खींचकर अर्थात् ध्यान में पड़े—एकदम अन्दर!

पूरा भगवान ऐसा बड़ा परमात्मा विराजता है न? समझ में आया? महा उत्तम पदार्थ उत्तम उसे कहा जाता है। दूसरे किसी को उत्तम नहीं कहा जाता। उत्तम आत्मा को उत्तम बात लागू पड़े, इससे बड़ा कहा। उत्तम आत्मा को, छहों द्रव्य नहीं? दूसरे अन्ध को खबर क्या है कि हम हैं या नहीं? यह उत्तम एक पदार्थ जगत में दीपक जो यह न हो तो यह छह हैं या यह हैं या ऐसे हैं - ऐसा जाने कौन? समझ में आया? इस रजकण को खबर कब थी इस मिट्टी को, कि यह शरीर कहलाता है और इसे वाणी कहा जाता है और इसे कान कहा जाता है। वे नाम पाड़-पाड़कर खबर कब थी इसे? है कुछ? इसके स्वरूप की इसे खबर नहीं तो चेतन स्वरूप की इसे कहाँ से खबर होगी? यह तो जड़ है।

यह (आत्मा) जाननेवाला है। अपने को जाने और पर को जाने, वही उत्तम पदार्थ महान प्रभु है। समझ में आया? प्रभु तो वास्तविक वह। यह तो महान प्रभु! **वास्तव में भगवान केवली को, भावमोक्ष होने पर,...** देह के पीछे अन्दर पर्याय देह है भले भगवान को? अन्दर से भावमोक्ष हो गया है। पूर्ण ज्ञानदशा की। यह पूरा सूर्य अन्दर से जलहलता है ऐसे। असंख्य प्रदेश में अनन्त सूर्य ऐसे प्रगट हुए हैं। शरीर तो अभी बाहर पड़ा है। **परम संवर सिद्ध होने के कारण...** देखो! संवरपूर्वक निर्जरा लेनी है। पहले संवरपूर्वक निर्जरा होती है, नहीं तो निर्जरा सच्ची होती नहीं।

यहाँ तो परम संवर लेना है। उसमें परम संवर और निर्जरा को परम दोनों शब्द कहेंगे। समझ में आया? **परम संवर सिद्ध होने के कारण...** किसलिए परम संवर सिद्ध हुआ? कि **भावमोक्ष होने पर,...** ऐसा। भावमोक्ष पूर्ण निर्मलदशा भगवान को प्रगट हुई, उस कारण से **परम संवर सिद्ध होने के कारण उत्तर कर्मसन्तति निरोध को प्राप्त होकर...** बाद का कर्मप्रवाह भावी कर्मपरम्परा रुक गयी। **कर्मसन्तति निरोध को प्राप्त होकर और परम निर्जरा के कारणभूत...** देखो! भाषा। परम संवर और परम निर्जरा!

आहाहा! निर्जरा थी नीचे चौथे, पाँचवें, छठवें में। यहाँ तेरहवें में परम निर्जरा हुई पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण, खिरने का **कर्मसन्तति निरोध को प्राप्त होकर...** यह नास्ति से बात की। वह अस्ति से की। भावमोक्ष सिद्ध होने के **परम निर्जरा के कारणभूत ध्यान...** सिद्ध होने के लिये, परम निर्जरा के कारणभूत ध्यान, स्थिरता सिद्ध होने के कारण।

पूर्व कर्मसन्तति—कि जिसकी स्थिति कदाचित् स्वभाव से ही आयुकर्म के जितनी होती है... भगवान को कोई केवली को, समझ में आया? वेदनीय आदि की स्थिति कदाचित् स्वभाव से ही आर्य कर्म के जितनी हो। जितनी आयुष्य की स्थिति हो, उतनी वेदनीय किसी के सहज होती है। वेदनीय है न? वेदनीय वास्तविक उसे भव गिना है। वेदनीय की स्थिति, उसके साथ नाम, गोत्र है। वेदनीय की अवस्था किसी को आयुष्य की अवस्था जितनी केवली को होती है। स्वभाव से ही। क्या कहा यह? इसे किये बिना उस समय भगवान को केवलज्ञान हुआ-प्राप्त हुए, इसलिए वेदनीय और आयुष्य की स्थिति किसी को स्वभाव से समान होती है और किसी को समान नहीं होती। देखो! ओहो!

शुक्लध्यान का एक ही प्रयत्न पूर्ण पुरुषार्थ से इतनी अप्रतिहत गति, केवल (ज्ञान) लिया होने पर भी कर्म में वेदनीय और आयुष्य की स्थिति में किसी केवली को अन्तर रह जाता है। समझ में आया? **पूर्व कर्मसन्तति...** कि जिसकी स्थिति। ओहो! इन कर्म के प्रकार में भी ऐसा कोई प्रकार रह गया। यहाँ तो ध्यान की धारा थी। शुक्लध्यान एक धारा थी, उसे केवल (ज्ञान) हुआ तो सबको इस धारा से ही होता है।

धर्मध्यान, उग्र धर्मध्यान, शुक्लध्यान—पाया, दूसरा पाया। वह होने पर भी केवलज्ञान की दशा, आनन्ददशा पूर्ण, परन्तु कर्म का बाकी रहने में किसी को अन्तर। ओहोहो! विविधता देखो! समझ में आया? यह कर्म की ऐसी योग्यतावाले रजकण कि उसकी स्थिति किसी की वेदनीय विशेष हो, आयुष्य की थोड़ी हो। किसी को दोनों की समान हो। कदाचित् स्वभाव से आयुकर्म के जितनी होती है और कदाचित् समुद्घात विधान से आयुकर्म के जितनी होती है। ओहोहो! केवलीपना! क्या स्थिति वर्णन करते हैं। समझ में आया?

यह केवलज्ञान, केवल आनन्द, पूर्ण वीर्य, पूर्ण दृष्टा, पूर्ण स्वच्छता सब आया।

ऐसी दशा होने पर भी आयुष्य की स्थिति प्रमाण किसी को नाम, गोत्र, वेदनीय होते हैं और किसी को आयुष्य की स्थिति से अधिक भी होते हैं। किसकी? वेदनीयादि। तो वह समुद्घात विधान हुआ। देखो नीचे (फुटनोट) **केवली भगवान को वेदनीय, नाम और गोत्रकर्म की स्थिति कभी स्वभाव से ही (अर्थात् केवलीसमुद्घातरूप निमित्त हुए बिना ही) आयुकर्म के जितनी होती है...** समझ में आया?

यह चार कर्म भगवान को बाकी हैं न? उसमें किसी को आयुष्य की स्थिति प्रमाण नाम, गोत्र और वेदनीय की स्थिति होती है। चार की समान होती है, ऐसा कहते हैं। समुद्घात किये बिना, ऐसा कहते हैं। **और कभी उन तीन कर्मों की स्थिति आयुकर्म से अधिक होने पर भी वह स्थिति घटकर आयुकर्म जितनी होने में केवलीसमुद्घात निमित्त बनता है।** प्रदेश... सहज, हों! कर्ता-बर्ता कहाँ था? आयुष्य की स्थिति प्रमाण वेदनीय की कुछ अधिक हो उससे... पूरे लोक में हो जाये जरा दो समय... इसलिए वह स्थिति दोनों की समान हो जाये।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसका स्वभाव है। कर्म की कहाँ यहाँ बात है? ओहोहो! आहाहा!

यह परमाणु की ऐसी ही अवस्थावाले रजकण वहाँ रह गये कि आयुष्य की अपेक्षा कुछ अधिक थी। तो यह समुद्घात हुआ तो समान (स्थिति) हो गयी। समान होने की योग्यता उनमें थी, हों! यहाँ समुद्घात हुआ इसलिए नहीं। ऐसा। आहाहा! लहरें तो यहाँ पर्याय में, इसकी पर्याय इसके कारण हो, यह कर्ता का कार्य, निमित्त-निमित्त सम्बन्ध ही सिद्ध होता है, कर्ता-कर्म रहित। यहाँ समुद्घात हुआ, इसलिए वहाँ उसके परमाणु की स्थिति घटना पड़ी, ऐसा नहीं है। घटने के योग्य ही थे, उसके कारण से घटे हैं। विवाद निमित्त-निमित्त सम्बन्ध का, निमित्त सम्बन्ध परन्तु निमित्त-निमित्त सम्बन्ध का अर्थ क्या? उसके कारण यहाँ नहीं और इसके कारण यहाँ नहीं, तब निमित्त-निमित्त सम्बन्ध कहा जाता है। एक वस्तु है, निमित्त वस्तु है, पदार्थ है। अनन्त पदार्थ है उपचरित कारण है, कोई यथार्थ कारण है। कहो, समझ में आया?

भगवान के भी केवली के भी कर्म में अन्तर। आहाहा! उनके उदयभाव में भी

अन्तर। आता है न? बनारसीदास.... है न यह कहा न? देखो न! केवलज्ञान हुआ, क्षायिक केवलज्ञान, क्षायिक दर्शन, क्षायिक वीर्य, क्षायिक आनन्द, यह दशा तो कर्म में अन्तर कैसे? कर्म में उस प्रकार के रजकणों की अवस्था योग्यता किसी को वेदनीय और आयुष्य की स्थिति अधिक हो। समुद्घात हो जाये, दोनों स्थिति समान हो जाये। समझ में आया? तत्त्व को वास्तविक समझाने के लिये यहाँ बात ली है। उसकी स्थिति वहाँ है, अब उसे खिरना है न? इस प्रकार पहला समुद्घात समय की स्थिति घट जाती है। वह घटने के योग्य ही उसकी योग्यता ही होती है, हों! आहाहा! समुद्घातविधान से, ऐसा शब्द पड़ा है न? समुद्घात की विधि द्वारा।

आयुकर्म से अधिक होने पर भी वह स्थिति घटकर आयुकर्म जितनी होने में केवलीसमुद्घात निमित्त बनता है। वापस स्पष्टीकरण किया है। लो! यह निमित्त है। इससे यह होता है, यह निमित्त कहने में आता नहीं। उन परमाणु की स्थिति उस प्रकार से घटने की योग्यतावाले क्रमबद्ध में वे परमाणु ऐसे ही थे। आहाहा! समझ में आया?

यह आयुकर्म के जितनी समुद्घात के निमित्त से होती है। **वह—आयुकर्म के अनुसार ही निर्जरित होती हुई,...** फिर जैसे आयुष्य निर्जरित होता जाता है, तत्प्रमाण में वे वेदनीय, नाम, गोत्र भी उसके साथ उसके प्रमाण में खिरते जाते हैं। आयुकर्म के अनुसार ही **वह—आयुकर्म के अनुसार ही निर्जरित होती हुई, अपुनर्भव के लिए...** आहाहा! अपुनर्भव=फिर से भव न होना। भगवान को अब फिर से भव (नहीं होता)। केवली भगवान को फिर से भव हुए बिना ही उस भव का त्याग होता है। किसलिए?

जगत के जीव को तो भव का त्याग नये भव के लिये होता है। भगवान को भव का त्याग नये भव के अभाव में होता है। समझ में आया? **अपुनर्भव=फिर से भव नहीं होना। (केवली भगवान को फिर से भव हुए बिना ही उस भव का त्याग होता है; इसलिए उनके आत्मा से कर्मपुद्गलों का सदा के लिए सर्वथा वियोग होता है।)**

संसारी प्राणी को तो एक भव गया, वहाँ दूसरा भव, एक भव गया, वहाँ दूसरा भव। एक कर्म गया, वहाँ दूसरे कर्म। भगवान को भव जाने के पश्चात् दूसरा भव नहीं। कर्म जाने के पश्चात् दूसरे कर्म नहीं। समझ में आया? इस प्रकार उन्हें कर्म का वियोग होता है।

अपुनर्भव के लिए वह भव छूटने के समय... अन्तिम देह-भव छूटने के काल

में भगवान को **होनेवाला जो वेदनीय-आयु-नाम-गोत्ररूप कर्मपुद्गलों का...** इस भव के छूटने के समय, देखो! भगवान दीपावली को मोक्ष पधारे हैं न? देखो! यहाँ आठ दिन पहले आया उस समय। **वेदनीय-आयु-नाम-गोत्ररूप कर्मपुद्गलों का...** चार जगह किये न समान हैं। भगवान को चार अघाति थे, उसकी यहाँ निर्जरा की बात करते हैं। द्रव्यकर्म की बात थी न? **जीव के साथ अत्यन्त विश्लेष (वियोग) वह द्रव्यमोक्ष है।** अत्यन्त वियोग, वह द्रव्यमोक्ष। छूट गया।

दूसरे को तो थोड़े कर्म खिरें, और बँधे, फिर खिरें और बँधें, एक भव जाये, दूसरा भव आवे। पंचेन्द्रियपना जाये और दूसरा पंचेन्द्रियपना आवे, देवगति जाये, मनुष्यगति हो, मनुष्यगति जाये, मनुष्यगति हो। यह तो गयी, वह गयी। ओहोहो! सादि-अनन्त, अनन्त-अननत समाधि सुख में। अपने आनन्द में वह मोक्षदशा, वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र से प्रगट होती है। इसलिए वह मोक्ष-नौ (पदार्थ) को वर्णन किया और मोक्षमार्ग बाद में वर्णन किया जाता है। **कर्मपुद्गलों का जीव के साथ अत्यन्त विश्लेष (वियोग), वह द्रव्यमोक्ष है।**

इस प्रकार मोक्षपदार्थ व्याख्यान समाप्त हुआ। नौ पदार्थ में जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष। नौ की व्याख्या, दो द्रव्य और सात पर्याय की व्याख्या बराबर पूरी की। **और मोक्षमार्ग के अवयवरूप...** लो! मोक्षमार्ग का अवयव—मोक्षमार्ग तीन—दर्शन, ज्ञान और चारित्र। उनके अंशरूप अवयवरूप। जैसे यह शरीर अवयवी है, हाथ-पैर उसके अवयव हैं। मोक्षमार्ग पूरा अवयवी है। उसका एक-एक सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र अवयव है।

मोक्षमार्ग के अवयवरूप सम्यग्दर्शन तथा सम्यग्ज्ञान के विषयभूत.... लो! इसका विषयभूत नौ पदार्थ का व्याख्यान भी, मोक्षपदार्थ का व्याख्यान समाप्त हुआ। उसी प्रकार यह भी समाप्त हुआ। .... मोक्षमार्ग के अवयव सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान के विषयभूत नौ पदार्थ का व्याख्यान भी समाप्त हुआ। लो! मोक्ष अधिकारमार्ग तो अपने चला। कल तो अष्टमी है। सज्झाय चलेगी। परसों से क्या लेना? परमात्मप्रकाश थोड़ा लेना है या क्या लेना, यह विचार चलता था। परमात्मप्रकाश थोड़े दिन लेंगे। अभी नहीं लिया। वहाँ तो आयेगा वह। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रकाशक
श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
मुम्बई